सुत्तनिपाता

त्रिपिटक की संरचना

करने के लिए

त्रिपिटक

विनय पिटक

सुत्त पिटक

दीघा निकया

मज्झिमा निकया

सम्युत्त निकया

अंगुत्तरा निकया

खुद्दका निकया

अभिधम्म पिटक

तिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> सुत्तनिपात

सूत्र निपाता में कुछ महत्वपूर्ण सामाजिक और नैतिक मुद्दों पर सूत्र शामिल हैं:
जातिवाद और नस्लभेद के बारे में। सभी मनुष्य समान हैं, यद्यपि पौधों, कीड़ों, जानवरों और पक्षियों में कई उप-प्रजातियाँ हैं (3.9 वसेत्थसुत्त)।
जन्म से कोई बहिष्कृत नहीं होता। बहिष्कृत (निम्न जाति) की परिभाषा बुरे कर्मों से निर्धारित होती है (1.7 वासलसुत्त)।
संसार में हानि और लाभ क्या है (1.6 पराभवसुत्त)।
संत कौन है (1.12 मुनिसुत्त, 4.10 पुरभेदसुत्त, 4.15 अत्तदंडसुत्त)।
बुद्ध गौहत्या और पशुओं के प्रति क्रूरता के विरुद्ध हैं। बुद्ध का मानना है कि पशुओं को मारना और खाना संसार में अनेक रोगों का कारण बना है (2.7 ब्रह्मनाधम्मिकसुत्त)।
तपस्वी (भिक्षु) आलसी नहीं होते, बल्कि वे ज्ञानोदय के सर्वोच्च लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए परिश्रम करते हैं (1.4 काशिभरद्वाजसुत्त)।
यौन सुख की बुराई के बारे में (4.7 तिस्सामेत्तेयसुत्त)।

अंतर्वस्तु

I. उरागवग्गा
पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

1.1 उरगासुत्त : सभी मानवीय भावनाओं का त्याग करने वाले भिक्षु (भिक्षु) की तुलना उस साँप से की जाती है जो अपनी केंचुल उतारता है।
1.2 धानियासुत्त : धनी चरवाहे धानिया और बुद्ध के बीच संवाद, जिसमें एक अपनी सांसारिक सुरक्षा में और दूसरा अपने विश्वास में आनंदित है।
1.3 खग्गा विशनसुत्त : पारिवारिक और सामाजिक जीवन से बचना चाहिए, क्योंकि समाज में सभी बुराइयाँ व्याप्त हैं। इसलिए व्यक्ति को समाज की भ्रष्ट अवस्था को त्यागकर एकांत जीवन व्यतीत करना चाहिए।
1.4 कासिभरद्वाजसूत्र : ब्राह्मण कासिभरद्वाज गौतम (बुद्ध) को आलस्य के लिए फटकारते हैं, लेकिन गौतम उन्हें समझाते हैं कि वे भी कर्म करते हैं, और इस प्रकार ब्राह्मण परिवर्तित हो जाते हैं और अंततः संत बन जाते हैं।
1.5 चुंडासूत्र : बुद्ध लोहार चुंडा को चार प्रकार के कर्मों का वर्णन करते हैं।
1.6 पराभवसूत्र : एक देवता और बुद्ध के बीच उन चीजों पर संवाद जिनसे मनुष्य इस संसार में हानि और लाभ प्राप्त करता है।
1.7 वासलसूत्र : मतंग जातक में वर्णित मतंग की कहानी द्वारा सचित्र, बहिष्कृत व्यक्ति की परिभाषा सुनने के बाद ब्राह्मण अग्गिकभरद्वाज बुद्ध द्वारा परिवर्तित हो जाते हैं।
1.8 मेट्टासूत्र : शांत मन और सभी प्राणियों के प्रति सद्भावना की प्रशंसा की जाती है।
1.9 हेमावतासूत्र : दो लोगों के बीच संवाद। यक्ष (गैर-मानव, आत्माएं) बुद्ध के गुणों पर विचार करते हैं। वे बुद्ध के पास जाते हैं, और अपने प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने के बाद, वे दस सौ यक्षों के साथ बुद्ध के अनुयायी बन जाते हैं।
1.10 अलावकसुत्त : यक्ष (गैर-मानव, आत्मा) अलावक पहले बुद्ध को धमकाता है, फिर उनसे कुछ प्रश्न पूछता है जिनका बुद्ध उत्तर देते हैं, जिसके बाद अलावक परिवर्तित हो जाता है।
1.11 विजयसुत्त : मानव शरीर की निरर्थकता पर चिंतन; बुद्ध का अनुयायी शरीर को उसके वास्तविक स्वरूप में ही देखता है, और फलस्वरूप निर्वाण प्राप्त करता है।
1.12 मुनिसुत्त : मुनि (संत) की परिभाषा।

II. चुलवग्गा
पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

2.1 रत्न सूत्र : सभी प्राणियों के लिए मोक्ष केवल बुद्ध, धम्म और संघ में ही पाया जा सकता है।
2.2 आमगन्ध सूत्र : बुरे मन और बुरे कर्म ही मनुष्य को अपवित्र करते हैं; कोई भी बाहरी अनुष्ठान उसे शुद्ध नहीं कर सकता।
2.3 हिरिस सूत्र : सच्ची मित्रता पर।
2.4 महा मंगलसूत्र : बुद्ध ने देवता को दिए जाने वाले सर्वोच्च आशीर्वाद को परिभाषित किया है।
2.5 सुचिलोमा सूत्र : यक्ष (अमानवीय आत्मा) सुचिलोमा बुद्ध को धमकी देता है कि यदि वे उसके प्रश्नों का उत्तर नहीं दे पाए तो वह उन्हें हानि पहुँचाएगा। बुद्ध उत्तर देते हैं कि सभी मनोभाव शरीर से उत्पन्न होते हैं।
2.6 धम्मकारिया सूत्र या कपिलसूत्र : भिक्षुओं को पापी व्यक्तियों से दूर रहने की सलाह दी जाती है और उन्हें पवित्र जीवन जीने का निर्देश दिया जाता है।
2.7 ब्राह्मणमम्मिक सूत्र : धनी ब्राह्मण बुद्ध के पास आकर प्राचीन ब्राह्मणों के रीति-रिवाजों के बारे में पूछते हैं। बुद्ध उनके जीवन शैली और राजा के धन को देखकर उनमें आए परिवर्तन का वर्णन करते हैं, और यह भी बताते हैं कि कैसे उन्होंने राजा को यज्ञों में जीवित प्राणियों की बलि देने का पाप करने के लिए प्रेरित किया। बुद्ध के ज्ञानवर्धक प्रवचन को सुनकर धनी ब्राह्मण परिवर्तित हो जाते हैं।
2.8 नवसूत्र : एक अच्छे और विद्वान शिक्षक का चुनाव
2.9 किंशीलसूत्र : सर्वोच्च लाभ कैसे प्राप्त करें
2.10 उत्थानसूत्र : सुस्त और आलसी न होने की सलाह
2.11 राहुलसूत्र : बुद्ध राहुल को संन्यासी जीवन की सलाह देते हैं और उन्हें संसार से अपना मन हटाने और संयमी होने का उपदेश देते हैं
2.12 वंगीसासूत्र (निग्रोधकप्पसूत्र) : वंगीसा निग्रोधकप्प के भाग्य को जानना चाहता है, कि क्या वह पूरी तरह से नष्ट हो गया है, या क्या उसके कुछ अंश अभी भी शेष हैं। बुद्ध ने
2.13 सम्मपरिब्बाजनीयसूत्र में उत्तर दिया : भिक्षु के लिए सही मार्ग।
2.14 धम्मिकासूत्र में बुद्ध ने धम्मिका को बताया कि भिक्षु का जीवन कैसा होना चाहिए और गृहस्थ का जीवन कैसा होना चाहिए।

III. महावग्ग
पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

3.1 पब्बज्जसूत्त : राजा बिम्बिसार बुद्ध में रुचि लेकर उन्हें धन का प्रलोभन देने का प्रयास करता है, लेकिन बुद्ध उसे हल्के से फटकारते हैं।
3.2 पधानसूत्त : मारा (मृत्यु का देवता) बुद्ध को प्रलोभन देने का प्रयास करता है, लेकिन निराश होकर उसे पीछे हटना पड़ता है।
3.3 सुभाषितसूत्त : सुभाषिक
3.4 सुंदरिकाभरद्वाजसूत्त : बुद्ध सुंदरिकाभरद्वाज को बताते हैं कि किसे आहुति देनी चाहिए, और ब्राह्मण अंततः परिवर्तित हो जाता है।
3.5 माघसूत्त : पूछे जाने पर बुद्ध माघ को आहुति के योग्य व्यक्तियों और आहुति देने के आशीर्वाद के बारे में बताते हैं।
3.6 सबियासूत्त : परिब्बजक (तपस्वी) सबिया अपने समय के छह प्रसिद्ध शिक्षकों के पास अपने प्रश्नों के उत्तर पाने के लिए जाता है, लेकिन अपने संदेह दूर न होने पर वह गौतम (बुद्ध) के पास जाता है।
3.7 सेलासुत्त : जटिला वंश केनिया ने बुद्ध और उनके अनुयायियों को अगले दिन उनके साथ भोजन करने के लिए आमंत्रित किया। ब्राह्मण सेला अपने तीन सौ युवकों के साथ वहाँ पहुँचा; तैयारियों को देखकर उसने पूछा कि क्या हो रहा है, और उसे उत्तर मिला कि बुद्ध अगले दिन आने वाले हैं। 'बुद्ध' शब्द सुनते ही सेला ने पूछा कि बुद्ध कहाँ रहते हैं, उनके पास गया, उनसे बातचीत की और परिवर्तित हो गया; उसके अनुयायी भी परिवर्तित हो गए।
3.8 सल्लसुत्त : बुद्ध, जो पहले राम के रूप में थे, शिक्षा देते हैं - जीवन छोटा है, सभी नश्वर मृत्यु के अधीन हैं, लेकिन संसार के नियमों को जानकर बुद्धिमान शोक नहीं करते, और जो शोक छोड़ देते हैं उन्हें आशीर्वाद प्राप्त होगा।
3.9 वसेत्थसुत्त : भारद्वाज और वसेत्थ नामक दो युवकों के बीच विवाद उत्पन्न हुआ, भारद्वाज का तर्क था कि मनुष्य जन्म से ब्राह्मण है, जबकि वसेत्थ का। वे समना गौतम (बुद्ध) से पूछने के लिए सहमत हुए, और उन्होंने उत्तर दिया कि मनुष्य केवल अपने कर्मों से ब्राह्मण होता है। दोनों युवकों का धर्म परिवर्तन हो जाता है।
3.10 कोकालिकासुत्त : कोकालिका बुद्ध के समक्ष सारिपुत्त और मोग्गलाना का अपमान करता है; इसलिए बुद्ध से विदा होते ही उसे फोड़े हो जाते हैं, उसकी मृत्यु हो जाती है और वह पद्मा नरक में चला जाता है, जिसके बाद बुद्ध भिक्षुओं को नरक में चुगली करने वालों के दंड का वर्णन करते हैं।
3.11 नालकसुत्त : इसि (ऋषि, संत) असित, जिन्हें कन्हासिरी भी कहा जाता है, देवताओं को आनंदित देखकर इसका कारण पूछते हैं, और यह सुनकर कि बुद्ध का जन्म हुआ है, वे तुषिता स्वर्ग से अवतरित होते हैं। जब शाक्यों ने उन्हें बालक दिखाया, तो उन्होंने उसे सहर्ष ग्रहण किया और उसके बारे में भविष्यवाणी की। बुद्ध ने असित की बहन के पुत्र नालका को ज्ञान की उच्चतम अवस्था के बारे में समझाया
3.12 द्वयतानुपासनासुत्त : दुनिया में सभी दर्द उपाधि, अविज्जा, संखरा विन्नन, फस्सा, वेदना, तन्हा, उपदान, आरंभ, आहार, इंगिता, निस्साय, रूप, मोसाधम्म, सुखा से उत्पन्न होते हैं।

IV. अत्थकवग्गा
पाली संस्करण: पाली-अंग्रेजी संस्करण और पाली-देवनागरी संस्करण

4.1 कामसूत्र : इंद्रिय सुखों से बचना चाहिए।
4.2 गुहात्तकसूत्र : किसी को भी अस्तित्व और इंद्रिय सुखों से आसक्त नहीं होना चाहिए।
4.3 दुत्थत्तकसूत्र : मुनि (संत) किसी निंदा के पात्र नहीं होते, क्योंकि उन्होंने दर्शनशास्त्र की सभी प्रणालियों को त्याग दिया है, और इसलिए वे स्वतंत्र हैं।
4.4 शुद्धत्तकसूत्र : दर्शनशास्त्र से कोई शुद्ध नहीं होता; दर्शनशास्त्र के प्रति समर्पित लोग एक गुरु से दूसरे गुरु के पास जाते हैं, लेकिन बुद्धिमान लोग वासना से प्रेरित नहीं होते और संसार में किसी भी चीज को सर्वोच्च नहीं मानते।
4.5 परमत्थकसूत्र : दार्शनिक वाद-विवाद में स्वयं को नहीं लगाना चाहिए; जो ब्राह्मण दर्शनशास्त्र की किसी भी प्रणाली को नहीं अपनाता, वह अपरिवर्तनीय है, उसने निर्वाण प्राप्त कर लिया है।
4.6 जरासूत्र : स्वार्थ से दुःख और लोभ उत्पन्न होते हैं। वह भिक्षु (भिक्षु) जिसने संसार से विमुख होकर घर-बार त्याग कर विचरण किया है, स्वतंत्र है और किसी अन्य के माध्यम से शुद्धि की इच्छा नहीं रखता।
4.7 तिस्सामेत्तेयसुत्त : यौन संबंध से बचना चाहिए।

4.8 पसुरसुत्त : वाद-विवाद करने वाले एक-दूसरे को मूर्ख ठहराते हैं, वे प्रशंसा की कामना करते हैं, लेकिन अस्वीकार किए जाने पर असंतुष्ट हो जाते हैं; वाद-विवाद से शुद्धि नहीं होती, बल्कि बुद्ध की शरण में रहने से होती है, जिन्होंने सभी पापों का निवारण किया है।
4.9 मगंदीयसुत्त : मगंदीय और बुद्ध के बीच संवाद। मगंदीय बुद्ध को अपनी पुत्री विवाह के लिए अर्पित करता है, लेकिन बुद्ध उसे अस्वीकार कर देते हैं। मगंदीय कहता है कि पवित्रता दर्शन से आती है, बुद्ध 'आंतरिक शांति' से। मुनि (संत) शांति के दूत होते हैं, वे विवाद नहीं करते, वे दोषरहित होते हैं।
4.10 पुरभेदसूत्र : शांत मुनि (संत) की परिभाषा।
4.11 कालहाविवादसूत्र : विवादों और कलहों का उद्गम।
4.12 चुलवियुहसूत्र : विवाद करने वाले दार्शनिकों का वर्णन। दर्शनशास्त्र के विभिन्न संप्रदाय एक दूसरे का खंडन करते हैं, वे अलग-अलग सत्य घोषित करते हैं, लेकिन सत्य एक ही है। जब तक विवाद चलते रहेंगे, तब तक संसार में कलह बनी रहेगी।
4.13 महावियुहसूत्र : दार्शनिक पवित्रता की ओर नहीं ले जा सकते, वे केवल अपनी प्रशंसा करते हैं और दूसरों को कलंकित करते हैं। लेकिन एक ब्राह्मण सभी विवादों पर विजय प्राप्त कर लेता है, वह विद्या के प्रति उदासीन हो जाता है, वह शांत हो जाता है।
4.14 तुवतकसुत्त
: एक भिक्षु कैसे आनंद प्राप्त करता है, उसके कर्तव्य क्या हैं और उसे किन चीजों से बचना चाहिए। 4.15 अत्तदंडसुत्त : एक सिद्ध मुनि का वर्णन।
4.16 सारिपुत्तसुत्त : सारिपुत्त द्वारा यह पूछे जाने पर कि एक भिक्षु को किस चीज के प्रति समर्पित होना चाहिए, बुद्ध ने दिखाया कि उसे कैसा जीवन जीना चाहिए।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> सुत्तनिपता >> 1.1 उरगसुत्त,
वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

―――――――――――――――――――――――――

प्रारंभ <<<<-->>>> अगला

―――――――――――――――――――――――――

जो भिक्षु सभी मानवीय भावनाओं का त्याग कर देता है, उसकी तुलना उस सांप से की जाती है जो अपनी केंचुल उतार देता है।

―――――――――――――――――――――――――

अंतर्वस्तु

1.1 उरागसुत्त
अनुवाद

1. जो भिक्षु क्रोध उत्पन्न होने पर उसे नियंत्रित करता है, जैसे औषधियों द्वारा शरीर में फैलते सर्प के विष को रोका जाता है, वह भिक्षु इस और दूर के किनारों को उसी प्रकार छोड़ देता है जैसे सर्प अपनी पुरानी, घिसी हुई केंचुली को छोड़ देता है। (1)

2. जो भिक्षु वासना को पूर्णतः समाप्त कर देता है, जैसे जल में डुबकी लगाने के बाद झील में उगने वाले कमल को काट दिया जाता है, वह भिक्षु इस और दूर के किनारों को उसी प्रकार छोड़ देता है जैसे सर्प अपनी पुरानी, घिसी हुई केंचुली को छोड़ देता है। (2)

3. जो भिक्षु तृष्णा को पूर्णतः समाप्त कर देता है, जैसे बहती हुई, तीव्र गति से बहने वाली तृष्णा को सुखाकर, वह भिक्षु इस और दूर के किनारों को उसी प्रकार छोड़ देता है जैसे सर्प अपनी पुरानी, घिसी हुई केंचुली को छोड़ देता है। (3)

4. जिसने अहंकार (अहंकार/अभिमान) को पूरी तरह नष्ट कर दिया है, जैसे बाढ़ सरकंडों के बहुत कमजोर पुल को नष्ट कर देती है, वह भिक्षु इस और दूर के किनारों को ऐसे छोड़ देता है जैसे सांप अपनी पुरानी, घिसी हुई केंचुली को त्याग देता है। (4)

5. जिसने अस्तित्वों (भाव) में कोई सार नहीं पाया है, जैसे कोई अंजीर के पेड़ों पर फूल ढूंढता है, वह भिक्षु इस और दूर के किनारों को ऐसे छोड़ देता है जैसे सांप अपनी पुरानी, घिसी हुई केंचुली को त्याग देता है। (5)

6. जिसमें क्रोध की भावना नहीं है, जिसने इस प्रकार पुनर्जन्मों पर विजय प्राप्त कर ली है, वह भिक्षु इस और दूर के किनारों को ऐसे छोड़ देता है जैसे सांप अपनी पुरानी, घिसी हुई केंचुली को त्याग देता है। (6)

7. जिसके संशय (विचार) विलीन हो जाते हैं, जो भीतर से पूर्णतः विच्छेदित हो जाते हैं, वह भिक्षु इस और दूर के किनारों को उसी प्रकार छोड़ देता है जैसे साँप अपनी पुरानी, घिसी हुई केंचुली को छोड़ देता है। (7)

8. जो न तो बहुत तेजी से आगे बढ़ा और न ही पीछे रह गया, जिसने इस समस्त भ्रम (पापंचम-मानसिकता) पर विजय प्राप्त कर ली, वह भिक्षु इस और दूर के किनारों को उसी प्रकार छोड़ देता है जैसे साँप अपनी पुरानी, घिसी हुई केंचुली को छोड़ देता है। (8)

9. जो न तो बहुत तेजी से आगे बढ़ा और न ही पीछे रह गया, जिसने यह देख लिया कि संसार में सब कुछ झूठा है, वह भिक्षु इस और दूर के किनारों को उसी प्रकार छोड़ देता है जैसे साँप अपनी पुरानी, घिसी हुई केंचुली को छोड़ देता है। (9)

10. जो न तो बहुत तेजी से आगे बढ़ा और न ही पीछे रह गया, लोभ से मुक्त होकर, यह देखकर कि यह सब झूठ है, वह भिक्षु इस और दूर के किनारों को उसी प्रकार छोड़ देता है जैसे साँप अपनी पुरानी, घिसी हुई केंचुली को छोड़ देता है। (10)

11. जो न तो बहुत तेजी से आगे बढ़ा और न ही पीछे रह गया, वासना से मुक्त होकर, यह देखकर कि यह सब झूठ है, वह भिक्षु इस और दूर के किनारों को उसी प्रकार छोड़ देता है जैसे साँप अपनी पुरानी, घिसी हुई केंचुली को छोड़ देता है। (11)

12. जो न तो बहुत तेजी से आगे बढ़ा और न ही पीछे रह गया, घृणा से मुक्त होकर, यह देखकर कि यह सब झूठ है, वह भिक्षु इस और दूर के किनारों को उसी प्रकार छोड़ देता है जैसे साँप अपनी पुरानी, घिसी हुई केंचुली को छोड़ देता है। (12)

13. जो न तो बहुत तेजी से आगे बढ़ा और न ही पीछे रह गया, जो मोह से मुक्त था, (यह देखकर) कि यह सब झूठ है, वह भिक्षु (साधु) अपने और दूर के किनारे को वैसे ही छोड़ देता है जैसे एक साँप अपनी पुरानी, घिसी-पिटी केंचुली को छोड़ देता है। (13)

14. जिस भिक्षु में किसी प्रकार का स्नेह नहीं होता, जिसके पाप जड़ से नष्ट हो जाते हैं, वह इस और दूर के तटों को उसी प्रकार छोड़ देता है जैसे साँप अपनी पुरानी, घिसी हुई केंचुली छोड़ देता है। (14)

15. जिस भिक्षु में भय से उत्पन्न कोई पाप नहीं होता, जो इस तट पर वापस आने का कारण बनते हैं, वह भिक्षु इस और दूर के तटों को उसी प्रकार छोड़ देता है जैसे साँप अपनी पुरानी, घिसी हुई केंचुली छोड़ देता है। (15)

16. जिस भिक्षु में इच्छा से उत्पन्न कोई पाप नहीं होता, जो मनुष्य को अस्तित्व से बांधे रखने का कारण बनते हैं, वह भिक्षु इस और दूर के तटों को उसी प्रकार छोड़ देता है जैसे साँप अपनी पुरानी, घिसी हुई केंचुली छोड़ देता है। (16)

17. जो पाँचों बाधाओं को छोड़कर दुख से मुक्त हो जाता है, संदेह पर विजय प्राप्त कर लेता है और पीड़ा रहित हो जाता है, वह भिक्षु इस और दूर के तटों को छोड़ देता है। जैसे एक साँप अपनी पुरानी घिसी-पिटी त्वचा को छोड़ देता है। (17)

उरागसुत्त समाप्त हो गया है।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासंबुद्धस्स
खुद्दाकनिकाय
सुत्तनिपातपाली
1. उरागवाग्गो
1. उरगासुत्तं
1.
यो [यो वे (स्या.)] उपपतितं विनती कोधं, विशां सप्पविसंव ओसाधेहि [ओसाधेभि (का.)];

तो भिक्खु जहाति ओरपारं, उरगो जिन्नमिवत्तकम् [जिन्नमिव ताचं (सि. स्या. कं. पि.), जिन्नमिवा तकं (?)] पुराणम्।
2.
यो रागमुदच्छिदा असेसं, भिसापुप्फह्व सरोरुहं [सरेरुहं (का.)] विगयहा;
तो भिक्खु जहाति ओरपारं, उरगो जिनमिवत्तकम, पुराणं।
3.
यो तन्हामुदच्छिदा असेसं, सरितं सिघसारं विसोसयित्वा;
तो भिक्खु जहाति ओरपारं, उरगो जिणमिवत्तचं पुराणं।
4.
यो मनमुदबधि असेसं, नाससेतुंव सुदुब्बलं महोघो;
तो भिक्खु जहाति ओरपारं, उरगो जिणमिवत्तचं पुराणं।
5.
यो नज्झागमा भावेसु सारं, विसिनं पुप्फामिव [पुप्फामिवा (बहुसु)] उदुम्बरेसु;
तो भिक्खु जहाति ओरपारं, उरगो जिणमिवत्तचं पुराणं।
6.
यस्सान्तरतो न सन्ति कोपा, इतिभावभावातञ्च [इतिब्भावभवताञ्च (का.)] विटिवत्तो;
तो भिक्खु जहाति ओरपारं, उरगो जिणमिवत्तचं पुराणं।
7.
यस्सा वितक्क विधूपिता, अज्झत्तं सुविकप्पिता असेसा;
तो भिक्खु जहाति ओरपारं, उरगो जिणमिवत्तचं पुराणं।
8.
यो नक्कासारि न पचसारि, सब्बां अक्कागामा इमं पपनचं;
तो भिक्खु जहाति ओरपारं, उरगो जिणमिवत्तचं पुराणं।
9.
यो नक्कासारि न पचासारि, सब्बां विताथमिदंती नात्वा [उत्वा (स्या. पि. का.)] लोके;
तो भिक्खु जहाति ओरपारं, उरगो जिणमिवत्तचं पुराणं।
10.
यो नक्कासारि न पचसारि, सब्बां वित्थमिदंति वितालोभो;
तो भिक्खु जहाति ओरपारं, उरगो जिणमिवत्तचं पुराणं।
11।
यो नक्कासारि न पचसारि, सब्बां वित्थमिदन्ति वीतरागो;
तो भिक्खु जहाति ओरपारं, उरगो जिणमिवत्तचं पुराणं।
12.
यो नक्कासारि न पचसारि, सब्बं वित्थमिदन्ति वितादोसो;
तो भिक्खु जहाति ओरपारं, उरगो जिणमिवत्तचं पुराणं।
13.
यो नक्कासारि न पचसारि, सब्बं वित्थमिदंति वितमोहो;
तो भिक्खु जहाति ओरपारं, उरगो जिणमिवत्तचं पुराणं।
14.
यस्सानुसया न सन्ति केचि, मूल च अकुशल समुहतासे;
तो भिक्खु जहाति ओरपारं, उरगो जिणमिवत्तचं पुराणं।
15.
यस्सा दरथजा न संति केचि, ओरं अगमनाया पचायसे;
तो भिक्खु जहाति ओरपारं, उरगो जिणमिवत्तचं पुराणं।
16.
यस्सा वनथजा न शांति केचि, विनिबन्धया भावाय हेतुकप्पा;
तो भिक्खु जहाति ओरपारं, उरगो जिणमिवत्तचं पुराणं।
17.
Yo nīvaraṇe pahāya pañca, anigho tiṇṇakathaṃkatho visallo;

तो भिक्खु जहाति ओरपारं, उरगो जिणमिवत्तचं पुराणं।
उरगसुत्तं पथमं निहितं।

पाली-देवनागरी
॥ नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स॥
कुड्डकनिकाए
सुत्तनिपातपाळि
1. उरगवग्गो
1. उर्गसुत्तं
1.
यो [यो वे (स्या०)] उप्पतितं विनेति कोधं, विसत् सप्पविसं ओस्धेहि [ओसधेभि (क०)]।
सो भिक्खु जहाति ओरपारं, उर्गो जिन्नमिवत्तचं [जिन्नमिव तचं (सी० स्या० कं० पी०), जिन्नमिव तचं (?)] पुराणं॥
2.
यो रागमुदच्छिदा असेसं, भिसुपुप्फं सरोरुहं [सरेरुहं (क०)] विगयः।
सो भिक्खु जहाति ओरपारं, उर्गो जिन्नमिवत्तचं, पुराणं॥
3.
यो तंहमुदच्छिदा असेसं, सरितं सीघसरं विशोसयित्वा।
सो भिक्खु जहाति ओरपारं, उर्गो जिन्नमिवत्तचं पुराणं॥
4.
यो मनमुदब्बधि असेसं, नळसेतुं सुदुब्बलं महोघो।
सो भिक्खु जहाति ओरपारं, उर्गो जिन्नमिवत्तचं पुराणं॥
5.
यो नाज्झगमा भवेसु सारं, विचिनं पुप्फामिव [पुप्फामिव (बहुसु)] उदुम्बरेसु।
सो भिक्खु जहाति ओरपारं, उर्गो जिन्नमिवत्तचं पुराणं॥
6.
यस्सन्तरतो न सन्ति कोपा, इतिभावभवत्नच [इतिब्भवभवतञ्च (क०)] वीतिवत्तो।
सो भिक्खु जहाति ओरपारं, उर्गो जिन्नमिवत्तचं पुराणं॥
7.
यस् वितका विधूपिता, अज्झत्तं सुविकप्पिता असेसा।
सो भिक्खु जहाति ओरपारं, उर्गो जिन्नमिवत्तचं पुराणं॥
.
यो नाचदचसारि न पचदचसारी, सब्बं अचचगमा इमं पपञ्चसारी।
सो भिक्खु जहाति ओरपारं, उर्गो जिन्नमिवत्तचं पुराणं॥
9.
यो नचदचसारि न पचदचसारि, सब्बं विथमिदन्ति ञत्वा [उत्वा (स्या० पी० क०)] लोके।
सो भिक्खु जहाति ओरपारं, उर्गो जिन्नमिवत्तचं पुराणं॥
1.
यो नचदचसारि न पचदचसारि, सब्बं विथमिदन्ति वीतलोभो।
सो भिक्खु जहाति ओरपारं, उर्गो जिन्नमिवत्तचं पुराणं॥
15.
यो नाचदचसारि न पचदचसारि, सब्बं वित्तमिदन्ति वीतरागो।
सो भिक्खु जहाति ओरपारं, उर्गो जिन्नमिवत्तचं पुराणं॥
12.
यो नचदचसारि न पचदचसारि, सब्बं विथमिदन्ति वीतदोसो।
सो भिक्खु जहाति ओरपारं, उर्गो जिन्नमिवत्तचं पुराणं॥
11.
यो नचदचसारि न पचदचसारि, सब्बं वित्तमिदन्ति वीतमोहो।
सो भिक्खु जहाति ओरपारं, उर्गो जिन्नमिवत्तचं पुराणं॥

14.
यस्सानुसाया न शांति केचि, मूला च अकुसला समूहसे।
सो भिक्खु जहाति ओरपारं, उर्गो जिन्नमिवत्तचं पुराणं॥
15.
यस्स दरथजा न सन्ति केचि, ओरं अमाय पच्चचायसे।
सो भिक्खु जहाति ओरपारं, उर्गो जिन्नमिवत्तचं पुराणं॥
16.
यस्स वनथजा न शांति केचि, विनिबन्धाय भवाय थाइकप्पा।
सो भिक्खु जहाति ओरपारं, उर्गो जिन्नमिवत्तचं पुराणं॥
17.
यो नीरवने पहाय पञ्च, अनिघो तिन्नकथंकथो विस्लो।
सो भिक्खु जहाति ओरपारं, उर्गो जिन्नमिवत्तचं पुराणं॥
उर्गासुत्तं पथमं निश्चितं।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> सुत्तनिपात >> 1.2 धन्यसुत्त
वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<--->>>> अगला

धनी चरवाहे धनिया और बुद्ध के बीच संवाद, जिसमें एक अपनी सांसारिक सुरक्षा में आनंदित है और दूसरा अपने विश्वास में। यह सुंदर संवाद लूका के सुसमाचार 12:16 में वर्णित दृष्टांत की याद दिलाता है।

अंतर्वस्तु

1.2 धानियासुत्त
अनुवाद
1. 'मैंने चावल उबाल लिए हैं, मैंने गायों का दूध दुह लिया है,' - चरवाहे धनिया ने कहा, 'मैं माही नदी के किनारे अपने साथियों के साथ रह रहा हूँ, मेरा घर ढका हुआ है, आग जल रही है: इसलिए, हे आकाश, यदि आप चाहें तो वर्षा करें!' (18)

2. 'मैं क्रोध से मुक्त हूँ, हठ से मुक्त हूँ,' - भगवान बुद्ध ने कहा, 'मैं माही नदी के किनारे एक रात के लिए ठहर रहा हूँ, मेरा घर खुला है, (वासनाओं की) आग बुझ गई है: इसलिए, हे आकाश, यदि आप चाहें तो वर्षा करें!' (19)

3. 'मेरे पास मक्खियाँ नहीं हैं,' - चरवाहे धनिया ने कहा, 'गाय घास से भरे मैदानों में चर रही हैं, और वे बारिश आने पर सहन कर सकती हैं: इसलिए, हे आकाश, यदि आप चाहें तो वर्षा करें!' (20)

4. '(मेरे द्वारा) एक अच्छी तरह से निर्मित बेड़ा बनाया गया है,' - भगवान (बुद्ध) ने कहा, - 'मैं (निर्वाण/मोक्ष) को पार कर चुका हूँ, मैं (वासनाओं की) धारा पर विजय प्राप्त करके दूसरे किनारे पर पहुँच गया हूँ; अब बेड़े का कोई उपयोग नहीं है: इसलिए, यदि आप चाहें, तो वर्षा करें, हे आकाश!' (21)

5. 'मेरी पत्नी आज्ञाकारी है, व्यभिचारी नहीं है,' - चरवाहे धनिया ने कहा, - 'वह लंबे समय से (मेरे साथ) रह रही है, वह जीत रही है, और मैंने उसके बारे में कुछ भी बुरा नहीं सुना है: इसलिए, यदि आप चाहें, तो वर्षा करें, हे आकाश!' (22)

6. 'मेरा मन आज्ञाकारी है, (साधारण सांसारिकता से) मुक्त है,' - भगवान (बुद्ध) ने कहा, - 'यह लंबे समय से अत्यधिक विकसित और अच्छी तरह से नियंत्रित है, मुझमें अब कोई बुराई नहीं है: इसलिए, यदि आप चाहें, तो हे आकाश, वर्षा करें!' (23)

7. 'मैं अपनी कमाई से अपना जीवन यापन करता हूँ,' - चरवाहे धनिया ने कहा, - 'और मेरे बच्चे मेरे आस-पास स्वस्थ हैं; मुझे उनके बारे में कोई बुराई नहीं सुनाई देती: इसलिए, यदि आप चाहें, तो हे आकाश, वर्षा करें!' (24)

8. 'मैं किसी का सेवक नहीं हूँ,' - भगवान (बुद्ध) ने कहा, - 'मैंने जो कुछ अर्जित किया है, उससे मैं पूरे संसार में घूमता हूँ, मुझे सेवा करने की कोई आवश्यकता नहीं है: इसलिए, यदि आप चाहें, तो हे आकाश, वर्षा करें!' (25)

9. 'मेरे पास गायें हैं, मेरे पास बछड़े हैं,' - चरवाहे धनिया ने कहा; - 'मेरे पास गर्भवती गायें और बछियाएँ हैं, और मेरे पास गायों के स्वामी के रूप में एक बैल भी है: इसलिए, यदि आप चाहें, तो हे आकाश!' (26)

10. 'मेरे पास गायें नहीं हैं, मेरे पास बछड़े नहीं हैं,' - भगवान (भगवान बुद्ध) ने कहा; - 'मेरे पास गर्भवती गायें और बछियाएँ नहीं हैं, और मेरे पास गायों के स्वामी के रूप में कोई बैल भी नहीं है: इसलिए, यदि आप चाहें, तो हे आकाश!' (27)

11. 'खंभे गाड़े गए हैं, और उन्हें हिलाया नहीं जा सकता,' - चरवाहे धनिया ने कहा; - 'रस्सियाँ मूंग घास की बनी हैं, नई और अच्छी तरह से बनी हैं, गायें उन्हें तोड़ नहीं पाएंगी: इसलिए, यदि आप चाहें, तो हे आकाश!' (28)

12. 'बैल की तरह बंधन तोड़कर; हाथी की तरह लता तोड़कर, मैं फिर कभी गर्भ में प्रवेश नहीं करूँगा: इसलिए, यदि तुम चाहो, तो वर्षा करो, हे आकाश!(29)

फिर अचानक मूसलाधार बारिश हुई, जिससे समुद्र और ज़मीन दोनों भर गए। आकाश से बारिश की आवाज़ सुनकर धनिया ने इस प्रकार कहा (30):

13. 'भगवान बुद्ध के दर्शन से हमें सचमुच बहुत लाभ हुआ है; हे ज्ञान की दिव्य दृष्टि से परिपूर्ण, हम आपकी शरण में आते हैं; हे महान मुनि! आप ही हमारे स्वामी हैं!' (31)

14. 'मेरी पत्नी और मैं दोनों आज्ञाकारी हैं; यदि हम सुगत बुद्ध के समक्ष ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करें, तो हम जन्म और मृत्यु पर विजय प्राप्त करेंगे और दुखों का अंत करेंगे।' (32) 15. '

जिसके पुत्र होते हैं, उसे पुत्रों में आनंद मिलता है,' - दुष्ट मार (मृत्यु के देवता) ने कहा - 'जिसके पास गायें होती हैं, उसे गायों में भी आनंद मिलता है; क्योंकि उपाधि (पदार्थ) मनुष्य का आनंद है, परन्तु जिसके पास उपाधि नहीं है, उसे कोई आनंद नहीं है।' (33)

16. 'जिसके पुत्र हैं, उसे अपने पुत्रों की चिंता रहती है,' - भगवान (भगवान बुद्ध) ने कहा, - 'जिसके पास गायें हैं, उसे भी अपनी गायों की चिंता रहती है; क्योंकि उपाधि (लोगों की चिंताओं का कारण) है, लेकिन जिसके पास उपाधि (धन) नहीं है, उसे कोई चिंता नहीं है।' (34)

धानियासुत्त समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
2. धानियासुत्तं
18.
"पक्कोदानो दुद्धाखिरोहमस्मि, (इति धानियो गोपो)"
अनुतिरे महिया समानावासो;
चन्न कुटि आहितो गिनी, अथ सी पत्थयसि पवस्सा देवा"।
19.
"अक्कोधनो विगतखिलोहमस्मि [विगतखिलोहमस्मि (सि. पि.)], (इति भगव)
Anutīre mahiyekarattivāso;
विवता कुटि निब्बुतो गिनी, अथ सी पत्थयसि पवस्सा देवा"।
20.

"अंधकामकासा न विज्जरे, (इति धानियो गोपो)"
कच्छे रुधातिने कैरन्ति गावो;
वुट्ठिम्पि सहेयुमागतं, अथ सी पत्थयसि पवस्सा देवा"।
21.
" बद्धसि भिसि सुसंखता, (इति भगवान)
तिणो परागतो विनेयया ओघं;
अत्थो भिसिया न विज्जति, अथ सी पत्थयसि पवस्सा देवा"।
22.
"गोपी मामा असवा अलोला, (इति धानियो गोपो)
दिघरट्टम् [दिघरट्टा (का.)] संवासिया मनापा;
तस्स न सुनामि किञ्ची पापं, अथ सी पत्थयसि पवस्सा देवा"।
23.
"चित्तं मम अस्सवं विमुत्तं, (इति भगवान)
दीर्घत्तं परिभावितं सुदन्तं;
पापं पण मे न विज्जति, अथ सी पत्थयसि पवस्सा देवा"।
24.
"अत्तवेतनभतोहमस्मि, (इति धानियो गोपो)"
पुत्ता च मे समानिया अरोगा;
तेसं न सुनामि किञ्ची पापं, अथ सी पत्थयसि पवस्सा देवा"।
25.
" नाहं भक्तकोस्मि कसासि, (इति भगवान)
Nibbiṭṭhena carāmi sabbaloke;
अत्थो भाटिया न विज्जति, अथ सी पत्थयसि पवस्सा देवा"।
26.
"अत्थि वासा अत्ति धेनुपा, (इति धानियो गोपो)"
गोधरणियो पवेणियोपि अत्ति;
उषाभोपि गवमपतिधा अत्थि, अथ सी पत्थयसि पवस्सा देवा"।
27.
"नत्थि वासा नत्थि धेनुपा, (इति भगवान)
गोधरणियो पवेणियोपि नत्थि;
उषाभोपि गवमपतिधा नत्थि, अथ सी पत्थयसि पवस्सा देवा"।
28.
"खिला निखता असमपवेदी, (इति धन्यो गोपो)"
दामा मुञ्जमय नवा सुसन्ठाना;
न हि सक्खिन्ति धेनुपापि चेट्टुम् [चेतुम् (का.)], अथ सी पत्थयसि पवस्सा देवा"।
29.
"उसाभोरिवा चेत्वा [चेत्वा (स्या. का.)] बंधनानि, (इति भगव)
नागो पुतिलताव दलयित्वा [पुतिलतम् पदालयित्वा (स्या. का.)];
नाहं पुनुपेस्सां [पुना उपेस्सां (सी. स्या. कं. पि.), पुनुपेय (का.)] गब्बसेयं, अथ सी पत्थयसि पवस्सा देव"।
30.
"निन्नांच थलांच पुरयंतो, महामेघो पवस्सी तावदेव;
सुत्वा देवस्स वस्सतो, इमामत्थं धानियो अभासथ।
31.
" लाभ वात नो अनप्पाका, ये मायां भगवन्तं अद्दसामा;
सरणं तं उपेमा चक्खुमा, सत्था नो होहि तुवं महामुनि।
32.
"गोपी च अहांचा असव, ब्रह्मचर्यम् [ब्रह्मचर्य (का.)] सुगते कैरमसे;
जातिमारनस्सा परागु [परागा (सि. स्या. कं. पि.)], दुक्खससंतकारा भावमसे"।

33.
"नन्दति पुत्तेहि पुत्तिमा, (इति मारो पापिमा)
गोमा [गोमिको (सि. पि.), गोपिको (स्या. कां.), गोपियो (का.)] गोहि तथेव नंदति;
उपधि हि नरसा नंदना, न हि सो नंदति यो निरुपधि।"
34.
"सोकाति पुत्तेहि पुत्तिमा, (इति भगवान)
Gopiyo gohi tatheva socati;
उपधि हि नरस्सा सोचना, न हि सो सोचति यो निरूपधि'ति।
धनियासुत्तं दुतियां निहितं।

पाली-देवनागरी
2. धनुसुत्तं
.
"पक्कोदानो दुद्धहिरोहमस्मि, (इति धनियो गोपो)
अनुतीरे महिया समानवासो।
च संज्ञा कुति अहितो गिनी, अथ चे पथ्यसी पवस्स देव"॥
19.
"अत्रकोधनो विगतखिलोहमस्मि [विगतखिलोहमस्मि (सी० पी०)], (इति भगवान)
अनुतीरे मह्येकर्त्तिवासो।
विवता कुति निब्बुतो गिनि, अथ चे पथ्यसी पवस्स देव"॥
200.
"अंधकमकस न विज्जरे, (इति धनियो गोपो)
कच्छे रुळहतिने चरन्ति गावो।
वुट्ठिमपि सहेयुमागतं, अथ चे पथयसि पवस्स देव"॥
.
"बृद्धसि भिसी सुसङ्खता, (इति भगवान)
तिन्नो पारगतो विनेय ओघं।
अत्थो भिसिया न विज्जति, अथ चे पथयसी पवस्स देव"॥
.
"गोपी मम अस्सवा अलोला, (इति धनियो गोपो)
दीघर्त्तं [दीघ्रत् (क०)] संवासिया मनापा।
तस्सा न सुनामि किञ्चचि पापं, अथ चे पथयसि पवस्स देव"॥
23।
"चित्तं मम अस्स्वं विमुत्तं, (इति भगवान)
दीर्घरतं परिभावितं सुदन्तं।
पापं पण मे न विज्जति, अथ चे पथ्यसि पवस्स देव"॥
24.
"अत्तवेतनभतोहमस्मि, (इति धनियो गोपो)
पुत्ता च मे समानिया अरोगा।
तेसं न सुनामि किञ्चि पापं, अथ चे पथयसि पवस्स देव"॥
200%
" नाहं भत्कोस्मि कस्श्च, (इति भगवान)
निब्बिट्ठेन चरामि सब्लोके।
अत्थो भतिया न विज्जति, अथ चे पथ्यसि पवस्स देव"॥
2000.
"अथि वसा अथि धेनुपा, (इति धनियो गोपो)
गोधराणियो पवेन्योपि अथि।

उभोपि गवम्पतिध अथि, अथ चे पथयसि पवस्स देव"॥
27.
"नत्थि वसा नत्थि धेनुपा, (इति भगवान)
गोधराणियो पवेन्योपि नत्थि।
उभोपि गवम्पतिध नत्थि, अथ चे पथयसि पवस्स देव"॥
2020.
"खिला निखाता असम्पवेदी, (इति धनियो गोपो)"
दामा मुंजमाया नवा सुसंथाना।
न हि सक्खिन्ति धेनुपापि चेततुं [चेततुं (क०)], अथ चे पथ्यसी पवस्स देव"॥
एक दूसरे से अलग।
"उसभोरिव चेत्व [छेत्वा (स्या० क०)] बंधनानि, (इति भगवान)
नागो पूतिलतव दलयित्वा [पूतिलतं पदालयित्वा (स्या० क०)]।
नहं पुनुपेसं [पुन उपेसं (सी० स्या० कं० पी०), पुनुपेय (क०)] गब्बसेयं, अथ चे पथ्यसी पवस्स देव"॥
30.
"नि संज्ञाच थलञ्च पूरयन्तो, महामेघो पवसि तवदेव।"
सुत्वा देवस्स वस्सतो, इमामथं धनियो आभासथ॥
25.
"लाभा वत नो अनप्पका, ये मयां भगवन्तं अददसम।"
शरणं तं उपेम चक्खुम, सथा नो होहि तुवं महामुनि॥
.
"गोपी च अहंदच अस्स्वा, ब्रह्मचर्यं [ब्रह्मचर्य (क०)] सुगते चरमसे।
जातिमरणसस परागु [पारगा (सी० स्या० कं० पी०)], दुक्खससंतकरा भवामसे"॥
2014.
"नन्दति पुत्तेहि पुत्तिमा, (इति मारो पापिमा)
गोमा [गोमिको (सी० पी०), गोपिको (स्या० कं०), गोपियो (क०)] गोहि तथेव नन्दति।
उपधि हि नरस नन्दना, न हि सो नन्दति यो निरूपधि॥
34.
"सोचति पुत्तेहि पुत्तिमा, (इति भगवान)
गोपियो गोहि तथेव सोचति।
उपधि हि नरस संगीत, न हि सो सोचति यो निषॢ पधि"ति॥
धन्युसुत्तं दूतियां निश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> सुत्तनिपात >> 1.3 खग्गा विसनसुत्त,
वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<--->>>> अगला

परिवार और सामाजिक जीवन से बचना चाहिए, क्योंकि समाज में सभी बुराइयाँ व्याप्त हैं; इसलिए व्यक्ति को समाज की भ्रष्ट अवस्था को त्यागकर एकांत जीवन व्यतीत करना चाहिए।

अंतर्वस्तु

1.3 खग्गा विसनसुत्त

अनुवाद

1. सभी प्राणियों के प्रति हिंसा का भाव त्यागकर और किसी को भी हानि न पहुँचाकर, पुत्र की कामना न करे, और न ही साथी की; उसे गैंडे की तरह अकेले भटकना चाहिए। (35)

2. जो सामाजिक रूप से दूसरों से मेलजोल रखता है, उसमें स्नेह उत्पन्न होता है, और फिर स्नेह से उत्पन्न पीड़ा होती है; स्नेह से उत्पन्न होने वाले कष्ट को देखते हुए, उसे गैंडे की तरह अकेले भटकना चाहिए। (36)

3. जो अपने मित्रों और विश्वासपात्रों की सहायता लेता है, वह अपने ही लाभ को खो देता है, क्योंकि उसका मन बंधा हुआ होता है; मित्रता में इस खतरे को देखते हुए, उसे गैंडे की तरह अकेले भटकना चाहिए। (37)

4. जिस प्रकार एक विशाल बाँस का वृक्ष अपनी शाखाओं के साथ आपस में उलझ जाता है, उसी प्रकार संतान और पत्नी की देखभाल करनी चाहिए; परन्तु बाँस की शाखा की तरह, जो किसी चीज से चिपकी नहीं रहती, उसे गैंडे की तरह अकेले भटकना चाहिए। (38)

5. जैसे जंगल में खुला जानवर अपनी इच्छा से चरता है, वैसे ही बुद्धिमान व्यक्ति केवल अपनी इच्छा का ध्यान रखते हुए गैंडे की तरह अकेले विचरण करे। (39)

6. संगति में बैठे, खड़े, चलते और जाते समय निरंतर पुकार आती रहती है; परन्तु जो केवल इच्छा से मुक्ति और अपनी इच्छा का पालन करना चाहता है, वह गैंडे की तरह अकेले विचरण करे। (40)

7. संगति में मेलजोल और खेलकूद होता है, और बच्चों के प्रति बहुत स्नेह होता है; यद्यपि अपने प्रिय मित्रों से वियोग उसे नापसंद हो, फिर भी वह गैंडे की तरह अकेले विचरण करे। (41)

8. जो चारों लोकों में सहज हो और किसी से शत्रुता न रखता हो, जो इससे या उससे संतुष्ट हो, सभी खतरों को निडरता से पार कर ले, वह गैंडे की तरह अकेले विचरण करे। (42)

9. कुछ पब्बजित (तपस्वी) असंतुष्ट हैं, और कुछ गृहस्थ (गृहस्थ) भी जो घरों में रहते हैं; उन्हें दूसरों के बच्चों की परवाह न करते हुए गैंडे की तरह अकेले घूमना चाहिए। (43)

10. कोविलारा वृक्ष के गिरे हुए पत्तों की तरह गृहस्थ के निशान मिटाकर, उसके बंधनों को वीरतापूर्वक तोड़कर गैंडे की तरह अकेले घूमना चाहिए। (44)

11. यदि किसी को कोई चतुर साथी, धर्मात्मा और बुद्धिमान सहचर मिल जाए, तो वह सभी खतरों को पार करते हुए, प्रसन्न और विचारशील होकर उसके साथ घूमे। (45)

12. यदि किसी को कोई चतुर साथी, धर्मात्मा और बुद्धिमान सहचर न मिले, तो अपने जीते हुए राज्य को छोड़कर राजा की तरह गैंडे की तरह अकेले घूमना चाहिए। (46)

13. हमें साथियों के होने के सौभाग्य की सराहना अवश्य करनी चाहिए; सर्वोत्तम (और हमारे बराबर के) साथियों की तलाश करनी चाहिए; ऐसे मित्र न होने पर, केवल अनुमत वस्तुओं का आनंद लेते हुए, गैंडे की तरह अकेले भटकना चाहिए। (47)

14. सुनार द्वारा अच्छी तरह से गढ़े गए चमकदार सोने के कंगन, एक हाथ पर दो होने पर आपस में टकराते हुए देखकर, गैंडे की तरह अकेले भटकना चाहिए। (48)

15. इस प्रकार (यदि मैं किसी दूसरे के साथ जुड़ जाऊँ) तो मैं अपशब्द बोलूँगा या निंदा करूँगा; भविष्य में इस खतरे को देखते हुए, गैंडे की तरह अकेले भटकना चाहिए। (49)

16. वास्तव में, विभिन्न प्रकार के, मीठे और आकर्षक इंद्रिय सुख, अपने विभिन्न रूपों में मन को विचलित करते हैं; इंद्रिय सुखों से उत्पन्न होने वाले दुख को देखते हुए, गैंडे की तरह अकेले भटकना चाहिए। (50)

17. ये (सुख) मेरे लिए विपत्तियाँ, फोड़े, दुर्भाग्य, रोग, तीव्र पीड़ा और खतरे हैं; इंद्रिय सुखों से उत्पन्न होने वाले इस खतरे को देखते हुए, गैंडे की तरह अकेले भटकना चाहिए। (51)

18. सर्दी और गर्मी, भूख और प्यास, हवा और जलता सूरज, और मक्खियाँ और साँप—इन सभी चीजों पर विजय प्राप्त करके, गैंडे की तरह अकेले भटकना चाहिए। (52)

19. जैसे हाथी, बलवान, चित्तीदार, विशाल, झुंड से अलग होकर जंगल में अपनी इच्छा से चलता है, वैसे ही गैंडे की तरह अकेले भटकें। (53)

20. जो व्यक्ति अस्थायी मुक्ति दिलाने वाली असुविधाओं (दूसरों के साथ भी) में आनंद लेता है, उसे आदिच्छावंश के संबंधी (बुद्ध) के वचनों पर मनन करते हुए गैंडे की तरह अकेले भटकना चाहिए। (54)

21. मैंने दार्शनिक विचारों की कठोरता पर विजय प्राप्त कर ली है, मैंने आत्म-नियंत्रण प्राप्त कर लिया है, मैंने (पूर्णता की ओर ले जाने वाले) मार्ग को पा लिया है, मैं ज्ञानवान हूँ और दूसरों के द्वारा निर्देशित नहीं होता; ऐसा कहते हुए, गैंडे की तरह अकेले भटकें। (55)

22. लोभ रहित, छल रहित, लालसा रहित, निंदा रहित, वासनाओं और मूर्खता से मुक्त होकर, समस्त संसार में इच्छा से रहित होकर, गैंडे की तरह अकेले विचरण करें। (56)

23. ऐसे दुष्ट साथी से दूर रहें जो व्यर्थ की शिक्षा देता हो और कुटिल मार्ग पर चल पड़ा हो; ऐसे व्यक्ति की संगति न करें जो इंद्रिय सुखों में लीन हो; गैंडे की तरह अकेले विचरण करें। (57)

24. ऐसे मित्र की संगति करें जो विद्वान हो, धर्म का पालन करता हो, उदार और बुद्धिमान हो; अर्थ को जानकर और अपने संशयों को वश में करके, गैंडे की तरह अकेले विचरण करें। (58)

25. स्वयं को अलंकृत न करके, संसार में खेल-कूद, मनोरंजन और सुख-सुविधाओं की तलाश न करके, (इसके विपरीत) दिखावटी जीवन से घृणा करते हुए, सत्य बोलते हुए, गैंडे की तरह अकेले भटकें। (59)

26. पुत्र और पत्नी, पिता और माता, धन, अनाज और रिश्तेदारों, इच्छा की विभिन्न वस्तुओं को छोड़कर, गैंडे की तरह अकेले भटकें। (60)

27. 'यह एक बंधन है, इसमें थोड़ा सुख है, थोड़ा आनंद है, बल्कि अधिक पीड़ा है, यह एक मछली पकड़ने का कांटा है,' ऐसा समझकर, एक विचारशील व्यक्ति गैंडे की तरह अकेले भटके। (61)

28: बंधनों को तोड़कर, पानी में मछली की तरह जाल तोड़कर, जले हुए स्थान पर न लौटने वाली आग की तरह, गैंडे की तरह अकेले भटकें। (62)

29. दृष्टि झुकाए, ताक-झांक न करते हुए, अपनी इंद्रियों को संजोए रखते हुए, अपने मन को कामवासना से मुक्त रखते हुए, कामवासना की ज्वाला से मुक्त रहते हुए, गैंडे की तरह अकेले विचरण करें। (63)

30. गृहस्थ के लक्षणों को त्यागकर, जैसे परिखत्ता वृक्ष जिसके पत्ते काट दिए गए हों, घर से विचरण करने के बाद पीले वस्त्र धारण करके, गैंडे की तरह अकेले विचरण करें। (64)

31. मीठी चीजों का लालच न करते हुए, अस्थिर न होते हुए, दूसरों का सहारा न बनते हुए, घर-घर भीख न मांगते हुए, किसी गृहस्थी से बंधे न रहते हुए, गैंडे की तरह अकेले विचरण करें। (65)

32. मन की पाँचों बाधाओं को त्यागकर, सभी पापों का निवारण करके, स्वतंत्र होकर, कामवासना के पाप का नाश करके, गैंडे की तरह अकेले विचरण करें। (66)

33. शारीरिक सुख-दुख तथा पूर्व के मानसिक सुख-दुख को त्यागकर, समभाव, शांति और पवित्रता प्राप्त करके, गैंडे की तरह एकाकी विचरण करें। (67)

34. परम सुख (अर्थात निर्वाण-मुक्ति, अमरत्व) की प्राप्ति के लिए परिश्रमपूर्वक, आसक्ति रहित मन से, आलस्य में न रहकर, दृढ़ निश्चयी और शारीरिक एवं मानसिक बल से संपन्न होकर, गैंडे की तरह एकाकी विचरण करें। (68)

35. एकांतवास और ध्यान का त्याग न करते हुए, सदा धर्मों के अनुसार विचरण करते हुए, जन्मों में दुःख देखकर, गैंडे की तरह एकाकी विचरण करें। (69)

36. तन्हा-लालसा का नाश करने की इच्छा रखते हुए, सावधान, मूर्ख न होकर, विद्वान, परिश्रमी, विचारशील, संयमित और ऊर्जावान होकर, गैंडे की तरह एकाकी विचरण करें। (70)

37. शोर से भयभीत न होने वाले सिंह की तरह, जाल में न फँसने वाली हवा की तरह, जल से निर्मल न होने वाले कमल की तरह, गैंडे की तरह अकेले विचरण करो। (71)

38. अपने दाँतों से बलवान सिंह की तरह, सभी पशुओं पर विजय प्राप्त करके, पशुओं के राजा के रूप में विजयी होकर विचरण करता है और दूर-दराज के निवास स्थानों में विचरण करता है, (वैसे ही) गैंडे की तरह अकेले विचरण करो। (72)

39. समय रहते दया, समभाव, करुणा, मुक्ति और दूसरों के साथ आनंद का भाव विकसित करते हुए, समस्त लोकों के आकर्षणों से विवश न होकर, गैंडे की तरह अकेले विचरण करो। (73)

40. राग, द्वेष और मोह का त्याग करके, बंधनों को तोड़कर, मृत्यु के भय से भयभीत न होकर, गैंडे की तरह अकेले विचरण करो। (74)

41. वे (दूसरों की संगति) लाभ के लिए करते हैं और उनकी सेवा करते हैं; निःसंकोच मित्र मिलना अब कठिन है, मनुष्य अपना लाभ जानते हैं और अपवित्र हैं; (इसलिए) गैंडे की तरह अकेले ही भटकना चाहिए। (75)

खग्गविसनसुत्त समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन

3. Khaggvisāṇasuttaṃ

35.

सब्बेसु भूतेषु निधाय दण्डं, अविहेथयं अनंतरामपि तेसां;
न पुत्तमिच्चेय कुतो सहायं, एको कैरे खग्गविसानकप्पो।

36.

संसग्गजातस्स भवन्ति स्नेहा, स्नेहान्वयं दुक्खमिदं पहोति;
आदिनावं स्नेहजं पेक्खमानो, एको केयर खग्गविसानकप्पो।

37.

मित्ते सुहज्जे अनुकम्पमानो, हपेति अत्थं पतिबद्धचित्तो;
एतं भयं संथवे [संधवे (का.)] पेक्खमानो, एको केयर खग्गविसानकप्पो।

38.

वंसो विशालोवा यथा विसात्तो, पुत्तेसु दारेसु च या अपेक्खा;
वंसाकाशिरोवा [वंसाकाशिरोवा (सि.), वंसाकाशिरोवा (स्या. का. पी.), वंसाकाशिरोवा (निद्देसा)] सज्जमानो, एको केयर खग्गाविसानकाप्पो।

39.
मिगो अरन्नमहि यथा अबद्धो [अबन्धो (स्या. कं.)], येनिच्चकं गच्छति गोकाराय;
विण्णु नरो सेरिटं पेक्खमानो, एको केयर खग्गविसानकप्पो।
40.
अमन्ताना होति सहायमज्जे, वसे ठाणे गमने चारिकाय;
अनाभिज्जितं सेरितां पेक्खमानो, एको केयर खग्गविसानकप्पो।
41.
ख़िदा रति होति सहायमज्जे, पुत्तेसु च विपुलं होति पेमम्;
पियाविप्पयोगं विजिगुच्चमानो, एको केयर खग्गविसानकप्पो।
42.
चतुद्दिसो अप्पातिघो च होति, सन्तुस्सामानो इतरितरेण;
परिस्सयाणं सहिता अचम्भि, एको कैरे खग्गविसानकप्पो।
43.
दुस्संगहा पब्बजीतापि एके, अथो गहत्था घरमवसन्ता;
अप्पोसुक्को परपुत्तसु हुत्वा, एको केयर खग्गविसानकप्पो।
44.
ओरोपायित्वा गिहिब्यंजनानि [गिहिव्यंजनानि (स्या. कां. पि.)], सांचिन्नपट्टो [सांसिनापट्टो (सि.)] यथा कोविसारो;
चेत्वाना वीरो गिहिबन्धनानि, एको कैरे खग्गविसानकप्पो।
45.
ससे लभेथा निपाकं सहायं, सद्धिं चरं साधुविहारिधीरम्;
अभिभुय्य सब्बानि परिस्यानि, कैरेया तेनत्तमणो सतीमा।
46.
नो चे लभेथा निपाकं सहायं, सद्धिं चरणं साधुविहारिधीरम्;
राजव रथं विजितं पाहाय, एको केयर मातंगराणिनेव नागो।
47.
अद्धा पसंसामा सहायसम्पदं, सेठहा समा सेवितब्बा सहाय;
एते अलद्धा अनवज्जभोजी, एको कैरे खग्गविसानकप्पो।
48.
दिस्वा सुवनस्स पभस्सारणि, कम्मारपुत्तेन सुनीतिहितानि;
संघतमानानि दुवे भुजस्मिं, एको कैरे खग्गविसानकप्पो।
49.
एवम् दुतियेना [दुतियेना (सब्बत्था)] सहा ममस्सा, वाचाभिलापो अभिसज्जना वा;
एतं भयं अयतिं पेक्खमानो, एको कैरे खग्गविसानकप्पो।
50.
काम हि चित्र मधुरा मनोरमा, विरूपरूपेण मथेन्ति चित्तं;
आदिनावं कामगुनेसु दिसवा, एको केयर खग्गविसानकप्पो।
51.
इति च गांडो च उपद्दवो च, रोगो च सल्लांका भयानचा मेटां;
एतं भयं कामगुनेसु दिस्व, एको कैरे खग्गविसानकप्पो।
52.
सिताञ्च उन्हाँचा ख़ुदं पिपासं, वातातापे दंससारिसापे [दंसाससिरींसपे (सि. स्या. कां. पि.)] सीए;
सब्बानिपेटानि अभिसम्भवित्वा, एको कैरे खग्गविसानकप्पो।
53.
नागोव यूथानि विवज्जयित्वा, संजाताखंडो पदुमी उदारो;
यथाभिरन्तं विहारम् [विहारे (सि. पि. निद्देसा)] अरण्ये, एको केयर खग्गविसानकप्पो।
54.
अथानातम संगनिकरातस्स, यं फासये [फुस्सये (स्या.)] समयिकां विमुत्तिं;
अदिक्काबंधुस्सा वाको निसम्मा, एको केयर खग्गविसानकप्पो।

55.
दिथिविशुकानि उपतिवत्तो, पत्तो नियमं पतिलाद्धमग्गो;
उप्पन्नानाणोम्हि अनन्नानेय्यो, एको केयर खग्गविसानकप्पो।
56.
निल्लोलूपो निक्कुहो निप्पिपसो, निम्मक्खो निद्धान्तकासावमोहो;
निरासयो [निरासासो (का.)] सब्बलोके भवित्व, एको केयर खग्गविसानकप्पो।
57.
पापं सहायं परिवज्जयेत, अनत्थदस्सीं विसामे निविथं;
सयं न सेवे पसुतं पमत्तं, एको कैरे खग्गविसानकप्पो।
58.
बहुसुतं धम्मधरं भजेथा, मित्तं उदारं पतिभनवन्तं;
अनन्याय अद्वानि विनेया कंखं, एको कैरे खग्गविसानकप्पो।
59.
ख़िन्दं रतिं कामसुखञ्च लोके, अनलंकारित्वा अनपेक्खमानो;
विभुसनत्थान विरतो सच्चवादी, एको केयर खग्गविसानकप्पो।
60.
पुत्तनच दारं पितरञ्च मातरं, धनानि धन्नानि च बंधवाणी [बंधवाणी च (पी.)];
हित्वान् कामानि यथोधिकानि, एको कैरे खग्गविसानकप्पो।
61.
सङ्गो एसो परित्तमेत्था सोख्यं, अप्पस्सदो दुक्खमेत्था भय्यो;
गाओ एसो इति नत्वा मुतिमा [मतिमा (स्या. का.)], एको केयर खग्गविसानकप्पो।
62.
संदलयित्वाना [पदालयित्वाना (का.)] संयोगनि, जालनव भेट्वा सलीलाम्बुचारी;
अग्गिव दधं अनिवत्तमानो, एको कैरे खग्गविसानकप्पो।
63.
ओक्खित्तचक्खु न च पदालोलो, गुत्तिन्द्रियो रक्खितमानसणो;
अनवसुतो अपरिद्यहमनो, एको कैरे खग्गविसानकप्पो।
64.
ओहारयित्वा गिहिब्यंजनानि, संचन्नपट्टो [संचिन्नपट्टो (स्या. पि.), पच्चिन्नपट्टो (का.)] यथा परिचट्टो;
कसायवत्थो अभिनिक्खमित्वा, एको कैरे खग्गविसानकप्पो।
65.
रसेसु गेधं अकारं अलोलो, अन्ननापोसि सपादनचारी;
कुले कुले अप्पातिबद्धचित्तो [अप्पतिबंधचित्तो (का.)], एको केयर खग्गविसानकप्पो।
66.
पहाय पंचावरणानि चेतासो, उपक्किलेसे ब्यापानुज्ज सब्बे;
अनिसिटो चेत्वा [चेत्वा (स्या. पि. का.)] सिनेहादोसां [स्नेहादोसां (का.)], एको केयर खग्गाविसानकाप्पो।
67.
विपरीतिकत्वान् सुखं दुःखञ्च, पुब्बेव च सोमनस्सादोमनस्साः;
लद्धनुपेक्खं समथं विशुद्धं, एको कैरे खग्गविसानकप्पो।
68.
अरद्धवीरियो परमत्थपत्तिया, अलिनचित्तो अकुसीतावुति;
दहनिक्कमो थमाबालूपपन्नो, एको केयर खग्गविसानकप्पो।
69.
पतिसल्लानां झनमारिंचमानो, धम्मेसु निक्कं अनुधम्मचारी;
आदिनावं सम्मासिता भावेसु, एको कैरे खग्गविसानकप्पो।
70.
तनहक्खायं पथयमप्पमट्टो, अनेदामुगो [एनेलामुगो (स्या. पि. का.)] सुतव सतीमा;
संखतधम्मो नियतो पधानवा, एको कैरे खग्गविसानकप्पो।

71.
सिहोवा सद्देसु असन्तसंतो, वातोवा जलमहि असज्जमानो;
पदुमंवा तोयेना अलिप्पमानो [अलिम्पमानो (सि. स्या. का.)], एको केयर खग्गविसानकप्पो।
72.
सिहो यथा दाथबली पसायः, राजा मिगणं अभिभूय चारी;
सेवेथा पंतानि सेनानानि, एको केयर खग्गविसानकप्पो।
73.
मेत्तं उपेक्खं करुणां विमुत्तिन्, असेवामानो मुदितञ्च काले;
सब्बेन लोकेन अविरुज्जमानो, एको केयर खग्गविसानकप्पो।
74.
रागाञ्च दोसाञ्च पहाय मोहं, संदलयित्वाना संयोगनि;
असन्तसं जीवितसन्खायमहि, एको कैरे खग्गविसानकप्पो।
75.
भजंति सेवंति च करणत्था, निष्करण दुल्लभा अज मित्ता;
अत्ताथपन्न असुचि मानुषा, एको केयर खग्गविसानकप्पो।
खग्गविषाणसुत्तं तत्यं निहितं।

———————————————————————

पाली-देवनागरी
3. खग्गविसानसुत्तं

.
सब्बेसु भूतेसु निधाय दण्डं, अविहेत्थयं अञ्जन्तरमपि तेसं।
न पुत्तमिच्छेय कुतो सहायतां, एको चरे खग्गविसानकप्पो॥

.
संसग्गगतस्स भवन्ति स्नेहा, स्नेहान्वयं दुक्खमिदं पहोति।
आदिनवं स्नेहजं पेक्खमानो, एको चरे खग्गविसानकप्पो॥
37.
मित्ते सुहज्जे अनुकम्पमानो, हपेति अथं पतिबद्धचित्तो।
एतं भयं संथवे [संधवे (क०)] पेक्खमानो, एको चरे खग्गविसानकप्पो॥

.
वंसो विसलोव यथा विसत्तो, पुत्तेसु दारेसु च या अपेक्खा।
वंसक्राकळीरोव [वंसकळीरोव (सी०), वंसकळीरोव (स्या० क० पी०), वंसकळीरोव (निद्देस)] सज्जामानो, एको चारे खग्गगविसानकप्पो॥
39.
मिगो अरञ्नमहि यथा अब्द्धो [अबंधो (स्या० कं०)], येनिच्छकं गच्छति अवाराय।
विञ्जु नरो सेरिटं पेक्खमानो, एको चरे खग्गविसानकप्पो॥
40.
अमन्तना होति सहायमज्झे, वासे थाने गमने चारिकाय।
अनाभिज्जितं सेरीतं पेक्खमानो, एको चरे खग्गविसानकप्पो॥

.
खिड्डा रति होति सहायमज्जे, पुत्तेसु च विपुलं होति पेमं।
पियविप्पयोगं विजिगुच्छमानो, एको चरे खग्गविसानकप्पो॥

.
चातुद्दिसो अप्पतिघो च होति, सन्तुस्मानो इतरितरेन।
परिसस्यानं सहिता अछम्भी, एको चरे खग्गविसानकप्पो॥

.
दुस्साङ्गा पब्बजितापि एके, अथो गहत्था धर्मावसन्ता।
अप्पोस्सु स्ट्रैटको परपुट्टेसु हुत्वा, एको चारे खग्गविसानकप्पो॥

.
ओरोपयित्वा गिहिब्यञ्जनानि [गिहिव्यञ्जनानि (स्या० कं० पी०)], साञ्ची संज्ञापत्तो [संसीनपट्टो (सी०)] यथा कोविळारो।
चेत्वान् वीरो गिहिबन्धनानि, एको चरे खग्गविसानकप्पो॥
45.
सचे लभेथ निपकं सहायतां, सद्धिं चारं साधुविहारिधीरं।
अभिभुय सब्बानि परिस्सयानि, चरेय्य तेनत्तमनो सतीमा॥

.
नो चे लभेथ निपकं सहायतां, सद्धिं चारं साधुविहारिधीरं।
राजाव रथं विजितं पहाय, एको चरे मातङ्गर्नञ्चेव नागो॥

.
अद्धा पसंसाम सहायतासम्पदं, सेत्था समा सेवित्बाबा सहायता।
एते अलद्धा अनवजदजभोजगी, एको चारे खग्गविसंकप्पो॥

.
दिस्वा सुवन्नस्स पभस्साराणि, कम्मारपुत्तेन सुनिट्ठितानि।
सङ्घत्तमनानि दुवे भुजस्मिं, एको चरे खग्गविसानकप्पो॥

.
एवं दुतियेन [दुतियेन (सब्बत्थ)] सहा ममसस, वाचाभिलापो अभिसज्जन वा।
एतं भयं आयतिं पेक्खमानो, एको चरे खग्गविसानकप्पो॥
5.
काम हि चित्र मधुरा मनोरमा, विरूपरूपेण मतेन्ति चित्तं।
आदिनवं कामगुणेसु दिस्वा, एको चरे खग्गविसानकप्पो॥

.
एति च गण्डो च उपद्दवो च, रोगो च सल्लञ्च भयञ्च मेतं।
एतं भयं कामगुणेसु दिस्वा, एको चरे खग्गविसानकप्पो॥

.
सीतञ्च उंहञ्च खुदं पिपासं, वातात्पे दंसरेसिस्पे [दंससिरिंस्पे (सी० स्या० कं० पी०)] च।
सब्बानिपेतानि अभिसंभवित्वा, एको चरे खग्गविसानकप्पो॥
553.
नागोव यूथानि विवजदजयित्वा, सञ्जात्खन्धो पदुमी उळारो।
यथाभिरन्तं विहारं [विहरे (सी० पी० निद्देस)] अरञ्जे, एको चरे खग्गविसानकप्पो॥
•
अट्ठानतं सङ्गणिकारतस्स्स, यं फस्सये [फुस्सये (स्या०)] क्षेत्रं विमुत्तिं।
आदिचदचबंधुस्स वाचो निसम्म, एको चारे खग्गविसानकप्पो॥
5.
दिट्ठीविसुकानि उपातिवत्तो, पत्तो नियमं पतिलद्धमग्गो।
उप्प नारायणोम्हि अनञ्जनेय्यो, एको चरे खग्गविसानकप्पो॥
56.
निल्ललोलुपो निकुहो निप्पिपासो, निम्मक्खो निद्धन्तकसावमोहो।
निरासयो [निरासासो (क०)] सब्बलोके भवित्वा, एको चरे खग्गविसानकप्पो॥

.
पापं सहायतां परिवज्जयेत्, अनंतदस्सिं विसामे निवित्थं।
सयं न सेवे पसुतं पमत्तं, एको चरे खग्गविसानकप्पो॥
6.
बहुसुतं धम्मधरं भजेत्, मित्तं उल्लारं पतिभवंतं।
अञ्जन्या अथानि विनेय कङ्खं, एको चरे खग्गविसानकप्पो॥
50.
खिद्दं रतिं कामसुखञ्च लोके, अनलङ्करित्वा अनपेखमानो।
विभुसनत्थाना विरतो सचचवादी, एको चारे खग्गविसानकप्पो॥

.
पुत्तनदच दारं पितरञ्च मातरं, धनानि धन्नानि च बंधवाणि [बंधवाणि च (पी०)]।
हित्वान् कामानि यथोधिकानि, एको चरे खग्गविसानकप्पो॥

.
सङ्गो एसो परित्तमेत्थ सोख्यं, अप्पस्सादो दुक्खमेत्थ भय्यो।
गळो एसो इति नत्वा मुतीमा [मतिमा (स्या० क०)], एको चारे खग्गविसानकप्पो॥

.
सन्दालयित्वान [पादालयित्वान (क०)] कोमनानि, जालव भेटवा सलिलामुचारी।
अग्गिव दन्नं अनिवत्तमानो, एको चरे खग्गविसानकप्पो॥
6.
ओखित्तचक्खु न च पदलोलो, गुत्तिन्द्रियो रक्षितमानसाणो।
अनवसुतो अपेरिद्यहमानो, एको चरे खग्गविसानकप्पो॥

.
ओहारयित्वा गिहिब्यञ्जनानि, सञ्छ संञापत्तो [साञ्चि नयञ्पत्तो (स्या० पी०), पच्छि संञापत्तो (क०)] यथा परिच्छत्तो।
कसायवत्थो अभिनिखमित्वा, एको चरे खग्गविसानकप्पो॥

.
रसेसु गेधं अकारं अलोलो, अन्नपोसी सपादनचारी।
कुले कुले अप्पतिबद्धचित्तो [अप्पतिबन्धचित्तो (क०)], एको चरे खग्गविसंकप्पो॥

.
पहाय पञ्चावरणानि चेतसो, उपक्राकिलेससे बिप्नुज्जद सब्बे।
अनिस्सितो छेत्व [छेत्वा (स्या० पी० क०)] सिनेहदोसं [स्नेहदोसन (क०)], एको चरे खग्गिवसानकप्पो॥

.
विपित्तिकत्वान् सुखं दुःखञ्च, पुब्बेव च सोमनस्सदोमनसं।
लद्धानुपेक्खं समथं विशुद्धं, एको चरे खग्गविसानकप्पो॥

.
अर्धविरियो परमत्थपट्टया, अलिनचित्तो अकुसीतवुति।
दळहनिकदकमो थम्बलूपप संञाओ, एको चारे खग्गविसानकप्पो॥
6.
पतिसललानं झानमरिञ्चमानो, धम्मेसु निच्चचं अनुधम्मचारी।
आदिनवं संमसिता भवेसु, एको चरे खग्गविसानकप्पो॥
70.
तंहखायं पथयमप्पमत्तो, अनेळमुगो [अनेलमुगो (स्या० पी० क०)] सुतवा सतीमा।
सङ्खातधम्मो नियतो पधानवा, एको चरे खग्गविसानकप्पो॥

.
सीहोव सद्देसु असन्तसन्तो, वातोव जल्म्हि असजजमानो।
पदुमव तोयेन अलिप्पमानो [अलिम्पमानो (सी० स्या० क०)], एको चरे खग्गविसानकप्पो॥

.
सीहो यथा दाठबली पसायः, राजा मिगनं अभिभूय चारी।
सेवेथ पन्तनि सेनासननि, एको चरे खग्गविसानकप्पो॥

.
मेत्तं उपेक्खं करुणं विमुत्तिन, असेवमानो मुदितञ्च काले।
सब्बेन लोकेन अविरुज्जमानो, एको चरे खग्गविसानकप्पो॥

.
रागं च दोषं च पहाय मोहं, सन्दलयैत्वान संयोजनानि।
असन्तसं जीवितसङ्खयम्हि, एको चरे खग्गविसानकप्पो॥
5.
भजन्ति सेवन्ति च कारणथा, निःकारणा दुल्लभा अजदज मित्ता।
अट्टत्थपञ्जा असुचि मनुस्सा, एको चरे खग्गविसानकप्पो॥

खग्गविसानसुत्तं तत्थं निश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> सुत्तनिपात >> 1.4 काशीभारद्वजसुत्त
वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<-->>>> अगला

ब्राह्मण काशिभरद्वाज गौतम (बुद्ध) को आलस्य का बोध कराते हैं, लेकिन गौतम उन्हें समझाते हैं कि वे भी कर्म करते हैं, और इस प्रकार ब्राह्मण का मन बदल जाता है और अंततः वे संत बन जाते हैं। संत जॉन के सुसमाचार के अध्याय 17 से तुलना करें।

अंतर्वस्तु

1.4 कासिभरद्वाजसुत्त
अनुवाद
मुझे ऐसा सुनने को मिला:

एक समय भगवान (भगवान बुद्ध) मगध के दक्षिणगिरि में ब्राह्मणों के गाँव एकनाला में निवास कर रहे थे। उस समय ब्राह्मण काशीभरद्वाज के पाँच सौ हल बुवाई के मौसम में जुए में बंधे हुए थे। तब भगवान (भगवान बुद्ध) ने सुबह अपने वस्त्र धारण किए, भिक्षापात्र और वस्त्र धारण किए और उस स्थान पर गए जहाँ ब्राह्मण काशीभरद्वाज का कार्य चल रहा था। उस समय ब्राह्मण काशीभरद्वाज द्वारा भोजन वितरण हो रहा था। तब भगवान (भगवान बुद्ध) भोजन वितरण स्थल पर गए और वहाँ पहुँचकर एकांत में खड़े हो गए। ब्राह्मण काशीभरद्वाज ने भगवान बुद्ध को वहाँ भिक्षा माँगते हुए देखा और उन्हें देखकर उनसे कहा:

"हे तपस्वी, मैं हल चलाता हूँ और बीज बोता हूँ, और बीज बोने के बाद भोजन करता हूँ; हे तपस्वी, तुम भी हल चलाओ और बीज बोओ, और बीज बोने के बाद भोजन करो।" भगवान बुद्ध ने कहा, "हे ब्राह्मण, मैं भी हल चलाता हूँ और बीज बोता हूँ, और बीज बोने के बाद भोजन करता हूँ।

फिर भी हमें पूज्य गौतम बुद्ध का जुआ, हल, फाल, अंकुश या बैल दिखाई नहीं देते।"

फिर पूज्य गौतम (बुद्ध) ने इस प्रकार कहा:

'हे ब्राह्मण, मैं भी हल चलाता हूँ और बीज बोता हूँ, और हल चलाकर बीज बोकर भोजन करता हूँ,' ऐसा भगवान (बुद्ध) ने कहा।

तब ब्राह्मण काशीभरद्वाज ने भगवान (बुद्ध) को एक श्लोक में संबोधित किया:

1. 'आप कहते हैं कि आप हल चलाते हैं, फिर भी हम आपका हल चलाते हुए नहीं देखते; आपने अपने हल चलाने के बारे में पूछा है, तो हमें बताइए, ताकि हम आपका हल चलाना जान सकें।' (76)

2. भगवान (बुद्ध) ने उत्तर दिया: 'विश्वास बीज है, तप (तपस्या) वर्षा है, पन्ना (प्रत्यक्ष अनुभवात्मक समझ) मेरा जुआ और हल है, नम्रता हल का डंडा है, मन बंधन है, और जागरूकता मेरा हल का फाल और अंकुश है।' (77)

3. 'मैं शरीर के प्रति सजग हूँ, मैं वाणी के प्रति सजग हूँ, भोजन में संयमी हूँ; मैं सत्य को खरपतवारों को काटने का साधन बनाता हूँ, कोमलता ही मेरा उद्धार है। (78)

4. 'प्रयास मेरा बोझ ढोने वाला पशु है; योगाक्खेमा मेरा वाहन है, जो मुझे निर्वाण (मोक्ष) की ओर ले जाता है, वह उस स्थान पर बिना पीछे मुड़े जाता है जहाँ जाकर शोक नहीं होता। (79)

5. 'इस प्रकार जोता गया, इससे अमरता का फल प्राप्त हुआ; इस जोते जाने से समस्त पीड़ाओं से मुक्ति मिली।' (80)

तब ब्राह्मण काशिभारद्वाज ने एक स्वर्ण कटोरे में चावल का दूध डालकर भगवान (भगवान बुद्ध) को अर्पित किया और कहा, 'आदरणीय भगवान (भगवान बुद्ध) इस चावल के दूध का सेवन करें; आदरणीय गौतम (बुद्ध) एक किसान हैं, क्योंकि वे ऐसा हल चलाते हैं जो अमरत्व का फल देता है।

6. भगवान बुद्ध ने कहा: 'श्लोकों का पाठ करने से जो कुछ प्राप्त होता है, उसे मुझे नहीं खाना चाहिए; हे ब्राह्मण, यह सही दृष्टि रखने वालों का धर्म नहीं है; बुद्ध श्लोकों का पाठ करने से प्राप्त होने वाली चीजों का त्याग करते हैं, धर्म के अस्तित्व में रहने तक (बुद्धों का) यही आचरण है। (81)

7. 'जो सिद्ध महान ऋषि (संत) हैं, जिनकी वासनाएं नष्ट हो गई हैं और जिनका दुराचार समाप्त हो गया है, उन्हें अन्य भोजन और पेय पदार्थ अर्पित करने चाहिए, क्योंकि यह अच्छे कर्मों की तलाश करने वाले का क्षेत्र है।' (82)

'तो फिर, हे गौतम (बुद्ध), मैं यह चावल-दूध किसे दूँ?' काशिभरद्वाज ने कहा।

हे ब्राह्मण, इस संसार में, जहाँ मनुष्य, देवता, मार और ब्राह्मण हैं, तथागत (बुद्ध) या उनके शिष्य के सिवा कोई भी इस धान-दूध को ठीक से पचा नहीं सकता। अतः, हे ब्राह्मण, तुम इस धान-दूध को कम घास वाले स्थान पर डाल दो, या बिना कीड़े वाले पानी में डाल दो। ऐसा भगवान बुद्ध ने कहा।

तब ब्राह्मण काशीभरद्वाज ने धान-दूध को बिना कीड़े वाले पानी में डाल दिया। पानी में डाला गया धान-दूध छलकने लगा, फुफकारने लगा और ज़ोर से धुआँ छोड़ने लगा; क्योंकि जैसे दिन में गर्म हुआ हल पानी में डालने पर छलकने लगता है, फुफकारने लगता है और ज़ोर से धुआँ छोड़ने लगता है, वैसे ही धान-दूध को पानी में डालने पर छलकने लगा, फुफकारने लगा और ज़ोर से धुआँ छोड़ने लगा।

तब ब्राह्मण काशीभरद्वाज भयभीत होकर भगवान बुद्ध के पास गए और उनके चरणों में सिर झुकाकर उनसे कहा:

“हे पूज्य गौतम बुद्ध! यह उत्तम है! जैसे कोई गिरी हुई वस्तु को उठाता है, या छिपी हुई वस्तु को प्रकट करता है, या भटके हुए को मार्ग दिखाता है, या अंधेरे में दीपक जलाता है ताकि देखने वाले वस्तु को देख सकें, वैसे ही पूज्य गौतम बुद्ध ने अनेक तरीकों से धर्म का स्पष्टीकरण किया है। मैं पूज्य गौतम बुद्ध, धर्म और भिक्षुओं की सभा में शरण लेता हूँ।” काशिभरद्वाज ने कहा, 'मैं पूज्य गौतम (बुद्ध) से पब्बज्जा प्राप्त करना चाहता हूँ, मैं उपसंपदा (वस्त्र और आदेश) प्राप्त करना चाहता हूँ।'

तब ब्राह्मण काशिभरद्वाज ने भगवान बुद्ध से पब्बज्जा और उपसम्पदा प्राप्त की। उपसम्पदा प्राप्त करने के बाद, पूज्य भारद्वाज ने एकांत, एकांत, परिश्रमपूर्ण, उत्साही और ऊर्जावान जीवन व्यतीत करते हुए, अपने ध्यान और बुद्धि से थोड़े ही समय में ब्रह्मचर्य के उस सर्वोच्च सिद्धि को प्राप्त कर लिया, जिसके लिए अच्छे परिवार के लोग अपने घर छोड़कर निर्जन जीवन व्यतीत करते हैं। उन्होंने अनुभव किया, 'पुनर्जन्म का नाश हो गया, ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत कर लिया गया, जो करना था वह कर लिया गया, इस जीवन में अब कुछ और करने को नहीं बचा था।' इस प्रकार पूज्य भारद्वाज अरहतों (पूर्णतः प्रबुद्ध) में से एक बन गए।

काशिभरद्वाजसूत्र समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन

4. कसिभाराद्वाजसुत्तं

एवं मे सुतं - एकं समयं भगव मगधेसु विहारति दक्खिनागिरिस्मिम् [दक्खिनागिरीस्मि (का.)] एकानाषायम् ब्राह्मणगमे। तेन खो पाना समयेन काशीभारद्वाजस ब्राह्मणस्स पंचमत्तानि नंगलसतानि पयुत्तानि होन्ति वप्पाकाले। अथ खो भगव पुब्बनहासमयं निवसेत्व

पत्तशिवरामदाय येन काशीभारद्वाजस ब्राह्मणस्स कम्मंतो तेनुपशंकामि। तेन खो पना समयेन काशीभारद्वजस्स ब्राह्मणस्स परिवेसन वत्तति। अथ खो भगव येन परिवेशना तेनुपशंकामि; उपसंकमित्वा एकमंतं अथासि।
अद्दसा खो काशीभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं पिण्डाय स्थितम्। दिस्वाण भगवन्तं एतदावोचा - "अहं खो, समान, कासामि च वापामि च; कसीत्वा च वापीत्वा च भुञ्जामि. त्वमपि, समाना, कस्सु च वपासु च; कसीत्वा च वापित्वा च भुंजस्सु'ति।
"अहंपि खो, ब्राह्मण, कासामि च वापामि च; कसीत्वा च वापीत्वा च भुञ्जामि'ति। "ना खो पाना मयां [ना खो पाना समाना (स्या.)] पसामा भोतो गोतमस्सा युगं वा नंगलं वा फलं वा पकाणं वा बलिबद्दे [बलीवद्दे (सी. पी.), बलिबद्दे (?)] वा. अथ च पना भावं गोतमो एवमहा - 'अहम्पि खो, ब्राह्मण, कासामि च वापामि च; कसीत्वा च वापीत्वा च भुञ्जामि"ति।
अथ खो काशीभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं गाथाय अज्जभासि -
76.
"कस्सको पतिजानासि, न च पसमा ते कासिं;
कासिं नो पुच्चितो ब्रुहि, यथा जनेमु ते कासिं"।
77.
"सद्ध बीजं तपो वुट्ठि, पन्ना मे युगानांगलम्;
हिरि ईसा मनो योत्तं, सति मे फलपाचनं।
78.
"कायगुट्टो वचिगुट्टो, आहारे उदारे यतो;
सच्चं करोमि निदानं, सोरक्कं मे पमोकानं।
79.
"वीर्यं मे धुराधोरयहं, योगक्खेमधिवाहनं;
गच्छति अनिवत्तन्तं, यत्थ गन्त्वा न सोचति।
80.
"एवमेसा कसी कत्था, स होति अमतप्पला;
एतं कसीं कसीत्वना, सबदुक्खा पमुच्चति'ति।
अथ खो काशीभारद्वाजो ब्राह्मणो महतिया कंसपतिया पायसाम् [पयासं (सब्बत्था)] वद्धेत्वा भगवतो उपनामेसि - "भुंजतु भवं गोतमो पायसाम्।" कस्सको भवं; यं हि भावं गोतमो अमातप्पलं [अमतप्पलमपि (सां. नि. 1.197)] कसीं कसति"ति।
81.
"गाथाभिगीतां मे भोजनेयं, संपासतं ब्राह्मण नेसा धम्मो;
गाथाभिगीतां पनुदन्ति बुद्ध, धम्मे सति ब्राह्मण वुत्तिरसा।
82.
"अन्नेन च केवलिनं महेसिं, खिनासावं कुक्कुक्कवुपसंतम्;
अन्नेन पनेण उपाथहस्सु, खेतं हि तं पुन्नपेक्खस्सा होति'ति।
"अथ कस्सा चाहं, भो गोतम, इमं पायसं दम्मिति?" "न ख्वाहं तं, ब्राह्मण, पसामि सदेवके लोके समाराके सब्रह्मके सस्सामणब्राह्मणिय पजाय सदेवमनुस्साय, यस्सा सो पयासो भुट्टो सम्मा परिणामं गच्छेया, अन्नत्र तथागतसा वा तथागतसावकस्सा वा. तेन हि त्वं, ब्राह्मण, तं पयसं अप्पाहारिते वा चंडेहि अप्पानाके वा उदाके ओपिलापेहि'ति।
अथ खो काशीभारद्वाजो ब्राह्मणो तं पायसं अप्पाणके उदाके ओपिलापेसि। अथ खो सो पयासो उदाके पक्खितो पक्खितो चिचितायति संधूपयति संधूपयति [संधूमयति संपधुमयति (स्या.)]। सेय्यथापि नाम फलो दिवसं संतत्तो [दिवससंतत्तो (सि. स्या. कां. पि.)] उदके पक्खित्टो चिचितायति संधूपयति संधुपयति; एवमेव सो पयासो उदके पक्खित्टो चिचितायति सन्धूपयति संधुपयति।
अथ खो काशीभारद्वाजो ब्राह्मणो सान्विग्गो लोमहतहजातो येन भगव तेनुपासंकामि; उपसंकमित्वा भगवतो पदेसु सिरसा निपतित्व भगवन्तं एतदवोचा - " अभिकान्तं, भो गोतम, अभिकान्तम्, भो गोतम! सेय्याथापि, भो गोतम, निक्कुज्जितं वा उक्कुज्जेय्या, पतिच्चन्नं वा विवरेया, मुधास्सा वा मग्गं आचिक्खेया, अंधकारे वा तेलापज्जोतम धारेया, चक्खुमंतो रूपाणी दक्खनतिति [दक्खिनति (सि. स्या. कं. पि.)]; एवमेवं भोता गोतमेना अनेकापरियायेन धम्मो पकासितो। एषाहं भवनतं गोतमं शरणं गच्छामि धम्मञ्च भिक्खुसंघान्च, लभेयाहं भोतो गोतमस्सा संतिके पब्बज्जं, लभेयं उपसम्पदा'न्ति।
अलत्थ खो काशीभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवतो संतिके पब्बज्जं, अलत्थ उपसम्पदाम्। अचिरुपसम्पन्नो खो पनायस्मा भारद्वाजो एको विपकाठो अप्पमट्टो अतापि पहितत्तो विहारन्तो नासिरसेवा - यस्सत्थाय कुलपुत्त सम्मदेव अग्रस्मा अंगारियं पब्बजन्ति, तदनुत्तरम् - ब्रह्मक्रियापरियोसानं दित्थेव धम्मे सयं अभिन्न सच्चिकत्वा उपसंपज्ज विहसि। "खिण जाति, वुसितं ब्रह्मचर्यं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्तया'ति अभ्भन्नसि।' अन्नतरो च [अनन्तरो च खो (सि. पि.), अन्नतरो खो (स्या. का. का.)] पनायस्मा भारद्वाजो अरहतं अहोसिति।
काशीभारद्वाजसुत्तं चतुत्थं निहितं।

पाली-देवनागरी
4. काशीभारद्वाजसुत्तं
एवं मे सुतं – एकं समयं भगव मगधेसु विहारति दक्खिनगिरिस्मिं [दक्खिनगिरिस्मिं (क०)] एकनाळायं ब्राह्मणगामे। तेन खो पन समयेन काशीभारद्वाजस्स ब्राह्मणस्स पंचमत्तानि नङ्गलसतानि प्युत्तानि होन्ति वप्पकाले। अथ खो भगव पुब्नहस्यामं निवासेत्वा पत्तचीवर्मादाय येन काशीभारद्वाजस्स ब्राह्मणस्स कम्मन्तो तेनुपसङकमि। तेन खो पन समयेन काशीभारद्वाजस्स ब्राह्मणस्स परिवेसना वत्तति। अथ खो भगवान येन परिवेसना तेनुपसङकमी; उपसङ्कमित्वा एकमन्तं अट्ठसि।
अद्दसा खो काशीभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं पिंडाय थितं। दिस्वां भगवन्तं एतदवोच - "अहं खो, समं, कासामि च वापामि च; कसीत्वा च वापित्वा च भुज्जामि। त्वमपि, समान, कस्सु च वपस्सु च; कसीत्वा च वापित्वा च भुञ्जस्सु"ति।
"अहमपि खो, ब्राह्मण, कासामि च वपामि च; कसीत्वा च वापित्वा च भूजामिऽति। "न खो पन मयं [न खो पन समान (स्या०)] पस्मा भोतो गोतमस्स युगं वा नङ्गलं वा फलं वा पाचनं वा बलिबद्दे [बलिवद्दे (सी० पी०), बलिबद्दे (?)] वा। अथ च पन भवन गोतमो एवमः - 'अहमपि खो, ब्राह्मण, कासामि च वापामि च; कसीत्वा च वापित्वा च भुजामिऽ"ति।
अथ खो काशीभार्द्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं रामायणाय अज्भासि -
60.
"कस्सको पतिजनासि, न च पस्साम ते कसिं।
कसिं नो पुच्छितो ब्रुहि, यथा जानेमु ते कसिं"॥
77.
"साधा बीजं तपो वुट्ठि, पञ्चा मे युगानङ्गलं।
हिरि ईसा मनो योत्तं, सति मे फलपाचनं॥

.
"कायगुत्तो वाचिगुत्तो, आहारे उड्रे यतो।
सचचं करोमि निद्दनं, सोरचं चं मे पमोचनं॥

.
"वीर्यं मे धुरधोर्यहं, योगखेमाधिवाहनं।
गच्छति अनिवत्तन्तं, यथा गन्त्वा न सोचति॥

.
"एवमेसा कसी कत्था, सा होति अमतफला।"
एतं कसिं कसीत्वान, सब्बदुक्खा पमुच्चति"ति॥
अथ खो काशीभारद्वाजो ब्राह्मणो महतिया कंसपटिया पायसं [पायासं (सब्बत्थ)] वन्नजेत्वा भगवतो अनालगेसि - "भुंजदजतु भवं गोतमो पायसं। कस्सको भवं; यं हि भावं गोतमो अमत्फलं [अमतप्फलंपि (सं० नि० 1.197)] कसिं कस्ति"ति।

.
"गाथाभिगीतं मे अभोजनेयं, सम्पस्सतं ब्राह्मण नेस धम्मो।
गाथाभिगीतं पनुदन्ति बुद्धा, धम्मे सति ब्राह्मण वुत्तिरसा॥

.
"अञ्जेन च केवलिनं महेसिं, खिनास्वं कुकुचदचवुपसन्तं।
अ शोधेन प्राप्तेन उपट्ठहस्सु, खत्तं हि तं पुंजपेक्खस्स होता"ति॥
"अथ कस्स चाहं, भो गोतम, इमं पायसं दम्मी"ति? "न ख्वाहं तं, ब्राह्मण, पस्सामि सदेवके लोके समारके सब्रह्मके ससमन्ब्राह्मणीय पजाय सदेवमनुस्साय, यस सो पायसो भुत्तो सम्मा एस्मासं गच्छेय, अञ्जनत्र तथागतस्स वा तथागतसावकस वा। तेन हि तवं, ब्राह्मण, तं पायसं अप्हरिते वा चद्देहि अप्पनके वा उदके ओपिलापेहि"ति।
अथ खो काशीभारद्वाजो ब्राह्मणो तं पायसं अप्पनके उदके ओपिलापेसि। अथ खो सो पायसो उदके पक्खिततो चिच्चितचितयति सन्धूपायति संधुपायति [संधूमायति प साधुमायति (स्या०)]। सेयथापि नाम फलो दयां सन्तत्तो [दिवससन्तत्तो (सी० स्या० कं० पी०)] उदके पखित्टो चिच्चितयति चिचितितयति संधूपायति संधुपायति; एवमेव सो पायसो उदके पक्खिततो चिच्चितचितयति संधूपयति संधूपयति।
अथ खो काशीभारद्वाजो ब्राह्मणो संविग्गो लोमहत्थजातो येन भगवान तेनुपसङकमि; उपसङ्कमित्वा भगवतो पदेसु सीआ निपतित्व भगवन्तं एतदवोच - "अभिकांतं, भो गोतम, अभिघातकांतं, भो गोतम! सेयथापि, भो गोतम, निकुज्जजितं वा उक्राकुज्जेय, पतिच्छ संज्ञां वा विवेरेय, मूङहस्स वा मग्गं अचिक्खेय, अंधकारे वा तैलपजजोतं धारेयय, चक्खुमंतो रूपाणि दक्खनतिति [दक्खिनस्ति (सी० स्या० कं० पी०)]; एवमेवं भोता गोतमेन अनेकप्रिययेन धम्मो पाकसितो। एसहं भवन्तं गोतमं शरणं गच्छामि धम्मनदच भिक्खुसङघञ्च, लभेयहं भोतो गोतमस्स शांतिके पब्बज्जं, लभेयं उपसम्पदा"न्ति।
अलत्थ खो काशीभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवतो शांतिके पब्बज्जन, अलत्थ उपसम्पदं। अचिरूपसम्प साइनो खो पनायस्मा भार्घो एको वुपकट्ठो अप्पमत्तो अतपि पहितत्तो विहरन्तो नचिरस्सेव - यशत्थाय कुलपुत्ता सम्देव अग्रस्मा अंगारियं पब्बजन्ति, तदनुत्तरं -

ब्रह्मचर्यपरियोसानं दित्थेव धम्मे सयं अभिञ्ञा सच्चिकत्व उपसम्पजज विहासि। "खिना जाति, वुसिटं ब्रह्मचर्यं, कतं करणीयं, नापरं इत्थत्ताया"ति अभ्भञ्चसि। अञ्जन्तरो च [अञ्जन्तरो च खो (सि० पी०), अञ्जन्तरो खो (स्या० कं० क०)] पनायस्मा चार्जो अरहतं अहोसिति।
काशीभारद्वाजसुत्तं चतुत्थं निश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> सुत्तनिपता >> 1.5 चुंडासुत्त
वी. फॉस्बोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<--->>>> अगला

बुद्ध ने लोहार चुंडा को चार अलग-अलग प्रकार के समनाओं के बारे में बताया।

अंतर्वस्तु

1.5 चुंडासुट्टा
अनुवाद
1. 'मैं महान पन्ना (प्रत्यक्ष ज्ञान) वाले मुनि (संत) से पूछता हूँ,' - लोहार चुंडा ने कहा, - 'बुद्ध, धम्म के स्वामी, जो इच्छा से मुक्त हैं, दो पैरों पर चलने वालों में श्रेष्ठ हैं, सारथियों में सबसे उत्तम हैं, संसार में कितने प्रकार के समन (भिक्षु) हैं; कृपया मुझे बताइए?' (83)

2. 'चार प्रकार के समन हैं, हे चुंडा, पाँचवाँ नहीं है,' - भगवान (बुद्ध) ने कहा, - 'मैं स्वयं पूछे जाने पर तुम्हें ये प्रकट करूँगा; (वे) मगग्जिन और मग्देशक, मगग्जीवती और मगद्सुनी हैं।' (84)

3. 'बुद्ध किसे मगग्जिन कहते हैं?' - लोहार चुंडा ने कहा, - 'मगक्खायिन अद्वितीय कैसे है?' पूछे जाने पर, मुझे एक मग्गाजीवती का वर्णन कीजिए, और मुझे एक मग्गादुसिन के बारे में बताइए। (85)

4. भगवान (बुद्ध) ने कहा: 'जिसने संदेह पर विजय प्राप्त कर ली है, जो पीड़ा रहित है, निर्वाण में आनंदित होता है, लोभ से मुक्त है, मनुष्य और देवता जगत का नेता है, उसे बुद्ध मग्गाजीना (अर्थात मार्ग से विजयी) कहते हैं। (86)

5. 'जिसने इस संसार में सर्वश्रेष्ठ (अर्थात निर्वाण) को सर्वश्रेष्ठ मानकर, यहाँ धम्म का उपदेश और व्याख्या की है, उसे, संदेह का निवारण करने वाले मुनि (संत), निर्लोभ, भिक्षुओं में दूसरे स्थान पर मग्गादेसिन (अर्थात मार्ग का उपदेश देने वाला) कहते हैं। (87)

6. 'जो धम्मपद में अच्छी तरह से सिखाए गए मार्ग पर चलता है, संयमित, सजग, निष्कलंक शब्दों का अभ्यास करता है, उसे भिक्षुओं में तीसरे स्थान पर मग्गाजीवती (अर्थात मार्ग पर चलने वाला) कहते हैं। (88)

7. 'जो व्यक्ति सद्‌गुणों का ढोंग करते हुए भी अभिमानी, परिवारों को कलंकित करने वाला, ढीठ, कपटी, बेलगाम, बकवास करने वाला, भेस बदलकर घूमने वाला है, वह मार्ग को दूषित करने वाला है।' (89)

8. 'जिसने इन (चार समनों, भिक्षुओं) को भेद दिया है, जो गृहस्थ है, ज्ञानी है, आरहों (अर्हतों, पूर्णतः प्रबुद्ध) का शिष्य है, बुद्धिमान है, यह जानते हुए कि वे सभी ऐसे हैं, ऐसा देखकर भी उसका विश्वास नहीं डगमगाता; क्योंकि वह कैसे निर्गुण को निर्गुण के बराबर और शुद्ध को अशुद्ध के बराबर मान सकता है?' (90)

चुंडासुत्त समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
5. Cundasuttaṃ
83.
"पुच्चामि मुनिं पहुतापन्नं, (इति कुंडो कम्मरापुट्टो)
बुद्धं धम्मस्सामिं वितातनहं;
द्विपदुत्तमं [दिपदुत्तमं (सि. स्या. कं. पि.)] सारथिणं पवरं, कटि लोके समाना तदिंघ ब्रुहि"।
84.
"चतुरो समाना न पंचमत्थि, (कुंडति भगवान)
ते ते अविकारोमी सक्खिपुत्थो;
मग्गाजिनो मग्गादेसाको सीए, मग्गे जीवति यो सीए मग्गादुसी"।
85.
कं मग्गाजिनं वदन्ति बुद्ध, (इति कुंडो कम्मरापुत्तो)
मग्गक्खायि कथं अतुल्यो होति;
मग्गे जीवति मे ब्रुहि पुठो, अथ मे अविकारोहि मग्गादुसीं" [मग्गादुसी (का.)]।
86.
"यो तिन्नकथंकाथो विसाल्लो, निब्बानाभिरतो अनानुगिद्धो;
लोकस्सा सदेवकस्सा नेता, तदिं मग्गाजिनं वदन्ति बुद्ध।
87.
"परमं परमंति योधा नात्वा, अक्खाति विभजते इधेव धम्मं;
तं कंखचिदं मुनिं अनेजं, दुतियां भिक्खुनमहु मग्गदेसिं।
88.
"यो धम्मपदे सुदेसिते, मग्गे जीवति सन्नतो सतीमा;
अनवज्जपादानि सेवामानो, तत्यं भिक्खुनमहु मग्गजीविम्।
89.
"चदाणं कत्वाना सुब्बतानं, पखंडि कुलदुसको पगब्बो;
मायावी असन्नतो पलापो, पतिरूपेण कैरं स मग्गदुसी।
90.
"एते च पतिविज्जि यो गहथो, सुतवा अरियासावको सपनानो;
सब्बे नेतादिसति [सब्बे ने तदिसाति (सि. स्या. पि.)] नात्वा, इति दिसवा न हपेति तस्स साध;
कथं हि दुत्थेन असम्पाददुत्थं, शुद्धं अशुद्धेन समं कार्यया'ति।
कुंडसुत्तं पंचमं निहितं।

पाली-देवनागरी
5. चुन्दसुत्तं
.
पुच्चामि मुनिं पहुतपञ्चं, (इति चुन्दो कम्मारपुत्तो)
बुद्धं धम्मस्सामिं वितान्थं।
द्विपदत्तमं [दीपदुत्तमं (सी० स्या० कं० पी०)] सारथीनं पवरं, कति लोके समाना तदिङ्घ ब्रूहि"॥
व्हाट.
चतुरो समना न पंचमथि, (चुंदाति भगवान)
ते ते अविक्रोमि सक्खिपुट्ठो।
मग्गजिनो मग्गदेसको च, मग्गे जीवति यो च मग्गदूसी"॥
85.
"कं मग्गिनं वदन्ति बुद्धा, (इति चुन्दो कम्मारपुत्तो)
मग्गक्खायि कथं अतुलयो होति।
मग्गे जीवति मे ब्रूहि पुत्थो, अथ मे अविक्रोहि मग्ग्दूसिं" [मग्गेउसी (क०)]॥
6.

"यो तिन्नकथंकथो विसललो, निब्बानाभिरतो अनानुगिद्धो।
लोकस्स सदेवकस्स नेता, तादिं मग्गिनं वदन्ति बुद्धा॥
.
"परमं परमंति योध ञत्वा, अक्खाति विभजते इधेव धम्मं।
तं कङ्खचिदं मुनिं अनेजं, दुतियां भिक्खुनमाहु मग्गदेसिं॥
88.
"यो धम्मपदे सुदेसिते, मग्गे जीवति संञ्ञतो सतीमा।
अनवजजपदानि सेवमानो, ततियां भिक्खुनमाहु मग्गग्विं॥
.
"छद्दनं कत्वान् सुब्बतनं, पक्खंडी कुलदुसको पगब्बो।
मायावी असञ्जन्तो पलापो, पतिरूपेण चरं स मग्गदूसि॥
90.
"एते च पतिवैजि यो गहत्थो, सुतवा अरियसावको सपञ्चनो।
सब्बे नेतादिसाति [सब्बे ने तदिसाति (सी० स्या० पी०)] नत्वा, इति दिस्वा न हापेति तस्स साध।
कथं हि दुट्ठेन असम्दुत्थं, सुद्धं असुद्धेन समं करैया"ति॥
चुन्दसुत्तं पञ्चमं निश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> सुत्तनिपात >> 1.6 परभवसुत्त
वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<-->>>> अगला

एक देवता और बुद्ध के बीच उन चीजों पर संवाद, जिनसे मनुष्य इस संसार में हानि उठाता है और जिनसे लाभ प्राप्त करता है।

अंतर्वस्तु

1.6 पराभवसुत्त
अनुवाद
तो मुझे यह सुनने को मिला:

एक समय भगवान (भगवान बुद्ध) सावत्थी में, जेतवन में, अनाथपिंडिका के उद्यान में निवास कर रहे थे। फिर जब रात बीत गई, तो एक सुंदर रूप वाले देवता ने पूरे जेतवन को प्रकाशित करते हुए भगवान (भगवान बुद्ध) के पास जाकर, उनके पास पहुँचकर उन्हें प्रणाम किया और एकांत में खड़े होकर भगवान (भगवान बुद्ध) से श्लोकों में कहा:

1. 'हे गौतम (बुद्ध), हम आपसे एक ऐसे व्यक्ति के बारे में पूछते हैं जिसे हानि हुई है; हे भगवान (भगवान बुद्ध), हम आपसे यह पूछने आए हैं कि हानि का कारण क्या है।' (91)

2. भगवान (भगवान बुद्ध): 'विजेता को आसानी से पहचाना जा सकता है, और हारने वाले को भी आसानी से पहचाना जा सकता है: जो धर्म से प्रेम करता है वही विजेता है, और जो धर्म से घृणा करता है वही हारने वाला है।' (92)

3. देवता: 'हम जानते हैं कि ऐसा ही है, यह पहला हारने वाला है; हे भगवान (भगवान बुद्ध), हमें दूसरा कारण बताइए, हारने वाले व्यक्ति के लिए हानि का कारण क्या है? (93)

4. भगवान (भगवान बुद्ध): 'दुष्ट लोग उसे प्रिय होते हैं, वह अच्छे लोगों को प्रिय कुछ भी नहीं करता, वह दुष्टों के धर्म का समर्थन करता है, यही हारने वाले व्यक्ति के लिए हानि का कारण है।' (94)

5. देवता: 'हम जानते हैं कि ऐसा ही है, यह दूसरा हारने वाला है; हे भगवान (भगवान बुद्ध), हमें तीसरा कारण बताइए, हारने वाले व्यक्ति के लिए हानि का कारण क्या है?' (95)

6. भगवान (भगवान बुद्ध): 'जो व्यक्ति सुस्त है, समाज का शौकीन है और ऊर्जाहीन है, आलसी है, क्रोधी है, यही हारने वाले व्यक्ति के लिए हानि का कारण है।' (96)

7. देवता: 'हम जानते हैं कि ऐसा ही है, यह तीसरा हारने वाला है; हे भगवान (भगवान बुद्ध), हमें चौथा कारण बताइए, हानि का कारण क्या है? (97)

8. भगवान (भगवान बुद्ध): 'जो धनी होते हुए भी अपने माता-पिता (वृद्ध या युवावस्था पार कर चुके) का सहारा नहीं देता, वही हानि का कारण है।' (98) 9.

देवता: 'हम जानते हैं कि ऐसा ही है, यह चौथा हानि का कारण है; हे भगवान (भगवान बुद्ध), हमें पाँचवाँ कारण बताइए, हानि का कारण क्या है?' (99)

10. भगवान (भगवान बुद्ध): 'जो झूठ बोलकर ब्राह्मण, समन (भिक्षु) या किसी अन्य तपस्वी को धोखा देता है, वही हानि का कारण है।' (100)

11. देवता: 'हम जानते हैं कि ऐसा ही है, यह पाँचवाँ हानि का कारण है; हे भगवान (भगवान बुद्ध), हमें छठा कारण बताइए, जो व्यक्ति हानि का शिकार होता है। (101)

12. भगवान (भगवान बुद्ध): 'जो व्यक्ति बहुत संपत्ति का मालिक है, जिसके पास सोना और भोजन है, (और फिर भी) केवल अपनी सुख-सुविधाओं का आनंद लेता है, वही हानि का कारण है।' (102)

13. देवता: 'हम जानते हैं कि ऐसा ही है, यह छठा हानि का शिकार है; हे भगवान (भगवान बुद्ध), हमें सातवां कारण बताइए, जो व्यक्ति हानि का शिकार होता है।' (103)

14. भगवान (भगवान बुद्ध): 'जो व्यक्ति अपनी उच्च जाति, अपने धन और अपने परिवार पर गर्व करता है,अपने रिश्तेदारों से घृणा करता है, यही हारने वाले व्यक्ति के लिए नुकसान का कारण है।' (104)

15. देवता: 'हम जानते हैं कि ऐसा ही है, यह सातवां हारने वाला है; हे भगवान (भगवान बुद्ध), हमें आठवां बताइए, हारने वाले (मनुष्य) के लिए (हानि का) कारण क्या है?' (105)

16. भगवान (भगवान बुद्ध): 'जो व्यक्ति स्त्रियों, शराब और जुए में लिप्त रहता है, वह अपनी सारी कमाई बर्बाद कर देता है, यही हारने वाले (मनुष्य) के लिए (हानि का) कारण है।' (106)

17. देवता: 'हम जानते हैं कि ऐसा ही है, यह आठवां हारने वाला है; हे भगवान (भगवान बुद्ध), हमें नौवां बताइए, हारने वाले (मनुष्य) के लिए (हानि का) कारण क्या है?' (107)

18. भगवान (भगवान बुद्ध): 'जो अपनी पत्नी से संतुष्ट नहीं होता, वह वेश्याओं और दूसरों की पत्नियों के साथ देखा जाता है, यही हारने वाले (मनुष्य) के लिए (हानि का) कारण है।' (108)

19. देवता: 'हम जानते हैं कि ऐसा ही है, यह नौवां हारने वाला है; हे भगवान (भगवान बुद्ध), हमें दसवां बताइए, हारने वाले (पुरुष) के लिए (हानि का) कारण क्या है?' (109)

20. भगवान (भगवान बुद्ध): 'जो पुरुष अपनी जवानी पार कर चुका है, वह तिम्बारू फल के समान स्तनों वाली स्त्री को घर लाता है, और उससे ईर्ष्या के कारण सो नहीं पाता, वही हारने वाले (पुरुष) के लिए (हानि का) कारण है।' (110)

21. देवता: 'हम जानते हैं कि ऐसा ही है, यह दसवां हारने वाला है; हे भगवान (भगवान बुद्ध), हमें ग्यारहवां बताइए, हारने वाले (पुरुष) के लिए (हानि का) कारण क्या है?' (111)

22. भगवान (बुद्ध): 'जो व्यक्ति शराब पीने और फिजूलखर्ची करने वाली स्त्री या उसी प्रकार के पुरुष को सर्वोच्च स्थान देता है, वही हानि का कारण बनता है।' (112)

23. देवता: 'हम जानते हैं कि ऐसा ही है, यह ग्यारहवां हानि का कारण है; हे भगवान (बुद्ध), हमें बारहवें हानि का कारण बताइए, जो हानि का कारण बनता है।' (113) 24.

भगवान (बुद्ध): 'जिसके पास थोड़ी संपत्ति है, (पर) बड़ी इच्छा है, जो क्षत्रिय परिवार में जन्म लेता है और इस संसार में राज्य की कामना करता है, वही हानि का कारण बनता है।' (114)

25. संसार में होने वाली इन हानियों को ध्यान में रखते हुए, ज्ञानवान, आदरणीय, अंतर्दृष्टि से परिपूर्ण व्यक्ति, सुखी लोक (देवताओं के लोक) की साधना करता है।' (115)

परभवसुत्त समाप्त हो गया।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन

6. पराभवसुत्तं

एवं मे सुतं – एकं समयं भगव सावत्थियं विहारति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स अरामे। अथ खो अन्नतर देवता अभिकान्ताय रत्तिया अभिकान्तवन्ना केवलकप्पां जेतवनं ओभासेत्वा येन भगव तेनुपशंकामि; उपसंकमित्वा भगवन्तं अभिवदेत्वा एकमन्तं अथासि। एकमंतं स्थित खो स देवता भगवन्तं गाथाय अज्जभासि -

91.
"परभवन्तं पुरिसं, मयं पुच्छम गोतम [गोतमं (सि. स्या.)];
भगवन्तं [भवन्तं (स्या. का.)] पुथुमागम्मा, किं परभवतो मुखं"।

92.
"सुविजानो भावं होति, सुविजानो [दुविजानो (स्या. का.)] पराभावो;
धम्मकामो भावं होति, धम्मदेसि परभावो"।

93.
"इति हेतं विज्ञानं, पथमो सो परभवो;
दुतीयं भगव ब्रूहि, किं परभवतो मुखं"।

94.
"असंतास्सा पिया होंति, संते न कुरुते पियाम्;
असतं धम्मं रोसेटी, तं परभवतो मुखं"।

95.
"इति हेतं विज्ञानं, कर्तव्यो सो परभवो;
तत्यां भगव ब्रूहि, किं परभवतो मुखं"।

96.
"निद्दासिलि सभासिलि, अनुथाता च यो नरो;
Alaso kodhapaññāṇo, taṃ parābhavato mukhaṃ".

97.
"इति हेतं विज्ञानं, ततियो सो परभवो;
चतुत्थं भगव ब्रूहि, किं परभवतो मुखं"।

98.
"यो मातरं [यो मातरं वा (सि. स्या. कं. पि.)] पितरं वा, जिनकं गतयोब्बनं;
पाहु संतो न भारती, तं परभवतो मुखं"।
99.
"इति हेतं विज्ञानं, चतुत्थो सो परभवो;
पंचमं भगव ब्रूहि, किं परभवतो मुखं"।
100.
"यो ब्राह्मणं [यो ब्राह्मणं वा (सि. स्या. कं. पि.)] समानं वा, अन्नं वापि वाणीबकम्;
मुसावादेन वन्सेति, तं परभवतो मुखं"।
101.
"इति हेतं विज्ञानं, पंचमो सो परभवो;
चैथमं भगव ब्रूहि, किं परभवतो मुखं"।
102.
" पहुतावित्तो पुरिसो, साहिराणो सभोजनो;
एको भुञ्जति सदुनि, तं परभवतो मुखं"।
103.
"इति हेतं विज्ञानं, चत्थमो सो परभवो;
सत्तमं भगव ब्रूहि, किं परभवतो मुखं"।
104.
"जतित्थद्धो धनत्थद्धो, गोत्तत्थद्धो च यो नरो;
सन्नतिं अतिमन्नेति, तं परभवतो मुखं"।
105.
"इति हेतं विज्ञानं, सत्तमो सो परभवो;
अथमं भगव ब्रूहि, किं परभवतो मुखं"।
106.
"इट्ठिधुत्तो सुरधुत्तो, अक्खधुत्तो च यो नरो;
लद्धं लद्धं विनसेति, तं परभवतो मुखं"।
107.
"इति हेतं विज्ञानं, अथामो सो परभवो;
नवमं भगव ब्रूहि, किं परभवतो मुखं"।
108.
"सेही दरेहि असंतुठो [दारेह्यसंतुठो (का.)], वेसियासु पदुस्सति [पडिस्सति (सि.)];
दुस्सति [डिस्सति (सि. पि.)] परदारेसु, तं परभवतो मुखं"।
109.
"इति हेतं विज्ञानं, नवमो सो परभवो;
दशमं भगव ब्रूहि, किं परभवतो मुखं"।
110.
"अतितायोब्बानो पोसो, अनेति टिम्बरुत्थनिः;
तस्स इस्स न सुपति, तं परभवतो मुखं"।
111.
"इति हेतं विज्ञानं, दशमो सो परभवो;
एकादसमं भगव ब्रूहि, किं परभवतो मुखं"।
112.
"इत्थिं सोंदिं विकिराणिं, पुरिसं वापि तदिसं;
इस्सारियास्मिं थपेति [थपेति (सि. पि.), थापेति (का.)], तं परभवतो मुखं"।
113.
"इति हेतं विज्ञानं, एकादसमो सो परभवो;
द्वादसमं भगव ब्रूहि, किं परभवतो मुखं"।

114.
"अप्पाभोगो महतान्हो, खत्तिये जायते कुले;
तो च रज्जं पथयति, तं परभवतो मुखं"।
115.
"एते परभावे लोके, पण्डितो समवेक्खिया;
अरियो दस्सानसम्पन्नो, स लोकं भजते शिव'न्ति।
परभवसुत्तं चट्ठं नियतं।

पाली-देवनागरी
6. प्राभवसुत्तं
एवं मे सुतं – एकं समयं भगव सावथ्थं विहारी जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो अञ्जनत्र देवता अभिकान्तराय रत्तिया अभिकान्तवन्ना केवलकप्पं जेतवनं ओभासेत्वा येन भगव तेनुपसङकमी; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवदेत्वा एकमन्तं अत्थसि। एकमन्तं थिता खो सा देवता भगवन्तं गाथाय अज्भासि -

.
"पराभवन्तं पुरिसं, मयं पुच्छम गोतम [गोतमं (सी॰ स्या॰)]।
भगवन्तं [भवंतं (स्या॰ क॰)] पुत्थुमागम, किं परभवतो मुखं"॥

.
"सुविजानो भवन होति, सुविजानो [दुविजानो (स्या॰ क॰)] परभवो।
धम्मकामो भवन होति, धम्मदेस्सी परभवो॥

.
"इति हेतं विजानाम, पथमो सो परभवो।
दुतीयं भगव ब्रूहि, किं परभवतो मुखं॥

.
"असन्तस्स पिया होन्ति, सन्ते न कुरुते पियं।
असतं धम्मं रोचेति, तं परभवतो मुखं"॥

.
"इति हेतं विजानाम, दुतियो सो परभवो।"
तत्यां भगव ब्रूहि, किं परभवतो मुखं॥

.
"निसिदालि सभासीली, अनुत्थता च यो नरो।
अलसो कोधपञ्चनो, तं परभवतो मुखं"॥

.
"इति हेतं विजानाम, ततियो सो परभवो।
चतुत्थं भगव ब्रूहि, किं परभवतो मुखं॥

.
"यो मातरं [यो मातरं वा (सी॰ स्या॰ कं॰ पी॰)] पितरं वा, जिनकं गतयोब्बनं।
पहु सन्तो न भारती, तं परभवतो मुखं॥

.
"इति हेतं विजानाम, चतुत्थो सो परभवो।
पंचचमं भगव ब्रूहि, किं परभवतो मुखं॥
100.
"यो ब्राह्मणं [यो ब्राह्मणं वा (सी॰ स्या॰ कं॰ पी॰)] समानं वा, अञ्चं वापि वनिब्बकं।
मुसावादेन वञ्चेति, तं परभवतो मुखं॥
1011.
"इति हेतं विजानाम, पंचमो सो परभवो।
छट्ठमं भगव ब्रूहि, किं परभवतो मुखं॥
102.

"पहुतोवित्तो पुरिसो, सहिरञ्जो सभोजनो।"
एको भुञ्जति सदुनि, तं परभवतो मुखं॥
103.
"इति हेतं विजानाम, छट्ठमो सो परभवो।
सत्तमं भगव ब्रूहि, किं परभवतो मुखं॥
14.
"जातित्थद्धो धनत्थद्धो, गोत्तत्थद्धो च यो नरो।
संञ्ञतिं अतिमञ्चेति, तं परभवतो मुखं"॥
105.
"इति हेतं विजानाम, सत्तमो सो परभवो।
अट्ठमं भगव ब्रूहि, किं परभवतो मुखं॥
10.
"इत्थिधुत्तो सुरधुत्तो, अक्क्खुत्तो च यो नरो।
लद्धं लद्धं विनासेति, तं परभवतो मुखं"॥
1
"इति हेतं विजानाम, अत्थमो सो परभवो।
नवमं भगव ब्रूहि, किं परभवतो मुखं॥
1/2
"सही दारेहि असंतुट्ठो [दारेह्यसंतुत्थो (क०)], वेसियासु पदुस्स्ति [पादिस्स्ति (सी०)]।
दुस्स्ति [दिस्स्ति (सी० पी०)] परदारेसु, तं परभवतो मुखं"॥
.
"इति हेतं विजानाम, नवमो सो परभवो।
दशमं भगव ब्रूहि, किं परभवतो मुखं॥
11.
"अतीतयोब्बनो पोसो, अनेति तिम्बरुत्थनिं।
तस्सा इस्सा न सुपति, तं परभवतो मुखं॥
.
"इति हेतं विजानाम, दशमो सो परभवो।
एकादसमं भगव ब्रूहि, किं परभवतो मुखं॥
121.
"इत्थिं सोण्डिं विकिरणिं, पुरिसं वापि तादिसं।
इस्त्रिसुमिं ओमेति [थापेति (सी० पी०), थापेति (के०)], तं परभवतो मुखं"॥
12, ...
"इति हेतं विजानाम, एकादसमो सो परभवो।
द्वादसमं भगव ब्रूहि, किं परभवतो मुखं॥
1.
"अप्पभोगो महतान्धो, खत्त्ये जायते कुले।"
सो च रज्जं पथयति, तं परभवतो मुखं॥
15.
"एते परभवे लोके, पण्डितो समवेखिय।
अरियो दासनसंसम्प संञ्ञाओ, स लोकं भजते शिव"न्ति॥
परभवसुत्तं छट्ठं निश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> सुत्तनिपता >> 1.7 वासलसुत्त
वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)
____
पिछला <<<<-->>>> अगला
____

मातंग जातक में वर्णित मातंग की कहानी के माध्यम से बहिष्कृत व्यक्ति की जो परिभाषा बुद्ध ने दी है, उसे सुनने के बाद ब्राह्मण अग्गिकभारद्वाज ने बुद्ध द्वारा धर्मांतरण कर लिया।

अंतर्वस्तु

1.7 वासलसुत्त
अनुवाद
तो मैंने यह सुना:
एक समय भगवान (भगवान बुद्ध) सावत्थी में, जेतवन के अनाथपिंडिका उद्यान में निवास कर रहे थे। सुबह भगवान ने वस्त्र धारण किए, भिक्षापात्र और वस्त्र धारण किए और भिक्षा मांगने के लिए सावत्थी में प्रवेश किया। उस समय ब्राह्मण अग्गिकभारद्वाज के घर में आहुति के लिए अग्नि प्रज्वलित थी। तब भगवान (भगवान बुद्ध) सावत्थी में घर-घर भिक्षा मांगते हुए ब्राह्मण अग्गिकभारद्वाज के घर गए। ब्राह्मण अग्गिकभारद्वाज ने दूर से भगवान (भगवान बुद्ध) को आते देखा और उन्हें देखकर कहा: 'हे मुंडा सिर वाले, वहीं ठहरो; हे समनक (अर्थात दुखी समनक) वहीं ठहरो; हे वासलक (अर्थात बहिष्कृत) वहीं ठहरो!'

यह सुनकर भगवान बुद्ध ने ब्राह्मण अग्गिकभरद्वाज से पूछा, 'हे ब्राह्मण, क्या तुम जानते हो कि कोई बहिष्कृत होता है या उसे बहिष्कृत करने वाली बातें?'

'हे पूज्य गौतम बुद्ध, मैं नहीं जानता कि कोई बहिष्कृत होता है या उसे बहिष्कृत करने वाली बातें; कृपया मुझे यह अच्छी तरह से सिखाएं ताकि मैं बहिष्कृत और उसे बहिष्कृत करने वाली बातें जान सकूं।'

'तो सुनो, हे ब्राह्मण, ध्यान से सुनो, मैं तुम्हें बताऊंगा।'

'हे पूज्यवर,' ब्राह्मण अग्गिकभारद्वाज ने भगवान बुद्ध को उत्तर दिया।

तब भगवान बुद्ध ने यह कहा:

1. 'जो व्यक्ति क्रोधित और द्वेषी है, जो दुष्ट और पाखंडी है, जिसने गलत विचार अपनाए हैं, जो कपटी है, उसे बहिष्कृत समझो। (116)

2. 'इस संसार में जो कोई भी जीवों को हानि पहुँचाता है, चाहे वह एक जन्म का हो या द्विजन्म का, और जिसमें जीवों के प्रति करुणा नहीं है, उसे बहिष्कृत समझो। (117)

3. 'जो कोई भी गाँवों और नगरों को नष्ट करता है या उन पर घेरा डालता है, और शत्रु के रूप में जाना जाता है, उसे बहिष्कृत समझो। (118)

4. 'चाहे गाँव में हो या जंगल में, जो कोई भी चोरी करके दूसरों की संपत्ति को हड़प लेता है, जो उसे दी नहीं गई है, उसे बहिष्कृत समझो। (119)

5. 'जो कोई भी वास्तव में किसी जो व्यक्ति कर्ज में डूबा हुआ हो और बुलाए जाने पर यह कहकर भाग जाए कि "मेरा आप पर कोई कर्ज नहीं है", उसे बहिष्कृत समझो। (120)

6. जो कोई तुच्छ वस्तु के लालच में सड़क पर चलते हुए किसी व्यक्ति को मार डाले और वह वस्तु ले ले, उसे बहिष्कृत समझो। (121)

7. जो व्यक्ति अपने लिए, दूसरों के लिए या धन के लालच में गवाह के रूप में पूछे जाने पर झूठ बोलता है, उसे बहिष्कृत समझो। (122)

8. जो कोई रिश्तेदारों या दोस्तों की पत्नियों के साथ जबरदस्ती या उनकी सहमति से देखा जाए, उसे बहिष्कृत समझो। (123)

9. जो कोई धनी होते हुए भी माता-पिता की वृद्धावस्था में उनका सहारा नहीं बनता, उसे बहिष्कृत समझो। (124)

10. जो कोई माता-पिता, भाई, बहन या सास को मारता-पीटता हो या शब्दों से उन्हें परेशान करता हो,उसे बहिष्कृत के रूप में जाना जाए। (125)

11. जो कोई भी, जब उससे अच्छे के बारे में पूछा जाए, तो वह बुरे की शिक्षा दे और (किसी से) कुछ छिपाकर सलाह दे, तो उसे बहिष्कृत समझो। (126)

12. जो कोई भी बुरा कर्म करके यह आशा करे (कहते हुए) कि "कोई मुझे ऐसा करने वाला न समझे", तो उसे बहिष्कृत समझो। (127)

13. जो कोई भी किसी दूसरे के घर जाकर उसके अच्छे भोजन का सेवन करे, और उसके आने पर उसका आदर न करे, तो उसे बहिष्कृत समझो। (128)

14. जो कोई भी झूठ बोलकर किसी ब्राह्मण, समन (सन्यासी) या किसी अन्य भिक्षु (तपस्वी) को धोखा दे, तो उसे बहिष्कृत समझो। (129)

15. जो कोई भोजन के समय ब्राह्मण या समण को शब्दों से परेशान करे और उसे कुछ न दे, उसे बहिष्कृत समझो। (130)

16. जो कोई इस संसार में अज्ञान में डूबा हुआ तुच्छ वस्तु की लालसा करते हुए अवास्तविक बातों की भविष्यवाणी करे, उसे बहिष्कृत समझो। (131)

17. जो कोई अहंकार से नीच होकर स्वयं को बड़ा समझे और दूसरों को नीचा समझे, उसे बहिष्कृत समझो। (132)

18. जो कोई उकसाने वाला, लालची, पापी इच्छाओं वाला, ईर्ष्यालु, दुष्ट, निर्लज्ज और पाप से निर्भय हो, उसे बहिष्कृत समझो। (133)

19. जो कोई भी बुद्ध या उनके शिष्य की निंदा करता है, चाहे वह परिभज (पथरीब) हो या गृहस्थ (गहत्था), उसे बहिष्कृत समझो। (134)

20. जो कोई भी संत न होते हुए संत होने का ढोंग करता है, (और) ब्रह्माओं (प्रधान देवदूतों) के लोक सहित सभी लोकों में चोर है, वह वास्तव में सबसे नीच बहिष्कृत है; ये सभी जिनका मैंने तुम्हारे सामने वर्णन किया है, वास्तव में बहिष्कृत कहलाते हैं। (135)

21. जन्म से कोई बहिष्कृत नहीं होता, जन्म से कोई ब्राह्मण नहीं होता; कर्मों से कोई बहिष्कृत होता है, कर्मों से कोई ब्राह्मण होता है। (136)

22. इसे इस प्रकार समझो जैसे मेरा यह उदाहरण (दिखाता है): सोपक जाति का एक चांडाल (बहिष्कृत) था, जो मतंगा के नाम से प्रसिद्ध था। (137)

23. 'इस मतंग ने सर्वोच्च प्रसिद्धि प्राप्त की, जो प्राप्त करना अत्यंत कठिन था, और अनेक क्षत्रिय और ब्राह्मण उनकी सेवा में आ गए। (138)

24. 'देवताओं के वाहन पर सवार होकर, (और) धूल रहित उच्च मार्ग में प्रवेश करके, इंद्रिय सुखों का त्याग करके, वे ब्रह्म (प्रधान) लोक में चले गए। (139)

25. 'उनका (जातिहीन) जन्म उन्हें ब्रह्म लोक में पुनर्जन्म लेने से नहीं रोक सका; (दूसरी ओर) ऐसे ब्राह्मण हैं, जो गुरुओं के परिवार में जन्मे हैं, वेदों के भजनों के मित्र हैं, (140)

26. 'परन्तु वे निरंतर पाप कर्मों में लिप्त रहते हैं, और इस लोक में निंदनीय हैं, जबकि आने वाले (लोक) में नरक (उनकी प्रतीक्षा कर रहा है); जन्म (जाति) उन्हें न तो नरक से बचा सकता है और न ही निंदनीयता से। (141)

27. '(अतः) जन्म (जाति) से कोई बहिष्कृत नहीं होता, जन्म (जाति) से कोई ब्राह्मण नहीं होता, कर्मों से कोई बहिष्कृत होता है, कर्मों से कोई ब्राह्मण होता है।' (142)

यह कहकर ब्राह्मण अग्गिकभरद्वाज ने भगवान (भगवान बुद्ध) को इस प्रकार उत्तर दिया:

'हे पूज्य गौतम बुद्ध! हे पूज्य गौतम बुद्ध! हे पूज्य गौतम बुद्ध! जैसे कोई गिरी हुई वस्तु को उठाता है, या छिपी हुई वस्तु को प्रकट करता है, या भटके हुए को मार्ग दिखाता है, या अंधकार में दीपक जलाता है ताकि आँखें रखने वाले वस्तुएँ देख सकें, वैसे ही पूज्य गौतम बुद्ध ने अनेक तरीकों से धम्म का स्पष्टीकरण किया है; मैं पूज्य गौतम बुद्ध, धम्म और भिक्षु सभा की शरण लेता हूँ।' आदरणीय गौतम (बुद्ध) मुझे उपासक (अनुयायी) के रूप में स्वीकार करें, जिसने जीवन भर उनकी शरण ली है।

वासलसत्त समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
7. वासलसुत्तं
एवं मे सुतं — एकं समयं भगव सावत्थियं विहारति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स अरामे। अथ खो भगव पुब्बनहासमयं निवसेत्व पट्टशिवरामादय सवत्थिम पिंडाय पविसी। तेन खो पाना समयेन अग्गिकभारद्वाजस ब्राह्मणस्स निवेशे अग्गि पज्जलितो होति आहुति पग्गहिता। अथ खो भगव सवत्थियं सपादानं पिण्डया कारमाणो येन अग्गिकभारद्वजस्स ब्राह्मणस्स निवेशनं तेनुपशंकामि।
अद्दसा खो अग्गिकभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं दुरतोवा आगच्छन्तं। दिस्वाना भगवन्तं एतदावोचा — "तत्रेवा [अत्रेवा (स्या. का.)], मुंडक; तत्रेव, समानक; तत्रेव, वसलका तिथहि'ति।
एवं वुट्टे, भगव अग्गिकभारद्वाजं ब्राह्मणं एतदावोचा - "जानासी पाना त्वं, ब्राह्मण, वसलं वा वसलकारणे वा धम्मे'ति? "न ख्वाहं, भो गोतम, जानामि वसलं व वसलकारणे व धम्मे; साधु मे भावं गोतमो तथा धम्मं देसेतु, यथाहं जनेयं वसलं वा वसलकरणे वा धम्मे'ति।
"तेन हि, ब्राह्मण, सुनाही, साधुकं मनसि करोहि; भसिस्सामि'ति. "एवं, भो'ति खो अग्गिकभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवतो पचासोसि।' भगव एतादावोका -
116.
"कोधनो उपनाहि च, पापमक्खि च यो नरो;
विपन्नदिति मायावी, तं जनना वसलो इति।
117.
"एकाजं वा द्विजं [दिजं (पी.)] वापी, योधा पणं विहिंसति;
यस्सा पणे दया नत्थि, तं जनना वसलो इति।
118.
"यो हन्ति परिरुन्धति [उपरुन्धेति (स्या.), उपारुन्धति (का.)], गमानी निगमानि च;
निग्गाहाको [निग्गाताको (?)] समानातो, तां जनना वासलो इति।
119.
"गमे वा यदि वा रानने, यं परेसं ममयितम्;
थेय्य आदिन्नमदेति [अदिन्नं अदियाति (सि. पि.)], तं जनना वसालो इति।
120.
"यो है इनामदाय, कुज्जमानो [भुंजमानो (?)] पलायति;
न हि ते इनामत्थिति, तं जनना वासलो इति।
121.
"यो वे किञ्चिक्खाकम्यता, पंथास्मिं वजन्तं जनं;
हन्त्वा किञ्चिक्खमादेति, तं जनना वासलो इति।
122.
"अत्ताहेतु परहेतु, धनहेतु च [धनहेतु वा (का.)] यो नरो;

सक्खिपुत्थो मुसा ब्रूति, तं जनना वासलो इति।
123.
"यो नातिनां सखिनं वा, दारेसु पतिदिस्साति;
सहसा [सहसा (सि. स्या.)] संपियेण वा, तं जनना वासलो इति।
124.
"यो मातरं पितरं वा, जिनकं गतयोब्बनं;
पाहु संतो न भारती, तं ज्ञान वसलो इति।
125.
"यो मातरं पितरं वा, भतारं भगिनीं ससुम्;
हन्ति रोसेति वचन, तं जनना वासलो इति।
126.
"यो अत्थं पुच्चितो संतो, अनत्थमनुससति;
पतिच्चन्नेन मन्तेति, तं जनना वासलो इति।
127.
"यो कट्वा पापकं कम्मं, मा मां जान्नति इच्छाति [विभा। 894 पासिटब्बां];
यो पतिच्चन्नकम्मन्तो, तं जनना वसलो इति।
128.
"यो वे परकुलं गन्त्वा, भुत्वन [सुत्वा च (स्या. का.)] सुचिभोजनं;
अगतं नप्पतिपूजेति, तं जनना वासलो इति।
129.
"यो ब्राह्मणं समानं वा, अनन्यं वापि वाणीबकं;
मुसावादेन वेन्सेति, तं जनना वासलो इति।
130.
"यो ब्राह्मणं समानं वा, भट्टकाले उपथिते;
रोसेति वाचा न च देति, तं जनना वासलो इति।
131.
"असतं योधा पब्रुति, मोहेन पालीगुंथितो;
किंचिक्खां निजिगिसानो [निजिगिसानो (सि. स्या. कां. पि.)], तं जनना वासलो इति।
132.
"यो चत्तनं समुक्कंसे, पारे च मावजानाति [मावजानाति (सि. स्या. पि.)];
निहिनो सेना मानेना, तं जनना वासलो इति।
133.
"रोसाको कादारियो च, पपीचो मछरी साथो;
अहिरिको अनोत्प्पि, तं जनना वसालो इति।
134.
"यो बुद्धं परिभासति, अथ वा तस्स सावकं;
परिब्बाजं [परिब्बाजं (का.), परिब्बाजं (स्या. कां.)] गहठहं वा, तं जनना वासलो इति।
135.
"यो वे अनाराहं [अनारहा (सि. पि.)] संतो, अरहं पतिजानाति [पतिजानाति (सि. स्या. पि.)];
कोरो सब्रह्मके लोके, एसो खो वासलाधामो।
136.
"एते खो वसाला वुत्ता, मया येते पाकसिता;
न जच्चा वसालो होति, न जच्चा होती ब्राह्मणो;
कम्मुना [कम्मना (सी.पी.)] वासलो होति, कम्मुना होति ब्राह्मणो।
137.
"तदमिनापि जानथ, यथामेदं [यथापेदं (का.)] निदस्सानं;
चांडालपुत्तो सोपाको [सपाको (?)], माटांगो इति विसुतो।
138.

"सो यसं परमं पत्तो [सो यसप्पारामप्पत्तो (स्या. का.)], मतांगो यां सुदुल्लाभां;
आगच्छुं तस्सुपत्थानं, खट्टिय ब्राह्मण बाहु।
139.
"देवयानं अभिरुयः, विराजं सो महापथं;
कामरागम विराजेत्व, ब्रह्मलोकुपगो अहु;
न नं जाति निवारेसि, ब्रह्मलोकुपपत्तिया।
140.
"अज्झायककुले जाता, ब्राह्मण मंतबंधवा;
ते च पापेसु कम्मेसु, अभिन्हमुपादिसरे।
141.
"दिट्ठेव धम्मे गरैहा, संपारये च दुग्गति;
न ने जाति निवारेति, दुग्गट्या [दुग्गाचा (सि. स्या. कं. पि.)] गरहया वा.
142.
"न जच्चा वसालो होति, न जच्चा होती ब्राह्मणो;
कम्मुना वसालो होति, कम्मुना होति ब्राह्मणोऽति।
एवं वुट्टे, अग्गिकभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदावोचा - " अभिकान्तं, भो गोतम...पे... उपासकं मन भावं गोतमो धरेतु अजजतग्गे पाणुपेटं सरणं गता"न्ति.
वसलसुत्तं सत्तमं निहितं।

पाली-देवनागरी
7. वसलसुत्तं
एवं मे सुतं — एकं समयं भगव सावथ्थं विहारी जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो भगव पुब्नहसमयं निवासेत्वा पत्तचीवर्मादाय सवत्थिं पिण्डाय पविसि। तेन खो पन समयेन अग्गिकभारद्वाजस्स ब्राह्मणस्स निवेसने अग्गी पज्जलितो होति आहुति पग्गहिता। अथ खो भगव सावथ्थं सपादानं पिंडाय चरमाणो येन अग्गिकभारद्वाज्स्स ब्राह्मणस्स निवेसनं तेनुपसङकमि।
अद्दसा खो अग्गिकभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं दूरतोव आगच्छन्तं। दिस्वां भगवंतं एतदवोच — "तत्रेव [अत्रेव (स्या० क०)], मुंडक; तत्रेव, समानक; तत्रेव, वासलक तित्थाही"ति।
एवं वुत्ते, भगवा अग्गिकभारद्वाजं ब्राह्मणं एतदवोच - "जानासि पन त्वं, ब्राह्मण, वसलं वा वसलकरणे वा धम्मे"ति? "न ख्वाहं, भो गोतम, जानामि वसलं वा वसलकरणे वा धम्मे; साधु मे भवन गोतमो तथा धम्मं देसेतु, यथाहं जानेयं वसलं वा वसलकरणे वा धम्मे"ति। "तेन हि, ब्राह्मण, सुनहि, साधुकं मनसि करोहि; भसिस्सामि"ति। "एवं, भो"ति खो अग्गिकभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवतो पचदस्सोसि। भगवा एतदवोच
-
116.
"कोधनो उपनाहि च, पापमक्खी च यो नरो।
विप संज्ञादिट्ठि मायावी, तं ज्ञान वासलो इति॥
11.
"एकजं वा द्विजं [दिजं (पी०)] वापि, योध पानं विहिंसति।
यस् पणे दया नत्थि, तं ज्ञान वसलो इति॥
111.
"यो हन्ति परिरुन्धति [उपरुन्धेति (स्या०), उपरुन्धति (क०)], गमनि निगमाणि च।
निग्गाहको [निघघातको (?)] समञ्जनातो, तं ज्ञान वासलो इति॥
1.
"गेमे वा यदि वा रञ्जे, यं परेसं ममायितं।
थेय अदि संज्ञामादेति [अदि नासिकं आदियति (सी० पी०)], तं ज्ञान वासलो इति॥
.
"यो हवे इनामदाय, चुज्जमानो [भुंजजमानो (?)] पलयति।
न हि ते इनामथति, तं ज्ञान वासलो इति॥
121.
"यो वे किञ्चचिक्ककम्यता, पंथास्मिं वजनं जनं।'

हन्त्वा किञ्चिक्खमादेति, तं ज्ञान वासलो इति॥
122.
"अत्तहेतु परहेतु, धनहेतु च [धनहेतु वा (क॰)] यो नरो।
सक्खिपुत्थो मुसा ब्रूति, तं ज्ञान वासलो इति॥
12
"यो नातिनं सखिनं वा, दारेसु पतिदिसस्ति।
साहसा [सहसा (सी॰ स्या॰)] संपियेन वा, तं जञ्जा वासलो इति॥
124.
"यो मातरं पितरं वा, जिनकं गतयोब्बनं।
पहु सन्तो न भारती, तं ज्ञान वासलो इति॥
12.
"यो मातरं पितरं वा, भतरं भगिनं ससुं।
हन्ति रोसेति वाचाय, तं ज्ञान वासलो इति॥
.
"यो अथं पुच्छितो सन्तो, अनन्तमनुससति।
पतीच्छ साइनेन मन्तेति, तं ज्ञान वासलो इति॥
.
"यो कत्वा पापकं कम्मं, मा मन ज्ञानति इच्छति [विभ॰ 894 पास्सितब्बं]।
यो पतिच्छ संज्ञाकम्मन्तो, तं ज्ञान वासलो इति॥
.
"यो वे पर्कुलं गन्त्वा, भुत्वान [सुत्वा च (स्या॰ क॰)] सुचिभोजोनं।
आगतं नप्पतिपूजेति, तं ज्ञान वासलो इति॥
.
"यो ब्राह्मणं समनं वा, अञ्जनं वापि विनिब्बकं।
मुसावादेन वञ्चेति, तं ज्ञान वासलो इति॥
30.
"यो ब्राह्मणं समानं वा, भट्टकाले उपत्थिते।
रोसेति वाचा न च देति, तं ज्ञान वासलो इति॥
111.
"असतं योध पब्रुति, मोहेण पलिगुण्थितो।
किञ्चिक्खं निजिगिसाणो [निजिगिंसाणो (सी॰ स्या॰ कं॰ पी॰)], तं जञ्जञा वासलो इति॥
फरवरी.
"यो चत्तानं समुक्रांसे, परे च मवजानाति [मवजानति (सी॰ स्या॰ पी॰)]।
निहिनो सेन मानेन, तं ज्ञान वासलो इति॥
11.
"रोसको कादारियो च, पापीच्छोस्माति सातो।"
अहिरिको अनोत्तप्पि, तं ज्ञान वासलो इति॥
134.
"यो बुद्धं परिभासति, अथ वा तस्स सावकं।
परिब्बजं [परिब्बजं (क॰), परिब्बजकं (स्या॰ कं॰)] गहत्थं वा, तं जञ्जना वासलो इति॥
1 चौथाई.
"यो वे अनरहं [अनरहा (सी॰ पी॰)] सन्तो, अरहं पतिजानाति [पतिजानति (सी॰ स्या॰ पी॰)]।
चोरो सब्रह्मके लोके, एसो खो वसलाधमो॥
17 .
"एते खो वसला वुत्ता, माया येते पकासिता।"
न जच्चा वसलो होती, न जच्चा वसलो होती ब्राह्मणो।
कम्मुना [कम्मना (सी॰ पी॰)] वासलो होती है, कम्मुना होती है ब्राह्मणो॥
.

"तदमिनापि जननाथ, यथामेदं [यथापेदं (क०)] निदस्सनं।
चांडालपुत्तो सोपाको [सपाको (?)], माटङ्गो इति विस्सुतो॥
प्रति.
"सो यसं परमं पत्तो [सो यस्प्परमप्पत्तो (स्या० क०)], माङ्गो यं सुदुलभं।
आगच्छुं तस्सुपट्ठानं, खत्तिया ब्राह्मण बहु॥
12वीं शताब्दी.
"देवयानं अभिरुयः, विरजं सो महापथं।
कामरागं विराजेत्वा, ब्रह्मलोलुपगो अहु।
न नं जाति निवारेसि, ब्रह्मलोलुपपत्तिया॥
40.
"अज्झायककुले जात, ब्राह्मण मन्तबन्धवा।"
ते च पापेसु कम्मेसु, अभिन्हमुपदिस्सारे॥
141.
"दिट्ठेव धम्मे गार्यहा, संपराये च दुग्गति।"
न ने जाति निवारेति, दुग्गत्या [दुग्गचा (सी० स्या० कं० पी०)] गृहाय वा॥
142.
"न जच्चाचा वासलो होति, न जच्चाचा होति ब्राह्मणो।"
कम्मुना वासलो होती है, कम्मुना होती है ब्राह्मणो"ति॥
एवं वुत्ते, अग्गिकभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच - "अभिभोकान्तं, भो गोतम...पे....उपासकं मन भवन गोतमो धारेतु अजदजतगे पाणुपेतं शरणं गत"न्ति।
वसलसुत्तं सत्तमं निश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> सुत्तनिपता >> 1.8 मेटासुट्टा
वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

____

पिछला <<<<--->>>> अगला

____

शांत मन और सभी प्राणियों के प्रति सद्भावना प्रशंसनीय है।

____

अंतर्वस्तु

1.8 मेट्टासुट्टा

अनुवाद

1. जो व्यक्ति निर्वाण की शांत अवस्था प्राप्त कर, अच्छे की खोज में निपुण हो, उसे जो भी कार्य करना हो: वह समर्थ, ईमानदार, कर्तव्यनिष्ठ, मृदुभाषी, विनम्र और अभिमानरहित हो। (143)

2. वह संतुष्ट, सहज, कम चिंताओं वाला, बोझ से मुक्त, शांत और बुद्धिमान हो, अभिमानरहित हो, और परिवार में घूमते समय लोभ न दिखाए। (144)

3. वह ऐसा कोई नीच कार्य न करे जिसके लिए बुद्धिमान लोग उसकी निंदा करें; सभी प्राणी सुखी और सुरक्षित रहें, वे प्रसन्न मन के हों। (145)

4. सभी जीव-जंतु, चाहे दुर्बल हों या बलवान, चाहे लंबे हों या बड़े, मध्यम आकार के हों, छोटे हों या बड़े, (146)

5. चाहे दिखाई दें या न दिखाई दें, चाहे दूर रहें या पास, चाहे जन्म लें या पुनर्जन्म की तलाश में हों, सभी प्राणी प्रसन्न मन के हों। (147)

6. कोई किसी को धोखा न दे, किसी भी स्थान पर किसी का तिरस्कार न करे, क्रोध या द्वेष से किसी का हानि न करे। (148)

7. जैसे एक माँ अपने प्राणों की परवाह किए बिना अपने इकलौते बच्चे की रक्षा करती है, वैसे ही प्रत्येक व्यक्ति को सभी प्राणियों के प्रति असीम (मित्रतापूर्ण) मन रखना चाहिए। (149)

8. और उसे समस्त संसार के प्रति सद्भावना, असीम (मित्रतापूर्ण) मन रखना चाहिए, जो ऊपर, नीचे और चारों ओर निर्बाध, घृणा रहित, शत्रुता रहित हो। (150)

9. खड़े होकर, चलते हुए, बैठे हुए या लेटे हुए, जब तक वह जागृत रहे, उसे इस मन में लीन रहना चाहिए; कहते हैं कि जीने का यह तरीका संसार में सर्वश्रेष्ठ है। (151)

10. जो दार्शनिक विचारों को न अपनाकर गुणी है, पूर्ण दृष्टि से संपन्न है, इंद्रिय सुखों के लोभ को वश में करके, वह फिर कभी माँ के गर्भ में नहीं जाएगा। (152)

मेट्टासुट्टा समाप्त हो गया है।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
8. मेट्टासुत्तं
143.
करणीयमत्थकुसलेना, यंता संतं पदं अभिसमेच्च;
सक्को उजू सीए सुहुजू [सुजू (सि.)] सीए, सुवाको कैसा मुदु अनातिमानी।
144.
संतुस्साको सीए सुभारो सीए, अप्पाकिको सीए सल्लाहुकावुट्टी;
शांतिंद्रियो च निपाको च, अप्पागब्बो कुलेसवननुगिद्धो।
145.
न च खुद्माकेरे किञ्चि, येन विन्नु परे उपवदेयुं;
सुखिनो वा खेमिनो होन्तु, सब्बसत्ता [सब्बे सत्ता (सि. स्या.)] भवन्तु सुखितत्ता।
146.
ये केचि पणभूतत्थि, तसा वा थावरा वनवसेसा;
दीघा वा ये वा महंता [महंता (?)], मज्झिमा रस्साका अनुकथुला।
147.
दिट्ठा वा ये वा अदितिथा [अदिट्ठा (?)], ये वा [ये च (सि. स्या. कं. पि.)] दूरे वसंती अविदुरे;
भूत वा संभवेसि वा [भूत वा संभवेसि वा (स्या. कं. पि. का.)], सब्बसत्ता भवन्तु सुखितत्ता।
148.
न पारो परं निकुब्बेथा, नातिमन्नेथा कत्थचि न कांची [नं कांची (सि. पि.), नां किंची (स्या.), न किंची (का.)];
बयारोसाना पतिघासन्ना, नाण्णामन्नस्स दुक्खमिच्छेया।
149.
माता यथा नियं पुत्तमायुसा एकपुत्तमनुरक्खे;
एवमपि सब्बभूतेसु, मनसं भवे अपरिमाणं।
150.
मेत्तञ्च सब्बलोकस्मि, मनसां भवे अपरिमाणं;
उध्दं अधो च तिर्यञ्च, असंबाधं अवेरमासपट्टम्।
151.
तिथं कारं निसिन्नो वा [वा (सि. स्या. कं. पि.)], सयानो यावतस्स वितममिद्धो [विगतमिद्धो (बहुसु)];

एतं सतिं अधिष्ठेय्य, ब्रह्ममेतं विहारमिधमाहु।
152.
दिथिञ्च अनुपगम्मा, सिलवा दस्सानेन सम्पन्नो;
कामेसु विनय [विनेया (सि. स्या. पि.)] गेधं, न हि जतुग्गभसेय पुनरेति।
मेत्तसुत्तं अठहमं निठ्ठितं।

पाली-देवनागरी
8. मेत्तसुत्तं
12
करणीयमत्थकुसलेन, यन्त सन्तं पदं अभिसमेचच।
सचित्रको उजु च सुहुजू [सुजू (सी०)] च, सुवचो चस्स मुदु अनंतिमनी॥
4.
सन्तुस्सको च सुभरो च, अप्पकिच्चो च सल्ल्हुकुवुति।
शांतिन्द्रियो च निपको च, अप्पगभो कुलेसवन्नुगिद्धो॥
15.
न च खुद्दमाचेरे किञ्चि, येन विष्णु परे उपदेयुं।
सुखिनो व ख़ेमिनो होंतु, सब्बसत्ता [सब्बे सत्ता (सी० स्या०)] भवन्तु सुखितत्ता॥

.
ये केचि पानभूत्ति, तसा वा थावरा वनवसेसा।
दीघा वा ये व महंता [महंत (?)], मज्झिमा रस्साका अन्टिकथुला॥
144.
दिट्ठा वा ये वा आदित्था [अदिट्ठ (?)], ये व [ये च (सी० स्या० कं० पी०)] दूरे वसन्ति अविदूरे।
भूत वा संभावितेसी वा [भूत वा संभावितेसी वा (स्या० कं० पी० क०)], सब्बसत्ता भवन्तु सुखितत्॥

.
न परो परं निकुब्बेथ, नातिमञ्जेथ कत्थचि न कञ्चि [नं कञ्चचि (सी० पी०), नं किञ्चचि (स्या०), न किञ्चचि (क०)]।
ब्यारोस्ना पतिघसञ्चा, नञ्जमञ्चस्स दुक्खमिच्छेय॥

.
माता यथा नियं पुत्तमायुसा एकपुत्तमनुरक्खे।
एवमपि सब्बुतेसु, मनसं भावये अपरिमणं॥

.
मेत्तञ्च सब्बलोकस्मि, मनसं भावये अपरिमणं।
उद्धं अधो च तिर्यञ्च, असम्बधं अवेरमस्पत्तं॥
151.
थत्थं चरं निसि स्यानो व [वा (सी० स्या० कं० पी०)], सयानो यावतस्स विटमिद्धो [विगतमिद्धो (बहुसु ति)]।
एतं सतिं अधित्थेय, ब्रह्ममेतं विहारमिधमाहु॥
152.
दिट्ठिञ्च अनुपगम्म, सीलवा दस्सेनें संप संज्ञाओ।
कामेसु विनय [विनेय (सी० स्या० पी०)] गेधं, न हि जातुग्गभसेय पुनरेतीति॥
मेत्तसुत्तं अट्ठमं निश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> सुत्तानिपात >> 1.9 हेमवतसुत्त

वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<-->>>> अगला

दो यक्षों (मानवों के विपरीत, आत्माओं) के बीच बुद्ध के गुणों पर संवाद। वे बुद्ध के पास जाते हैं और अपने प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने के बाद, दस सौ यक्षों के साथ बुद्ध के अनुयायी बन जाते हैं।

अंतर्वस्तु

1.9 हेमवतसुत्त

अनुवाद

1. 'आज पंद्रहवाँ दिन है, उपवास का दिन है; एक सुहावनी रात आ गई है,' - यक्ष सतागिरा ने कहा, 'चलो हम (प्रसिद्ध) गुरु गौतम (बुद्ध) के दर्शन करने चलें।' (153)

2. 'क्या ऐसे व्यक्ति का मन सभी प्राणियों के प्रति अच्छा है?' - यक्ष हेमवत ने कहा, 'क्या उसके विचार वांछित और अनचाही बातों के प्रति संयमित हैं?' (154)

3. 'ऐसे व्यक्ति का मन सभी प्राणियों के प्रति अच्छा है,' - यक्ष सतागिरा ने कहा, 'और उसके विचार वांछित और अनचाही बातों के प्रति संयमित हैं।' (155)

4. 'क्या वह वह नहीं लेता जो उसे (नहीं दिया गया है)?' - यक्ष हेमवत ने कहा, 'क्या वह प्राणियों के प्रति (अपने व्यवहार में) आत्म-संयमित है? क्या वह आलस्य से दूर है?' क्या वह ध्यान नहीं छोड़ता?' (156)

5. 'वह वह नहीं लेता जो उसे दिया नहीं गया है,' - यक्ष सतागिरा ने कहा, - 'और वह जीवों के प्रति संयमित (व्यवहार में) है, और वह लापरवाही से दूर है; बुद्ध ध्यान नहीं छोड़ते।' (157)

6. 'क्या वह झूठ नहीं बोलता?' - यक्ष हेमवत ने कहा, - 'क्या वह कठोर भाषी नहीं है? क्या वह निंदा नहीं करता? क्या वह निरर्थक बातें नहीं करता?' (158)

7. 'वह झूठ नहीं बोलता,' - यक्ष सतागिरा ने कहा, - 'वह कठोर भाषी नहीं है, वह निंदा नहीं करता, वह विवेक से अच्छी बातें बोलता है।' (159)

8. 'क्या वह इंद्रिय सुखों में लिप्त नहीं है?' - यक्ष हेमवत ने कहा, - 'क्या उसका मन अविचलित है?' क्या उसने मूर्खता पर विजय प्राप्त कर ली है? क्या वह सभी धर्मों को स्पष्ट रूप से देख पाता है?' (160)

9. 'वह इंद्रिय सुखों में लिप्त नहीं है,' - यक्ष सतागिरा ने कहा, - 'और उसका मन अविचलित है; उसने सभी मूर्खताओं पर विजय प्राप्त कर ली है; बुद्ध सभी चीजों को स्पष्ट रूप से देखते हैं।' (161)

10. 'क्या वह ज्ञान से संपन्न है?' - यक्ष हेमावता ने कहा, - 'क्या उसका आचरण शुद्ध है? क्या उसकी वासनाएँ नष्ट हो गई हैं? क्या उसके लिए कोई नया जन्म नहीं है?' (162)

11. 'वह ज्ञान से संपन्न है,' - यक्ष सतागिरा ने कहा, - 'और उसका आचरण शुद्ध है; उसकी सभी वासनाएँ नष्ट हो गई हैं; उसके लिए कोई नया जन्म नहीं है।' (163)

12. 'मुनि (संत) का मन कर्म और वचन में सिद्ध है; ज्ञान और आचरण से परिपूर्ण गौतम (बुद्ध), आइए हम धर्म का पालन करने वाले बुद्ध के दर्शन करें। (164-166)

13. 'आइए, हम गौतम (बुद्ध) के दर्शन करें, जिनके पैर हिरण के समान हैं, जो दुबले-पतले हैं, जो बुद्धिमान हैं, अल्प भोजन पर जीवन व्यतीत करते हैं, लोभ रहित हैं, और वन में ध्यान कर रहे मुनि (संत) हैं। (167)

14. 'जो अकेले घूमने वालों में सिंह के समान हैं और इंद्रिय सुखों की तलाश नहीं करते, उनके पास जाकर, आइए हम मृत्यु के फंदों से मुक्ति के उपाय पूछें। (168)

15. आइए हम गौतम (बुद्ध) से, जो उपदेशक और व्याख्याता हैं, पूछें।जो सभी चीजों में प्रवेश कर चुके हैं, बुद्ध जिन्होंने घृणा और भय पर विजय प्राप्त कर ली है।' (169)

16. 'संसार की उत्पत्ति किससे हुई है?' - यक्ष हेमवत ने कहा, - 'संसार का किससे घनिष्ठ संबंध है? संसार किस चीज से पीड़ित है, किस चीज को पाने की लालसा के कारण?' (170)

17. 'हे हेमवत, संसार की उत्पत्ति छह से हुई है,' - भगवान (बुद्ध) ने कहा, - 'छह से इसका घनिष्ठ संबंध है, छह चीजों को पाने की लालसा के कारण संसार छह चीजों से पीड़ित है।' (171)

18. हेमवत ने कहा: 'वह कौन सी लालसा है जिससे संसार पीड़ित है? मोक्ष के विषय में पूछे जाने पर, मुझे बताइए कि कैसे पीड़ा से मुक्ति मिलती है?' (172)

19. भगवान (बुद्ध) ने कहा: 'संसार में पांच इंद्रिय सुख हैं, और मन का सुख छठा है; इन सुखों की इच्छा का त्याग करने से व्यक्ति पीड़ा से मुक्त हो जाता है।' (173)

20. 'संसार के इस उद्धार के बारे में तुम्हें सत्य बताया गया है, मैं तुम्हें यही बताता हूँ: इस प्रकार व्यक्ति दुख से मुक्त हो जाता है।' (174)

21. हेमवत ने कहा: 'इस संसार में कौन (अस्तित्व की) धारा को पार करता है? इस संसार में कौन सागर को पार करता है? कौन उस गहरे सागर में नहीं डूबता जहाँ न कोई सहारा है और न कोई आधार?' (175)

22. भगवान (बुद्ध) ने कहा: 'जो सदा सद्गुणों से परिपूर्ण है, प्रत्यक्ष ज्ञान से युक्त है, समाधि में शांत है, आत्ममग्न है, अंतर्मन करता है और विचारशील है, जो अच्छी तरह ध्यान करता है, वह उस कठिन धारा को पार कर लेता है जिसे पार करना कठिन है।' (176)

23. 'जो इंद्रिय सुखों से विरक्त है, जिसने सभी बंधनों को पार कर लिया है और आनंद को नष्ट कर दिया है, ऐसा व्यक्ति गहरे सागर में नहीं डूबता।' (177)

24. हेमावता ने कहा: 'जो गहन पन्ना (प्रत्यक्ष अनुभवात्मक समझ) से संपन्न है, सूक्ष्म सत्य को देखने में कुशल है, निर्धन है, इंद्रिय सुखों से आसक्त नहीं है, उसे देखो जो हर तरह से मुक्त है, महान ईसि (ऋषि, संत), दिव्य मार्ग पर चल रहा है। (178)

25. 'जिसका महान नाम है, जो सूक्ष्म सत्य को देखने में कुशल है, जो पन्ना (प्रत्यक्ष समझ) प्रदान करता है; और इंद्रिय सुखों के धाम से आसक्त नहीं है, उसे देखो, सर्वज्ञ, बुद्धिमान, महान ईसि (ऋषि, संत), श्रेष्ठ मार्ग पर चल रहा है। (179)

26. 'आज हमें वास्तव में एक अच्छा दृश्य दिखाई दिया है, एक शुभ सूर्योदय, एक सुंदर उदय, (क्योंकि) हमने पूर्णतः प्रबुद्ध (संबुद्धम) को देखा है, जिसने नदी पार कर ली है, और वासना से मुक्त है। (180)

27. 'ये दस सौ यक्ष, जो अलौकिक शक्ति और प्रसिद्धि से परिपूर्ण हैं, वे सब आपकी शरण में आते हैं; आप हमारे अतुलनीय गुरु हैं। (181)

28. 'हम गाँव-गाँव, पर्वत-पर्वत घूमेंगे, पूर्णतः प्रबुद्ध और धम्म की पूर्णता की उपासना करेंगे।' (182)

हेमवतसुत्त समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन

9. हेमवतसुत्तं
153.
"अज्ज पन्नरसो उपोसाथो, (इति सतागिरो यक्खो)
डिब्बा [दिब्या (सि. स्या. कं. पि.)] रत्ती उपथिता;
अनोनामां सत्थारं, हांदा पासाम गोतमं"।
154.
"काच्चि मनो सुपाणिहितो, (इति हेमवतो यक्खो)
Sabbabhūtesu tādino;
Kacci iṭṭhe aniṭṭhe ca, saṅkappassa vasīkatā".
155.
"मनो कसा सुपनिहितो, (इति सतागिरो यक्खो)
Sabbabhūtesu tādino;
अथो इत्थे अनित्थे च, संकप्पास्सा वसीकाता"।
156.
"काच्चि अदिन्नं नादियाति, (इति हेमवतो यक्खो)
Kacci pāṇesu saññato;
कच्चि अरा पमादम्हा, कच्चि झाणं न रिंचति"।
157.
"ना सो आदिन्नं अदियाति, (इति सतागिरो यक्खो)
Atho pāṇesu saññato;
अथो अरा पमादम्हा, बुद्धो झाणं न रिंचति"।
158.
"काच्चि मुसा न भानति, (इति हेमवतो यक्खो)
Kacci na khīṇabyappatho;
कच्चि वेभूतियं नाहा, कच्चि सम्फां न भासति"।
159.
"मूसा च सो न भानति, (इति सतागिरो यक्खो)
Atho na khīṇabyappatho;
अथो वेभूतियं नाहा, मंता अत्थं च [अत्थं सो (सि. पि. का.)] भासति"।
160.
"काच्चि न राजजति कामेसु, (इति हेमवतो यक्खो)
Kacci cittaṃ anāvilaṃ;
कच्चि मोहं अतिक्कनतो, कच्चि धम्मेसु चक्खुमा"।
161.
"न सो रजजति कामेसु, (इति सतागिरो यक्खो)
Atho cittaṃ anāvilaṃ;
सब्बमोहं अतिक्कनतो, बुद्धो धम्मेसु चक्खुमा"।
162.
"काच्चि विजयाय सम्पन्नो, (इति हेमावतो यक्खो)
Kacci saṃsuddhacārano;
कच्चिस्सा आसवा खिना, कच्चि नत्थि पुनभभावो"।
163.
"विज्जाया सेवा सम्पन्नो, (इति सतागिरो यक्खो)
Atho saṃsuddhacārano;
सब्बस्स असव खिना, नत्थि तस्स पुनब्भावो"।
164.
"संपन्नं मुनिनो चित्तं, कम्मुना ब्याप्पथेना च;
विज्जाचरणसंपन्नं, धम्मतो नं पसंसति"।

165.
"संपन्नं मुनिनो चित्तं, कम्मुना ब्याप्पथेना च;
विज्जाचरणसंपन्नं, धम्मतो अनुमोदसि"।
166.
"संपन्नं मुनिनो चित्तं, कम्मुना ब्याप्पथेना च;
विज्जाचरणसंपन्नं, हांदा पासाम गोतमम्।
167.
"एनिजांगघं किसान वीरं [धीरं (स्या.)], अप्पाहारं अलोलुपं;
मुनिं वनस्मिं झायंतं, एहि पासम गोतमं।
168.
"सिहंवेकाचरं नागां, कामेसु अनापक्खिनं;
उपासंकम्मा पुच्चम, मक्कुपासप्पामोकनम्।
169.
"अक्खतरं पवत्तरं, सब्बधम्मना परागुम्;
बुद्धं वेरभयतीतं, मयां पुच्छम गोतमं"।
170.
" किस्मत लोको समुप्पन्नो, (इति हेमवतो यक्खो)
किस्मत कुब्बति संथावं [संधवं (का.)];
किस्सा लोको उपादेय, किस्मत लोको विहानति"।
171.
"चासु [चस्सु (सी.पी.)] लोको समुप्पन्नो, (हेमवताति भगवान)
Chasu kubbati santhavṃ;
चन्नमेव उपादाय, चासु लोको विहानति"।
172.
"कतमं तं उपादानं, यत्थ लोको विहानति;
निय्यनं पुच्चितो ब्रुहि, कथं दुक्खा पमुक्कति" [पमुन्चति (स्या.)]।
173.
"पंच कामगुण लोके, मनोचथा पवेदिता;
एत्थ चंदं विराजेत्वा, एवं दुक्खा पमुक्कति।
174.
"एतं लोकस्स नियमं, अक्खातां वो यथाथथं;
एतं वो अहमक्खामि, एवं दुक्खा पमुक्कति"।
175.
"को सुधा तरति ओघं, कोधा तरति अण्वं;
अप्पतिथे अनालंबे, को गंभीरे न सीदति"।
176.
"सब्बदा सिलसम्पन्नो, पन्नवा सुसामहितो;
अज्झट्टसिंति [अज्झत्साणि (स्या. कं. का.)] सतीमा, ओघं तरति दुत्तरं।
177.
"विरातो कामसंन्याय, सब्बासंयोजनातिगो;
नन्दिभवपरिक्खिनो, सो गम्भीरे न सीदति।"
178.
"गब्भिरापनं निपुनत्थदस्सीं, अकिंचनं कामभवे असत्तं;
तं पषथ सब्बाधि विप्पमुत्तं, दिब्बे पथे काममानं महेसिं।
179.
"अनोमनं निपुनत्थदस्सीं, पन्नदादं कामलय असत्तं;
तं पासथ सब्बविदुं सुमेधं, अरिये पथे काममानं महेसिं।
180.

"सुदिट्ठं वात नो अज, सुप्पभतां सुहुट्ठितं;
यं अद्दसाम संबुद्धं, ओघातिनमनासावं।
181.
"इमे दाससता यक्खा, इधिमंतो यस्स्सिनो;
सब्बे तं शरणं यंति, त्वं नो सत्था अनुत्तरो।
182.
"ते मयां विचारिस्साम, गमा गमं नागा नागां;
नमास्समना सम्बुद्धं, धम्मस्सा च सुधम्मताऽन्ति।
हेमवतसुत्तं नवमं नियतं।

पाली-देवनागरी
9. हेमवत्सुत्तं
153.
"अज्जज प सान्यारो उपोस्थो, (इति सतागिरो यक्खो)
डिब्बा [दिब्या (सी० स्या० कं० पी०)] रत्ती उपट्ठिता।
अनोमनामं सततं, हन्द पस्साम गोतमं"॥
154.
"कच्चि मनो सुपनिहितो, (इति हेमवतो यक्खो)
सब्बभूतेसु ताड़िनो।
कच्चच्चि इत्थे अनित्थे च, सङ्क्कप्पस्स वसीकता"॥
155.
"मनो चस्स सुपनिहितो, (इति सतागिरो यक्खो)
सब्बभूतेसु ताड़िनो।
एथो इत्थे अनित्थे च, सङ्क्षप्पस्स वसीकता"॥
.
"कच्चि आदि संज्ञां नादयति, (इति हेमवतो यक्खो)
कच्चचि पनेसु संज्ञतो।
कच्चचि अरा पमादम्हा, कच्चि झानं न ऋञ्चति"॥
11.
"न सो आदि संज्ञां आदियति, (इति सतागिरो यक्खो)
अथो पनेसु संजन्तो।
अथो अरा पमादम्हा, बुद्धो झानं न ऋञ्चति"॥
1वीं सदी.
"कच्चि मुसा न भनति, (इति हेमवतो यक्खो)
कच्चचि न खिणब्यप्पतो।
कच्चचि वेभूतियं नः, कच्चचि सम्फं न भासति॥
1 50.
"मुसा च सो न भान्ति, (इति सतागिरो यक्खो)
अथो न खिणब्यप्पथो।
अथो वेभूतियं नः, मन्ता अथं च [अथं सो (सी० पी० क०)] भासति"॥
एक-एक करके।
"कच्चि न रजदजति कामेसु, (इति हेमवतो यक्खो)
कच्चि चित्तं अनाविलं।
कच्छचि मोहं अति त्रकांतो, कच्चचि धम्मेसु चखुमा"॥
111.
"न सो रजजति कामेसु, (इति सतागिरो यक्खो)
अथो चित्तं अनाविलं।
सब्बमोहं अतिरक्तकांतो, बुद्धो धम्मेसु चखुमा"॥

112.
"कच्चि विजजाय संप नारायणो, (इति हेमवतो यक्खो)
कच्चचि संसुद्धचारणो।
कच्चचिस्स असवा खिना, कच्चचि नत्थि पुनब्भवो"॥
16
"विज्जाय चेव संप संज्ञाओ, (इति सतागिरो यक्खो)
अथो संसुद्धचारणो।
सब्बस्स असवा खिना, नत्थि तस्स पुनब्भवो"॥
164.
"सम्प साइनं मुनिनो चित्तं, कम्मुना बिप्पथेन च।
विजजाचरणसंप नयनं, धम्मतो नं पसंस्ति"॥
16.
"सम्प साइनं मुनिनो चित्तं, कम्मुना बिप्पथेन च।
विजजाचरणसंप नासिकं, धम्मतो अनुमोदसि"॥
.
"सम्प साइनं मुनिनो चित्तं, कम्मुना बिप्पथेन च।
विजजाचरणसंप नयनं, हंद पस्साम गोतमं॥
.
"एनिजघं किसान वीरं [धीरं (स्या०)], अप्पाहारं अलोलुपं।
मुनिं वनस्मिं झायन्तं, एहि पस्साम गोतमं॥
एक पाउंड फ्लैश.
"सिहंवेकचरं नागं, कामेसु अनपेखिनं।"
उपसङकम्म पुच्छम, मच्छुपासप्पमोचनं॥
156.
"अक्खतरं पवत्तारं, सब्बधम्मन पारगुं।"
बुद्धं वीरभयातीतं, मयां पुच्छम गोतमं"॥
1 वर्ष।
"किस्मिं लोको समुप्प संज्ञाओ, (इति हेमवतो यक्खो)
सौंदर्यिं कुब्बति संथवं [संधवं (क०)]।
किस्स लोको उपायाय, सौंदर्यिं लोको विहञ्जन्ति"॥
1711.
"छसु [छस्सु (सी० पी०)] लोको समुप्प संज्ञाओ, (हेमवताति भगवान)
छस्सु कुब्बति संथवं।
च संज्ञामेव उपादेय, छसु लोको विहञ्नति"॥
172
"कतमं तं उपादानं, यथा लोको विहञ्जन्ति।
निययानं पुच्छितो ब्रुहि, कथं दुक्खा पमुच्छति" [पमुञ्चति (स्या०)]॥
17
"पञ्च कामगुणा लोके, मनोचट्ठा पवेदिता।
एत्थ छंदं विराजेत्वा, एवं दुक्खा पमुच्चति॥
174.
"एतं लोकस्स नियंनं, अक्खातं वो यथाथं।'
एतं वो अहमक्खामि, एवं दुक्खा पमुचचति"॥
17
"को सुध तरति ओघं, कोध तरति अन्नवं।
अप्पतित्थे एनालामे, को उत्सुकते न सीदति"॥
17
"सब्बदा सीलसम्प संज्ञाओ, पञ्चवा सुसमाहितो।

अज्झत्तचिन्ति [अज्झत्तसञ्जी (स्या० कं० क०)] सतीमा, ओघं तरति दुत्तरं॥
1 7.
"विरातो कामसंन्याय, सब्बसंयोजनातिगो।
नन्दीभवपरीखिनो, सो उत्सुके न सीदति"॥
11 तिमाही.
"गब्भिरपञ्चनं रहस्यत्थदस्सिं, अकिञ्चनं कामभावे असत्तं।
तं पस्थ सब्बधि विप्पमुत्तं, दिब्बे पथे कम्मनं महेसिं॥

.
"अनोमनामं नक्षत्रत्थदस्सिं, पञ्जाददं कमलये असत्तं।
तं पस्सथ सब्बिदुं सुमेधं, अरिये पथे कम्मनं महेसिं॥
0.
"सुदिट्ठं वत नो अजदज, सुप्पभातं सुहुत्थितं।
यं अददसाम सम्बुद्धं, ओघतिन्नमनासवं॥
1.
"इ दसमेसाता यक्खा, इधिमन्तो यस्स्सिनो।"
सब्बे तं शरणं यंति, त्वं नो सत्था अनुत्तरो॥
122.
"ते मयं विचार्साम, गमा गमं नागा नागां।
नमस्स्माना सम्बुद्धं, धम्मस्स च सुधम्मत्"न्ति॥
हेमवत्सुत्तं नवमं निश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> सुत्तनिपात >> 1.10 अलवकासुत्त
वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<--->>>> अगला

यक्ष (अमानवीय, आत्मा) अलावक पहले बुद्ध को धमकाता है, फिर उनसे कुछ प्रश्न पूछता है जिनका बुद्ध उत्तर देते हैं, जिसके बाद अलावक परिवर्तित हो जाता है।

अंतर्वस्तु

10. Āḷavakasuttaṃ
अनुवाद
तो यह मेरे द्वारा सुना गया था:

एक समय में भगव (भगवान बुद्ध) यक्खा अलावाका के क्षेत्र में अलावी में रहते थे। तब यक्खा अलावाका उस स्थान पर गया जहां भगव (भगवान बुद्ध) निवास करते थे, और वहां जाकर उन्होंने भगवान (भगवान बुद्ध) से यह कहा:

'बाहर आओ, हे समाना! (भिक्षु)'
'हाँ, हे मित्र!' इतना कहकर भगवन् (भगवान बुद्ध) बाहर आये।
'प्रवेश करो, हे समाना!'
'हाँ, हे मित्र!' इतना कहकर भगवान (भगवान बुद्ध) ने प्रवेश किया।
दूसरी बार यक्खा अलावाका ने भगवान (भगवान बुद्ध) से यह कहा: 'बाहर आओ, हे समाना!'

'हाँ, हे मित्र!' इतना कहकर भगवन् (भगवान बुद्ध) बाहर आये।
'प्रवेश करो, हे समाना!'
'हाँ, हे मित्र!' इतना कहकर भगवान (भगवान बुद्ध) ने प्रवेश किया।
तीसरी बार यक्खा अलावाका ने भगव (भगवान बुद्ध) से कहा: 'बाहर आओ, हे समाना!'
'जी हां, हे मित्र!' ऐसा कहते हुए भगवान (भगवान बुद्ध) बाहर आए।
'अंदर आओ, हे समना!'
'जी हां, हे मित्र!' ऐसा कहते हुए भगवान (भगवान बुद्ध) अंदर चले गए।
चौथी बार यक्ष अलावक ने भगवान (भगवान बुद्ध) से कहा: 'बाहर आओ, हे समना!'
'मैं तुम्हारे पास बाहर नहीं आऊंगा, हे मित्र, जो चाहो करो।'
'मैं तुमसे एक प्रश्न पूछूंगा, हे समना (भिक्षु), यदि तुम इसका उत्तर नहीं दे सकते, तो मैं या तो तुम्हारे विचारों को बिखेर दूंगा या तुम्हारे हृदय को चीर दूंगा, या तुम्हें पैरों से पकड़कर गंगा के दूसरे किनारे पर फेंक दूंगा।'
'हे मित्र, मुझे इस संसार में, न ही देवताओं, मारों, ब्राह्मणों के संसार में, देवताओं, मनुष्यों, समनों और ब्राह्मणों से मिलकर बने प्राणियों में कोई ऐसा नहीं दिखता जो मेरे विचारों को बिखेर सके या मेरे हृदय को चीर सके, या मुझे पैरों से पकड़कर गंगा के दूसरे किनारे पर फेंक सके; फिर भी, हे मित्र, जो चाहो पूछो।'

तब यक्ष अलावक ने भगवान (बुद्ध) को श्लोकों में संबोधित किया:

1. 'इस संसार में मनुष्य के लिए सबसे अच्छा गुण क्या है? किसे अच्छी तरह से करने पर सुख मिलता है? वास्तव में सबसे मधुर क्या है? किस प्रकार का जीवन सर्वश्रेष्ठ कहलाता है?' (183)

2. भगवान (बुद्ध) ने कहा: 'इस संसार में मनुष्य के लिए सबसे अच्छा गुण आस्था है; धर्म का अच्छी तरह पालन करने पर सुख मिलता है; सत्य ही सबसे मधुर है; और जिस जीवन को समझ के साथ जिया जाता है, उसे सर्वश्रेष्ठ कहते हैं।' (184)

3. अलावक ने कहा: 'मनुष्य जीवन की धारा को कैसे पार करता है? सागर को कैसे पार करता है? दुख पर विजय कैसे प्राप्त करता है? शुद्धि कैसे प्राप्त करता है?' (185)

4. भगवान (बुद्ध) ने कहा: 'आस्था से धारा पार होती है, उत्साह से सागर, परिश्रम से दुख पर विजय प्राप्त होती है, और प्रत्यक्ष अनुभवजन्य ज्ञान से शुद्धि प्राप्त होती है।' (186)

5. अलावाका ने कहा:'पन्ना (प्रत्यक्ष ज्ञान) कैसे प्राप्त किया जाता है? धन कैसे अर्जित किया जाता है? प्रसिद्धि कैसे प्राप्त की जाती है? मित्रों को कैसे बांधा जाता है? इस लोक से परलोक में जाने पर शोक कैसे न किया जाए?' (187)

6. भगवान बुद्ध ने कहा: 'जो अरहतों के धर्म (मार्ग) में आस्था रखता है, जो निर्वाण (मुक्ति, मोक्ष, अमरता) की प्राप्ति की ओर ले जाता है, वह सुनने की तत्परता, उत्साह और विवेक से प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करेगा। (188)

7. 'जो उचित कार्य करता है, जो दायित्व का बोझ उठाता है और परिश्रम करता है, वह धन अर्जित करेगा, सत्य से यश प्राप्त करेगा और दानशील होकर मित्रों को अपने साथ जोड़ेगा। (189)

8. 'जो निष्ठावान है और गृहस्थ जीवन व्यतीत करता है, तथा निम्नलिखित चार धर्मों (सद्गुणों) - सत्य, न्याय (धर्म), दृढ़ता और उदारता - को धारण करता है, वह वास्तव में मृत्यु के समय शोक नहीं करता। (190)

9. 'प्रार्थना करो, दूर-दूर तक फैले अन्य समनों (भिक्षुओं) और ब्राह्मणों (पुजारियों) से भी पूछो कि क्या इस संसार में सत्य, आत्मसंयम, उदारता और सहनशीलता से बढ़कर कुछ है।' (191)

10. अलावक ने कहा: 'अब मुझे दूर-दूर तक फैले समनों और ब्राह्मणों से क्यों पूछना चाहिए? अब मैं जानता हूँ कि मेरा भविष्य का भला क्या है।' (192)

11. 'मेरे भले के लिए बुद्ध अलावी में रहने आए; अब मैं जानता हूँ कि कहाँ (अर्थात किसे) दान देने से बड़ा फल मिलेगा।' (193)

12. 'मैं गाँव-गाँव, नगर-नगर घूमकर पूर्णतः प्रबुद्ध (संबुद्ध) और धम्म की पूर्णता की उपासना करूँगा।' (194)

अलावकसूत्र समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन

10. Āḷavakasuttaṃ

एवं मे सुतं – एकं समयं भगव आडवियं विहारति आडवकस्सा यक्खस्सा भवने। अथ खो अवावको यक्खो येन भगव तेनुपसांकमि; उपसंकमित्वा भगवन्तं एतदावोचा - "निक्खमा, समाना'ति। "सधावुसो'ति भगव निक्खामि।' "पविसा, समानाति।" "सधावुसो'ति भगव पविसी।'

दुतियाम्पि खो...पे... ततियाम्पि खो आडवाको यक्खो भगवन्तं एतदावोचा - "निक्खमा, समाना"ति। "सधावुसो'ति भगव निक्खामि।' "पविसा, समानाति।" "सधावुसो'ति भगव पविसी।'

चतुत्थमपि खो आवावको यक्खो भगवन्तं एतदावोका - "निक्खमा, समाना'ति। "न ख्वाहं तं, आवुसो, निक्खामिस्सामि।" यं ते करणीयं, तं करोहि'ति।

" पण्हं तं, समाना, पुच्चिसामि। ससे मे न ब्याकारिस्ससि, चित्तं वा ते खिपिस्सामि, हदायं वा ते फलेस्सामि, पदेसु वा गहेत्वा परागंगया खिपिस्सामि'ति।

"न ख्वाहं तं, आवुसो, पसामि सदेवके लोके समाराके सब्रह्मके सस्सामनाब्राह्मणिय पजाय सदेवमनुस्साय यो मे चित्तं वा खिपेय हदयं वा फलेया पदेसु वा गहेत्वा परागंगाय खिपेय। अपि च त्वं, आवुसो, पुच्च यदकांखसि'ति। अथ खो अणवको यक्खो भगवन्तं गाथाय अज्जभासि -

183.
"किं सुधा वित्तं पुरिसस्सा सेठं, किं सु सुचिन्नं सुखमावहति;
किं सु [किं सू (सि.)] हें सदुतारं रसानां, कथं जीवं जीवितमहु सेठहं"।

184.
"सद्धिधा वित्तं पुरिसस्स सेठं, धम्मो सुचिनो सुखमावहति;
सच्चं हें सदुतारं रसानां, पण्णाजीविं जीवितमहु सेठहं"।

185.
"कथं सु तरति ओघं, कथं सु तरति अणवं;
कथं सु दुक्खमच्चेति, कथं सु परिसुज्जति"।

186.
"सद्धा तरति ओघं, अप्पमादेन अण्वं;
विरियेना [विरियेना (सि. स्या. कां. पि.)] दुक्खमचेती, पणन्या परिसुज्जति"।

187.
"कथं सु लभते पन्नं, कथं सु विन्दते धनं;
कथं सु कितिं पाप्पोति, कथं मित्तानि गंथाति;
अस्मा लोका परं लोकं, कथं पेक्का न सोकति"।

188.
"सद्दाहानो अरहतं, धम्मं निब्बानपत्तिया;
सुसुसुसां [सुसुसा (सी.पी.)] लभते पन्नं, अप्पमत्तो विकक्खणो।

189.
"पतिरूपकारी धुर्वा, उत्थाता विन्दते धनम्;
सच्चेना कित्तिन पप्पोति, ददां मित्तानि गंथाति।

190.
"यस्सेते कैटुरो धम्म, सद्धस्स घरमेसिनो;
सक्कां धम्मो [दामो (?)] धीति कागो, सा वे पेक्का ना सोकाती।

191.
"इंघा अण्णेपि पुच्चस्सु, पुथु समानब्राह्मणे;

यदि सच्च दाम चागा, खांत्या भयोधा विज्जति"।
192.
"कथं नु दानी पुचेयं, पुथु समानब्राह्मणे;
योहं [सोहं (सी. पी.)] अज्जा पजानामि, यो अत्थो संपारायिको।
193.
"अत्थया वात मे बुद्धो, वसायादविमगमा;
योहं [अथिंहरुहि संयुत्तो (स्या. का.)] अजजा पजानामि, यत्थ दिनं महप्फलम्।
194.
"तो अहं विचारिसामि, गमा गमं पुर पुरं;
नमास्समानो सम्बुद्धं, धम्मस्सा च सुधम्मताऽन्ति।
अङवकसुत्तं दशमं नियतं।

पाली-देवनागरी
दस. आळवकसुत्तं
एवं मे सुतं - एकं समयं भगव आळवियां विहरति आळवकस यक्षस्स भवने। अथ खो आळवको यक्खो येन भगवा तेनुपसङकमी; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं एतदवोच - "निक्कम, समना"ति। "साधुसो"ति भगव निक्कमि। "पविस, समना"ति। "साधुसो"ति भगव पविसि।
दुतियाम्पि खो...पे०... तत्याम्पि खो आळवको यक्खो भगवन्तं एतदवोच — "निखम, समाना"ति। "साधुसो"ति भगव निक्कमि। "पविस, समना"ति। "साधुसो"ति भगव पविसि।
चतुथम्पि खो आळवको यक्खो भगवन्तं एतदवोच - "निक्कम, समना"ति। "न ख्वाहं तं, आवुसो, निक्खमिस्सामि। यं ते कारणं, तं करोहि"ति।
" पञ्चं तं, समं, पुच्छिस्सामि। सचे मे न बिकारिस्ससि, चित्तं वा ते हिपिस्सामि, हदयं वा ते फलेस्सामि, पदेसु वा गहेत्वा परगङगाय हिपिस्सामि"ति।
"न ख्वाहं तं, आवुसो, पस्सामि सदेवके लोके समारके सब्रह्मके ससमन्ब्राह्मणीय पजाय सदेवमनुस्साय यो मे चित्तं वा खिपेय हदयं वा फलेय पदेसु वा गहेत्वा परागगाय खिपेय। अपि च त्वं, आवुसो, पुच्छ यदाकङ्खसी"ति। अथ खो आळवको यक्खो भगवन्तं गाथाय अज्झासि -
1244.
"किं सुध वित्तं पुरिसस्स सेट्ठं, किं सुचिन्नं सुचिन्नं सुखमावहति।
किं सु [किं सु (सी०)] हवे सदुतरं रसानं, कथं जीवं जीवितमहु सेट्ठं"॥
4.
"सद्धिध वित्तं पुरिसस्स सेट्ठं, धम्मो सुचिन्नो सुखमावहति।
सच्चं हवे सदुतरं रसानं, पञ्जाजीविन जीवितमहु सेट्ठं"॥
फ़ी.
"कथं सु तरति ओघं, कथं सु तरति अन्न्वं।
कथं सु दुक्खमच्छेति, कथं सु परिसुज्जति"॥
.
"सद्धा तरति ओघं, अप्पमादेन अन्न्वं।
वीरियेन [विरियेन (सी० स्या० कं० पी०)] दुक्खमचच्छेति, पञ्चया परिसुज्जति"॥
7.
"कथं सु लभते पञ्चं, कथं सु विन्दते धनं।
कथं सु कित्तिं पप्पोति, कथं मित्तानि गांठति।
अस्मा लोका परं लोकं, कथं पेच न सोचति"॥
128.
"सद्दधोनो अरहतं, धम्मं निब्बानपत्तिया।"
सुस्सुसं [सुस्सुसा (सी० पी०)] लभते पञ्चं, अप्पमत्तो विचखनो॥
124.
"पतिरूपकारी धुरवा, उत्थता विन्दते धनं।

सच्चेन कित्तिं पप्पोति, ददं मित्तानि गण्थति॥
190.
"यस्सेते चतुरो धम्मा, साधस्स घरेमेसिनो।"
सचचं धम्मो [दमो (?)] धति चागो, स वे पेचचं न सोचति॥
1911.
"इङ्घ अञ्जेपि पुच्छस्सु, पुथु समन्ब्राह्मणे।
यदि सचचा दामा चागा, खन्त्या भैयायोध विज्दजति"॥
192.
"कथ नुं दानि पुच्छेयं, पुथु समन्ब्राह्मणे।
योहं [सोहं (सी० पी०)] अजदज पजानामि, यो अत्थो सम्प्रायिको॥
1930.
"अत्थाय वत मे बुद्धो, वसायाळविमगमा।
योहं [अड्डिन्हारूहि संयुत्तो (स्या० क०)] अज्ज पजानामि, यथा दी संज्ञां महप्फलं॥
194.
"सो अहं विचारामि, गमा गमं पुरा पुरं।
नमस्स्मानो सम्बुद्धं, धम्मस्स च सुधम्मत्"न्ति॥
आळवकसुत्तं दशमं निश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> सुत्तनिपात >> 1.11 विजयसुत्त,
वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

____

पिछला <<<<--->>>> अगला

____

मानव शरीर की निरर्थकता पर एक चिंतन; बुद्ध का अनुयायी शरीर को केवल उसके वास्तविक स्वरूप में देखता है, और फलस्वरूप निर्वाण प्राप्त करता है।

____

अंतर्वस्तु

1.11 विजयसुत्त

अनुवाद

1. यदि चलते या खड़े होते समय, बैठते या लेटते समय, कोई भी अपने शरीर को सिकोड़ता (या फैलाता) है, तो यह शरीर की गति है। (195)

2. हड्डियों और नसों से बना, झिल्ली और मांस से लिपटा और त्वचा से ढका शरीर, जैसा वास्तव में है वैसा दिखाई नहीं देता। (196)

3. यह आंतों, पेट, यकृत, उदर, हृदय, फेफड़े, गुर्दे और प्लीहा से भरा होता है। (197)

4. बलगम, लार, पसीना, लसीका, रक्त, जोड़ों को चिकनाई देने वाला द्रव, पित्त और वसा से भरा होता है। (198)

5. फिर नौ धाराओं में अशुद्धता हमेशा इससे बहती रहती है; आँख से आँख का मल, कान से कान का मल, (199)

6. नाक से बलगम, मुँह से कभी पित्त निकलता है तो कभी कफ, और (पूरे) शरीर से पसीना और गंदगी निकलती है। (200)

7. फिर उसका खोखला सिर दिमाग से भर जाता है। अज्ञानता से बहका हुआ मूर्ख उसे अच्छी चीज़ समझता है। (201)

8. और जब वह मरकर, सूजा हुआ और पीला पड़कर, कब्रिस्तान में पड़ा होता है, तो रिश्तेदार उसकी परवाह नहीं करते। (202)

9. कुत्ते उसे खाते हैं और सियार, भेड़िये और कीड़े; कौवे और गिद्ध उसे खाते हैं, और जो भी दूसरे जीवित प्राणी होते हैं। (203)

10. बुद्ध के वचन सुनकर (और मार्ग का अनुसरण करके) भिक्षु इस संसार में प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त कर लेता है, वह निश्चित रूप से इसे (अर्थात शरीर को) हर तरह से भली-भांति जान लेता है, क्योंकि वह ध्यान में इसे जैसा है वैसा ही देखता है। (204)

11. "जैसा यह (जीवित शरीर) है वैसा ही वह (मृत शरीर) है, जैसा यह है वैसा ही (होगा); शरीर के प्रति, उसके आंतरिक और बाह्य दोनों ही रूपों में, इच्छा का त्याग कर देना चाहिए।" (205)

12. ऐसा भिक्षु जो इच्छा और आसक्ति से विमुख होकर इस संसार में प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त कर लेता है, वह (पहले ही) अमर संतत्व, निर्वाण (मुक्ति, मोक्ष, अमरता) की अपरिवर्तनीय अवस्था को प्राप्त कर चुका होता है। (206)

13. यह (शरीर) दो पैरों वाला (यद्यपि) अशुद्ध, दुर्गंधयुक्त, अनेक प्रकार की बदबू से भरा और इधर-उधर रिसता हुआ है, फिर भी प्रिय है। (207)

14. जो ऐसे शरीर के साथ स्वयं को श्रेष्ठ समझता है या दूसरों को तुच्छ समझता है—यह अंधत्व के सिवा और क्या है? (208)

विजयसुत्त समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
11. विजयसुत्तं
195.
कैरं वा यदि वा तिट्ठं, निसिन्नो उदा वा सयं;
समिञ्जेति पसारेति, एसा कायस्सा इंजना।
196.
अथिन्हारुसायुत्तो, ताकामांसावलेपनो;
चविया कायो पतिच्चन्नो, यथाभूतं न डिस्सति।
197.
अंतपुरो उदारपुरो, याकानापेसासा [याकापेसासा (सि. सिया.)] वत्थिनो;
हदयस्सा पप्पास्सा, वक्कास्सा पिहाकास्सा सीए।
198.
सिंहानिकाय खेडास्सा, सेदस्सा च मेदस्सा च;
लोहितास्सा लसिकाय, पित्तस्सा च वसाया च।
199.
अथस्सा नवही सोतेहि, असुचि सवति सब्बदा;
अक्खिम्हा अक्खिगुथाको, कण्णम्हा कणगुथाको।
200.
सिंहानिका च नासतो, मुखेन वामतेकदा;
पित्तं सेमहांचा वामति, कायम्हा सेदजल्लिका।
201.
अथस्सा सुसीरं सीसं, मत्थलुंगस्स पुरितं;
सुभातो नं मन्नति, बालो अविज्जाया पुरक्खतो।
202.
यदा च सो मतो सेति, उद्धुमातो विनिलाको;

अपविद्धो सुसानस्मि, अनापेक्खा होन्ति नातयो।
203.
खादन्ति नाम सुवाना [सुपान (पि.)] सीए, सिंगला [सिगला (सि. स्या. कं. पि.)] वाका किमी;
काका गिज्जा च खदंति, ये कैने शांति पणिनो।
204.
सुत्वान बुद्धवचनं, भिक्खु पन्नवा इधा;
सो खो नं परिजानाति, यथाभूतनि पस्सति ।
205.
यथा इदं तथा एतं, यथा एतं तथा इदं;
अज्झत्तञ्च बहिद्ध च, काये छन्दं विराजये।
206.
चंद्रागविरततो सो, भिक्खु पन्ननव इधा;
अज्झागा अमातं शांतिं, निब्बाणं पदमक्कुतं।
207.
द्विपदकोयं [दिपादकोयं (सि. स्या. कं. पि.)] असुसि, दुग्गंदहो परिहारति [परिहिरति (सि. स्या. कं. पि.)];
नानाकुणापापरिपुरो, विस्वन्तो ततो ततो।
208.
Etādisena kāyena, yo maññe uṇṇametave [unnametave (?)];
परं वा अवजानेया, किमन्नात्र अडस्सनाति।
विजयसुत्तं एकादसमं निहितं।

पाली-देवनागरी
11. विजयसुत्तं
195.
चरं वा यदि वा तिट्ठं, निसि सञ्चो उद वा सयं।
समिञ्जेति पसरेति, एसा कायस इंजना॥
19.
अट्ठिनहरुसंयुत्तो, तचमंसावलेपनो।
छविया कायो पतिच्छ संज्ञाओ, यथाभूतं न दिस्सति॥
197.
अन्तपुरो उदरपुरो, यकनपेळस्स [यकपेळस्स (सी० स्या०)] वाथिनो।
हद्य्स पप्फासस्स, वक्रस्कस पिहकस च॥
198.
सिङ्घानिकाय खेळस्स, सेदस्स च मेदस्स च।
लोहितस्स लसिकाय, पित्तस्स च वसाय च॥
1950.
अथस्स नवहि सोलैहि, असुचि सवति सब्बदा।
अखिम्हा अक्खिगुथको, कन्नम्हा कन्नगुथको॥
.
सिंघानिका च नासतो, मुखेन वामतेकदा।
पित्तं सेम्हाञ्च वमति, मित्रा सेदजल्लिका॥
2010.
अथस्स सुसीरं सीसं, मत्थलुङ्गस्स पूरितं।
सुभातो नं मन्नति, बालो अविज्जाजय पुरखतो॥
2002.
यदा च सो मतो सेति, उद्धुमातो विनीलको।
अपविद्धो सुसानस्मिं, अनपेक्खा होन्ति ज्ञातो॥
200.

खादन्ति नं सुवाना [सुपाना (पी०)] च, सिंगाला [सिगाला (सी० स्या० कं० पी०)] वकाकम।
काका गिज्झा च खादन्ति, ये चञ्जे सन्ति पाणिनो॥
2044.
सुत्वान बुद्धवचनं, भिक्खु पञ्चानवा इध।
सो खो नं परिजानाति, यथाभूतञ्हि पस्सति॥
2005.
यथा इदं तथा एतं, यथा एतं तथा इदं।
अज्जत्तञ्च बधिधा च, काये छन्दं विराजये॥
2 सप्ताह.
चंद्रागविरत्तो सो, भिक्खु पञ्जानवा इध।
अज्झगा अमातं सन्तिं, निब्बानं पदमच्छुतं॥
2.
द्विपदकोयं [दीपकोयं (सी० स्या० कं० पी०)] असुचि, दुग्गन्धो परिहारति [परिहिरति (सी० स्या० कं० पी०)]।
नानाकुन्पापरिपूरो, विस्स्वन्तो ततो ततो॥
2.
एतादिसेन कायेन, यो मन्जे उन्नमेतवे [उ संज्ञामेतवे (?)]।
परं वा अवजानेय, किमञ्त्र अदस्सनाति॥
विजयसुत्तं एकादसमं निश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> सुत्तनिपता >> 1.12 मुनिसुत्त
वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

____

पिछला <<<<--->>>> अगला

____

मुनि (संत) की परिभाषा।

____

अंतर्वस्तु

1.12 मुनिसुत्ता
अनुवाद

1. परिचितता से भय उत्पन्न होता है, गृहस्थ जीवन से अपवित्रता उत्पन्न होती है; गृहस्थ अवस्था, परिचितता से मुक्ति—यही वास्तव में एक मुनि (संत) का दृष्टिकोण है। (209)

2. जो कोई भी उत्पन्न हुए पाप को नष्ट करके उसे पुनः जड़ पकड़ने नहीं देता और अपने ऊपर उगने पर उसे आगे बढ़ने नहीं देता, उसे एकांत में विचरण करने वाला मुनि कहते हैं; ऐसे महान ऋषि ने शांति की अवस्था देखी है। (210)

3. पाप के कारणों पर विचार करके और उसके बीज को नष्ट करके, उसे उसकी इच्छा के आगे नहीं झुकना चाहिए; ऐसा मुनि जो पुनर्जन्म और मृत्यु के अंत (अर्थात निर्वाण, मोक्ष, अमरता) को देखता है, तर्क को त्यागकर, प्राणियों की श्रेणी में नहीं आता। (211)

4. जिसने मन के सभी विश्राम स्थलों में प्रवेश कर लिया है और उनमें से किसी की भी कामना नहीं करता, वह वास्तव में लोभ और लालच से मुक्त मुनि है, जो विश्राम स्थलों का संग्रह नहीं करता, क्योंकि वह दूसरे तट पर पहुँच चुका है। (212)

5. जिसने सब कुछ जीत लिया है, जो सब कुछ जानता है, जो अच्छी समझ से युक्त है, जो सभी चीजों (धर्म) में निष्कलंक है, सब कुछ त्याग कर, भोग (अर्थात तन्हा) के नाश में मुक्त होकर, इस प्रकार मोक्ष (ज्ञान, निर्वाण) प्राप्त कर लिया है, वह धैर्यवान मुनि कहलाता है। (213)

6. जो व्यक्ति प्रत्यक्ष ज्ञान से परिपूर्ण हो, सद्‌गुणों और कर्मों से युक्त हो, समाधि में स्थिर हो, आत्म-मग्न ध्यान में आनंदित हो, जागृत हो, बंधनों से मुक्त हो, अखिला और वासना से मुक्त हो, वह मुनि कहलाता है। (214)

7. जो मुनि एकांत में विचरण करता हो, उत्साही हो, निंदा और प्रशंसा से विचलित न होता हो, शोर से भयभीत न होने वाले सिंह के समान, जाल में न फँसने वाले वायु के समान, जल से अपवित्र न होने वाले कमल के समान, दूसरों का मार्गदर्शक हो, स्वयं दूसरों के द्वारा निर्देशित न होता हो, उसे ज्ञानी मुनि कहते हैं। (215)

8. जो स्नानघर में खंभे के समान दृढ़ हो, जिसकी वाणी उचित हो, वासना से मुक्त हो और जिसकी इंद्रियाँ सुगठित हों, उसे ज्ञानी मुनि कहते हैं। (216)

9. जो कोई सीधी शटल की तरह दृढ़ हो, और बुरे कर्मों से विरक्त हो, न्याय और अन्याय का चिंतन करता हो, उसे बुद्धिमान मुनि कहते हैं। (217)

10. जो कोई संयमी हो और बुराई न करता हो, चाहे वह युवा हो या मध्यम आयु का मुनि, जो आत्मसंयमी हो, और जिसे किसी को उकसाना न चाहिए, उसे बुद्धिमान मुनि कहते हैं। (218)

11. जो कोई दूसरों द्वारा दिए गए भोजन पर जीवन यापन करता हो, और पात्र के ऊपर, बीच या शेष भाग से चावल का एक टुकड़ा ग्रहण करता हो, और न तो देने वाले की प्रशंसा करता हो और न ही कठोर शब्द बोलता हो, उसे बुद्धिमान मुनि कहते हैं। (219)

12. वह मुनि जो यौन संबंध से परहेज करते हुए विचरण करता है, जो यौवन में किसी भी प्रकार से बंधनों में नहीं बंधा होता, जो अहंकार के पागलपन से मुक्त होता है, उसे ज्ञानी मुनि (संत) कहते हैं। (220)

13. वह व्यक्ति जो संसार को भेदकर सर्वोच्च सत्य को देखता है, ऐसा व्यक्ति जो (सम्मोहन के) सागर और धारा को पार करके, सभी बंधनों को तोड़कर, स्वतंत्र और वासना से मुक्त होता है, उसे ही ज्ञानी मुनि (संत) कहते हैं। (221)

14. दो व्यक्ति जिनकी जीवनशैली और व्यवसाय बिल्कुल भिन्न हैं, समान नहीं हैं: एक गृहस्थ जो पत्नी का भरण-पोषण करता है, और एक निस्वार्थ गुणी व्यक्ति। गृहस्थ अन्य प्राणियों के विनाश पर तुला रहता है, क्योंकि वह अनियंत्रित होता है; परन्तु मुनि (संत) हमेशा प्राणियों की रक्षा करता है, क्योंकि वह संयमित होता है। (222)

15. जैसे नीली गर्दन वाला चितकबरा पक्षी (मोर) कभी हंस की गति प्राप्त नहीं कर पाता, वैसे ही गृहस्थ वन में ध्यान करने वाले एकांतवासी मुनि के समर्थ नहीं होता। (223) मुनिसुत्त

समाप्त।

उरगवग्ग समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
12. मुनिसुत्तं
209.
संथावतो [संधवतो (का.)] भयं जातां, निकेता जायते रजो;
अनिकेतमसंथावं, एतं वे मुनिदस्सानं।
210.

यो जातमुच्चिज्जा न रोपेय्य, जयन्तमस्सा नानुप्पवेच्चे;
तमहु एकं मुनिनं चरंतं, अद्दक्खि सो शांतिपदं महेसि।
211.
संखया वत्थुनि पमाया [पाहाय (का. सी. का.), समया (का.) पा + मी + त्वा = पमाया, यथा निस्सायतिपादं] बीजं, सिनेहामास्सा नानुप्पवेच्चे;
स वे मुनि जातिखयन्तदस्सी, तक्कं पहाय न उपेति संखं।
212.
अनन्याय सब्बानि निवेशानि, अनिकामायं अनंतरामपि तेसं;
सा वे मुनि वीतगेधो अगिद्धो, नयुहति परागतो हि होति।
213.
सब्बाभिभूं सब्बविदुं सुमेधं, सब्बेसु धम्मेसु अनुपालित्तं;
सब्बनजहं तंहक्खये विमुत्तं, तं वापि धीरा मुनि [मुनिं (सि. पि.)] वेद्यन्ति।
214.
पन्नबलं शीलवतुपपन्नं, समाहितं झनरतं सतीमं;
संगा पमुत्तं अखिलं अनासवं, तं वापि धीरा मुनि वेदयन्ति।
215.
एकं चरंतं मुनिमप्पमत्तं, निन्दापसंससु अवेधमानं;
सिहंव सद्देसु असंतसंतं, वातंव जलमहि असज्जमानं;
पद्माण्व [पदुमंवा (सि. स्या. पि.)] तोयेना अलिप्पमानं [अलिंपामानं (स्या. का.)], नेतरमन्नेसमनान्ननेय्यं;
तं वापि धीरा मुनि वेदयन्ति।
216.
यो ओगहांने थंभोरिवाभिजायति, यस्मिं परे वाचापरियंतम् [वाचं परियंतं (का.)] वदन्ति;
तं वीतरागं सुसमाहितिन्द्रियं, तं वापि धीरा मुनि वेद्यन्ति।
217.
यो वे ठितत्तो तसरण्व उज्जु, जिगुच्छति कम्मेहि पापकेही;
विमान्समानो विषमं समान्च, तं वापि धीरा मुनि वेद्यन्ति।
218.
यो सन्नत्ततो न करोति पापं, दहारो मज्झिमो च मुनि [दहरो च मज्झो च मुनि (सि. स्या. कां. पि.)] यत्तत्तो;
अरोसनेय्यो न सो रोसेति कांची [ना रोसेति (स्या.)], तं वापि धीरा मुनि वेद्यन्ति।
219.
यदग्गतो मज्झतो सेसतो वा, पिंडंद लभेथा परदत्तुपजीवि;
नालं थुटुं नोपि निपक्कवदि, तं वापि धीरा मुनि वेदयन्ति।
220.
मुनिं चरंतं विराटं मेथुनस्मा, यो योब्बाने नोपनिबज्जते क्वचि;
मदप्पमदा विराटं विप्पमुत्तं, तं वापि धीरा मुनि वेद्यन्ति।
221.
अनन्याय लोकं परमत्थदस्सीं, ओघं समुद्दं अतितरिया तदिं;
तं छिन्नगंथं असितं अनासवं, तं वापि धीरा मुनि वेदयन्ति।
222.
असामा उभो दुरविहारवुत्तिनो, गिही [गिही (का.)] दारापोसी अमामो सीए सुब्बतो;
परापानरोधाय गीही आसननतो, निक्कं मुनि रक्खति पणिने [पणिनो (सि.)] यतो।
223.
Sikhī yathā nīlagīvo [nīlagivo (syā.)] vihaṅgamo, haṃsassa nopeti javaṃ kudācanaṃ;
एवं गिहि नानुकरोति भिक्खुनो, मुनिनो विवित्तस्स वनमहि झायतोति।
Munisuttaṃ dvādasamaṃ niṭṭhitaṃ.Uragavaggo paṭhamo niṭṭhito.
Tassuddānaṃ –
उरगो धानियो सेवा, विसाणच तथा कासी;
कुंडो परभावो सेवा, वासलो मेत्ताभवना।

सतागिरो आश्वको, विजयो च तथा मुनि;
द्वादसेतानि सुत्तानि, उरगवग्गोति वुच्चति।

पाली-देवनागरी
12. मुनिसुत्तं
2.
सन्तवतो [सन्धवतो (क०)] भयं जातं, निकेता जायते रजो।
अनिकेतमसन्त्वं, एतं वे मुनिदास्सन्॥
21.
यो जातमुच्छिजज न रोपयेय्य, जायन्तमस्स नानुप्पवेच्छे।
तमहु एकं मुनिनं चरन्तं, अद्दक्खि सो शांतिपदं महेसि॥
21.
सङ्खाय वथुनि पमाय [पहाय (क० सी० क०), समय (क०) प + मी + त्वा = पमाय, यथा निस्सायतिपादं] बीजं, सिनेहमस्स नानुप्पवेच्छे।
स वे मुनि जातिख्यान्तदस्सी, तककं पहाय न उपेति सङ्खं॥
21.
अञ्जन्या सब्बानि निवेसननि, अनिकामयं अञ्जतरमपि तेसं।
स वे मुनि वीतगेधो अगिद्धो, नयुहति पारगतो हि होति॥
2.
सब्बाभिभुं सब्विदुं सुमेधं, सब्बेसु धम्मेसु अनुपमलित्तं।
सब्बनजहं तंहक्खये विमुत्तं, तं वापि धीरा मुनि [मुनिं (सी० पी०)] वेदयन्ति॥
2.
पञ्जानबलं सीलवतुप जपं, सम्मिलितं झानरतं सतीमं।
सङ्गा पमुत्तं अखिलं अनासवं, तं वापि धीरा मुनि वेदयन्ति॥
25.
एकं चरन्तं मुनिमप्पमत्तं, निन्दापसंससु अवेधमानं।
सिहंव सद्देसु असन्तसन्तं, वातव जल्म्हि असजजमानं।
पद्मनाव [पदुमव (सी० स्या० पी०)] तोयेन अलिप्पमानं [अलिम्पमानं (स्या० क०)], नेतारामञ्जेसमञ्जनेयं।
तं वापि धीरा मुनि वेदयन्ति॥
2.
यो ओघहने थम्भोरिवाभिजायति, यस्मिं परे वाचापरिन्तं [वचन परियन्तं (क०)] वदन्ति।
तं वीतरागं सुसहितिन्द्रियं, तं वापि धीरा मुनि वेदयन्ति॥
21.
यो वे थितत्तो तस्रव उज्जु, जिगुच्छति कम्मेहि पापकेहि।
वामंसमानो विषमं समञ्च, तं वापि धीरा मुनि वेदयन्ति॥
21.
यो संज्ञत्तो न करोति पापं, दहरो मज्झिमो च मुनि [दहरो च मज्झो च मुनि (सि० स्या० कं० पी०)] यत्तो।
न सो रोसेति कञ्चि [न रोसेति (स्या०)], तं वापि धीरा मुनि वेदयन्ति॥
21.
यदग्गतो मज्झतो सेसतो वा, पिण्डं लभेत् परदत्तुपजीवी।
नालं तूतुं नोपि निपच्वादि, तं वापि धीरा मुनि वेदयन्ति॥
28.
मुनिं चरंतं विराटं मेथुनस्मा, यो योब्बने नोपनिब्ज्झते रवचि।
मदप्पमादा विराटं विप्पमुत्तं, तं वापि धीरा मुनि वेदयन्ति॥
2.
अञ्जन्या लोकं परमत्थदस्सिं, ओघं समुद्दं अतितरिय तादिं।
तं चि संज्ञाघं असितं अनासवं, तं वापि धीरा मुनि वेदयन्ति॥
2.

असमा उभो दूरविहारवुत्तिनो, गिही [गिहि (क०)] दरपोसी अम्मो च सुब्बतो।
परपाग्रोधाय गहि असञ्जन्तो, निचदचं मुनि रक्खति पाणिने [पाणिनो (सी०)] यतो॥
2.
सिखाई यथा नीलगिवो [नीलगिवो (स्या०)] विहङ्गमो, हंसस्स नोपेति जवं कुदाचनं।
एवं गिहि नानुकरोति भिक्खुनो, मुनिनो विवित्तस्स वनमहि झायतोति॥
मुनिसुत्तं द्वादसमं निश्चितं ।उर्गवग्गो पथमो निश्चितो।
तस्सुद्दनं -
उर्गो धनियो चेव, विसंञ्च तथा कसी।
चुन्दो परभवो चेव, वासलो मेत्तभावना॥
सतागिरो आळवको, विजयो च तथा मुनि।
द्वादसेतानि सुत्तानि, उर्गावग्गोति वुचदमचतीति॥

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> सुत्तनिपता >> 2.1 रतनसुत्त

वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<-->>>> अगला

सभी प्राणियों के लिए मोक्ष केवल बुद्ध, धम्म और संघ में ही पाया जा सकता है।

अंतर्वस्तु

2.1 रत्नसूत्र
अनुवाद
1. पृथ्वी पर रहने वाले और आकाश में बसने वाले, यहाँ एकत्रित हुए सभी प्राण प्रसन्न हों और जो कहा जा रहा है उसे ध्यानपूर्वक सुनें। (224)

2. अतः, हे सभी ध्यान दें, दिन-रात भेंट लाने वाले मनुष्यों के प्रति दया भाव रखें; अतः उनकी पूर्णतया रक्षा करें। (225)

3. इस लोक या परलोक में जो भी धन-संपत्ति हो, या स्वर्ग में जो भी उत्तम रत्न हो, वह निश्चय ही तथागत (बुद्ध) के समर्थ नहीं है। यह उत्तम रत्न बुद्ध में पाया जाता है, इसी सत्य से मोक्ष प्राप्त हो। (226)

4. शाक्यमुनि (बुद्ध) ने समाधि में रहकर जो वासना का नाश, वासना से मुक्ति, और उत्तम अमरता (अमत-अमृत-अमृत) प्राप्त की, उसके समर्थ कुछ भी नहीं है। यह उत्तम रत्न उस धर्म में पाया जाता है, इसी सत्य से मोक्ष प्राप्त हो। (227)

5. श्रेष्ठ बुद्धों द्वारा सराही गई पवित्रता, जिस ध्यान (सम्मोहन) को वे निरंतर कहते हैं, उसके समान कोई ध्यान (सम्मोहन) नहीं है। यह उत्तम रत्न धम्म में पाया जाता है, इस सत्य से मोक्ष प्राप्त हो। (228)

6. धर्मात्माओं द्वारा सराहे गए आठ व्यक्ति, जो इन चार जोड़ियों का निर्माण करते हैं, वे भेंट के योग्य हैं, क्योंकि वे सुगत (बुद्ध) के शिष्य हैं; इन्हें जो कुछ भी दिया जाएगा, वह महान फल देगा। यह उत्तम रत्न संघ (सभा) में पाया जाता है, इस सत्य से मोक्ष प्राप्त हो। (229)

7. जिन्होंने दृढ़ मन से और इच्छा से मुक्त होकर गौतम (बुद्ध) की आज्ञाओं का लगन से पालन किया है, उन्होंने सर्वोच्च लाभ प्राप्त किया है, अमरत्व में विलीन होकर, और बिना कुछ दिए सुख का आनंद लिया है। यह उत्तम रत्न संघ (सभा) में पाया जाता है, इस सत्य से मोक्ष प्राप्त हो। (230)

8. जैसे नगर के द्वार का खंभा ज़मीन में मज़बूती से गाड़ा रहता है और चारों हवाओं से हिलता नहीं, वैसे ही मैं उस धर्मात्मा पुरुष की घोषणा करता हूँ जो आर्य सत्यों को भलीभांति समझकर उन्हें स्पष्ट रूप से देख पाता है। यह उत्तम रत्न सभा में पाया जाता है, इस सत्य से मोक्ष प्राप्त हो। (231)

9. जो लोग गहन ज्ञानी (अर्थात बुद्ध) द्वारा सिखाए गए आर्य सत्यों को भलीभांति समझते हैं, चाहे वे कितने ही विचलित क्यों न हों, उन्हें आठवाँ पुनर्जन्म नहीं लेना पड़ेगा। यह उत्तम रत्न सभा में पाया जाता है, इस सत्य से मोक्ष प्राप्त हो। (232)

10. जब वह (सही) दृष्टि के आनंद को प्राप्त करता है, तो वह तीन धर्मों (अहंकार, संदेह और अपने सभी पुण्य एवं कर्मों) को त्याग देता है। (233)

वह चारों नरकों से भी मुक्त हो जाता है और छह घातक पापों को करने में असमर्थ हो जाता है। सभा में यह उत्कृष्ट रत्न पाया जाता है, इस सत्य के द्वारा उद्धार हो। (234)

11. चाहे वह अपने शरीर, वचन या विचार से कोई पाप करे, वह उसे छुपा नहीं सकता, क्योंकि निर्वाण (मुक्ति) की अवस्था को देख चुके व्यक्ति के लिए छुपाना असंभव है। यह उत्तम रत्न सभा में पाया जाता है, इस सत्य से मुक्ति मिले। (235)

12. जैसे ग्रीष्म ऋतु की पहली गर्मी में फूलों से लदे वृक्षों के समूह में, वैसे ही बुद्ध ने निर्वाण (अमरता) की ओर ले जाने वाले उत्तम धम्म का उपदेश दिया, जिससे सभी को अधिकतम लाभ हुआ। यह उत्तम रत्न बुद्ध में पाया जाता है, इस सत्य से मुक्ति मिले। (236)

13. जो उत्तम को जानता है, जो उत्तम देता है और जो उत्तम लाता है, उस अतुलनीय ने उत्तम धम्म का उपदेश दिया। यह उत्तम रत्न बुद्ध में पाया जाता है, इस सत्य से मुक्ति मिले। (237)

14. पुराना नष्ट हो गया है, नया उत्पन्न नहीं हुआ है, जिनके मन भविष्य के अस्तित्व से विरक्त हैं, वे ज्ञानी जिन्होंने अपने अस्तित्व के बीज नष्ट कर दिए हैं, और जिनकी इच्छाएँ नहीं बढ़तीं, वे इस दीपक के समान बुझ जाते हैं। यह उत्तम रत्न सभा में पाया जाता है, इस सत्य से मोक्ष प्राप्त हो। (238)

15. यहाँ एकत्रित हुए सभी लोग, चाहे पृथ्वी के निवासी हों या वायु में रहने वाले हों, आइए हम देवताओं और मनुष्यों द्वारा पूजनीय पूर्ण (तथागत) बुद्ध की आराधना करें; मोक्ष प्राप्त हो। (239)

16. यहाँ एकत्रित हुए सभी लोग, चाहे पृथ्वी के निवासी हों या वायु में रहने वाले हों, आइए हम देवताओं और मनुष्यों द्वारा पूजनीय पूर्ण तथागत (बुद्ध) और धम्म (मार्ग) की आराधना करें; मोक्ष प्राप्त हो। (240)

17. पृथ्वी पर रहने वाले या हवा में रहने वाले, जो भी यहाँ एकत्रित हुए हैं, आइए हम सब मिलकर देवताओं और मनुष्यों द्वारा पूजनीय पूर्ण तथागत (बुद्ध) और संघ की आराधना करें; मोक्ष प्राप्त हो। (241)

रत्नसूत्र समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन

2. Cūḷavaggo

1. रत्नसुत्तं

224.

यानिधा भूतानि समागतानी, भुम्मानि [भूमानी (का.)] वा यानि वा अंतलिक्खे;

सब्बेव भूत सुमना भवन्तु, अथोपि सक्कच्च सुनन्तु भसीताम्।

225.

तस्मा हि भूत निसमेत्थ सब्बे, मेत्तं करोथा मानुषिया पजाय;

दिवा च रत्तो च हरन्ति ये बलिं, तस्मा ही न रक्खथा अप्पमत्ता।
226.
यं किंचि वित्तं इधा वा हुरं वा, सग्गेसु वा यं रतनं पणितं;
न नो समं अत्थि तथागतेन, इदम्पि बुद्धे रत्नं पणितम्;
Etena saccena suvatthi hotu.
227.
खयं विरागम अमातं पणितं, यदज्ज्गा शाक्यमुनि समाहितो;
न तेन धम्मेन समत्थि किञ्चि, इदम्पि धम्मे रतनं पणितम्;
Etena saccena suvatthi hotu.
228.
यं बुद्धसेठो परिवणयि सुचिं, समाधिमनंतरिकान्नमाहु;
समाधिना तेन समो न विज्जति, इदम्पि धम्मे रतनं पणितम्;
Etena saccena suvatthi hotu.
229.
ये पुग्गला अट्ठा सातं पसत्था, कत्तारि एतानि युगानि होन्ति;
ते दक्खिनेय्य सुगात्स्स सावका, एतेसु दिन्नानि महप्फालानि;
इदम्पि संगे रत्नं पणितं, एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु।
230.
ये सुप्पयुत्ता मनसा दधेन, निक्कमिनो गोतमसासनमहि;
ते पत्तिपट्टा अमातं विगयः, लद्धा मुधा निब्बुतिम् [निब्बुति (का.)] भुंजमना;
इदम्पि संगे रत्नं पणितं, एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु।
231.
यतिन्दखिलो पथविसिटो [पदविसिटो (का. सी.), पथविं सितो (का. सी. स्या. का. पि.)] सिया, कैटुबि वतेहि असंपकम्पियो;
तथुपमं सप्पुरिसं वदामि, यो अरियासच्चानि एवेक्का पस्सति;
इदम्पि संगे रत्नं पणितं, एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु।
232.
ये अरियासच्चानि विभावयंती, गंभीरापन्नेन सुदेसीतानि;
किंचापि ते होन्ति भूषणं पमत्ता, न ते भावं अठ्ठममाद्यन्ति;
इदम्पि संगे रत्नं पणितं, एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु।
233.
सहवस्सा दस्सानसंपदाय [सहवसदस्सानसंपदाय (का.)], तयस्सु धम्म जाहिता भवन्ति;
सक्कयादिथि विचिकीचिताञ्च, सिल्बत्तं वापि यदत्ति किञ्चि।
234.
कैटुहपायेहि च विप्पामुत्तो, चच्चभिठ्ठानि [च चभिट्ठानि (सि. स्या.)] भब्बा कटुँ [अभब्बो कटुँ (सि.)];
इदम्पि संगे रत्नं पणितं, एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु।
235.
किंकापि सो कम्म [कम्मं (सि. स्या. कं. पि.)] करोति पापकं, कायेन वाचा उदा चेतसा वा;
अभब्बा [अभब्बो (बहुसु)] सो तस्सा पतिच्चादय [पतिच्चादय (सी.)], अभब्बता दिट्ठापादस्सा वुट्टा;
इदम्पि संगे रत्नं पणितं, एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु।
236.
वनप्पगुम्बे यथा [यथा (सि. स्या.)] फुसिटाग्गे, गिम्हानामसे पथमस्मिः [पठमस्मि (?)] गिम्हे;
तथुपमं धम्मवरं अदेसायी [अदेसायी (सि.)], निब्बानागमि परमं हिताय;
इदम्पि बुद्धे रत्नं पणितं, एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु।
237.
वरो वराण्णु वरदो वराहारो, अनुत्तरो धम्मवरं अदेसायि;
इदम्पि बुद्धे रत्नं पणितं, एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु।
238.
खिन्नं पुराणं नव नत्थि संभवं, विरत्तचित्तयिके भवस्मिं;

ते खिनबीजा अविरुधिचंदा, निब्बन्ति धीरा यथायं [यथयं (का.)] पदीपो;
इदम्पि संगे रत्नं पणितं, एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु।
239.
यानिधा भूतानि समागतानि, भुम्मानि वा यानि वा अन्तलिक्खे;
तथागतं देवमनुस्सापूजितं, बुद्धं नमस्साम सुवत्थि होतु।
240.
यानिधा भूतानि समागतानि, भुम्मानि वा यानि वा अन्तलिक्खे;
तथागतं देवमनुस्सापूजितं, धम्मं नमस्साम सुवत्थि होतु।
241.
यानिधा भूतानि समागतानि, भुम्मानि वा यानि वा अन्तलिक्खे;
तथागतं देवमनुस्सापूजितं, संघं नमस्साम सुवत्थि होतुति।
रतनसुत्तं पथमं निहितं।

पाली-देवनागरी
2. चूळवग्गो
1. रत्नसुत्तं
2 यात्रा.
अर्थात भूतानि समागतनि, भुम्मानि [भूमानि (क०)] वा अर्थात व अंतलिखे।
सब्बेव भूता सुमना भवन्तु, अथोपि सचित्रचच्छ सुनन्तु भासीतं॥
2
तस्मा हि भूत निसामेथ सब्बे, मेत्तं करोथ मानुसिया पजाय।
दिवा च रत्तो च हरन्ति ये बलिं, तस्मा हि ने रक्खथ अप्पमत्ता॥
2.
यं किञ्चि वित्तं इध वा हुरं वा, सग्गेसु वा यं रत्नं पनीतं।
न नो समं अथि तथागतेन, इदम्पि बुद्धे रत्नं पनीतं।
एतेन सच्चेन सुवथि होतु॥
2.
खयं विरागं अमातं पनीतं, यदज्झा शाक्यमुनि सम्मिलितो।
न तेन धम्मेन समथि किन्चि, इदम्पि धम्मे रत्नं पनीतं।
एतेन सच्चेन सुवथि होतु॥
2.
यं बुद्धसेत्थो परिवैन्यि सुचिं, समाधिमनत्रिकज्ञानमाहु।
समाधिना तेन समो न विज्जति, इदम्पि धम्मे रत्नं पनीतं।
एतेन सच्चेन सुवथि होतु॥
2
ये पुग्गला अट्ठ सतं पसाथा, चत्तारि एतानि युगानि होन्ति।
ते दक्षिणेया सुगतस्स सावका, एतेसु दिन्नानि महप्फलनि।
इदम्पि सङ्घे रत्नं पनीतं, एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु॥
230
ये सुप्युत्ता मनसा दळ्हेन, निष्कामिनो गोतमसासन्महि।
ते पत्तपत्ता अमातं विगयः, लद्धा मुधा निब्बुतिं [निब्बुति (क०)] भुञ्ज्मना।
इदम्पि सङ्घे रत्नं पनीतं, एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु॥
231.
यथिन्दखिलो पथविसिटो [पदविसिटो (क० सी०), पठविं सितो (क० सी० स्या० कं० पी०)] सिया, चतुब्भि वतेहि असम्पकम्पियो।
तथुपमं सप्पुरिसं वदामि, यो अरियसचचानि अवेचदच पस्सति।
इदम्पि सङ्घे रत्नं पनीतं, एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु॥
2वीं.
ये अरियसचाचानि विभावयन्ति, उत्सुकपञ्जेन सुदेसितानि।

किञ्चादपि ते होन्ति भूषण पमत्ता, न ते भवं अट्ठममादियन्ति।
इदम्पि सङ्घे रत्नं पनीतं, एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु॥
2.
सहावस्स दस्संससंपदाय [सहस्सद्दसंससंपदाय (क०)], तैस्सु धम्म जहिता भवन्ति।
सक्रका यिदत्थि विचिचिच्छितञ्च, सीलब्बतं वापि यदत्थि किञ्चचि॥
2
चतुहपायेहि च विप्पमुत्तो, छच्चदाभिठानानि [च चाभिठानानि (सी० स्या०)] भब्ब कटुं [अभब्बो कटुं (सी०)]।
इदम्पि सङ्घे रत्नं पनीतं, एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु॥
2.
किञ्चादपि सो कम्म [कम्मं (सी० स्या० कं० पी०)] करोति पापकं, कायेन वाचा उद चेतसा वा।
अभब्ब [अभब्बो (बहुसु)] सो तस्स पतिचदाय [पतिचदाय (सी०)], अभब्बता दिट्ठपदसस वुत्ता।
इदम्पि सङ्घे रत्नं पनीतं, एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु॥
2वीं.
वनप्पगुम्बे यथा [यथा (सी० स्या०)] फुस्सिटगे, गिम्हानमासे पथमस्मिं [पथमस्मि (?)] गिम्हे।
तथुपमं धम्मवरं अदेस्यायि [अदेसि (सी०)], निब्बानगामिं परमं हिताय।
इदम्पि बुद्धे रत्नं पनीतं, एतेन सच्चेन सुवथि होतु॥
2
वरो वर्णनु वरदो वराहरो, अनुत्तरो धम्मवरं अदेस्यायि।
इदम्पि बुद्धे रत्नं पनीतं, एतेन सच्चेन सुवथि होतु॥
2वीं
खिनं पुराणं नव नत्थि संभाव्यं, विकृतचित्तयतिके भवस्मिं।
ते खिनबीजा अविरुळहिछंदा, निब्बन्ति धीरा यथायं [यथ्यं (क०)] पदीपो।
इदम्पि सङ्घे रत्नं पनीतं, एतेन सच्चेन सुवत्थि होतु॥
2.
अर्थात भूतानि समागतनि, भुम्मानि वा अर्थात वा अंतलिखे।
तथागतं देवमानुस्सपूजितं, बुद्धं नमस्साम सुवथि होतु॥
2-40.
अर्थात भूतानि समागतनि, भुम्मानि वा अर्थात वा अंतलिखे।
तथागतं देवमनुस्स्पुजितं, धम्मं नमस्साम सुवथि होतु॥
241.
अर्थात भूतानि समागतनि, भुम्मानि वा अर्थात वा अंतलिखे।
तथागतं देवमानुस्सपूजितं, सङ्घं नमस्साम सुवथि होतुति॥
रत्नसुत्तं पथमं निश्चितं।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> सुत्तनिपता >> 2.2 अमगंधसुत्त
वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<-->>>> अगला

दुष्ट मन और बुरे कर्म ही मनुष्य को अपवित्र करते हैं; कोई भी बाहरी अनुष्ठान उसे शुद्ध नहीं कर सकता। तुलना कीजिए संत मत्ती का सुसमाचार 15:10।

अंतर्वस्तु

अनुवाद

1. अमागन्धब्राह्मण: 'जो लोग न्यायपूर्वक प्राप्त किए गए समक, किंगुलक, किनक, पट्टफल, मूलफल और गविफल (विभिन्न प्रकार की घास, पत्ते, जड़ें आदि) खाते हैं, वे झूठ नहीं बोलते, (और न ही वे) इंद्रिय सुखों की इच्छा रखते हैं। (242)

2. 'जो दूसरों द्वारा दिए गए उत्तम, शुद्ध और उत्कृष्ट भोजन को खाता है, जो चावल से बना भोजन करता है, हे कस्सप, वह अमागन्ध (अशुद्ध करने वाला) भोजन करता है। (243)

3. 'अमागन्ध का आरोप मुझ पर लागू नहीं होता,' तो आप कहते हैं, 'हे ब्राह्मण (ब्रह्मबंधु), यद्यपि आप पक्षियों के उत्तम रूप से तैयार किए गए मांस के साथ चावल से बना भोजन करते हैं। हे कस्सप, मैं आपसे पूछता हूँ, इसका अर्थ क्या है, आपका अमागन्ध किस प्रकार का है?' (244)

4. कस्सपबुद्ध: 'जीवों का नाश करना, हत्या करना, काटना, बांधना, चोरी करना, झूठ बोलना, छल और कपट, निरर्थक पठन, दूसरे की पत्नी के साथ संभोग;--यह अमागंध है, परन्तु मांस खाना नहीं। (245)

5. 'जो इस संसार में इंद्रिय सुखों में अनियंत्रित हैं, मीठी चीजों के लालची हैं, अशुद्ध चीजों से संगति रखते हैं, संशयवादी (नत्थिकदित्थी), अन्यायी हैं, जिनका अनुसरण करना कठिन है;--यह अमागंध है, परन्तु मांस खाना नहीं। (246)

6. 'जो कठोर, निर्दयी, चुगली करने वाले, धोखेबाज, निर्दयी, अहंकारी हैं, और अनुदार होकर किसी को कुछ नहीं देते;--यह अमागंध है, परन्तु मांस खाना नहीं। (247)

7. क्रोध, नशा, हठ, कट्टरता, छल, ईर्ष्या, आडंबर, अभिमान और अहंकार, अन्यायियों से घनिष्ठता;—यह अमागंध है, परन्तु मांस खाना नहीं। (248)

8. जो इस संसार में दुष्ट हैं, और जो अपने ऋण नहीं चुकाते, निंदा करते हैं, अपने लेन-देन में झूठे हैं, जालसाज हैं, जो इस संसार में सबसे नीच मनुष्य होकर पाप करते हैं;—यह अमागंध है, परन्तु मांस खाना नहीं। (249)

9. जो इस संसार में जीवित प्राणियों के प्रति अनियंत्रित (व्यवहार में) हैं, जो दूसरों की (वस्तुओं) को छीनने के बाद हानि पहुँचाने पर तुले हुए हैं, दुष्ट, क्रूर, कठोर, अनादर करने वाले हैं;—यह अमागंध है, परन्तु मांस खाना नहीं। (250)

10. 'वे प्राणी जो इन (जीवों) के प्रति लालची हैं, शत्रुतापूर्ण हैं, अपराध करते हैं; सदा (बुराई) पर तुले रहते हैं और इसलिए, मरने पर अंधकार में जाते हैं और अपना सिर नीचे की ओर करके नरक में गिरते हैं;--यह आमगंध है, न कि मांस खाना। (251)

11. 'न तो मछली का मांस, न उपवास, न नग्नता, न मुंडन, न जटाधारी बाल, न मैलापन, न खुरदरी चमड़ी, न अग्नि की पूजा, न संसार में की जाने वाली अनेक तप (तप), न भजन, न आहुति, न यज्ञ, न ऋतुओं का पालन, उस मनुष्य को शुद्ध करते हैं जिसने अपने संदेह पर विजय प्राप्त नहीं की है। (252)

12. 'ज्ञानी व्यक्ति अपनी इंद्रियों को सुरक्षित रखते हुए और उन पर विजय प्राप्त करते हुए, धम्म में दृढ़ रहते हुए, उचित और सौम्य बातों में आनंदित होकर विचरण करता है; सभी बंधनों को पार करके और सभी दुखों को पीछे छोड़कर, वह देखी और सुनी हुई बातों से आसक्त नहीं रहता।' (253)

13. इस प्रकार भगवान (बुद्ध) ने इस विषय का बार-बार उपदेश दिया, और वेदों के श्लोकों में निपुण ब्राह्मण ने इसे समझा; निर्मल, स्वतंत्र और अनुगामी मुनि ने इसे विभिन्न श्लोकों में स्पष्ट किया। (254)

14. बुद्ध के निर्मल और सभी दुखों को दूर करने वाले सुविचारित वचनों को सुनकर, उन्होंने नम्रतापूर्वक तथागत (बुद्ध के चरणों) की आराधना की और तुरंत दीक्षा ली। (255)

अमगन्धसूत्र समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
2. आमगन्धसुत्तं
242.
"समकासिङ्गुलकाचिनकानि च, पत्तप्फलं मूलफलं गविप्फलं;
धम्मेन लद्धं सातमस्नामन [सतमासमना (सी. पी.), सातमस्समना (स्या. कां.)], न कामकामा अलिकां भाणन्ति।
243.
"यदस्नामनो सुक्तं सुनीतिहितं, परेहि दिनं पयतां पणितं;
सलिनमन्नं परिभुंजमानो, सो भुंजसि कस्सप अमगंधं।
244.
"न अमागन्धो मम कप्पतिति, इक्सेवा त्वं भाससि ब्रह्मबन्धु;
सलिनमन्नं परिभुञ्जमानो, सकुन्तमंसेहि सुसंखतेहि;
पुच्चामि तं कस्सप एतमत्थं, कथं पकारो तव अमागन्धो"।
245.
"पाणातिपातो वधाचेदबंधनं, थेयं मुसावादो निकतिवञ्चनानि च;
अज्जहेनकुट्टं [अज्जहेन कुज्जं (सि. पी.)] परदारसेवना, एसामगन्धो न हि मानसभोजनम्।
246.
"ये इधा कामेसु असंन्याता जना, रसेसु गिद्धा असुचिभावमसिता [असुसीकमिसिता (सि. स्या. कं. पि.)];
नत्थिकादिथि विसामा दुरन्नया, एसामगन्धो न हि मानसभोजनम्।
247.
"ये लुकासा दारुण पिथिमंसिका [ये लुकासा दारुण परपिथिमंसिका (का.)], मित्तद्दुणो निक्करुणतिमानिनो;
अडानासिला न च डेंटि कसासि, एसामगन्धो न हि मानसभोजनम्।
248.
"कोधो मदो थंभो पच्चुपठहपना [पचकुठहपना च (सि. स्या.), पच्चुठहपना (पिच.)], मया उसूया भस्सासामुस्सायो च;
मनातिमानो च असब्भि संतवो, एसामगन्धो न हि मानसभोजनम्।
249.
"ये पपासिला इनागहात्सुकाका, वोहराकुटा इधा पतिरूपिका [पतिरूपिका (?)];
नारदमा येधा करोंती किब्बिसं, एसमागन्धो न हि मानसभोजनं।
250.
"ये इधा पनेसु असन्नता जना, परेसमादाय विहेसामुय्युता;
दुस्सीलालुड्डा फरुसा अनादरा, एसामगंधो न हि मानसभोजनं।
251.
"एतेसु गिद्धा विरुद्धतिपतिनो, निक्कुय्युता पेक्का तमं वजन्ति ये;
पतन्ति सत्ता निरयं अवनसिरा, एसामगन्धो न हि मानसभोजनम्।
252.
"न मच्छमंसानासकट्टं [न मच्छमंसं न अनासक्तट्टं (सि. अट्ठ मुलापथो), न मच्छमंसानासक्कट्टं (स्या. का.)], न नग्गियं न मुंडियं जटाजल्लां;
खराजिणानि नग्गिहुत्तसुपसेवना, ये वापी लोके अमरा बाहु तपा;
मन्ताहुति यन्नमुतुपसेवना, सोधेन्ति मक्कं अवितिन्नकन्खं।
253.
"यो तेसु [सोतेसु (सी.पी.)] गुट्टो विदितिन्द्रियो केयर, धम्मे थितो अज्जवमद्दवे रतो;
संगतिगो सब्बदुक्खप्पाहिनो, न लिप्पति [न लिम्पति (स्या. का. का.)] दिट्ठसुतेसु धीरो"।
254.
इक्केतमत्थं भगव पुनप्पुनं, अक्खासी नं [तं (सि. पि.)] वेदयी मंतपारागु;
चित्रहि गाथाहि मुनि पकाशयि, निरामगन्धो असितो दुरन्नयो।
255.
सुत्वान बुद्धस्स सुभाषितं पदं, निरामगंधं सब्बदुक्खप्पनुदानं;

निकामानो वंदि तथागतस्स, तत्थेव पब्बज्जमरोचयित्थति।
अमागन्धसुत्तं दुतियाम् निहितम्।

पाली-देवनागरी
2. आमगंधसुत्तं
2.
"सामाक्चिङ्गुलकचीनकानि च, पत्तप्फलं मूलफलं गविप्फलं।
धम्मेन लद्धं सतमस्नमना [सतमससमान (सी० पी०), सतमस्समना (स्या० कं०)], न कामकामा अलिकं भन्ति॥
2
"यदस्नमानो सुक्तं सुनित्थितं, परेहि दी संज्ञां पयतं पनीतं।
सालीनम नासिकं परिभुञ्जमानो, सो भुञ्जसि कस्सप अमगन्धं॥
2 अपराह्न
"न अमगन्धो मम कप्पतिति, इच्छचेव त्वं भासि ब्रह्मबन्धु।"
सलीनम नासिकं परिभुञ्जमानो, सकुन्तमनसेहि सुसङ्खतेहि।
पुच्छमि तं कस्सप एतमथं, कथं पकारो तव अमगंधो"॥
2.
"पाणातिपातो वधछेदबन्धनं, थेयं मुसावादो निकतिवञ्चनानि च।"
अज्जहेनकुत्तं [अज्जेन कुज़्ज़ं (सी० पी०)] परदारसेवना, असमगन्धो न हि मंसभोजनं॥
2.
"ये इध कामेसु असञ्जता जना, रसेसु गिद्ध असुचिभावमसिता [असुचिकमिसिता (सी० स्या० कं० पी०)]।
नथिकदिट्ठि विसा दुर संज्ञाया, एसामगन्धो न हि मानसभोजनं॥
2.
"ये लुखसा दारुणा पिट्ठिमंसिका [ये लुखसा दारुणा परपिट्ठिमंसिका (क०)], मित्तद्दुनो निक्रुणातिमानिनो।
अदानसिला न च दंत्ति काश्च, एसामगन्धो न हि मानसभोजनं॥
2.
"कोधो मदो थम्भो पच्चचुपत्थापना [पच्चचुत्थपना च (सी० स्या०), पच्चचुत्थपना (पी०)], माया उसुया भ्स्ससमुस्सयो च।
मानातिमानो च असब्भि संतवो, असमगन्धो न हि मानसभोजनं॥
2.
"ये पापसीला इंघातसूचका, वोहारकूटा इध पतिरूपिका [पतिरूपिका (?)]।
नराधमा येध करोन्ति किब्बिसं, असमगन्धो न हि मानसभोजनं॥
.
"ये इध पनेसु असञ्जता जना, परेसमादाय विहेसमुय्युता।
दुस्सील्लुद्द फ़रुसा अनादरा, असमगंधो न हि मानसभोजनं॥
2012.
"एतेसु गिद्धा विरोधातिपतिनो, निच्चचुय्युता पेचदच तमं वजन्ति ये।"
पतन्ति सत्ता निरयं अवंसिरा, असमगन्धो न हि मानसभोजनं॥
2020. ...
"न मच्छमांसानसक्तं [न मच्छमंसं न अनासक्तं (सी० अट्ठ मूलपाठो), न मच्छमंसानासक्तं (स्या० क०)], न नग्गियं न मुंडियां जटाजलदलं।
खराजिनानि नागिहुत्त्ससुपसेवना, ये वापि लोके आमरा बहु तपा।
मंतहुति यञ्जमुतुपसेवना, सोधेन्ति मच्छचं अवितिन्नकङ्खं॥
25
"यो तेसु [सोतेसु (सी० पी०)] गुत्तो विदितिन्द्रियो चरे, धम्मे थितो अजदजवमदवे रतो।
सङ्गातिगो सब्बदुक्खप्पाहिनो, न लिप्पति [न लिम्पति (स्या० कं क०)] दिट्ठसुतेसु धीरो"॥
2.
इच्छचेतमथं भगवान पुन्पपुनं, अक्षसि नं [तं (सी० पी०)] वेद्यै मन्तपरागु।
चित्राहि गाथाहि मुनि पकसाय, निरामगन्धो असितो दुर जपयो॥
255.

सुत्वान बुद्धस्स सुभासितं पदं, निरामगंधं सब्बदुक्खप्पनुदं।
नीचमनो वंदि तथागतस्स, तत्थेव पब्बजमरोचयित्थति॥
अमगंधसुत्तं दूतियां निश्चितं।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> सुत्तनिपात >> 2.3 हिरीसुत्त
वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<-->>>> अगला

सच्ची दोस्ती पर।

अंतर्वस्तु

2.3 हिरीसुट्टा
अनुवाद
1. जो लज्जाहीनता का उल्लंघन करता है और उसका तिरस्कार करता है, जो कहता है, 'मैं मित्र हूँ,' परन्तु कोई भी ऐसा कार्य नहीं करता जो किया जा सकता है, उसे पहचानो: 'वह मेरा मित्र नहीं है।' (256)

2. जो मित्रों से व्यर्थ ही मीठी बातें करता है, उसे बुद्धिमान लोग केवल बात करने वाला समझते हैं, वह कुछ नहीं करता। (257)

3. वह मित्र नहीं है जो हमेशा उल्लंघन की आशंका करता है और दोष ढूंढता रहता है; परन्तु जिसके साथ पुत्र माता की गोद में रहता है, वही सच्चा मित्र है जिसे कोई और अलग नहीं कर सकता। (258)

4. जो फल की आशा रखता है, वह मानवीय बोझ उठाते हुए आनंद और स्तुति दिलाने वाली ऊर्जा का संवर्धन करता है। (259)

5. एकांत और शांति की मिठास का स्वाद चखने से व्यक्ति भय और पाप से मुक्त हो जाता है, धम्म की मिठास का पान करता है। (260)

हिरिसुत्त समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
3. हिरीसुट्टं
256.
हिरिं तरंतं विजिगुच्चमानं, तवहामस्मि [सखाहमस्मि (सि. स्या. कं. पि.)] इति भस्मानां;
सयहानि कम्मनि अनादियन्तं, नेसो मामन्ति इति नं विजन्या।
257.
अनन्वयं [अत्थान्वयं (का.)] पियं वाचं, यो मित्तेसु पकुब्बति;
अकरोंतं भस्मानां, परिजानन्ति पंडिता।
258.
न सो मित्तो यो सदा अप्पमत्तो, भेदासंकि रंधमेवानुपासि;
यास्मिन्का सेती उरसिवा पुत्तो, सा वे मिटो यो परेही अबेज्जो।
259.
पमुज्जकरणं ठाणं, पसंसावाहनं सुखं;

फलानिसंसो भवेति, वहन्तो पोरिसं धुरं।
260.
पविवेकरसं पीत्वा, रसं उपसमस्स च;
निद्दरो होति निप्पापो, धम्मपीतिरसं पिवंति।
हिरीसुत्तं तत्यं निहितं।

पाली-देवनागरी
3. हिरिसुत्तं
2.
हिरिं तरन्तं विजिगुच्छमानं, तवाहस्मि [सखाहमस्मि (सी० स्या० कं० पी०)] इति भस्मान्नं।
सयहानि कम्मानि अनादियन्तं, नेसो मामन्ति इति नं विज्ञानं॥
2.
अन्वयं [अथ्वयं (क०)] पियां वाचं, यो मित्तेसु पकुब्बति।
अक्रोन्तं भस्मान्नं, परिजानन्ति पण्डिता॥
2.
न सो मित्तो यो सदा अप्पमत्तो, भेदसङकि रन्धमेवानुपासि।
यस्मिञ्च सेति उर्सिव पुत्तो, स वे मित्तो यो परेहि अभिजेजो॥
2.
पमुज्जक्करनं थानं, पसंसावहनं सुखं।
फलानिसंसो भवेति, वहन्तो पोरिसं धुरं॥
2 ग्राम
पविवेकरसं पित्वा, रसं उपसमस्स च।
निद्दरो होति निप्पपो, धम्मपीतिरसं पिवन्ति॥
हिरिसुत्तं ततियं निश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> सुत्तनिपात >> 2.4 महा-मंगलसुत्त
वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<-->>>> अगला

अंतर्वस्तु

बुद्ध ने देवता को दिए जाने वाले सर्वोच्च आशीर्वाद को परिभाषित किया है।

मुझे ऐसा सुनने को मिला:

एक समय भगवान (भगवान बुद्ध) सावत्थी में, जेतवन में, अनाथपिंडिका के उद्यान में निवास कर रहे थे। तब, जब रात बीत गई, एक सुंदर रूप वाले देवता ने पूरे जेतवन को प्रकाशित करते हुए भगवान (भगवान बुद्ध) के पास आकर, उन्हें प्रणाम किया और एकांत में खड़े होकर, भगवान (भगवान बुद्ध) को एक श्लोक में संबोधित किया:

1. 'अनेक देवताओं और मनुष्यों ने सुख की कामना करते हुए आशीर्वादों की रचना की है, वे आपको (मुझे) सर्वोच्च आशीर्वाद बताते हैं।' (261)

2. बुद्ध ने कहा: 'मूर्खों की संगति न करना, बल्कि बुद्धिमानों की संगति करना, पूज्य लोगों की पूजा करना, यही सर्वोच्च आशीर्वाद है।' (262)

3. 'एक उपयुक्त देश में रहना, पिछले जन्म में अच्छे कर्म करना और स्वयं का गहन अध्ययन करना, यही सर्वोच्च आशीर्वाद है।' (263)

4. महान ज्ञान और कौशल, सुस्थापित अनुशासन और सुस्पष्ट वाणी, यही सर्वोच्च आशीर्वाद है। (264)

5. माता-पिता की सेवा करना, संतान और पत्नी की रक्षा करना और शांत भाव से प्रार्थना करना, यही सर्वोच्च आशीर्वाद है। (265)

6. दान देना, धर्म के अनुसार जीवन जीना, रिश्तेदारों की रक्षा करना और निष्कलंक कर्म करना, यही सर्वोच्च आशीर्वाद है। (266)

7. पाप से दूर रहना, मादक पेय पदार्थों से परहेज करना और धर्म में दृढ़ता बनाए रखना, यही सर्वोच्च आशीर्वाद है। (267)

8. आदर और विनम्रता, संतोष और कृतज्ञता, उचित समय पर धर्म का श्रवण, यही सर्वोच्च आशीर्वाद है। (268)

9. धैर्य और मधुर वाणी, भिक्षुओं से संवाद, समय-समय पर धर्म प्रवचन, यही सर्वोच्च आशीर्वाद है। (269)

10. 'ध्यान (तपस्या) और ब्रह्मचर्य, आर्य सत्यों का विवेक, और निर्वाण (मुक्ति, मोक्ष, अमरता) की प्राप्ति, यही सर्वोच्च आशीर्वाद है। (270)

11. 'जिसका मन लोकधर्म से प्रभावित होने पर भी विचलित नहीं होता, बल्कि दुःख, दोष और सुरक्षा से मुक्त रहता है, यही सर्वोच्च आशीर्वाद है। (271) 12.

'जो लोग ऐसे कर्म करके हर तरह से अजेय रहते हैं, और हर जगह सुरक्षित विचरण करते हैं, उन्हें ही सर्वोच्च आशीर्वाद प्राप्त है।' (272)

महामंगल समाप्त।

___

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

___

पाली-रोमन संस्करण
2.4. मंगलसुत्तं
एवं मे सुतं – एकं समयं भगव सावत्थियं विहारति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स अरामे। अथ खो अन्नतर देवता अभिकान्ताय रत्तिया अभिकान्तवन्ना केवलकप्पां जेतवनं ओभासेत्वा येन भगव तेनुपशंकामि; उपसंकमित्वा भगवन्तं अभिवदेत्वा एकमन्तं अथासि। एकमंतं स्थित खो स देवता भगवन्तं गाथाय अज्जभासि -
261. "बहु देवा मनुस्सा च, मंगलानि अचिन्तयुम्; आकंखमना सोत्थानं, ब्रूहि मंगलमुत्तमं"।
262. "असेवना च बलानां, पण्डितानाञ्च सेवना; पेज 20 सुर 93 www.tipitka.org विपश्यना अनुसंधान संस्थान पूजा च पूजनेयानां [पूजनियानां (सि. स्या. कं. पि.)], एतं मंगलमुत्तमं।
263. "पतिरूपदेसावसो च, पुब्बे च कटपुन्नता; अत्तसम्मपनिधि [अत्तसम्मपनिधि (कत्थचि)] च, एतं मंगलमुत्तमम्।
264. "बहुसाच्चान्का सिप्पांका, विनयो च सुसिक्खितो; सुभासिता च या वाचा, एतं मंगलमुत्तमम्।
265. "मातापितु उपाथनां, पुट्टदरस्स संगहो; अनाकुल च कम्मंता, एतं मंगलमुत्तमं।
266. "दानञ्च धम्मचरिया च, नाताकाञ्च संगहो;" अनवज्जनि कम्मानि, एतं मंगलमुत्तमम्।
267. "आरति विरति पापा, मज्जपना च संयमो; अप्पमादो च धम्मेसु, एतं मंगलमुत्तमं।
268. "गारवो च निवातो च, सन्तुति च कतन्नुता; कालेन धम्मस्सवनं [धम्मसवनं (कत्थचि), धम्मसवनं (सि. का.)], एतं मंगलमुत्तमं।
269. "खंति च सोवाकसता, समानानच दस्सानं; कालेन धम्मसच्च, एतं मंगलमुत्तमम्।
270. "तपो च ब्रह्मकार्यञ्च, अरियासच्चन दस्सानं; निब्बानसच्चिकिरिया च, एतं मंगलमुत्तमम्।

271. "फुथस्स लोकाधम्मेहि, चित्तं यस्सा न कम्पति; अशोकं विराजं खेमं, एतं मंगलमुत्तमं।
272. "एतादिसानि कत्वाना, सब्बत्थमपराजिता; सब्बत्थ सोत्थिं गच्छन्ति, तं तेसं मंगलमुत्तम'न्ति।
मंगलसुत्तं चतुत्थं निहितं।

पाली-देवनागरी संस्करण
2.4. मंगलसुत्तं
एवंमे सुतं – एकं समयं भगव सावथ्यं विहारी जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो अञ्जनत्र देवता अभिकान्तराय रत्तिया अभिकान्तवन्ना केवलकप्पं जेतवनं ओभासेत्वा येन भगव तेनुपसङकमी; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवदेत्वा एकमन्तं अत्थसि। एकमन्तं थिता खो सा देवता भगवन्तं गाथाय अज्भासि -
2012 .
"बहू देवा मनुस्सा च, मङ्गलानि अचिंतयं।
एकङ्क्षमना सोथानं, ब्रूहि मङ्गलमुत्तमं"॥
200 .
"असेवनाच बालानं, पण्डितानदच सेवना।
पूजा च पूजनेय्यनं [पूजनीयानं (सी० स्या० कं० पी०)], एतं मङ्गलमुत्तमं॥
2
"पतिरूपदेशवासो च, पुब्बे च कतपुञ्जता।
अट्टसम्मापाणिधि [अत्तसम्मापाणिधि (कत्थचि)] च, एतं मङ्गलमुत्तमं॥
2
"बहुसचञ्चसिप्पञ्च, विन्यो च सुसिक्खितो।
सुभासिता च या वाचा, एतं मङ्गलमुत्तमं॥
2 .
"मातापितु उपत्थानं, पुत्तदरस्स सङ्गहो।
ताईकुलाच कम्मन्ता, एतं मङ्गलमुत्तमं॥
2 .
"दञ्च धम्मचरिया च, नत्कांञ्च सङ्गहो।
अनवज्जानि कम्मनि, एतं मङ्गलमुत्तमं॥
2 .
"आरती विरति पापा, मज्मजपना च संयमो।"
अप्पमादो च धम्मेसु, एतं मङ्गलमुत्तमं॥
2
"गारवोच निवातो च, सन्तुत्थि च कतञ्चुता।
कालेन धम्मस्वनं [धम्मस्वनं (कत्थचि), धम्मस्वनं (सी० क०)], एतं मङ्गलमुत्तमं॥
2 .
"खंति च सोचस्सता, समानान्नद च दस्सनं।
कालेन धम्मसाकच्छ, एतं मङ्गलमुत्तमं॥
2 .
"तपो च ब्रह्मचर्यञ्च, अरियसच्चान दशसनं।
निब्बानसचिकिरिया च, एतं मङ्गलमुत्तमं॥
.
"फुत्थस्स लोकधम्मेहि, चित्तं यस न कम्पति।
असोकं विरजं खीमं, एतं मङ्गलमुत्तमं॥
.
"एतादिसानि कत्वान्, सब्बथमपराजिता।"
सब्बत्थ सोत्थिं गच्छन्ति, तं तेसं मङ्गलमुत्तम"न्ति॥
मङ्गलसुत्तं चतुत्थं निश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> सुत्तनिपता >> 2.5 सुचिलोमासुत्त

वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<-->>>> अगला

यक्ष (अमानवीय, आत्मा) सुचिलोमा बुद्ध को धमकी देता है कि यदि वे उसके प्रश्नों का उत्तर नहीं दे पाए तो वह उन्हें हानि पहुँचाएगा। बुद्ध उत्तर देते हैं कि सभी मनोभाव शरीर से उत्पन्न होते हैं।

अंतर्वस्तु

2.5 शुचिलोमसुत्त

अनुवाद

मुझे यह सुनने को मिला:

एक समय भगवान (भगवान बुद्ध) गया में यक्ष सुचिलोमा के राज्य में एक पत्थर के आसन पर विराजमान थे। उसी समय यक्ष खरा और यक्ष सुचिलोमा भगवान (भगवान बुद्ध) से कुछ दूरी पर वहाँ से गुजरे। यक्ष खरा ने यक्ष सुचिलोमा से कहा, 'क्या यह व्यक्ति समना (भिक्षु) है?'

सुचिलोमा ने उत्तर दिया, 'यह समना नहीं, समनक (दुष्ट समना) है; फिर भी मैं पता लगाऊंगा कि यह समना है या समनक।'

तब यक्ष सुचिलोमा भगवान (भगवान बुद्ध) के पास गए और उनके पास पहुँचकर उनका शरीर उनसे स्पर्श हो गया। तब भगवान (भगवान बुद्ध) ने उनका शरीर उठा लिया। तब यक्ष सुचिलोमा ने भगवान (भगवान बुद्ध) से कहा, 'हे समना (भिक्षु), क्या आप मुझसे डरते हैं?'

भगवान बुद्ध ने उत्तर दिया: 'नहीं, मित्र, मैं तुमसे भयभीत नहीं हूँ, परन्तु तुम्हारा मुझे स्पर्श करना पाप है।'

सुचिलोमा ने कहा: 'हे समना, मैं तुमसे एक प्रश्न पूछता हूँ; यदि तुम इसका उत्तर न दे सको तो मैं तुम्हारे विचारों को बिखेर दूँगा या तुम्हारे हृदय को चीर दूँगा, या तुम्हें चरणों से पकड़कर गंगा के दूसरे तट पर फेंक दूँगा।'

भगवान बुद्ध ने उत्तर दिया: 'हे मित्र, न तो इस संसार में, न देवों, मारों, ब्राह्मणों के संसार में, न समना और ब्राह्मणों, देवताओं और मनुष्यों की संतानों में, मुझे कोई ऐसा व्यक्ति दिखाई देता है जो मेरे विचारों को बिखेर सके या मेरे हृदय को चीर सके, या मुझे चरणों से पकड़कर गंगा के दूसरे तट पर फेंक सके। परन्तु हे मित्र, जो चाहो पूछ लो।' तब यक्ष सुचिलोमा ने भगवान बुद्ध से एक श्लोक में पूछा:

1. 'जमोद (राग), घृणा (द्वेष, दोष), अरुचि, प्रसन्नता और भय का उद्गम क्या है? ये कहाँ से उत्पन्न होते हैं?' क्या उत्पन्न होने के बाद संदेह मन को उसी प्रकार परेशान करते हैं, जैसे लड़के कौवे को परेशान करते हैं? (273)

2. बुद्ध ने कहा: 'राग और दोष (दोष, द्वेष) की उत्पत्ति इसी (शरीर) से होती है; घृणा, प्रसन्नता और भय इसी (शरीर) से उत्पन्न होते हैं; इसी (शरीर) से उत्पन्न होने वाले संदेह मन को उसी प्रकार परेशान करते हैं, जैसे लड़के कौवे को परेशान करते हैं। 3. 'वे इच्छा से उत्पन्न होते हैं, वे स्वयं में उत्पन्न होते हैं, बरगद के वृक्ष की शाखाओं की तरह; वे दूर-दूर तक फैले होते हैं, इंद्रिय सुखों से, जैसे मालुवा लता जंगल में फैली होती है। (274)

4. 'जो लोग जानते हैं कि जब भी यह (पाप) उत्पन्न होता है, वे इसे दूर भगा देते हैं। सुनो, हे यक्ष! वे इस कठिन और पहले कभी पार न की गई धारा को इस उद्देश्य से पार करते हैं कि उनका पुनर्जन्म न हो।' (275)

सुचिलोमसुत्त समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन

5. सूचिलोमासुत्तं

एवं मे सुतम् — एकं समयं भगव गय्यं विहारति तंकितमंस सुसिलोमास्सा यक्खस्सा भवने। तेना खो पाना समयेन खारो च यक्खो सुसिलोमो च यक्खो भगवतो अविदुरे अतिक्कमंती। अथा खो खारो यक्खो सुसिलोमं यक्खं एतादावोका - "एसो समानो"ति। "नेसो समानो, समानको एसो। यावाहं जानामि [याव जानामि (सि. पि.)] यदि वा सो समानो [यदि वा समानो (स्या.)], यदि वा सो समानको'ति [यदि वा समानाकोटि (सि. स्या.) पी.आई.)].

अथ खो सुसिलोमो यक्खो येन भगव तेनुपसंकामि; उपसंकमित्वा भगवतो कायं उपनामेसि। अथ खो भगव कायं अपानामेसि। अथ खो सुसिलोमो यक्खो भगवन्तं एतदावोचा - "भयसि मम्, समाना'ति? "न ख्वाहं तं, आवुसो, भयामि; एपी सीए ते सफ्फासो पापको'ती।

" पण्हं तं, समाना, पुच्चिसामि। ससे मे न ब्याकारिस्ससि, चित्तं वा ते खिपिस्सामि, हदायं वा ते फलेस्सामि, पदेसु वा गहेत्वा परागंगया खिपिस्सामि'ति।

"न ख्वाहं तं, आवुसो, पसामि सदेवके लोके समाराके सब्रह्मके सस्सामनाब्राह्मणिय पजाय सदेवमनुस्साय यो मे चित्तं वा खिपेय हदयं वा फलेया पदेसु वा गहेत्वा परागंगाय खिपेय। अपि च त्वं, आवुसो, पुच्च यदकांखसि'ति। अथ खो सुसिलोमो यक्खो भगवन्तं गाथाय अज्जभासि -

273.

"रागो च दोसो च कुतोनिदाना, अरति रति लोमहंसो कुतोजा;
कुतो समुत्थाय मनोवितक्का, कुमारका धन्कमिवोस्साजन्ति"।

274.

"रागो च दोसो च इतोनिदाना, अरति रति लोमहंसो इतोजा;
इतो समुत्थाय मनोवितक्का, कुमारका धन्कमिवोस्साजन्ति।

274.

"स्नेहाजा अत्तसंभूता, निग्रोधस्सेवा खंडजा;
पुथु विसत्ता कामेसु, मालुवाव वितवने।

275.

"ये नं पजानन्ति यतोनिदानं, ते नं विनोदेन्ति सुनोहि यक्खा;
ते दुत्तरं ओघमिमं तरन्ति, अतिन्नपुब्बं अपुणभवाय'ति।
सुसिलोमसुत्तं पंचमं निहितं।

पाली-देवनागरी

5. सुचिलोमसुत्तं

एवं मे सुतं - एकं समयं भगव गयं विहरति तक्षकितमञ्चे सुचिलोमस्स यक्षस्स भवने। तेन खो पन समयेन खरो च यक्खो सुचिलोमो च यक्खो भगवतो अविदूरे अति चरमकामन्ति। अथ खो खरो यक्खो सुचिलोमं यखं एतदवोच - "एसो समणो"ति। "नेसो समानो, समानको एसो। यावाहं जानामि [याव जानामि (सी० पी०)] यदि वा सो समानो [यदि वा समानो (स्या०)], यदि वा सो समानको"ति [यदि वा सो समानकोति (सी० स्या० पी०)]।

अथ खो सुचिलोमो यक्खो येन भगवा तेनुपसङकमि; उपसङ्कमित्वा भगवतो कायं उपनामेसि। अथ खो भगवान कायं अपनामेसि। अथ खो सुचिलोमो यक्खो भगवन्तं एतदवोच - "भयसि मं, समान"ति? "न ख्वाहं तं, आवुसो, भायामि; अपि च ते सफ़स्सो पापको"ति।

" पञ्चं तं, समं, पुच्छिस्सामि। सचे मे न बिकारिस्ससि, चित्तं वा ते हिपिस्सामि, हदयं वा ते फलेस्सामि, पदेसु वा गहेत्वा परगङगाय हिपिस्सामि"ति।

"न ख्वाहं तं, आवुसो, पस्सामि सदेवके लोके समारके सब्रह्मके ससमन्ब्राह्मणीय पजाय सदेवमनुस्साय यो मे चित्तं वा खिपेय हदयं वा फलेय पदेसु वा गहेत्वा परागगाय खिपेय। अपि च त्वं, आवुसो, पुच्छ यदाकङ्खसी"ति। अथ खो सुचिलोमो यक्खो भगवन्तं गाथाय अज्झासि -

।

"रागो च दोसो च कुतोनिदाना, आरती रति लोमहंसो कुतोजा।
कुतो समुत्थय मनोवित्रका, कुमारका धङकमिवोस्सजन्ति"॥

2.

"रागो च दोसो च इतोनिदाना, अरति रति लोमहंसो इतोजा।

इतो समुत्थय मनोवित्रका, कुमारका धङकमिवोस्सजन्ति॥
2.
"स्नेहजा अत्तसंभूता, निग्रोधस्सेव खंडजा।
पुथु विस्ताता कामेसु, मालुवाव विटावने॥
25.
"ये नं पजानन्ति यतोनिदानं, ते नं विनोदेन्ति सुनोहि यक्ख।
ते दुत्तरं ओघमिमं तरन्ति, अतिन्नपुब्बं अपुनभवाया"ति॥
सुचिलोमसुत्तं पञ्चमं निश्चितं।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> सुत्तनिपता >> 2.6 धम्मकारियासुत्त या कपिलसुत्त,
वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<-->>>> अगला

भिक्षुओं को पापी व्यक्तियों से दूर रहने की सलाह दी जाती है और उन्हें पवित्र जीवन जीने का निर्देश दिया जाता है।

अंतर्वस्तु

2.6 धम्मकारियासुत्त या कपिलसुत्त
अनुवाद
1. गृहस्थ जीवन छोड़कर गृहस्थ जीवन अपनाने वाले व्यक्ति को धर्मपरायण जीवन, ब्रह्मचर्य जीवन, सर्वश्रेष्ठ रत्न कहा जाता है। (276)

2. परन्तु यदि वह कठोर वाणी वाला हो और पशु के समान दूसरों को पीड़ा पहुँचाने में आनंद लेता हो, तो ऐसे व्यक्ति का जीवन अत्यंत दुष्ट होता है और वह अपने अपवित्रता को बढ़ाता है। (277)

3. जो भिक्षु कलह में आनंद लेता है और मूर्खता में डूबा रहता है, वह बुद्ध द्वारा प्रचारित और सिखाए गए धर्म को नहीं समझता। (278)

4. अपने ही विकसित मन को पीड़ा पहुँचाकर और अज्ञान से प्रेरित होकर, वह यह नहीं समझता कि पाप ही नरक का मार्ग है। (279)

5. जन्म-जन्म, अंधकार-अंधकार में विपत्ति झेलते हुए, ऐसा भिक्षु मृत्यु के बाद वास्तव में कष्ट भोगता है। (280)

6. जैसे कई वर्षों से मल से भरा हुआ गड्ढा हो, तो पाप से भरे हुए व्यक्ति का शुद्धिकरण कठिन होता है। (281)

7. हे भिक्षुओं, यदि आप किसी ऐसे व्यक्ति को जानते हैं जो घर पर निर्भर है, पापी इच्छाओं, पापी विचारों से ग्रस्त है और पापी कर्मों और वस्तुओं में लिप्त है, (282)

8. तो सभी एकमत होकर उससे दूर रहें; उसे झाड़ू की तरह उड़ा दें, कूड़े की तरह फेंक दें। (283)

9. फिर उन लोगों को भूसे की तरह हटा दें जो समन नहीं हैं, केवल अपने बारे में सोचते हैं, पापी इच्छाओं और पापी कर्मों और वस्तुओं से ग्रस्त लोगों को उड़ा दें। (284)

10. शुद्ध रहें और शुद्ध लोगों के साथ विचारशील होकर रहें; फिर सहमति और बुद्धिमत्ता से आप दुख का अंत करेंगे। (285)

धम्मकारियासुत्त समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
6. धम्मचरियासुत्तं
276.
धम्मचैरियं ब्रह्मचर्यं, एतदाहु वसुत्तमं;
पब्बाजिटोपि सी होति, अगरा अंगारियाम्।
277.
तो सीई मुखराजातिको, विहेसाभिरतो मागो;
जीवितं तस्स पापियो, राजं वधेति अत्तानो।
278.
कलहाभिरतो भिक्खु, मोहधम्मेन अवुतो;
अक्खतामपि न जानाति, धम्मं बुद्धेन देसिटं।
279.
विहेसं भवित्ततनं, अविज्जाया पुरक्खतो;
सांकिलेसं न जानाति, मग्गं निरयगामिनं।
280.
विनिपातं समापन्नो, गब्भा गभं तम तमम्;
सा वे तदिसाको भिक्खु, पेक्का दुक्खं निगच्छति।
281.
गुत्थकूपो यथा अस्स, संपुणो गनवस्सिको;
यो च इवरूपो अस्सा, दुब्बिसोधो ही संगानो।
282.
यं इवरूपं जानथ, भिक्खवो गहनिस्सितं;
पापिच्चं पापसंकप्पं, पापाचारगोचरं।
283.
सब्बे समग्गा हुतवना, अभिनिब्बज्जीयथा [अभिनिब्बज्जयथा (सि. पि. ए. नि. 8.10)] नं;
कराण्डवम् [कराण्डं वा (स्या. का.) ए. नि. 8.10] निद्धमथ, कसम्बु अपकसथ [अवकसथ (सि. स्या. का.)]।
284.
ततो पलापे [पलसे (का.)] वेथा, असामने समानमणिने;
निद्धमित्वान पपिच्चे, पापाचारगोचरे।
285.
शुद्ध शुद्धेहि संवासं, कप्पायवो पतिस्सता;
ततो समाग्गा निपका, दुक्खस्सन्तं करिस्सथति।
धम्मकारियासुत्तं [कपिलासुत्तं (अṭṭहा.)] चṭṭहं निःहितां।

पाली-देवनागरी
6. धम्मचरियसुत्तं
26.
धम्मचैरियं ब्रह्मचर्यं, एतदाहु वसुत्तमं।
पब्बजीतोपि चे होति, अगारा अंगारियां॥
277.
सो चे मुखजातको, विहेसाभिरतो मागो।
जीवितं तस्स पापियो, रजं वञ्जेति अत्तनो॥
2.
कलहाभिरतो भिक्खु, मोहधाममेन आवुतो।
अक्खातमपि न जानाति, धम्मं बुद्धेन देसिटं॥
2

विहेसं भावितत्तानं, अविज्जाजाय पुरखतो।
संकिलेसं न जानाति, मग्गं निरयगामिनं॥
2.
विनिपातं समापनं दनो, गब्भा गभं तम तमं।
स वे तदिस्को भिक्खु, पेचदच दुक्खं निगच्छति॥
22.
गोथकूपो यथा अस्स, सम्पुन्नो गनवास्सिको।
यो च एवरूपो अस्स, दुब्बीसोधो हि सङ्गानो॥
22.
यं एवरूपं जननाथ, भिक्खवो गहनिस्सितं।
पापिच्छं पापसङ्कप्पं, पापाचारगोचरं॥
2025.
सब्बे समग्गा हुतवन, अभिनिब्बजज्याथ [अभिनिब्बजज्याथ (सी० पी० अ० नि० 8.10)] नं।
कारणवं [कारंडं व (स्या० क०) अ० नि० 8.10] निध्मथ, कस्म्बुं अपकसथ [अवकसथ (सी० स्या० क०)]॥
2 सप्ताह
ततो पलापे [पलसे (क०)] वाहेथ, अस्समने समानमनिने।
निद्धमित्वान पापिच्छे, पापाचारगोचरे॥
2.
सुधा सुद्धेहि संवासन, कप्पयव्हो पतिस्सता।
ततो समग्गा निपका, दुक्खस्सन्तं करिस्थति॥
धम्मचरिसुत्तं [कपिलसुत्तं (अट्ठ०)] छट्ठं नित्थितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> सुत्तनिपता >> 2.7 ब्राह्मणादम्मिकासुत्त
वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

____

पिछला <<<<--->>>> अगला

____

धनी ब्राह्मण बुद्ध के पास आकर प्राचीन ब्राह्मणों की रीति-रिवाजों के बारे में पूछते हैं। बुद्ध उनके जीवन शैली का वर्णन करते हैं और बताते हैं कि राजा की संपत्ति देखकर उनमें क्या परिवर्तन आया। वे यह भी बताते हैं कि कैसे उन्होंने राजा को यज्ञों में प्राणियों की बलि देने का पाप करने के लिए प्रेरित किया। बुद्ध के ज्ञानवर्धक प्रवचन सुनकर धनी ब्राह्मणों का धर्म परिवर्तन हो जाता है।

____

अंतर्वस्तु

2.7 ब्रह्मनादमम्मिकसूत्र
अनुवाद
मुझे यह सुनने को मिला:

एक समय भगवान (भगवान बुद्ध) सावत्थी में, जेतवन में, अनाथपिंडिका के उद्यान में निवास कर रहे थे। तब कोसल के कई धनी ब्राह्मण, जो वृद्ध, बुजुर्ग, या अत्यधिक वृद्ध थे, भगवान (भगवान बुद्ध) के पास गए और उनसे सुखद वार्तालाप किया। कुछ सुखद और उल्लेखनीय वार्तालाप के बाद, वे अलग बैठ गए। अलग बैठकर उन धनी ब्राह्मणों ने भगवान (भगवान बुद्ध) से यह कहा: 'हे पूज्य गौतम (बुद्ध), क्या आजकल ब्राह्मण प्राचीन ब्राह्मणों के ब्राह्मणवादी रीति-रिवाजों (धर्म) का पालन करते हुए देखे जाते हैं?'

भगवान (भगवान बुद्ध) ने उत्तर दिया: 'हे ब्राह्मणों, आजकल ब्राह्मण प्राचीन ब्राह्मणों के ब्राह्मणवादी रीति-रिवाजों का पालन करते हुए नहीं देखे जाते हैं।'

ब्राह्मणों ने कहा, "यदि आदरणीय गौतम बुद्ध को असुविधा न हो, तो वे हमें प्राचीन ब्राह्मणों के रीति-रिवाजों के बारे में बताएं।"

भगवान बुद्ध ने उत्तर दिया, "तो हे ब्राह्मणों, ध्यान से सुनो, मैं बोलूंगा।"

"जी हां," कहकर धनी ब्राह्मणों ने भगवान बुद्ध की बात सुनी। भगवान बुद्ध ने यह कहा:

1. प्राचीन ऋषि (इसयो) संयमी और पश्चात्तापी थे; उन्होंने पांचों इंद्रियों के विषयों का त्याग कर अपने कल्याण का अध्ययन किया। (286)

2. ब्राह्मणों के लिए न तो पशु थे, न सोना, न अनाज, परन्तु ध्यान से प्राप्त धन ही उनके लिए था, और वे अपने सर्वोत्तम खजाने की रक्षा करते थे। (287)

3. जो कुछ उनके लिए तैयार किया जाता था और द्वार पर भोजन के रूप में रखा जाता था, वे उसे उन लोगों को देना समझते थे जो श्रद्धा से तैयार की गई वस्तु की तलाश करते हैं। (288)

4. विभिन्न रंगों के वस्त्रों, पलंगों और आवासों से युक्त, प्रांतों और पूरे देश के समृद्ध लोग उन ब्राह्मणों की पूजा करते थे। (289)

5. ब्राह्मण अक्षुण्ण, अजेय और धर्म द्वारा संरक्षित थे; उनके घरों के द्वार पर खड़े होकर भी कोई उनका विरोध नहीं कर सकता था। (290)

6. अड़तालीस वर्षों तक उन्होंने बाल ब्रह्मचर्य का पालन किया; पूर्व में ब्राह्मण दिव्य ज्ञान और अनुकरणीय आचरण की खोज में जाते थे। (291)

7. ब्राह्मण दूसरी जाति की स्त्री से विवाह नहीं करते थे, न ही वे पत्नी खरीदते थे; वे एक साथ आने के बाद आपसी प्रेम में सहवास करना चुनते थे। (292)

8. मासिक धर्म की समाप्ति के समय को छोड़कर ब्राह्मण यौन संबंध नहीं बनाते थे। (293)

9. उन्होंने ब्रह्मचर्य और नैतिक गुणों, सत्यनिष्ठा, नम्रता, तपस्या, कोमलता, करुणा और धैर्य की प्रशंसा की। (294)

10. उनमें श्रेष्ठ, बलवान ब्राह्मण, नींद में भी यौन संबंध नहीं बनाते थे। (295)

11. उनके आद्यतन का अनुकरण करते हुए इस संसार के कुछ ज्ञानी पुरुषों ने ब्रह्मचर्य और नैतिक गुणों की प्रशंसा की और इस प्रकार अतुलनीय शांति प्राप्त की। (296)

12. चावल, पलंग, वस्त्र, मक्खन और तेल माँगकर और उन्हें विधिपूर्वक एकत्रित करके, उन्होंने उनसे यज्ञ किया, और यज्ञ का समय आने पर उन्होंने गायों की हत्या नहीं की। (297)

13. माता, पिता, भाई और अन्य सगे-संबंधियों के समान गायें हमारी सबसे अच्छी मित्र होती हैं, जिनमें औषधियाँ उत्पन्न होती हैं। (298)

14. वे भोजन देती हैं, शक्ति देती हैं, साथ ही रंगत और सुख भी प्रदान करती हैं; इस वास्तविकता को जानते हुए भी उन्होंने गायों की हत्या नहीं की। (299)

15. वे सुशोभित, विशाल, आकर्षक, प्रसिद्ध, स्वभाव से ब्राह्मण और अपने-अपने कार्यों के प्रति उत्साही थे; जब तक वे संसार में रहे, यह वंश समृद्ध हुआ। (300)

16. परन्तु उनमें परिवर्तन आया: राजा की समृद्धि और सुशोभित स्त्रियों को धीरे-धीरे देखकर, (301)

17. उत्तम घोड़ों द्वारा खींचे जाने वाले सुगठित रथ, रंग-बिरंगे कालीन, कमरों में विभाजित और नापे हुए महल और घर, (302)

18. असंख्य गायों से सुसज्जित विशाल मानव संपदा और सुंदर स्त्रियों के समूह को देखकर ब्राह्मण लोभी हो गए। (303)

19. तब उन्होंने इस विषय पर भजन रचकर ओक्काका के पास जाकर कहा: 'आपके पास बहुत धन और अनाज है, अपनी अपार संपत्ति का त्याग कीजिए, अपने अपार धन का त्याग कीजिए।' (304)

20. फिर रथों के स्वामी राजा ने ब्राह्मणों के निर्देशानुसार असमेध, पुरिसमेध, सम्मपासा और वाकापेय्य यज्ञ बिना किसी बाधा के संपन्न किए, और इन यज्ञों का अर्पण करने के बाद ब्राह्मणों को धन दिया: (305)

21. गायें, पलंग, वस्त्र, सुशोभित स्त्रियाँ, उत्तम घोड़ों द्वारा खींचे जाने वाले सुगठित रथ, रंग-बिरंगे कालीन, (306)

22. सुंदर महल, जो अच्छी तरह से विभाजित थे; और इन्हें विभिन्न प्रकार के अनाज से भरकर, उन्होंने यह धन ब्राह्मणों को दिया। (307)

23. इस प्रकार धन प्राप्त करने पर उन्होंने भंडार की इच्छा की, और अपनी इच्छाओं के आगे झुकने वालों की लालसा और भी बढ़ गई; तब उन्होंने इस विषय पर भजन रचकर ओक्काका के पास जाकर कहा: (308)

24. 'जैसे जल, पृथ्वी, सोना, धन और अनाज आवश्यक हैं, वैसे ही मनुष्यों के लिए गायें आवश्यक हैं, क्योंकि यह जीवित प्राणियों के लिए आवश्यक है; अपनी बड़ी संपत्ति का त्याग करो, अपने धन का त्याग करो।' (309)

25. तब रथों के स्वामी राजा ने ब्राह्मणों के निर्देशानुसार लाखों गायों का बलिदान करवाया। (310)

26. गायें बकरियों के समान होती हैं, वे अपने पैरों या सींगों से किसी को चोट नहीं पहुँचातीं, वे कोमल होती हैं और दूध देती हैं, राजा ने उन्हें सींगों से पकड़कर हथियार से मरवा दिया। (311)

27. तब देवताओं, पूर्वजों, इंद्र (देवताओं/देवदूतों के राजा), असुरों और राक्षसों ने चिल्लाकर कहा, 'यह अन्याय है,' क्योंकि हथियार गायों पर गिरा था। (312)

28. पहले तीन रोग थे: इच्छा, भूख और क्षय, परन्तु पशुओं की हत्या से अट्ठानवे रोग उत्पन्न हो गए। (313)

29. हिंसा का यह अन्याय जो हम तक पहुँचा है, पुराना है; निर्दोष गायों की हत्या की जाती है, यज्ञ करने वाले पुरोहित धर्म से विमुख हो गए हैं। (314)

30. अतः इस पुराने और नीच धर्म की बुद्धिजीवियों द्वारा निंदा की जाती है; जहाँ लोग ऐसे व्यक्ति को देखते हैं, वे यज्ञ करने वाले पुरोहित की निंदा करते हैं। (315)

31. अतः धर्म के लुप्त होने से सुद्दा (निम्न जाति) और वेस्सिका (व्यापारी वर्ग) में मतभेद हो गया, क्षत्रिय (योद्धा, शासक) अनेक प्रकार से असहमत हो गए, पत्नी अपने पति से घृणा करने लगी। (316)

32. क्षत्रिय, ब्राह्मण और अन्य वे लोग जो अपनी जाति के संरक्षण में थे, वंश संबंधी विवादों को समाप्त करने के बाद, इंद्रिय सुखों के वश में आ गए। (317)

यह सुनकर उन धनी ब्राह्मणों ने भगवान (भगवान बुद्ध) से इस प्रकार कहा: 'हे पूज्य गौतम बुद्ध! यह उत्तम है! हे पूज्य गौतम बुद्ध! जैसे कोई गिरी हुई वस्तु को उठाता है, या छिपी हुई वस्तु को प्रकट करता है, या भटके हुए को मार्ग दिखाता है, या अंधेरे में तेल का दीपक जलाता है ताकि देखने वाले वस्तु को देख सकें, वैसे ही पूज्य गौतम बुद्ध ने अनेक तरीकों से धम्म का स्पष्टीकरण किया है; हम पूज्य

गौतम बुद्ध, धम्म और भिक्षु सभा की शरण लेते हैं; हे पूज्य गौतम (बुद्ध) हमें अपने अनुयायियों (उपासक) के रूप में स्वीकार करें, जिन्होंने आज से जीवन भर के लिए उनकी शरण ली है।

ब्रह्मनाधम्मिकसूत्र समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
7. ब्राह्मणधम्मिकसुत्तम्
एवं मे सुतं – एकं समयं भगव सावत्थियं विहारति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स अरामे। अथा खो सम्भुला कोसलका ब्राह्मणमहाशाला जिन्ना वुधा महल्लका अद्धगाता वयोनुप्पट्टा येन भगव तेनुपसांकमिंसु; उपसंकमित्वा भगवत् सद्धिं सम्मोदिंसु । सम्मोदानियं कथं सारण्यं वितिसरेत्व एकमंतं निसिदिंसु। एकमंतं निसिन्ना खो ते ब्राह्मणमहाशाला भगवंतं एतदावोकुम् - "संदिस्सांति नु खो, भो गोतम, एतराहि ब्राह्मणा पोराणाणं ब्राह्मणां।" ब्राह्मणधम्मेति? "न खो, ब्राह्मणा, संदिस्सांति एतरहि ब्राह्मणा पोराणां ब्राह्मणां ब्राह्मणादम्मेति।" "साधु नो भावं गोतमो पोराणाणं ब्राह्मणानं ब्राह्मणं धम्मं भासतु, ससे भोतो गोतमस्सा अगरु"ति। "तेन हि, ब्राह्मण, सुनथ, साधुकं मनसि करोथा, भसिस्सामि"ति। "एवं, भो'ति खो ते ब्राह्मणमहाशाला भगवतो पचसोसुम्।' भगव एतादावोका -
286.
"इसायो पुब्बका आसुं, सन्नत्तत्ता तपस्सिनो;
Pañca kāmaguṇe hitvā, attadatthamacārisuṃ.
287.
"न पसु ब्राह्मणानासुं, न हिरण्यं न धनियाम्;
सज्जायधनधन्नासुं, ब्रह्मं निधिमापलयुं।
288.
"यं नेसं पकातं असि, द्वारभट्टं उपथित:;
सद्धापकातमेसानां, दातवे तदमनिसुं।
289.
"नाणारत्तेहि वत्थेहि, सयानेहावसथेहि च;
फ़िता जनपद रथा, ते नमस्सिंसु ब्राह्मणे।
290.
"अवज्झा ब्राह्मण आसुं, अजेय धम्मरक्खिता;
न ने कोचि निवारेसि, कुलद्वारेसु सब्बासो।
291.
"अट्ठाचट्टालिसं वस्सनि, (कोमरा) ब्रह्मकार्यं कैरिसु ते;
विज्जाचरणपर्येतिथिं, अकारुं ब्राह्मण शुद्ध।
292.
"न ब्राह्मणा अण्नामगमुम्, नापि भारियं किणिन्सु ते;
संपियेनेव संवासं, संगन्त्वा समारोचयुम्।
293.
"अन्नत्र तमहा समया, उत्तुवेरामनिं पति;
अंतरा मेथुनं धम्मं, नस्सु गच्छन्ति ब्राह्मणा।
294.
"ब्रह्मचर्यञ्च सिलञ्च, अज्जवं मद्दवं तपं;
सोराक्कं अविहिंसाचा, खंतीन्चापि अवननायुं।
295.
"यो नेसं परमो असि, ब्रह्मा दहपरक्कमो;
स वापि मेथुनं धम्मं, सुपिनन्तेपि नागमा।
296.
"तस्सा वत्तमनुसिक्खंता, इधेके विन्नुजातिका;
ब्रह्मचर्यञ्च सिलञ्च, खन्तिञ्चपि अवन्नयुम्।

297.
"तंदुलं सयानं वत्थं, सप्पितेलञ्च याचिया;
धम्मेन समोधनेत्व, ततो यान्नमकप्पायुं।
298.
" उपपतिहस्मिं यान्नस्मिं, नस्सु गावो हनिसु ते;
यथा माता पिता भता, अण्णे वापि च नातक;
गावो नो परम मित्ता, यासु जयंती ओसाधा।
299.
"अन्नदा बलदा सीता, वनदा सुखदा तथा [सुखदा च ता (का.)];
एतमत्तवसं नात्वा, नस्सु गावो हनिसु ते।
300.
"सुखुमला महाकाया, वनवंतो यसस्सिनो;
ब्राह्मण सेहि धम्मेहि, किक्काकिचेसु उस्सुका;
याव लोके अवत्तिन्सु, सुखमेधिट्ठयं पजा।
301.
"तेसं असि विपल्लसो, दिस्वाना अनुतो अनुं;
राजिनो च व्याकरणं, नारियो समालंकता।
302.
"रथे चजन्नसायुते, सुकते चित्तसिब्बन;
निवेसने निवेसे च, विभत्ते भगसो मिते।
303.
"गोमंडलपरिब्युधं, नारिवरगणायुतम्;
उदारं मानुषं भोगं, अभिज्जयिन्सु ब्राह्मण।
304.
"ते तत्थ मन्ते गन्तेत्वा, ओक्ककं तदुपगमुम्;
पहुताधनाधनोसि , यजस्सु बाहु ते वित्तं ;
Yajassu bahu te dhanaṃ.
305.
"ततो च राजा सन्नत्तो, ब्राह्मणेहि रथेसभो;
असमेधं पुरीसमेधं, सम्मापासं वाजपेयं निरग्गाडं;
एते यगे यजित्वान, ब्राह्मणानमदा धनम्।
306.
"गावो सयानांच वत्थानचा, नारियो समालंकटा;
रथे चजन्नसयुत्ते, सुकते चित्तसिब्बन।
307.
"निवेशनानि रम्मानि, सुविभट्टानि भगसो;
नानाधान्नस्स पुरेत्वा, ब्राह्मणानमदा धनं।
308.
"ते च तत्थ धनं लद्धा, सन्निधिं समारोचयुं;
तेसं इच्छावतिन्नानं, भय्यो तन्हा पवधथा;
ते तत्थ मन्ते गन्तेत्वा, ओक्ककं पुनमुपगमुम्।
309.
"यथा आपो च पथवि च, हिरण्यं धनधनीयं;
एवं गावो मनुस्साणं, परिक्खरो सो हि पणिनं;
यजस्सु बाहु ते वित्तं, यजस्सु बाहु ते धनं।
310.
"ततो च राजा सन्नत्तो, ब्राह्मणेहि रथेसभो;
नेका सतासाहस्सियो, गावो यान्ने अघातयि।

311.
"न पदा न विसानेन, नस्सु हिंसान्ति केनसि;
गावो ईकासमाना, सोरता कुंभदुहना;
ता विसाणे गहेत्वाना, राजा सत्थेन घटयि।
312.
"ततो देव पितरो च [ततो च देव पितरो (सि. स्या.)], इंदो असुररक्खसा;
अधम्मो इति पक्कंडुं, यं सत्थं निपति दे।
313.
"तयो रोगा शुद्ध आसुं, इच्छा अनासनं जरा;
पशुनाञ्च समारम्भा, अट्ठानवुतिमागामुम्।
314.
"एसो अधम्मो दण्डनं, ओक्कन्तो पुराणो अहु;
अदुसिकायो हन्नन्ति, धम्म धंसन्ति [धंसेन्ति (सि. पि.)] याजका।
315.
"एवमेसो अनुधम्मो, पोराणो विणुगाराहितो;
यत्था एडिसकं पस्सति, यजकं गरहति [गरहि (का.)] जानो।
316.
"एवं धम्मे वियापन्ने, विभिन्ना सुद्दवेसिका;
पुथु विभिन्ना खट्टिय, पतिं भारियावमन्नथा।
317.
" खट्टिय ब्रह्मबंधु च, ये चने गोत्तरक्खिता;
जातिवादं निरंकत्वा [निराकत्वा (?) यथा अनिरक्तज्झानोति], कामनां वसमनवगु'न्ति।
एवं वुट्टे, ते ब्राह्मणमहाशाला भगवन्तं एतदावोकुम् - "अभिकान्तं, भो गोतम...पे।" ... उपासके नो भावं गोतमो धारेतु अजजतग्गे पाणुपेटे शरणं गते'ति।
ब्राह्मणधम्मिकासुत्तं सत्तमं निहितं।

पाली-देवनागरी
7. ब्राह्मणधम्मिकसुत्तं
एवं मे सुतं – एकं समयं भगव सावथ्यं विहारी जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो संभुला कोसलका ब्राह्मणमहाशाला जिन्ना वुद्धा महल दल्लका अद्धगाता वयोअनुप्पत्ता येन भगवा तेनुपसङकमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवत् सद्धिं सम्मोदिंसु। सम्मोदनेयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमंतं निसिदिन्सु। एकमंतं निशिनंदना खो ते ब्राह्मणमहाशाला भगवन्तं एतदवोचुं - "संदिसंन्ति नु खो, भो गोतम, एतहि ब्राह्मणा पोरानानं ब्राह्मणानं ब्राह्मणधम्मे"ति? "न खो, ब्राह्मणा, सन्दिसंन्ति एतारि ब्राह्मणा पोरानानं ब्राह्मणानं ब्राह्मणधम्मे"ति। साधु नो भवनं गोतमो पोरानानं ब्राह्मणानं ब्राह्मणधम्मं भासतु, सचे भोतो गोतमस्स अरुति। "तेन हि, ब्राह्मणा, सुनथ, साधुकं मनसि करोथ, भासिस्सामि"ति। "एवं, भो"ति खो ते ब्राह्मणमहाशाला भगवतो पच्चस्सोसं। भगवा एतदवोच -
2.
"इसयो पुब्बका आसुं, संञ्ञत्ता तपस्सिनो।"
पञ्च कामगुणे हित्वा, अत्तदत्थमचारिसुं॥
2.
"न पसु ब्राह्मणानासुं, न हिरण्यं न धानियं।
सज्जायधनधन्नासुं, ब्रह्मं निधिमपाल्युं॥
2.
"यं नेसं पक्तं असि, द्वारभट्टं उपत्थितं।
साधपक्तमेसानं, दातवे तदमन्निसुं॥
2.
"नानारत्तेहि वत्थेहि, सयनेहावसथेहि च।
फ़िफ़िया जिला रत्था, ते नमस्सिंसु ब्राह्मणे॥
2.

" अवज्झा ब्राह्मणा आसूं, अजेय धम्मरखिता।"
न ने कोचि निवारेसी, कुलद्वारेसु सब्बसो॥
291.
"अत्थचत्तालिसं वस्सानि, (कोमार) ब्रह्मचर्यं चरिंसु ते।"
विज्जाचरणपरियेट्ठिं, अचरुं ब्राह्मणा पूरे॥
292.
"न ब्राह्मणा अञ्जनगममुं, नपि भारियं किंन्सु ते।"
संपियेनेव संवासन, सङ्गन्त्वा समारोच्युं॥
2वीं.
"अञञ्त्र तमहा समया, उतुवेर्मनिं पति।"
अंतरा मेथुनं धम्मं, नास्सु गच्छन्ति ब्राह्मणा॥
2.
"ब्रह्मचर्यञ्च सीलञ्च, अजज्वं मद्दवं तपं।
सोरचं च अविहिंसंदच, खन्तिञ्चपि अवन्न्युं॥
2.
"यो नेसं परमो असि, ब्रह्मा दळ्हप्रकामो।
स वापि मेथुनं धम्मं, सुपिनन्तेपि नागमा॥
2.
"तस्स वत्तमनुसिक्खन्ता, इधेके विञ्जुजातिका।
ब्रह्मचर्यञ्च सीलञ्च, खन्तिञ्चपि अवन्न्युं॥
2.
"तंडुलं सयनं वत्थं, सप्पितेलनदच यचय।'
धम्मेन समोधनेत्वा, ततो यञ्जमकप्प्युं॥
2.
" उपत्थितस्मिं यञ्जस्मिं, नास्सु गावो हनिंसु ते।
यथा माता पिता भाता, अञ्जने वापि च नाटक।
गावो नो परमा मित्ता, यासु जयंती ओषाधा॥
2.
"अ संज्ञा बलदा चेता, वंदा सुखदा तथा [सुखदा च ता (क०)]।
एतमथवसं ञत्वा, नास्सु गावो हनिंसु ते॥
.
"सुखुमाला महाकाया, वन्वन्तो यसस्सिनो।"
ब्राह्मणा सेहि धम्मेहि, किच्चाकिच्चेसु उससुका।
याव लोके अवत्तिनसु, सुखमेधिथयं पजा॥
301.
"तेसं असि विपलडालासो, दिस्वां अत्यतो अत्यं।
राजिनो च व्याकरणं, नारियो समलक्ता॥
302.
"रथे चाजञ्चसंयुत्ते, सुकते चित्तसिब्बने।
निवेसने निवेसे च, विभत्ते भागसो मिते॥
303.
"गोमंडलपरिब्युळहं, नारीवरगणयुतं।
उळारणं मनुसं भोगं, अभिज्जयिंसु ब्राह्मणा॥
3
"ते तत्थ मन्ते गंथेत्वा, ओ फ़्रकाकं तदुपगमुं।
पहुतधनधन्नोसि , यजस्सु बहु ते वित्तं।
यजस्सु बहु ते धनं॥
305.

"ततो च राजा संञत्तो, ब्राह्मणेहि रथेशेभो।
अस्समेधं पुरिसमेधं, सम्मापासं वाजपेयं निर्ग्गळं।
एते यागे यजित्वान्, ब्राह्मणानमदा धनं॥
3
"गावो सयन्नदच वत्थनच, नारियो समलकता।
रथे चाजञ्चसंयुत्ते, सुकते चित्तसिब्बने॥
तीन सप्ताह
"निवासनानि रम्मानि, सुविभत्तानि भागसो।
नैनाधन्नसस पूरेत्वा, ब्राह्मणानमदा धनं॥
3.
"ते च तत्थ धनं लद्धा, सन्निधिं समारोच्युं।
तेसं इच्छावतिन्नं, भय्यो तन्हा पवन्नथ।
ते तथा मन्ते गंथेत्वा, ओ फ्रकाकं पुनमुपागमुन्॥
3 सप्ताह.
"यथा आपो च पथ्वी च, हिरण्यं धनधान्यं।
एव गावो मनुस्सानं, परिक्खरो सो हि पाणिनं।
यजस्सु बहु ते वित्तं, यजस्सु बहु ते धनं॥
3 1.
"ततो च राजा संञत्तो, ब्राह्मणेहि रथेशेभो।
नेका सत्सहस्सियो, गावो यांजे अघातयि॥
3 10.
"न पदा न विसानेन, नस्सु हिंसान्ति केन्चि।"
गावो एळकस्माना, सोरता कुंभदूहना।
ता विसाणे गहेत्वान्, राजा साथेन घातयि॥
311.
"ततो देवा पितरो च [ततो च देवा पितरो (सी० स्या०)], इंदो असुररक्षसा।
अधम्मो इति पकन्दुं, यं सत्थं निपति गवे॥
35.
"तयो रोगा पूरे आसुं, इच्छा अनसनं जरा।"
पसूनञ्च समारम्भा, अत्थानवुतिमागमुन॥
3.
" एसो अधम्मो दंडनं, ओकांतो पुराणो आहु।"
अदुसिकायो हञ्जन्ति, धम्म धंसन्ति [धंसेन्ति (सी० पी०)] याजका॥
35.
"एवेमेसो अनीधम्मो, पोराणो विञ्जुगृहितो।
यथा एडिसकं पस्सति, याजकं गरहति [गरही (क०)] जानो॥
31.
"एवं धम्मे वपन्ने, विभी सत्यावेससिका।"
पुत्थु विभि संञा खट्टिया, पतिं भारियावमन्थः।
31.
"खत्तिया बंध ब्रह्यु च, ये चञ्चे गोत्तरखिता।
जातिवादं निरंकत्वा [निराकत्वा (?) यथा अनिराकतज्झानोति], कामानं वसमनवगु"न्ति॥
एवं वुत्ते, ते ब्राह्मणमहाशाला भगवंतं एतदवोचुं - "अभिकांतं, भो गोतम...पे.... उपासके नो भवन गोतमो धारेतु अजदतग्गे पाणुपेते शरणं गते"ति।
ब्राह्मणधम्मिकसुत्तं सत्तमं निश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> सुत्तनिपात >> 2.8 नवसुत्त
वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<-->>>> अगला

अच्छे और विद्वान शिक्षक का चयन करना।

अंतर्वस्तु

अनुवाद

1. मनुष्य को उसी की उपासना करनी चाहिए जिससे वह धम्म सीखता है, जैसे देवता इंद्र (देवताओं/देवदूतों के राजा) की उपासना करते हैं; विद्वान व्यक्ति, जिसकी उपासना की जाती है और जो उससे प्रसन्न होता है, वह (सर्वोच्च) धम्म को प्रकट करता है। (318)

2. उस (धम्म) को सुनकर और उस पर विचार करके, जो बुद्धिमान व्यक्ति (सर्वोच्च) धम्म के अनुरूप धम्म का अभ्यास करता है, वह ऐसे (विद्वान शिक्षक) के साथ लगन से रहकर विद्वान, कुशल और निपुण हो जाता है। (319)

3. जो व्यक्ति किसी नीच (शिक्षक), मूर्ख (जिसने अर्थ नहीं समझा है) और ईर्ष्यालु (ईर्ष्यालु) की सेवा करता है, वह संदेह पर विजय प्राप्त किए बिना और धम्म को समझे बिना ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता है। (320)

4. जैसे कोई व्यक्ति नदी में उतरने के बाद, जो तीव्र धारा वाली मैली नदी है, धारा के साथ बहता चला जाता है, तो वह दूसरों को कैसे पार करा पाएगा? (321)

5. फिर भी, जो व्यक्ति धम्म को नहीं समझता, विद्वानों की व्याख्या पर ध्यान नहीं देता, स्वयं उसे नहीं जानता, और संदेह को दूर नहीं कर पाता, वह दूसरों को कैसे समझा सकता है? (322)

6. जैसे कोई व्यक्ति पतवार और चप्पू से सुसज्जित एक मजबूत जहाज पर सवार होकर, मार्ग जानकर और कुशल एवं विचारशील होकर, कई अन्य लोगों को पार कराता है, (323)

7. उसी प्रकार, जो सिद्ध, सुसंस्कृत, विद्वान और निडर है, वह स्वयं धम्म को जानकर, ध्यान और परिश्रम से संपन्न अन्य लोगों को धम्म समझाता है। (324)

8. अतः वास्तव में, व्यक्ति को एक अच्छे, बुद्धिमान और विद्वान व्यक्ति की संगति करनी चाहिए; जो व्यक्ति नियमित जीवन व्यतीत करता है, जिसने अच्छाई को समझा है और धम्म में पारंगत हुआ है, उसे सुख प्राप्त होगा। (325)

नवसूत्र समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
8. नवासुत्तं
318.
यस्मा हि धम्मं पुरिसो विजन्या, इंदव नं देवता पूज्येय;
तो पूजितो तस्मि पसन्नचित्तो, बहुसुतो पाटुकरोति धम्मं।
319.
तदतिथिकत्वन निसम्मा धीरो, धम्मनुधम्मं पतिपज्जमानो;

विण्णु विभावि निपुणो च होति, यो तदिसं भजति अप्पमत्तो।
320.
ख़ुदादंच बलं उपसेवामानो, अनागततत्थान्च उसुयंकाच;
इधेव धम्मं अविभावयित्वा, अवितिन्नकंखो मरणं उपेति।
321.
यथा नरो अपागमोत्रित्वा, महोदकं सलिलं सिंहसोतम्;
सो वुयहमानो अनुसोतागामी, किं सो परे सक्खति तारयेतुम्।
322.
तथेव धम्मं अविभावयित्वा, बहुसुतानं अनिसामयत्थम्;
सयं अजानं अवितीनकंखो, किं सो परे सक्खति निज्जपेतुं।
323.
यथापि नवं दहमारुहित्वा, फियेना [पियेना (सि. स्या.)] रित्तेन समांगिभूतो;
तो तारये तथा बहुपि अण्णे, तत्रूपायनु कुसालो मुतिमा [मतिमा (स्या. का.)]।
324.
एवमपि यो वेदागु भावितत्तो, बहुसुतो होति अवेधाधम्मो;
सो खो पारे निज्झपाये पजानं, सोतावधनुपनीसुपापन्ने।
325.
तस्मा हवे सप्पुरिसं भजेथा, मेधाविनान्सेवा बहुसुतान्चा;
अन्नया अत्थं पतिपज्जमानो, विनाताधम्मो स सुखं [सो सुखं (सि.)] लभेथति।
नवासुत्तं अठहमं नियतं।

पाली-देवनागरी
8. नावसुत्तं
318.
यस्मा हि धम्मं पुरिसो विज्ञान, इंदव नं देवता पूजयेय।
सो पूजितो तस्मि पस संज्ञाचित्तो, बहुसुतो पटुकरोति धम्मं॥
311.
तदट्ठिकत्वं निसम्म धीरो, धम्मनुधम्मं पतिपजदजमानो।
विञ्जु विभावी नक्षत्रो च होति, यो तदिसं भजति अप्पमत्तो॥
32.
कुद्दञ्च बलं उपसेवमानो, अनागततत्थञ्च उसुयक्ञ्च।
इधेव धम्मं अविभावयित्वा, अवितिन्नको मरणं उपेति॥
320.
यथा नरो आपगमोतरित्वा, महोदकं सलिलं सीघसोतं।
सो वुयहमानो अनुसोतगामी, किं सो परे सक्खति तारयेतुं॥
3.
तथेव धम्मं अविभावयित्वा, बहुसुतानं अनिसामयथं।
सयं अजानं अवितिन्नकङ्खो, किं सो परे सक्खति निज्झपेतुं॥
3
यथापि नावं दळ्हामारुहित्वा, फियेन [पियेन (सी० स्या०)] ऋत्तेन समङ्गीभूतो।
सो तारये तथा बहुपि अञ्चे, तत्रूपयञ्जु कुसलो मुतीमा [मतिमा (स्या० क०)]॥
3/4.
एवमपि यो वेदगु भावितत्तो, बहुसुतो होति अवेधधम्मो।
सो खो परे निजझपये पजानं, सोतावधनुपनीसुपपनदने॥
322.
तस्मा हवे सप्पुरिसं भजेथ, मेधाविञ्चेव बहुसुसुतञ्च।
अञ्जन्या अत्थं पतीपज्जमानो, विञ्जनात्धम्मो स सुखं [सो सुखं (सी०)] लभेथाति॥
नावसुत्तं अट्ठमं निश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> सुत्तनिपता >> 2.9 किम्सिलासुत्त
वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<-->>>> अगला

सर्वोच्च कल्याण कैसे प्राप्त करें।

अंतर्वस्तु

2.9 किम्सिलासुट्टा

अनुवाद

1. किस सद्गुण, किस आचरण और किन कर्मों से मनुष्य (आदेशों में) पूर्णतः स्थापित होगा और सर्वोच्च लाभ प्राप्त करेगा? (326)

2. उसे बड़ों का आदर करना चाहिए, ईर्ष्या नहीं करनी चाहिए, उसे अपने गुरुओं से मिलने का (उचित) समय जानना चाहिए, उसे उनके धर्म प्रवचनों को सुनने का (उचित) क्षण जानना चाहिए, उसे उनके सुविचारित वचनों को ध्यानपूर्वक सुनना चाहिए। (327)

3. उसे उचित समय पर अपने गुरुओं के समक्ष जाना चाहिए, उसे हठधर्मिता का त्याग करके विनम्र होना चाहिए, उसे अच्छे गुणों, धर्म, आत्मसंयम और ब्रह्मचर्य का स्मरण और अभ्यास करना चाहिए। (328)

4. उसका आनंद धर्म में होना चाहिए, उसे धर्म में प्रसन्न होना चाहिए, उसे धर्म में दृढ़ रहना चाहिए, उसे धर्म की खोज कैसे करनी है यह जानना चाहिए, उसे धर्म को दूषित करने वाला कोई विवाद नहीं उठाना चाहिए, और उसे अपना समय सुविचारित सत्यों का उच्चारण करने में व्यतीत करना चाहिए। (329)

5. हास्यास्पद बातों, विलाप, भ्रष्टाचार, छल, पाखंड, लोभ और अहंकार, शोर-शराबा और कठोरता, दुराचार और मूर्खता का त्याग करके, उसे मोह से मुक्त होकर स्थिर मन से जीवन व्यतीत करना चाहिए। (330)

6. जिन शब्दों का सार समझा जाता है, वे सुगठित होते हैं, और जो सुना जाता है, यदि समझा जाए, तो उसमें ध्यानमग्नता का सार होता है, परन्तु जो व्यक्ति उतावला और आलसी है, उसका पन्ना (प्रत्यक्ष अनुभवात्मक बोध) और ज्ञान नहीं बढ़ता। (331)

7. जो अरहतों (प्रबुद्धों) द्वारा घोषित धम्म में आनंदित होते हैं, वे वाणी, मन और कर्म में अतुलनीय होते हैं, वे शांति, कोमलता और ध्यान में स्थापित होते हैं, और उन्होंने ज्ञान और पन्ना (प्रत्यक्ष बोध) का सार प्राप्त कर लिया होता है। (332)

किमसिलसुत्त समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन

9. किंसीलासुत्तं

326.

"किंसिलो किंसमाचारो, कानि कम्मनि ब्रुहयं;
नरो सम्मा निविट्ठस्स, उत्तमत्थान्च पापुने"।

327.

"वुधापकाय अनुसूयाको सिया, कालान्नु [कालान्नु (सि. स्या.)] कसा गरुणं [गरुणं (सि.)] दस्सनाय;

धम्मिं कथं एरायितं खनान्नु, सुनेय्य सक्कच्च शुभसितानि।
328.
"कालेन गच्छे गरुणं सकासं, थंभं निरंकत्वा [निराकत्वा (?) नि + आ + कारा + त्वा] निवातवुति;
अत्थं धम्मं संयमं ब्रह्मचर्यं, अनुस्सरे सेवा समाचरे च।
329.
"धम्मरामो धम्मरतो, धम्मे ठितो धम्मविनिच्चयान्नु;
नेवाकेरे धम्मसंदोसवादं, तच्चेहि नियथा शुभसिते।
330.
"हस्सां जपं परिदेवं पदोसं, मायाकटं कुहनं गिद्धि मननं;
सरंभं कक्कसं कसावञ्च मुच्चं [सरंभा कक्कस कसाव मुच्चं (स्या. पि.)], हित्वा केयर वितमदो थित्तत्तो।
331.
"विन्यात्सारणि सुभाषितानि, सुताञ्च विनात्सामधिसारं;
न तस्स पन्ना च सुताञ्च वन्धति, यो सहसो होति नरो पमत्तो।
332.
"धम्मे च ये अरियापवेदिते रता,
अनुत्तारा ते वाचसा मनसा कम्मुना च;
ते शांतिसोरक्कासमाधिसंहिता,
सुतस्सा पनन्या च सरमज्जगु'ति।
किंसिलसुत्तं नवमं नियतं।

पाली-देवनागरी
9. किन्सिलसुत्तं
3.
"किन्सिलो किंसमाचारो, कानि कम्मनि ब्रूह्यं।
नरो सम्मा निविट्ठस्स, उत्तमत्थान्च पापुने"॥
3
"वुन्नापचायि अनुसूयको सिया, कालञ्जु [कालञ्जु (सी० स्या०)] च्स गरुणं [गरुणं (सी०)] दस्सनाय।
धम्मिं कथं एरयितं खंड्नु, सुनेय स स्ट्रोकचच सुभासितानि॥
3
"कालेन गच्छे गुरुणं सकासं, थंभं निरंकत्वा [निरक्त्वा (?) नि + आ + कर + त्वा] निवात्वुति।
अथं धम्मं संयमं ब्रह्मचर्यं, अनुस्रे चैव समाचरे च॥
3
"धम्मरामो धम्मर्तो, धम्मे ठितो धम्मविनिचयञ्चु।
नेवाचेरे धम्मसनदोस्वदं, तच्छेहि नियेत् सुभासितेहि॥
350.
"हसं जप्पं परिदेवं पडोसं, मायाकटं कुहनं गिद्धि मनं।
सारंभं कक्रोकस कसाव मुच्छं (स्या० पी०)], हित्वा चरे वीतमदो थितत्तो॥
3
"विज्ञात्सराणि शुभसितानि, सुतञ्च विज्ञात्ससमाधिसारं।
न तस्स पञ्चा च सुतञ्च वन्नति, यो साहसिको होति नरो पमत्तो॥
3 पूर्व।
"धम्मे च ये आर्यपवेदिते रता,
अनुत्तरा ते वाचसा मनसा कम्मुना च।
ते शांतिसोरचदचसमाधिसंथिता,
सुतस्स पञ्चयाय च सारमज्ज्गु"ति॥
किंसिलसुत्तं नवमं निश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> सुत्तनिपता >> 2.10 उत्थानसुत्त

वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<-->>>> अगला

उदासीन और आलसी नहीं होना चाहिए।

अंतर्वस्तु

2.10 उत्थानसूत्र

अनुवाद

1. उठो, बैठो, सोने का क्या लाभ? जो बीमार हैं, पीड़ा के तीर से ग्रस्त हैं और कष्ट भोग रहे हैं, उनके लिए नींद का क्या अर्थ? (333)

2. उठो, बैठो, शांति के लिए दृढ़ता से सीखो, मृत्यु के राजा को तुम्हें आलसी (पमत्त) जानकर मूर्ख न बनाने दो और तुम्हें अपने वश में न करने दो। (334)

3. उस इच्छा पर विजय प्राप्त करो जिसके लिए देवता और मनुष्य तरसते हैं और जिस पर निर्भर हैं, (उचित) क्षण को अपने हाथ से न जाने दो; क्योंकि जिन्होंने (उचित) क्षण को जाने दिया है, वे नरक में जाने पर पछताएंगे। (335)

4. आलस्य (पमद) अपवित्रता है, निरंतर आलस्य अपवित्रता है; गंभीरता (पप्पमद) और ज्ञान से अपने तीर को निकाल लो। (336)

उत्थानसुत्त समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन

10. उत्थानासुत्तं

333.

उठहत्था निसीदथ, को अत्थो सुपीतेन वो;
अतुरानान्हि का निद्दा, सल्लविद्धाना रुप्पतम्।

334.

उत्थहत्था निसिदथ, दधं सिक्खथा संतिया;
मा वो पमत्ते विन्याय, मक्कुराजा अमोहयित्था वसनुगे।

335.

याया देवा मनुस्सा च, सीता तिष्ठन्ति अथिका;
ताराथेतम विसात्तिकं, खानो वो [खाणो वे (पी. का.)] मा उपाकागा;
खनातिता हि सोकन्ति, निरायमहि संप्पिता।

336.

पमादो रजो पमादो, पमादानुपतितो रजो;
अप्पामादेन विजया, अब्बाहे [अब्बुहे (स्या. पि.), अब्बुहे (का. अट्ठा.)] सल्लमट्टनोति।
उत्थानसुत्तं दशमं निहितम्।

पाली-देवनागरी

दस. उट्ठानसुत्तं

3

उट्ठहत्थ निसीदथ, को अत्थो सुपितेन वो।
आतुरनन्हि का निदा, सल्लविद्धान रुप्पतं॥
3
उट्ठहत्थ निसीदथ, दळ्हं सिक्खथ संतिया।
मा वो पमत्ते विञ्जाय, मच्छचुराजा अमोहयित्थ वसानुगे॥
3.
याय देवा मनुषा च, सीता तिट्ठन्ति अथिका।
तर्थेतं विशत्तिकं, खणो वो [खणो वे (पी० क०)] मा उपचचगा।
खनतिता हि सोचन्ति, निरयम्हि संप्पिता॥
36.
पमादो रजो पमादो, पमादनुपतितो रजो।
अप्पमादेन विजजाय, अब्भे [अ उबौल्हे (स्या० पी०), अब्बुहे (क० अट्ठ०)] सल्लमत्तनोति॥
उत्थानसुत्तं दसमं निश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> सुत्तनिपता >> 2.11 राहुलसुत्त
वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<--->>>> अगला

बुद्ध ने राहुल को संन्यासी का जीवन जीने की सलाह दी और उन्हें संसार से अपना मन हटाने और संयमी रहने का उपदेश दिया।

अंतर्वस्तु

2.11 राहुलसूत्र
अनुवाद
1. भगवान बुद्ध ने कहा: 'क्या तुम ज्ञानी पुरुष के साथ निरंतर रहने से उसका तिरस्कार नहीं करते? क्या तुम उसे सम्मान देते हो जो मानव जाति के लिए प्रकाशमान है?' (337)

2. राहुल ने कहा: 'मैं ज्ञानी पुरुष के साथ निरंतर रहने से उसका तिरस्कार नहीं करता; जो मानव जाति के लिए प्रकाशमान है, मैं उसे सदा सम्मान देता हूँ।' (338)

वत्थुगत ने कहा: 3. भगवान बुद्ध ने कहा: 'पाँच इंद्रियों के विषयों, सुंदर और आकर्षक वस्तुओं का त्याग करके, श्रद्धापूर्वक अपने घर से निकलकर, तुम दुखों का अंत करते हो।' (339)

4. 'गुणी मित्रों की संगति करो और एकांत और शांत, दूर निवास स्थान में रहो; भोजन में संयम बरतो।' (340)

5. 'वस्त्र, भिक्षा, बीमारों के लिए आवश्यक वस्तुएँ, निवास स्थान—इन चीजों के लिए लोभ मत करो, ताकि तुम फिर से संसार में न लौटो।' (341)

6. 'पतिमोक्का (विनय उपदेशों) के अनुसार वश में रहो, और पाँचों इंद्रियों के संबंध में, अपने शरीर के प्रति सजग रहो, और संसार से घृणा रखो। (342)

7. 'कारणों (जो परिणाम उत्पन्न करते हैं) से बचो, जो सुखदायक हो और वासना से युक्त हो, अपने मन को शांत और एकाग्र रखो। (343)

8. 'अकारण का प्रेम करो, अभिमान की प्रवृत्तियों को त्याग दो; तब अभिमान का नाश करके तुम शांत रहोगे।' (344)

इस प्रकार भगवान बुद्ध ने पूज्य राहुल को इन श्लोकों से बार-बार उपदेश दिया।

राहुलसूत्र समाप्त होता है।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
11. राहुलसुत्तं
337.
"काच्चि अभिनहासनवास, नवजानासि पण्डितम्;
उक्काधारो [ओक्काधारो (स्या. का.)] मनुस्नानं, कच्चि अपासिटो तया" [तव (सि. अट्ठा.)]।
338.
"नाहं अभिन्हांसवास, अवजानामि पण्डितम्;
उक्काधारो मनुस्नानं, निक्कं अपासिटो मया"।
339.
"पञ्च कामगुणे हित्वा, पियारूपे मनोरमे;
सद्ध्या घरा निक्खम्मा, दुक्खस्सन्तकारो भव।
340.
"मित्ते भजस्सु कल्याणेन, पन्तञ्च सयानासनं;
विवित्तं अप्पनिघ्घोषं, मत्तान्नु होहि भोजने।
341.
"Cīvare piṇḍapāte ca, paccaye sayanāsane;
एतेसु तंहं मकासि, मा लोकं पुनरागामी।
342.
"संवुतो पतिमोक्खस्मिं, इंद्रियेसु च पंचासु;
सति कायगतात्यत्थु, निब्बिदबाहुलो भव।
343.
"निमित्तं परिवज्जेहि, सुभं रघुपासंहितां;
असुभय चित्तं भवेहि, एकग्गं सुसमाहितं।
344.
"अनिमित्तञ्च भवेहि, मननुस्यामुज्जहा;
ततो मनाभिसमय, उपसंतो कैरिसति'ति।
इत्थं सुदां भगव अयस्मान्तं रहुलं इमाही गाथाहि अभिन्हां ओवदति।
राहुलसुत्तं एकादसमं नियतं।

पाली-देवनागरी
11. राहुलसुत्तं
3
"कच्चि अभिनहसंवासा, नावजानासि पण्डितं।
उक्राकाधारो [ओ अत्रकाधारो (स्या० क०)] मनुस्साणं, कचच्चि अपचितो तया" [तव (सी० अट्ठ०)]॥
3 सौ
"नहं अभिनःवाससा, अवजानामि पण्डितं।
उक्रकाधारो मनुस्सानं, निच्चचं अपचितो मया"॥
3
"पञ्च कामगुणे हित्वा, प्रियरूपे मनोरमे।"

साधय घर निखम्म, दुक्खससंतकरो भव॥
3 40.
"मित्ते भजस्सु कल्याणे, पन्तञ्च सयनासनं।"
विवित्तं अप्पनिगघोसं, मत्तञ्चु होहि भोजने॥
3.
"चिवरे पिण्डपते च, पंचचये सयनासने।
एतेसु तंहं मकासि, मा लोकं पुनरागिम॥
3.
"संवुतो पतिमोखस्मिं, इंद्रयेसु च पञ्चसु।
सति कायगतात्यथु, निब्बिदबुलो भव॥
3
"निमित्तं परिवजदजेहि, सुभं रागूपसंघितं।
असुभय चित्तं भवेहि, एकग्गं सुसमाहितं॥
3 40.
"अनिमित्तञ्च भवेहि, मानानुस्यामुज्ज़ः।
ततो मानाभिसमया, उपसंतो चरिस्सति"ति।
इत्थं सुदं भगव इस्मन्तं राहुलं इमाहि गाथाहि अभिनहं ओवदतीति।
राहुलसुत्तं एकादसमं निश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> सुत्तनिपता >> 2.12 वंगिससुत्त (निग्रोधकप्पसुत्त)
वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<-->>>> अगला

वांगिसा निग्रोधकप्पा के भाग्य के बारे में जानना चाहता है, कि क्या वह पूरी तरह से नष्ट हो गया है, या क्या उसका कुछ अंश अभी भी शेष है। बुद्ध उसे उत्तर देते हैं।

अंतर्वस्तु

2.12 वंगीससुत्त (निग्रोधकप्पसुत्त)
अनुवाद
मुझे यह बात सुनाई दी:

एक समय भगवान (भगवान बुद्ध) अलावी में अग्गलावा मंदिर में निवास कर रहे थे। उस समय पूज्य वंगीसा के गुरु, थेरा (वरिष्ठ भिक्षु), निग्रोधकप्पा ने ध्यान करते हुए अमर निर्वाण (अचिरपरिनिभूत) प्राप्त कर लिया था। तब ध्यान करते हुए पूज्य वंगीसा के मन में यह विचार आया:

क्या मेरे गुरु ने निर्वाण (परिनिभूत) प्राप्त किया या नहीं? तब शाम के समय, वंगीसा अपने विश्राम से उठकर भगवान (भगवान बुद्ध) के पास गए, और उन्हें प्रणाम करने के बाद अलग बैठ गए। अलग बैठकर उन्होंने भगवान (भगवान बुद्ध) से यह कहा:

'हे प्रभु, ध्यान करते हुए मेरे मन में यह विचार आया: क्या मेरे गुरु ने निर्वाण प्राप्त किया या नहीं?'

तब पूज्य वंगीसा अपने आसन से उठकर, अपना वस्त्र एक कंधे पर डालकर और अपने जुड़े हुए हाथों को भगवान (बुद्ध) की ओर झुकाकर, उन्हें श्लोकों में संबोधित किया:

1. 'हम उत्कृष्ट पन्ना (प्रत्यक्ष अनुभवात्मक ज्ञान) के स्वामी से प्रार्थना करते हैं: जिन्होंने इस संसार में संदेह को दूर किया, अग्गलावा में एक भिक्षु (भिक्षु) के रूप में प्राण त्यागे, जो सुप्रसिद्ध, प्रसिद्ध और शांत मन के थे। (345)

2. 'हे भगवान (बुद्ध) आपने ही उस ब्राह्मण को "निग्रोधकप्पा" नाम दिया था; वह मोक्ष की कामना करते हुए, बलवान होकर और निर्वाण (अमरता) को प्राप्त करते हुए आपकी उपासना करते हुए विचरण करते थे। (346)

3. 'हे शाक्यमुनि (बुद्ध), सर्वदर्शी, हम सभी इस शिष्य के बारे में (कुछ) जानना चाहते हैं; हमारे कान सुनने के लिए तत्पर हैं, आप हमारे गुरु हैं, आप अतुलनीय हैं। (347)

4. 'हमारे संदेह को दूर करो, मुझे उनके बारे में बताओ, हमें निर्वाण (मुक्ति) का ज्ञान दो, हे महान पन्ना (प्रत्यक्ष अनुभवात्मक ज्ञान) वाले; हमारे बीच बोलो, हे सर्वदर्शी, जैसे हजार नेत्रों वाले सक्का देवताओं के बीच बोलते हैं। (348)

5. 'इस संसार में जो भी बंधन हैं जो अज्ञान के साथ मिलकर मूर्खता का मार्ग बनाते हैं और संदेह का स्थान लेते हैं, वे तथागत (बुद्ध) के सामने अस्तित्वहीन हैं, क्योंकि वे मनुष्यों की सर्वश्रेष्ठ आँख हैं। (349)

6. 'यदि कोई व्यक्ति पाप को हवा की तरह (बादलों के समूह को) हमेशा के लिए दूर नहीं करता है, तो सारा संसार अंधकार में डूब जाएगा, यहाँ तक कि प्रख्यात पुरुष भी प्रकाशमान नहीं होंगे। (350)

7. 'बुद्धिमान पुरुष प्रकाश लाने वाले होते हैं, इसलिए, हे बुद्धिमान, मैं तुम्हें ऐसा ही मानता हूँ; हम उनके पास आए हैं जो विपस्सना (स्व-मग्न विपस्सना ध्यान) का अभ्यास करते हैं, सभा में हमें कल्प प्रकट कीजिए। (351)

8. 'हे सुंदर, जल्दी उठो, हंसों की तरह अपनी सुंदर आवाज को ऊपर उठाओ, मधुर और सुरीली आवाज में गाओ; हम सब तुम्हें ध्यान से सुनेंगे। (352)

9. 'मैंने उस व्यक्ति से पूर्णतः प्रार्थना की है जिसने जन्म-मृत्यु का पूर्णतः त्याग कर पाप से मुक्ति पा ली है, और मैं उससे धर्म का प्रचार करवाऊँगा, क्योंकि साधारण लोग अपनी इच्छा से कुछ नहीं कर सकते, परन्तु तथागत (बुद्ध) उद्देश्यपूर्ण कर्म करते हैं। (353)

10. 'हे पूर्णतः ज्ञानी, आपके द्वारा दी गई यह पूर्ण व्याख्या स्वीकार्य है; हे परम बुद्धि वाले, (कप्पा के पुनर्जन्म को जानने वाले), हाथों का यह अंतिम आलिंगन उचित है; हमें भ्रमित न करें। (354)

11. 'आर्यों (प्रबुद्धों) के धर्म को पूर्णतः समझ लेने वाले, हे अतुलनीय शक्ति वाले, (सब कुछ जानने वाले), हमें भ्रमित न करें; जैसे तपती गर्मी में जल की तृप्ति से व्याकुल व्यक्ति को जल की लालसा होती है, वैसे ही मुझे आपके वचनों की लालसा है; ज्ञान की वर्षा करें।' (355)

12. 'कप्पयान ने जो पूर्ण ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत किया, क्या वह व्यर्थ नहीं गया? क्या उनका अस्तित्व (पूर्णतः) समाप्त हो गया? या क्या उनमें अभी भी अस्तित्व के कुछ अंश शेष हैं? वे कैसे मुक्त हुए, यह हम जानना चाहते हैं।' (356)

13. भगवान (भगवान बुद्ध): 'उन्होंने इस संसार में नाम और रूप की इच्छा का त्याग कर दिया,' - ऐसा भगवान (भगवान बुद्ध) ने कहा, - 'कान्हा (अर्थात् मारा) की धारा का लंबे समय तक अनुसरण करके, उन्होंने जन्म और मृत्यु को पूर्णतः पार कर लिया,' ऐसा भगवान (भगवान बुद्ध) ने कहा, जो पांचों (ब्राह्मणों, पंचवग्गीय) में श्रेष्ठ हैं।' (357)

14. वंगीसा: 'हे इसिस में श्रेष्ठ, आपका वचन सुनकर मैं प्रसन्न हूँ; मैंने व्यर्थ नहीं पूछा, ब्राह्मण ने मुझे धोखा नहीं दिया।' (358)

15. 'जैसा उन्होंने कहा, वैसा ही उन्होंने किया; वे बुद्ध के सच्चे शिष्य थे; उन्होंने छलपूर्ण मृत्यु के फैले हुए मजबूत जाल को काट डाला। (359)

16. 'हे भगवान (बुद्ध) कप्पिया (कप्पयान) ने आसक्ति का आरंभ देखा; कप्पयान ने वास्तव में मृत्यु के क्षेत्र को पार कर लिया, जिसे पार करना बहुत कठिन है।' (360)

वंगीससुत्त समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
12. निग्रोधकप्पसुत्तं
एवं मे सुतं – एकं समयं भगव आडवियां विहारति अग्गाडवे चेतिये। तेना खो पना समयेन अयस्मातो वांगीसस्सा उपज्झायो निग्रोधकप्पो नामा थेरो अग्गावे सेतिये असिरपरिनिब्बुतो होति। अथा खो अयस्मातो वांगीसस्सा रहोगेत्स्सा पतिसलिनस्स एवम् चेतासो परिवितक्को उदापदी - "परिनिब्बुतो नु खो मे उपज्झायो उदाहु नो परिनिब्बुतो"ति? अथ खो अयस्मा वांगिसो सयानहसामयं पतिसल्लाना वुथितो येन भगव तेनुपशंकामि; उपसंकमित्वा भगवन्तं अभिवदेत्वा एकमन्तं निसिदि। एकमंतं निसिन्नो खो अयस्मा वांगिसो भगवन्तं एतदावोका - "इधा मयहं, भंते, रहोगात्स्सा पतिसलिनस्स एवं चेतासो परिवितक्को उदापदी - 'परिनिब्बुतो नु खो मी उपज्झायो, उदाहु नो परिनाबुतो'"ति. अथ खो अयस्मा वंगिसो उत्थयासन एकांश शिवरं कत्वा येन भगव तेनंजलिं पनामेत्वा भगवन्तं गाथाय अज्झाभासि -
345.
"पुच्चामा [पुच्चामि (का.)] सत्थारमणोमपन्नं, दिट्ठेवा धम्मे यो विकिच्चानं चेत्ता;
अग्गावे कालमकसि भिक्खु, नातो यस्सि अभिनिब्बुत्तो।
346.
"निग्रोधकप्पो इति तस्स नामं, तयं कटं भगव ब्राह्मणस्स;
तो तं नमस्सं अचरी मुत्यपेक्खो, अरद्धवीरियो दधधम्मदस्सी।
347.
"तं सवाकं शाक्य [सक्का (सि. स्या. पि.)] मायामपि सब्बे, अनानातुमिच्चामा समंतचक्कु;
समावथिता नो सावनाय सोता, तुवं नो सत्था त्वमनुत्तरोसि।
348.
"चिन्देव नो विचिकीच्चं ब्रूहि मेतं, परिणिब्बुतं वेदया भूरिपन;
मज्झेवा [मज्झे च (स्या. का.)] नो भासा सामंतचक्खु, सक्कोवा देवाना सहस्सनेत्तो।
349.
"ये केचि गंथा इधा मोहमग्गा, अण्णानपक्खा विचिकिचचाना;
तथागतं पट्वा न ते भवन्ति, चक्खुनि एतं परमं नाराणं।
350.
"नहीं सीई हि जातु पुरिसो किलिसे, वातो यथा अब्भधनं विहने;
तमोवस्सा निवुतो सब्बलोको, न जोतिमन्तोपि नारा तपेयुं।
351.
"धीरा च पज्जोत्कारा भवन्ति, तं तं अहं वीरा [धीरा (सि. स्या.)] तथेव मन्ने;
विपश्यिनं जनमुपगमुम्हा [जनमुपगम्हा (सि. स्या.)], परिसासु नो अविकारोहि कप्पं।
352.
"हिप्पां गिरं एराया वग्गु वग्गुं, हंसोवा पग्गयहा सैनिकं [सैणि (स्या. पि.)] निकुजा;
बिंदुस्सेरेण सुविकप्पितेन, सब्बेव ते उज्जुगत सुनोमा।
353.
"पहिनाजतिमरणं असेसं, निग-गय धोनं [धोतं (सि.)] वदेस्सामि धम्मं;
न कामकारो हि पुथुज्जनानं, संखेय्यकारो च [संखय्यकारोवा (का.)] तथागतानं।
354.
"सम्पन्नवेय्याकारणं तवेदं, समुज्जुपन्नस्स [समुज्जपन्नस्स (स्या. का.)] समुग्गहितं;
अयमंजलि पच्चिमो सुप्पनामितो, मा मोहयि जन्मनोमपन्न।
355.
"परोवरं [वरवरं (कत्थचि)] अरियाधम्मं विदित्वा, मा मोहयी जन्मनोमावीरा;
वारिं यथा घम्मानि घम्मतत्तो, वाचभिकंखामि सुतं पवस्सा [सुतस्स वस्सा (स्या.)]।

356.
" यदत्तिकं [यदत्तियं (पी.), यदत्तिथं (का.)] ब्रह्मचर्यं अचरि, कप्पायनो कसीसीसा तं अमोघं;
निब्बयि सो अदु सौपादिसेसो, यथा विमुत्तो अहु तं सुनोमा"।
357.
"अच्चेच्चि [अचेज्जि (का.)] तन्हां इधा नामरूपे, (इति भगव)
कान्हास्सा [तन्हाय (का.)] सोतं दीघरत्तनुसायितम्;
अतरि जातिं मरणं असेसं,"
इक्काब्रवी भगव पञ्कासेठो।
358.
"एसा सुत्वा पसीदामि, वाको ते इसिसत्तमा;
अमोघं किरा मे पुथं, न मम वांसेसि ब्राह्मणो।
359.
"यथावादी तथाकारी, अहु बुद्धस्स सावको;
अच्चिदा मैकुनो जालं, ततं मायाविनो दहहं।
360.
"अद्दासा भगव आदिम, उपादानस्सा कप्पियो;
अच्चगा वात कप्पायनो, मक्कुधेयं सुदत्तरा'न्ति।
निग्रोधकप्पसुत्तं द्वादसमं नियतं।

पाली-देवनागरी
12. निग्रोधकप्पसुत्तं
एवं मे सुतं - एकं समयं भगव आळवियां विहारति अग्गाळवे चेतये। तेन खो पन समयेन इस्मतो वङ्गीसस्स उपज्झायो निग्रोधकप्पो नाम थेरो अग्गाळवे चेतये अचिरपरिनिब्बुतो होति। अथ खो इस्मतो वङ्गिगस्सस्स रोकगतस्स पैटिसलीनस्स एवं चेतसो परिवितो उदपदी - "परिनिब्बुतो नू खो मे बिज्झायो उदाहु नो परिनिब्बुतो"ति? अथ खो इस्मा वाङ्गिसो सायन्हसाम्यं पतिसलदलाना वुत्थितो येन भगवा तेनुपसङकमी; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवदेत्व एकमन्तं निसिदि। एकमंतं निसि साइनो खो इस्मा वङ्गीसो भगवन्तं एतदवोच - "इध म्यहं, भंते, रहोगतस्स पेटिसलडलेनस्स एवं चेतसो परिवित ट्रैक्टको उदपादि - 'परिनिब्बुतो नू खो मे विजझायो, उदाहु नो परिण्बुतो'"ति। अथ खो इस्मा वङ्गिसो उत्थयासना एकंसां चीवरं कत्वा येन भगव तेनदजलिं पनामेत्वा भगवन्तं पुराणाय अज्झासि -
3 44.
"पुच्चम् [पुच्चामि (क०)] सत्थर्मनोमपञ्चं, दित्थेव धम्मे यो विचिकिच्छानं चेत्ता।
अग्गाळवे कालमकासि भिक्खु, नातो यस्सी अभिनिब्बुतत्तो॥
3
"निग्रोधकप्पो इति तस्स नामं, तयं कतं भगव ब्राह्मणस्स।
सो तं नमस्सं अचरी मुत्यपेक्खो, अर्धविरियो दळ्हम्मदस्सी॥
3
"तं सावकं सक्य [सक्रक (सी० स्या० पी०)] मयमपि सब्बे, अञ्चतुमिच्छम समन्तचक्खु।
समवट्ठिता नो सवनाय सोता, तुवं नो सत्था त्वमनुत्तरोसि॥
3.
"छिन्देव नो विचिचिचं ब्रूहि मेतं, परिणिब्बुतं वेद्य भूरिपञ्च।
मझेव [मज्झे च (स्या० क०)] नो भास समन्तचक्खु, सकोव देवन सहस्सनेत्तो॥
3.
"ये केचि गंथा इध मोहमग्गा, अंजानपक्खा विचिकिच्छठाना।
तथागतं पत्वा न ते भवन्ति, चक्खुञ्हि एतं परमं नाराणं॥
3.
"नो चे हि जातु पुरिसो फोर्टसे, वातो यथा अभिधानं विहाणे।
तमोवस्स निवुतो सब्बलोको, न ज्योतिमन्तोपि नरा तपेयुं॥
3.
"धीरा च पज्जोतकरा भवन्ति, तं तं अहं वीर [धीर (सी० स्या०)] तथेव मञ्चे।
विपस्सिनं जनमुपागमुम्हा [जन्मुपगम्म्हा (सी० स्या०)], परिसासु नो अविक्रोहि कप्पं॥

3.
"हिप्पं गिरं एरय वग्गु वग्गुं, हंसोव पग्गयह सैनिकं [सानं (स्या० पी०)] निकुज।
बिन्दुसरेन सुविकप्पितेन, सब्बेव ते उज्दजुगता सुनोम॥
3.
" पहिने जातिमरणं असेसं, निग्गयः धोणं [धोतं (सी०)] वदेस्सामि धम्मं।
न कामकारो हि पुथुजजनानं, सङ्खेय्यकारो च [सङ्खय्यकारोव (क०)] तथागतानं॥
3 44.
"सम्प संज्ञावेयकरणं तवेदं, समुज्जुपञ्चस्स [समुजदजपञ्चस्स (स्या० क०)] समुग्हितं।
अयमञ्जलि पछिमो सुप्पनमितो, मा मोहि जन्मनोमपञ्च।
35.
"परोवरं [वरवरं (कत्थचि)] अरियधम्मं विदित्वा, मा मोहयी जन्मनोमवीर।
वारिं यथा घम्मनि घम्मत्तत्तो, वाचाभिकङखामि सुतं पवस्स [सुतस्स वस्स (स्या०)]॥
3 डॉलर
"यदथिकं [यदथ्यं (पी०), यदत्थितं (क०)] ब्रह्मचर्यं आचार्य, कप्पयणो कच्छचिस्स तं अमोघं।
निब्बायि सो अदु सुउपादिसेसो, यथा विमुत्तो अहु तं सुनोम॥
3.
"अच्छेच्छि [अच्छेज्जी (क०)] तंहं इध नामरूपे, (इति भगवान)
कन्हस्स [तन्हाय (क०)] सोतं दीर्घतांनुसयितं।
अतरि जातिं मरणं असेसं,"
इचदचब्रवी भगवा पञ्चसेत्थो॥
3वीं.
"अस सुत्वा पसीदामि, वाचो ते इसिसत्तम।
अमोघं किर मे पुट्ठं, न मं वञ्चेसि ब्राह्मणो॥
3 इश्यू.
"यथावादी तथाकारी, आहु बुद्धस्स सावको।
अच्छिदा मचचुनो जलं, ततं मायाविनो दळहं॥
3-.
"अद्दसा भगवा आदिं, उपादानस्स कप्पियो।"
अचदचगा वत कप्पयणो, मच्छुधेयं सुदुत्तर"न्ति॥
निग्रोधकप्पसुत्तं द्वादसमं निश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> सुत्तानिपात >> 2.13 सम्मपरिब्बाजनियासुत्त,
वी. फौसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

____

पिछला <<<<--->>>> अगला

____

भिक्षु के लिए सही मार्ग।

____

अंतर्वस्तु

1. 'हम महान पन्ना (प्रत्यक्ष अनुभवात्मक ज्ञान) वाले मुनि (संत) से पूछेंगे, जो पार कर चुके हैं, दूसरे तट पर जा चुके हैं, निर्वाण (परिनिभूत, निर्वाण, मोक्ष, अमरता) प्राप्त कर चुके हैं और दृढ़ मन वाले हैं: एक भिक्षु अपने घर से निकलकर और कामवासनाओं को त्यागकर संसार में सही ढंग से कैसे विचरण करता है?' (361)

2. 'जिसके शकुन, उल्कापिंड, स्वप्न और संकेतों के विश्वास नष्ट हो जाते हैं,' - भगवान बुद्ध ने कहा - - 'ऐसा भिक्षु जिसने पापी शकुनों का त्याग कर दिया है, संसार में सही ढंग से विचरण करता है।' (362)

3. 'भिक्षु को मानवीय और दिव्य सुखों के प्रति अपनी आसक्ति को वश में करना चाहिए, फिर भौतिक अस्तित्व से ऊपर उठकर और धम्म (सत्य) को समझकर, ऐसा व्यक्ति संसार में सही ढंग से विचरण करेगा।' (363)

4. 'भिक्षु निंदा और क्रोध को त्यागकर, लोभ का त्याग कर और आज्ञाकारिता और विरोध से मुक्त होकर संसार में सही मार्ग पर चले, तो ऐसा व्यक्ति संसार में सही मार्ग पर चलेगा। (364)

5. 'जो व्यक्ति सुख और दुख दोनों को त्यागकर, किसी भी चीज का आलिंगन न करके, हर तरह से स्वतंत्र और बंधनों से मुक्त हो, तो ऐसा व्यक्ति संसार में सही मार्ग पर चलेगा। (365)

6. 'जो उपाधियों में कोई सार नहीं देखता, आसक्ति की इच्छा और जुनून को वश में करके, स्वतंत्र होकर और दूसरों के द्वारा निर्देशित न होकर, ऐसा व्यक्ति संसार में सही मार्ग पर चलेगा। (366)

7. 'जो व्यक्ति वचन, विचार या कर्म से किसी का विरोध नहीं करता, जो धम्म को पूर्णतः समझकर निर्वाण (मुक्ति, मोक्ष, अमरता) की अवस्था की कामना करता है, तो ऐसा व्यक्ति संसार में सही मार्ग पर चलेगा। (367)

8. जो यह सोचकर कि "वह मुझे प्रणाम करता है" अभिमानी नहीं होता, जो भिक्षु अपमान सहकर भी उस पर चिंतन नहीं करता, और दूसरों से भोजन ग्रहण करके भी अभिमानी नहीं होता, ऐसा भिक्षु संसार में उचित मार्ग पर चलेगा। (368)

9. जो भिक्षु लोभ और अस्तित्व को त्यागकर दूसरों को काटने-बांधने से विरक्त होता है, जिसने संशय पर विजय प्राप्त कर ली है और पीड़ा रहित है, ऐसा भिक्षु संसार में उचित मार्ग पर चलेगा। (369)

10. और अपने लिए उचित आचरण को जानकर, जो भिक्षु धम्म (सत्य) को भली-भांति समझकर संसार में किसी को हानि नहीं पहुंचाता, ऐसा भिक्षु संसार में उचित मार्ग पर चलेगा। (370)

11. 'जिसके मन में कोई भी भावना न हो, जिसके पाप जड़ से उखड़ गए हों, जो इच्छा से मुक्त हो और किसी भी चीज़ की लालसा न रखता हो, ऐसा व्यक्ति संसार में सही मार्ग पर चलेगा। (371)

12. 'जिसकी वासनाएं नष्ट हो गई हों, जो अहंकार से मुक्त हो, जिसने वासना के सभी मार्गों पर विजय प्राप्त कर ली हो, जो वश में हो, पूर्णतः सुखी (परिनिब्भुत) हो और दृढ़ मन का हो, ऐसा व्यक्ति संसार में सही मार्ग पर चलेगा। (372)

13. 'ज्ञान से परिपूर्ण, निर्वाण की ओर ले जाने वाले मार्ग को देखने वाला, बासठ दार्शनिक मतों के पक्षधरों में से किसी का पक्षधर न होने वाला, लोभ और क्रोध पर विजय प्राप्त कर बुद्धिमान व्यक्ति संसार में उचित मार्ग पर विचरण करेगा। (373)

14. 'जो शुद्ध और विजयी है, जिसने संसार के पर्दे को हटा दिया है, जो धम्मों में लीन है, जो दूसरे तट पर पहुँच गया है, जो इच्छा रहित है, और जो संस्कारों के निवारण के ज्ञान में निपुण है, वह संसार में उचित मार्ग पर विचरण करेगा। (374)

15. 'जिसने भूतकाल और भविष्यकाल में कप्पतीत पर विजय प्राप्त कर ली है, जो अत्यंत शुद्ध पन्ना (प्रत्यक्ष अनुभवात्मक ज्ञान) से युक्त है, जो मन के सभी निवास स्थानों से मुक्त है, वह संसार में उचित मार्ग पर विचरण करेगा। (375)

16. 'चार सत्यों के चरण को जानकर, धम्म को समझकर, वासनाओं के त्याग को स्पष्ट रूप से देखकर, अस्तित्व के सभी तत्वों (उपाधि) को नष्ट करके, ऐसा व्यक्ति संसार में उचित मार्ग पर विचरण करेगा।' (376)

17. 'निश्चित रूप से, हे भगवान (भगवान बुद्ध), ऐसा ही है: जो भी भिक्षु इस प्रकार जीवन व्यतीत करता है, वश में रहकर और सभी बंधनों से मुक्त होकर, ऐसा व्यक्ति संसार में उचित मार्ग पर विचरण करेगा।' (377)

सम्मपरिबजनीयसूत्र समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
13. सम्मापरिब्बाजनीयसुत्तम्
361.
" पुच्चामि मुनिं पहुतापन्नं,
तिन्नं पारंगतं परिनिब्बुतं थित्तत्तं;
निक्खम्मा घरा पनुज्ज कामे, कथं भिक्खु
सम्मा सो लोके परिब्बजेय"।
362.
"यस्सा मंगला समुहता, (इति भगवान)
उप्पता सुपिना च लक्षणा च;
So maṅgaladosavippahīno,
Sammā so loke paribbajeyya.
363.
"रागं विनयेथा मानुसेसु, दिब्बेसु कामेसु कपि भिक्खु;
अतिक्कम्मा भावं समेच्च धम्मं, सम्मा सो लोके परिब्बजेय।
364.
"विपितिथिकत्वन पेसुनानि, कोधं कादरियां जहेय भिक्खु;
अनुरोधविरोधविप्पाहिनो, सम्मा सो लोके परिब्बजेय।
365.
"हित्वाना पियाञ्च अप्पियाञ्च, अनुपादया अनिसिटो कुहिञ्च;
संयोगनीयै विप्पमुत्तो, सम्मा सो लोके परिब्बजेय।
366.
"न सो उपधिसु सरमेति, अदनेसु विनय्य चंद्रागम;
तो अनिसिटो अनान्ननेय्यो, सम्मा सो लोके परिब्बाजेय।
367.
"वाचसा मनसा च कम्मुना च, अविरुद्धो सम्मा विदित्वा धम्मम्;
निब्बानपादाभिपत्थयानो, सम्मा सो लोके परिब्बजेय।
368.
"यो वंदति मन्ति नूनमेय्या [नुन्नामेय्या (?)], अक्कुठोपि न संधियेथा भिक्खु;
लद्धा परभोजनं न मज्जे, सम्मा सो लोके परिब्बजेय।
369.
"लोभञ्च भवन्च विप्पहाया, विराटो छेदनबंधना च [छेदानबंधनतो (सि. स्या.)] भिक्खु;
तो तिन्नकथंकाथो विसल्लो, सम्मा सो लोके परिब्बजेय।
370.
"सरूपपं अतनो विदित्वा, नो च भिक्खु हिंसाय कांची लोके;
यथा तथ्यं विदित्वा धम्मं, सम्मा सो लोके परिब्बजेय।
371.
"यस्सानुसया न शांति केचि, मूल च [मूल (सि. स्या.)] अकुसाला समुहतासे;
तो निरासो [निरासयो (सि.), निरासासो (स्या.)] अनासिसानो [अनासयानो (सि. पि.), अनासासानो (स्या.)], सम्मा सो लोके परिब्बाजेय।
372.

"असावखिणो पहिनामाणो, सब्बं रागपथं उपतिवत्तो;
दन्तो परिणिब्बुतो थित्तत्तो, सम्मा सो लोके परिब्बजेय।
373.
"साधो सुतवा नियमादस्सी, वाग्गागत्सु न वाग्गसारि धीरो;
लोभं दोसं विनेया पतिघं, सम्मा सो लोके परिब्बजेय।
374.
"संशुद्धजिनो विवत्तच्चदो, धम्मेसु वासी परागु अनेजो;
संखरानिरोधनकुसलो, सम्मा सो लोके परिब्बाजेय।
375.
"अतीतेसु अनागात्सु कपि, कप्पातितो अतिच्चसुद्धिपन्नो;
सब्बायतानेहि विप्पमुत्तो, सम्मा सो लोके परिब्बजेय।
376.
"अन्याय पदं समेच्च धम्मं, विवंतं दिस्वान पहानमासवनं;
सब्बुपधिनां परिक्खयानो [परिक्खया (पु.)], सम्मा सो लोके परिक्खय्या"।
377.
"अद्धा हि भगव तथेव एतम्, यो सो एवमविहारी दन्तो भिक्खु;
सब्बासंयोजनयोगावित्वत्तो [सब्बासंयोजनिये च विटिवत्तो (सि. स्या. पि.)], सम्मा सो लोके परिब्बाजेय"ति।
सम्मापरिब्बाजनीयसुत्तं तेरसामं निहितम्।

पाली-देवनागरी
13. सम्मापरिबाबाजनीयसुत्तं
3.
"पुच्चामि मुनिं पहुतपञ्चं,
तिन्नं पारङ्गतं परिनिब्बुतं थितत्तं।
निखम्म घरा पनुज्ज कामे, कथं भिक्खु
सम्मा सो लोके परिब्बजेय"॥
3.
"यस्स मंगला ग्रुपता, (इति भगवान)
उप्पाता सुपिना च लक्षणा च।
सो मङ्गलडोसविप्पहेनो,
सम्मा सो लोके परिब्बजेय॥
3.
"रागं विनेथ मनुसेसु, दिब्बेसु कासु चापि भिक्खु।
अति त्रैकम्म भवं समेचच धम्मं, सम्मा सो लोके परिब्जेय॥
3 सप्ताह।
"विपिट्ठिकत्वान् पेसुनानि, कोधं कादारियं जहेय भिक्खु।
फोर्कविरोधविप्पहेनो, सम्मा सो लोके परिब्बजेय॥
3.
"हित्वान् पियञ्च अप्पियञ्च, अनुपादाय अनिसिस्तो कुहिञ्चचि।
संयोजनयेहि विप्पमुत्तो, सम्मा सो लोके परिब्बजेय॥
3.
"न सो उपधिसु सरमेति, सजनेसु विनेय चंद्रगां।
सो अनिसिस्तो आनंदनेय्यो, सम्मा सो लोके परिब्बजेय॥
3.
"वचसा मनसा च कम्मुना च, अविरुद्धो सम्मा विदित्वा धम्मं।
निब्बानपादाभिपत्थयानो, सम्मा सो लोके परिब्बजेय॥
36
"यो वन्दति मन्ति नुन्नमेय्य [नु संज्ञामेय (?)], अकुत्थोपि न सन्धियेथ भिक्खु।

लद्धा प्रयोजनं न मजाजे, सम्मा सो लोके परिब्बजेय॥
3.
"लोभञ्च भवनदच विप्पय, विरतो छेदेनबन्धना च [छेदानबन्धनतो (सी० स्या०)] भिक्खु।
सो तिन्नकथंकथो विस्लो, सम्मा सो लोके परिब्बजेय॥
3 सप्ताह।
"सरूपं अट्टनो विदित्वा, नो च भिक्खु हिंसेय्य कांचि लोके।"
यथा तथ्यं विदित्वा धम्मं, सम्मा सो लोके परिब्बजेय॥
346.
"यस्सानुसाया न सन्ति केचि, मूला च [मूला (सी० स्या०)] अकुसला समूहतासे।
सो निरासो [निरासयो (सी०), निरासो (स्या०)] अनासस्यानो [अनासयानो (सी० पी०), अनाससानो (स्या०)], सम्मा सो लोके परिब्बजेय॥
3.
"असवक्खिनो पहिणमानो, सब्बं रागपथं उपतिवत्तो।
दन्तो परिनिब्बुतो थित्ततो, सम्मा सो लोके परिब्बजेय॥
3.
" साधो सुतवा नियामदस्सी, वग्गगतेसु न वग्गसारि धीरो।
लोभं दोसं विनेय पतिघं, सम्मा सो लोके परिब्बजेय॥
3.
"संसुद्धजिनो वित्तच्छदो, धम्मेसु वसी पारगु अनेजो।
सङ्खारनिरोधनकुस्लो , सम्मा सो लोके परिब्बजेय॥
35.
"अतीतेसु अनागतेसु चापि, कप्पातीतो अतिचच्चसुद्धिपञ्चो।
सब्बयत्नेहि विप्पमुत्तो, सम्मा सो लोके परिब्बजेय॥
36.
" अञ्जन्या पदं समेच्छ धम्मं, विवत्तं दिस्वां पहनमासवनं।
सब्बुपधिनं परिक्खयानो [परिक्खया (पी०)], सम्मा सो लोके परिक्खया"॥
3 7.
"अद्धा हि भगवान तथेव एतं, यो सो एवं विहारी दन्तो भिक्खु।
सब्बसंयोजनयोगवीतिवत्तो [सब्बसंयोजनये च वीतिवत्तो (सी० स्या० पी०)], सम्मा सो लोके परिब्बजेया"ति॥
सम्मापरिब्बाजनीयसुत्तं तेरसं निश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> सुत्तनिपात >> 2.14 धम्मिकासुत्त
वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

____

पिछला <<<<--->>>> अगला

____

बुद्ध धम्मिका को यह दिखाते हैं कि एक भिक्षु (साधु) का जीवन कैसा होना चाहिए और एक गृहस्थ का जीवन कैसा होना चाहिए।

____

अंतर्वस्तु

2.14 धम्मिकासुत्त

अनुवाद

मुझे यह सुनने को मिला:

एक समय भगवान (भगवान बुद्ध) सावत्थी में, जेतवन में, अनाथपिंडिका के उद्यान में निवास कर रहे थे। तब उनके अनुयायी (उपासक) धम्मिका, पाँच सौ अनुयायियों के साथ, भगवान (भगवान बुद्ध) के पास गए, और उन्हें प्रणाम करने के बाद, वे अलग बैठ गए; अलग बैठकर अनुयायी धम्मिका ने भगवान (भगवान बुद्ध) को श्लोकों में संबोधित किया:

1. 'हे महान ज्ञान (प्रत्यक्ष अनुभवजन्य समझ) वाले गौतम (बुद्ध), मैं आपसे पूछता हूँ, एक सवक (शिष्य) को अच्छा कैसे व्यवहार करना चाहिए? क्या वह जो अपने घर से जंगल में जाता है, या वह अनुयायी जिसके पास घर है? (378)

2. 'क्योंकि आप इस संसार और देवताओं के कर्मों और अंत के बारे में जानते हैं; सूक्ष्म अर्थों को समझने वाला आपके समान कोई नहीं है; लोग आपको श्रेष्ठ बुद्ध कहते हैं। (379)

3. 'सर्वज्ञानी होकर आपने धम्म का ज्ञान प्रकट किया है, प्राणियों पर दया करते हुए; आपने संसार का पर्दा हटा दिया है, आप सर्वदर्शी हैं, आप समस्त संसार में निष्कलंक प्रकाशमान हैं। (380)

4. 'हाथियों के राजा, एरवन नाम के व्यक्ति ने यह सुनकर कि आप जिन (विजेता) हैं, आपके समक्ष आए, और आपसे वार्तालाप करने के बाद प्रसन्न होकर चले गए, आपकी बातें सुनकर और यह कहकर, "बहुत अच्छा!" (381)

5. 'राजा वेसवना कुबेर भी आपसे धम्म के विषय में पूछने आए; हे ज्ञानी पुरुष, आपने उन्हें भी उत्तर दिया, और वे भी सुनकर प्रसन्न हुए। (382)

6. 'ये सभी विवाद करने वाले तित्तिय, आजीविक और निगंथ (जैन) आपको प्रत्यक्ष अनुभव से नहीं हरा सकते, जैसे खड़ा हुआ व्यक्ति तेजी से चलने वाले को नहीं हरा सकता। (383)

7. 'ये सभी विवाद करने वाले ब्राह्मण, और यहाँ तक कि कुछ प्राचीन ब्राह्मण भी, सभी आपके मत से बंधे हुए हैं, और अन्य भी जो विवाद करने वाले माने जाते हैं। (384)

8. 'हे भगवान (बुद्ध), आपने इस सूक्ष्म और सुखद धर्म का जो भली-भांति प्रचार किया है, और जिसे हम सभी सुनने के लिए तरसते हैं, हे श्रेष्ठ बुद्ध, पूछे जाने पर हमें बताइए। (385)

9. 'ये सभी भिक्षु और उपासक जो सुनने के लिए बैठे हैं, निष्कलंक (बुद्ध) द्वारा सीखे गए (अनुबुद्ध) धर्म को सुनें, जैसे देवता वासव के सुविचारित (वचन) सुनते हैं।' (386)

10. भगवान (बुद्ध): 'हे भिक्षुओं, मेरी बात सुनो, मैं तुम्हें पाप नाश करने वाला धर्म सिखाऊंगा, तुम सब इसका पालन करो; जो कल्याणकारी बातों की खोज करता है, जो विचारशील है, वह पब्बजितों के लिए उपयुक्त जीवन शैली का पालन करे। (387)

11. 'भिक्षु को अनुचित समय पर भ्रमण नहीं करना चाहिए, उसे उचित समय पर भिक्षा मांगने के लिए गांव जाना चाहिए; क्योंकि जो अनुचित समय पर जाता है, उसे बंधन जकड़ लेते हैं, इसलिए बुद्ध अनुचित समय पर नहीं जाते। (388)

12. 'रूप, ध्वनि, स्वाद, गंध और स्पर्श जो प्राणियों को मदहोश करते हैं, इन सभी चीजों (धर्मों) की इच्छा को वश में करके,उसे उचित समय पर नाश्ता करने जाने दो। (389)

13. 'भिक्षु समय पर भोजन प्राप्त करके लौट आए तो एकांत में बैठकर मनन करे; बाहरी बातों पर ध्यान न दे, बल्कि आत्म-चिंतन करे। (390) 14. '

यदि वह किसी सवक (शिष्य) या किसी अन्य व्यक्ति से, या किसी भिक्षु से बात करे, तो उत्तम धम्म के विषय में बात करे, परन्तु निंदा या निंदा न करे। (391) 15. '

कुछ लोग दूसरों का विरोध करते हैं; ऐसे संकीर्ण मन वालों की हम प्रशंसा नहीं करते। इधर-उधर के बंधन उन्हें जकड़ लेते हैं, और वे अपना ध्यान उस (विवाद) में भटकाते हैं। (392)

16. 'उत्कृष्ट पन्ना (प्रत्यक्ष अनुभवात्मक ज्ञान) से युक्त उनके शिष्य (सावक) को सुगत (बुद्ध) द्वारा सिखाए गए धम्म को सुनने के बाद, विवेकपूर्वक भोजन, मठ, पलंग, कुर्सी और वस्त्रों से मैल हटाने के लिए जल की खोज करनी चाहिए। (393)

17. 'परन्तु इन वस्तुओं, भोजन, पलंग और कुर्सी, वस्त्रों से मैल हटाने के लिए जल से आसक्त हुए बिना, भिक्षु (भिक्षु) को कमल पर जल की बूंद के समान होना चाहिए। (394)

18. 'मैं तुम्हें गृहस्थ जीवन के कार्य भी बताऊंगा, कि कैसे एक शिष्य (सावक) को अच्छा व्यवहार करना चाहिए; क्योंकि सांसारिक कार्यों में लीन रहने वाला व्यक्ति पूर्ण भिक्षु-धम्म का पालन नहीं कर सकता। (395)

19. 'वह किसी भी जीवित प्राणी की हत्या न करे, न ही किसी की हत्या करवाए, और न ही दूसरों की हत्या का समर्थन करे, जबकि उसने स्वयं संसार में बलवान और कांपते हुए सभी प्राणियों को हानि पहुँचाने से परहेज किया है। (396)

20. 'फिर सवक (शिष्य) किसी भी स्थान से ऐसी कोई वस्तु न ले जो उसे न दी गई हो, यह जानते हुए कि वह किसी और की है, वह किसी को भी लेने के लिए प्रेरित न करे, न ही लेने वालों का समर्थन करे, वह हर प्रकार की चोरी से बचे। (397)

21. 'बुद्धिमान व्यक्ति जलते हुए अंगारों के ढेर के समान ब्रह्मचर्य जीवन से बचे; ब्रह्मचर्य का जीवन जीने में असमर्थ होने के कारण, वह किसी दूसरे पुरुष की पत्नी के साथ यौन संबंध न बनाए। (398)

22. न्यायलय या सभालय में कोई भी दूसरे से झूठ न बोले, किसी को झूठ बोलने के लिए प्रेरित न करे, न ही झूठ बोलने वालों का समर्थन करे, हर प्रकार के असत्य से दूर रहे। (399)

23. जो गृहस्थ इस धर्म का पालन करता है, वह मादक पेय पदार्थों का सेवन न करे; दूसरों को भी न पिलाए, न ही पीने वालों का समर्थन करे, क्योंकि वह जानता है कि इसका परिणाम पागलपन होता है। (400) 24.

क्योंकि नशे के कारण मूर्ख पाप करते हैं और दूसरों को भी नशे में धुत कर देते हैं; उसे पाप के इस स्थान, इस पागलपन, इस मूर्खता से दूर रहना चाहिए, जो मूर्खों को भाता है। (401)

25. किसी भी जीव की हत्या न करे, जो उसे नहीं दिया गया है उसे न ले, झूठ न बोले, मादक पेय न पिए, और अनैतिक यौन संबंध से परहेज करे।और उसे रात में असमय भोजन न करने दो। (402)

26. 'उसे न तो पुष्पमाला पहननी चाहिए और न ही इत्र लगाना चाहिए, उसे ज़मीन पर बिछे पलंग पर लेटना चाहिए:--इसे बुद्ध द्वारा घोषित अष्टांगिक संयम (उपोसथा) कहते हैं, जिन्होंने पीड़ा पर विजय प्राप्त की है। (403)

27. 'फिर विश्वासपूर्ण मन से अर्धमाह के चौदहवें, पंद्रहवें और आठवें दिन संयम (उपोसथा) रखते हुए, और आठ भागों वाले पूर्ण पतिहरकपक्खा का पालन करते हुए, (404)

28. 'और फिर सुबह, संयम रखने के बाद, एक बुद्धिमान व्यक्ति विश्वासपूर्ण मन से भिक्षुओं की सभा को भोजन और पेय से प्रसन्न करते हुए, अपनी सामर्थ्य के अनुसार वितरण करे। (405)

29. 'उसे कर्तव्यनिष्ठा से अपने माता-पिता का भरण-पोषण करना चाहिए और एक सम्मानजनक व्यापार करना चाहिए; जो गृहस्थ इसका दृढ़तापूर्वक पालन करता है, वह नाम से देवताओं के पास जाता है, सायम्पाभास।' (406)

धम्मिकासुत्त समाप्त।

चुलवग्गा समाप्त हो गया है।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
14. धम्मिकासुत्तं
एवं मे सुतं — एकं समयं भगव सावत्थियं विहारति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स अरामे। अथ खो धम्मिको उपासको पञ्चहि उपासकसतेहि सद्धिं येन भगव तेनुपशंकामि; उपसंकमित्वा भगवन्तं अभिवदेत्वा एकमन्तं निसिदि। एकमंतं निसिन्नो खो धम्मिको उपासको भगवन्तं गाथाहि अज्जभासि -
378.
"पुच्चामि तं गोतम भूरिपन्न, कथंकारो सावको साधु होति;
यो वा अग्र अनगरमेति, अग्रिनो वा पनुपासाकसे।
379.
"तुवंहि लोकस्सा सदेवकस्सा, गतिं पजानासि परायणच;
न चट्ठि तुल्यो निपुणत्थदस्सी, तुवंहि बुद्धं पवरं वदन्ति।
380.
"सब्बां तुवं णाणामवेक्का धम्मं, पकासेसि सत्ते अनुकंपमानो;
विवत्तच्चदोसि समन्तचक्खु, विरोकासि विमलो सब्बलोके।
381.
"अगांचि ते संतिके नागराजा, एरावणो नाम जिनोति सुत्वा;
सोपि तया मंतयित्वाज्झागमा, साधौति सुत्वान् पतितरूपो।
382.
"राजापि तं वेस्सावणो कुवेरो, उपेति धम्मं परिपुच्चमानो;
तस्सपि त्वं पुच्चितो ब्रुसि धीरा, सो कपि सुत्वन पतितरूपो।
383.
"ये केसीमे तिथिया वदासिला, आजीवका वा यदि वा निगन्था;
पनन्या तं नातितरन्ति सब्बे, थितो वजन्तं विया सिघगामि।
384.
"ये केचिमे ब्राह्मण वदसीला, वुद्धा कपि ब्राह्मण शांति केचि;
सब्बे ताई अट्ठबद्धा भवन्ति, ये कपि अण्णे वादिनो मन्नमाना।
385.
"अयंहि धम्मो निपुणो सुखो च, योयं तय भगव सुप्पवुत्तो;
तमेव सब्बेपि [सब्बे मायां (स्या.)] सुसुसमाना, तां नो वडा पुच्चिटो बुद्धसेठ।
386.
"Sabbepi me bhikkhavo sannisinnā, upāsakā cāpi tatheva sotuṃ;
सुनन्तु धम्मं विमलेनानुबुद्धं, सुभाषितं वासवस्सेव देवा"।
387.
"सुनथ मे भिक्खवो सवयामि वो, धम्मं धुतं तन्च चरथ सब्बे;
इरियापथं पब्बजितानुलोमिकं, सेवेत्था नं अत्थदसो मुतिमा।
388.
"नो वे विकले विचारेया भिक्खु, गामे च पिंडाय कैरेया काले;
अकालाचारिणि सजंति संगा, तस्मा विकाले न कैरन्ति बुद्धा।
389.
"रूपा च सद्दा च रस च गंधा, फस्सा च ये सम्मदयन्ति सत्ते;
एतेसु धम्मेसु विनेया चंदं, कालेन सो पविसे पतरसां।
390.
"पिंडांच भिक्खु समयेन लद्धा, एको पतिक्कम्मा रहो निसिदे;
अज्झत्तसिंति न मनो बहिद्धा, निच्चराय संघहितत्तभावो।
391.

"ससेपि सो सल्लापे सवकेना, अननेना वा केनासी भिक्खुना वा;
धम्मं पणितं तमुदाहारेया, न पेसुनां नोपि परुपवादं।
392.
"वदानहि एके पतिसेनियन्ति, न ते पसंसामा परित्तपन्ने;
ततो ततो न पसर्जंति संगा, चित्तंहि ते तथा गमेन्ति दूरे।
393.
"पिंडं विहारं सयानासनच, अपानच संघातिराजुपवहनम्;
सुत्वन धम्मं सुगतेन देसिटं, संखया सेव वरपन्नसावको।
394.
"तस्मा हि पिंडे सयानासने च, आपे च संघातिराजुपवाहने;
एतेसु धम्मेसु अनुपालितो, भिक्खु यथा पोक्खरे वारिबिन्दु।
395.
"गहत्थवत्तं पण वो वदामि, यथाकारो सावको साधु होति;
न हेसा [ना हेसो (सि.)] लब्भा सपरिग्गहेना, फस्सेतुं यो केवलो भिक्खुधम्मो।
396.
"पानं न हणे [न हणे (सि.)] न च घटयेया, न चानुजन्ना हनतं परेसं;
सब्बेसु भूतेसु निधाय दण्डं, ये थावरा ये च तस संति [तसंती (सि. पि.)] लोके।
397.
"ततो अदिन्नं परिवज्जायेय, किंचि क्वचि सावको बुज्झामानो;
न हरये हरतं नानुजन्न, सब्बं अदिन्नं परिवज्जायेय।
398.
"अब्रह्मचर्यं परिवज्जायेय, अंगारकासुं जलितंव विन्नु;
असम्भुअनन्तो पना ब्रह्मचर्यं, परस्सा दरं न अतिक्कमेय।
399.
"सभग्गतो वा परिसग्गतो वा, एकस्सा वेको [सीतो (सि. स्या.)] न मुसा भाणेया;
न भाणये भाणातं नानुजन्या, सब्बं अभूतं परिवज्जयै।
400.
"मज्जनचा पणं न समाचरेया, धम्मं इमं रोकाये यो गहत्थो;
न पयये पिवतं नानुजनना, उम्मादनंतं इति नं विदित्वा।
401.
"मदा ही पापनि करोंति बाला, करेन्ति कैनेपि जने पमत्ते;
एतं अपुन्नायतनं विवज्जाये, उम्मादानं मोहनं बालकान्तं।
402.
"पानं न हने न चदिन्नमदिये, मुसा न भासे न च मज्जपो सिया;
अब्रह्मचर्य विरामेय मेथुना, रत्तिं न भुञ्जेय विकलभोजनं।
403.
"मलं न धारे न च गंधमाचरे, मन्से चामयं वा सयेथा संथते;
एतंहि अठहंगिकामाहुपोसाथं, बुद्धेन दुक्खन्तागुण पाकसीताम्।
404.
"ततो च पक्खस्सुपवसुपोसथं, चतुद्दसिं पञ्चदसिञ्च अठहमिं;
पातिहरियापक्खाञ्च पसनन्नामनासो, अठहंगुपेटं सुसमत्तरूपं।
405.
"ततो च पतो उपवुत्थुपोसथो, अन्नेन पनेण च भिक्खुसंघहं;
पसन्नचित्तो अनुमोदमानो, यथारहं संविभजेथा विष्णु।
406.
"धम्मेण मातापितो भारेया, पयोजये धम्मिकं सो वनिज्जं;
एतं गिहि वट्टयमप्पमत्तो, सयमंभे नाम उपेति देवे'ति।
धम्मिकासुत्तं कुद्दसमं निहितं।

चुडवग्गो दुतियो निथितो।
Tassuddānaṃ —
रतनमगन्धो हिरि च, मंगलं सुसिलोमेना;
धम्मकारिञ्च ब्राह्मणो [कपिलो ब्राह्मणोपि च (स्या. का.)], नवा किशिलामुत्थानं।
राहुलो पुन कप्पो च, परिब्बाजनीयं तथा;
धम्मिकांच विदुनो आहु, चुडवग्गन्ति कुद्दसति।

पाली-देवनागरी
14. धम्मिकसुत्तं
एवं मे सुतं — एकं समयं भगव सावथ्यं विहारी जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो धम्मिको उपासको पञ्चहि उपासस्कतेहि साधं येन भगव तेनुपसङकमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवदेत्व एकमन्तं निसिदि। एकमन्तं निसि सनायो खो धम्मिको उपासको भगवन्तं पुराणहि अज्भासि -
3.
"पुच्चामि तं गोतम भूरिपञ्ज, कथंकरो सावको साधु होति।"
यो वा अगार अंगारमेति, अगारिनो वा पनुपासासे॥
3.
"तुवंहि लोकस्स सदेवकस, गतिं पजानासि परायञ्च।
न चट्ठि तुल्यलो कृतकत्तदस्सी, तुवंहि बुद्धं पवरं वदन्ति॥
3.
"सब्बं तुवं नानमवेच धम्मं, पकासेसि सत्ते अनुकममानो।
विवत्तच्छदोसि समन्तचक्खु, विरोचसि विमलो सब्बलोके॥
3.
"अग्ञ्ची ते शांतिके नागराजा, एरावणो नाम जिनोति सुतवा।
सोपि तया मन्तयित्वाज्झगमा, साधुति सुत्वान पतितरूपो॥
3.
"राजापि तं वेस्स्वणो कुवेरो, उपेति धम्मं परिपुच्छमानो।
तस्सापि त्वं पुच्छितो ब्रूसि धीर, सो चापि सुत्वान् पतितरूपो॥
3
"ये केचिमे तिथिया वादसीला, आजीवका वा इफ वा निगन्था।
पञ्जनय तं नैतितरन्ति सब्बे, थितो वजनतं विय सीघगामिन्॥
3 वसात.
"ये केचिमे ब्राह्मणा वादसीला, वुद्धा चापि ब्राह्मणा शांति केचि।
सब्बे ताई अत्थबद्धा भवन्ति, ये चापि अंजने वादिनो मन्तिमाना॥
3 विविध।
"अयंहि धम्मो शैतानो सुखो च, योयं तया भगव सुप्पवुत्तो।
तमेव सब्बेपि [सब्बे मयं (स्या०)] सुसुसमाना, तं नो वद पुच्छितो बुद्धसेट्ठ॥
3.
"सब्बेपि मे भिक्खवो स संज्ञासत्यं, उपासका चापि तथेव सोतुं।
सुनन्तु धम्मं विमलेनानुबुद्धं, सुभासितं वासवस्सेव देवा"॥
3.
"सुनथ मे भिक्खवो सावयामि वो, धम्मं धुतं तञ्च चरथ सब्बे।
इरियापथं पब्बजितानुलोमिकं, सेवेथ नं अत्थदसो मुतीमा॥
3.
"नो वे विकले विचारेया भिक्खु, गामे च पिंडाय चेरेय काले।
अकल्पचारिञ्चि सजन्ति सङ्गा, तस्मा विकले न चरन्ति बुद्धा॥
3 सप्ताह.
"रूपा च सद्दा च रसा च गंधा, फस्सा च ये सम्मदयन्ति सत्ते।

एतेसु धम्मेसु विनेय छंदं, कालेन सो पविसे पात्रसं॥
3.
"पिंडञ्च भिक्खु समयेन लद्धा, एको पतिक्कम्म रहो निसीदे।
अज्झत्तचिन्ति न मनो बधिधा, निश्चराय सङ्घहितत्तभावो॥
3
"सचेपि सो सलदलपे सावकेन, अञ्जने वा केन्चि भिखुना वा।
धम्मं पणितं तमुदाहरेय, न पेसुं नोपि परूपवदं॥
3.
"वधांहि एके पतिसेनियन्ति, न ते पंसाम परित्पञ्चे।
ततो ततो ने पसजन्ति सङ्गा, चित्तञ्हि ते तथा गमेन्ति दूरे॥
3.
"पिण्डं विहारं सयानसञ्च, आपञ्च सङ्घाटिरजूपवाहनं।
सुत्वं धम्मं सुगतेन देसीतं, सङ्खाय सेवे वरपञ्चनसावको॥
3.
"तस्मा हि पिंडे सयनासने च, आपे च सङ्घाटिर्जुपवाहने।
एतेसु धम्मेसु एनोप्लिट्टो, भिक्खु यथा पोखरे वारिबिंदु॥
3.
"गहत्थवत्तं पण वो वदामि, यथाकरो सावको साधु होति।
न हेस [न हेसो (सी०)] लब्भा सपरिग्गहेन, फस्सेतुं यो केवलो भिक्खुधम्मो॥
3
"पानं न हने [न हने (सी०)] न च घटयेय, न चानुजञ्च हनतं परेसं।
सब्बेसु भूतेषु निधाय दंडं, ये थावरा ये च तसा शांति [त्सन्ति (सी० पी०)] लोके॥
3.
"ततो आदि संज्ञां परिवज्जयैय, किंचि त्रवचि सावको बुज्झमानो।
न हरये हरतं नानुजञ्जन, सब्बं आदि निषेधं परिवज्जयैय॥
3.
"अब्रह्मचर्यं परिवज्जायेय, अङ्गारकासुं जलित्व विञ्जु।
असंभुन्नतो पन् ब्रह्मचर्यं, परस्स दरं न अतिचक्रमेय॥
3.
"सभग्गतो वा परिसग्गतो वा, एकस्स वेको [चेतो (सी० स्या०)] न मुसा भनेय।
न भाणये भन्तं नानुजञ्च, सब्बं अभूतं परिवज्जयैय॥
.
"मज्जन्च पानं न समाचरेय, धम्मं इमं रोचये यो गहत्थो।
नये पय पिवतं नानुजञ्चा, उम्मादन्नन्तं इति नं विदित्वा॥
400.
"मदा हि पापानि करोन्ति बाला, कारणन्ति चञ्जेपि जने पमत्ते।"
एतं अपुञ्जन्यातनं विवजदजये, उमामादानं मोहनं बालकन्तं॥
400.
"पाणं न हने न चादि संज्ञामाद्ये, मूसा न भासे न च मजाजपो सिया।"
अब्रह्मचर्य विरमेय मेथुना, रत्तिं न भुञ्जेय विकलभोजनं॥
400.
"मलां न धारे न च गंधमाचरे, मन्नचे चमायं वा सयेत् सन्तते।"
एतंहि अत्थत्ङ्गिकमाहुपोस्थं, बुद्धेन दुःखान्तगुण पकासीतं॥
4.
"ततो च पक्खस्सुपवसुपोस्थं, चातुद्दसिं पञ्चादसिंच अट्ठमिं।
पटिहारियपकञ्च पस संज्ञामानसो, अत्थङ्गुपेतं सुसमत्तरूपं॥
4
"ततो च पतो उपुथुपोसस्थो, अ प्रयोगेन प्राप्तेन च भिक्खुसङ्घं।

पस साइनचित्तो अनुमोदमनो, यथारहं संविभजेत् विञ्चु॥
4
"धम्मेन मातापित्रो अंतिमय, पयोजये धम्मिकं सो वाणीजं।'
एतं गहि वत्तयमप्पमत्तो, सयंभे नाम उपेति देवे"ति॥
धम्मिकसुत्तं चुद्दसमं निश्चितं।
चुळवग्गो दुतियो निथ्तितो।
तस्सुद्दनं -
रतनामगंधो हिरि च, मङ्गलं सुचिलोमेन।
धम्मचेरियनच ब्राह्मणो [कपिलो ब्राह्मणोपि च (स्या० क०)], नवा किंसिलमुद्दानं॥
राहुलो पुन कप्पो च, परिब्बजनियं तथा।
धम्मिकञ्च विदुनो आहु, चूळवग्गन्ति चुद्दसति॥

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> सुत्तनिपात >> 3.1 पब्बजजसुत्त,
वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<-->>>> अगला

बुद्ध में रुचि रखने वाले राजा बिम्बिसार उन्हें धन का लालच देने का प्रयास करते हैं, लेकिन बुद्ध उन्हें हल्के से फटकार लगाते हैं।

अंतर्वस्तु

3.1 पब्बज्जसुत्त
अनुवाद
1. मैं उस तपस्वी जीवन की प्रशंसा करूँगा जैसा कि स्पष्ट दृष्टि वाले (बुद्ध) ने व्यतीत किया, जैसा कि उन्होंने विचार करके तपस्वी जीवन के रूप में स्वीकार किया। (407)

2. 'यह गृहस्थ जीवन दुखदायी है, अपवित्रता का स्थान है,' और 'तपस्वी जीवन खुले आकाश में व्यतीत जीवन है,' इसलिए उन्होंने तपस्वी जीवन को अपनाया। (408)

3. तपस्वी जीवन व्यतीत करते हुए, उन्होंने अपने शरीर से पाप कर्मों से परहेज किया, और शब्दों में भी पाप का त्याग करके, उन्होंने अपने जीवन को शुद्ध किया। (409)

4. बुद्ध राजगृह गए, वे उत्कृष्ट शिष्टाचार (संकेतों) की प्रचुरता के साथ भिक्षा मांगने के लिए मगध के गिरिबाग में प्रवेश किया। (410)

5. बिम्बिसार अपने महल में खड़े होकर उसे देखा, और उसे इन गुणों (आचरण) से युक्त देखकर उसने ये शब्द कहे: (411)

6. 'इस व्यक्ति पर ध्यान दो, यह सुंदर, महान, स्वच्छ है, यह अच्छे आचरण से युक्त है, और यह अपने सामने एक युग (हल की दूरी) से आगे नहीं देखता। (412)

7. 'नीची आँखों वाला, विचारशील, यह नीच जाति के लोगों जैसा नहीं है; राजा के दूतों को भेजो, (और पूछो): "भिक्षु कहाँ जा रहा है?"' (413)

8. राजा के दूत उसके पीछे गए (और बोले): 'भिक्षु कहाँ जा रहा है, वह कहाँ निवास करेगा? (414)

9. 'घर-घर जाकर भिक्षा माँगते हुए, (इंद्रियों के द्वार पर) सचेत, संयमित, वह जल्दी से अपना पात्र भर लेता है, सचेत, विचारशील। (415)

10. 'भिक्षा की तलाश में भटकते हुए, नगर से बाहर जाकर, मुनि (संत) पांडव पर्वत पर गए; अवश्य ही वे वहीं निवास करते होंगे।' (416)

11. यह देखकर कि वे अपने निवास में प्रवेश कर चुके हैं, दूत बैठ गए, और एक दूत के लौटकर उसने राजा को इसकी सूचना दी। (417)

12. 'हे महाराज, यह भिक्षु पांडव पर्वत के पूर्व की ओर, पर्वत की गुफा में बाघ, बैल और सिंह के समान बैठा है।' (418)

13. दूत की बात सुनकर, क्षत्रिय (योद्धा) एक सुंदर रथ में शीघ्रता से पांडव पर्वत की ओर चल पड़ा। (419)

14. रथ के लिए जितनी दूर तक जाना संभव था, वहाँ तक पहुँचने के बाद, क्षत्रिय (योद्धा) रथ से उतरकर पैदल चलकर उसके पास पहुँच गया और बैठ गया। (420)

15. राजा के बैठने के बाद उन्होंने उनसे औपचारिक अभिवादन किया और प्रशंसात्मक बातचीत के बाद ये शब्द कहे: (421)

16. 'तुम युवा और कोमल हो, अपनी युवावस्था में हो, तुम्हारा रंग उत्तम है, किसी उच्च कुल के क्षत्रिय के समान। (422)

17. 'मैं सेनागृह को सुशोभित करूँगा और नाग सरदारों की सभा के प्रमुख के रूप में तुम्हें धन दूँगा; इसका आनंद लो और पूछे जाने पर मुझे अपनी जाति बताओ।' (423)

18. बुद्ध: 'हे राजा, हिमवंत (हिमालय) के ठीक बगल में धन की शक्ति से संपन्न एक जाति रहती है, कोसल के निवासी। (424)

19. 'वे कुल से अदिच्छा और जन्म से सक्य हैं; मैं उसी कुल से तपस्वी बना हूँ, इंद्रिय सुखों की लालसा नहीं करता। (425)

20. 'इंद्रिय सुखों में दुख देखकर और संसार का त्याग करना सुख समझकर मैं जाकर परिश्रम करूँगा; इसी में मेरा मन प्रसन्न होता है।' (426)

पब्बज्जसुत्त समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
3. महावग्गो
1. पब्बज्जासुत्तं
407.
पब्बज्जं कित्तयिस्सामि, यथा पब्बाजी चक्खुमा;
यथा विमान्समानो सो, पब्बज्जं समारोचयि।
408.
सम्बधोयं घरावासो, राजसस्यातनं इति;
अब्भोकसोवा पब्बज्जा, इति दिस्वाण पब्बाजी।
409.
पब्बजित्वान कायेन, पापकम्मं विवज्जयि;
वसीदुच्चरितां हित्वा, आजीवं परिशोधयि।
410.
अगम राजगहं बुद्धो, मगधानं गिरिबजं;

पिंडाय अभिहारेसि, अकिन्नवरलक्खनो।
411.
तमद्दसा बिंबिसारो, पसादस्मिं पतिथितो;
दिस्वा लक्खनसम्पन्नं, इमामत्थं अभासथ।
412.
"इमां भोंतो निसामेथा, अभिरूपो ब्रहा सुचि;
चरणेन च सम्पन्नो, युगमत्तञ्च पेक्खति।
413.
"ओक्खित्तचक्कु सतीमा, नायं निककुलमिव;
राजदुताभिधावन्तु, कुहिं भिक्खु गमिस्सति"।
414.
ते पेसिता राजदुता, पिट्ठितो अनुबन्धिसुम्;
कुहिं गमिस्सति भिक्खु, कत्थ वसो भविस्सति।
415.
सपादानां कारमाणो, गुट्टाद्वारो सुसानवुतो;
खिप्पं पत्तं अपुरेसि, संपजाणो पतिस्सतो।
416.
पिंडाचरण चरित्रवान, निखम्म नागरा मुनि;
पांडवं अभिहारेसि, एत्थ वसो भविष्यति।
417.
दिस्वाना वसुपगतं, तयो [ततो (सि. पि.)] द्युता उपाविसुं;
तेसु एकोवा [एको च दुतो (सि. स्या. पि.)] आगन्त्वा, राजिनो पतिवेदयी।
418.
"एसा भिक्खु महाराज, पांडवस्स पुरत्थतो [पुरक्खतो (स्या. का.)];
निसिन्नो ब्याग्घुसाभोवा, सिहोवा गिरिगबभारे"।
419.
सुत्वान दुतवचनं, भद्दयानेन खट्टियो;
तरामनारूपो निय्यसि, येन पाण्डवपब्बतो ।
420.
स यानाभूमिं ययित्वा, याना ओरुयहा खत्तियो;
पत्तिको उपसंकम्मा, असज्ज नं उपाविसि।
421.
निसज्ज राजा सम्मोदि, कथं सरण्यं ततो;
कथं सो वीतिसरेत्व, इमामत्थं अभिसथ।
422.
"युवा च दाहरो कासि, पठमुप्पत्तिको [पठमुप्पत्तिया (सि.), पठमुप्पत्तितो (स्या.)] सुसु;
वनारोहेण संपन्नो, जातिमा विया खट्टियो।
423.
"सोभयन्तो अनिकाग्गं, नागसंघपुरक्खतो;
ददामि भोगे भूंजस्सु, जातिं अक्खाहि पुच्चितो"।
424.
"उजुं जनपददो राजा, हिमवन्तस्स पस्सतो;
धनविरियेण संपन्नो, कोसलेसु [कोसलसा (स्या. का.)] निकेटिनो।
425.
"अदिक्का [अदिस्को (का.)] नामा गोटेना, साकिया [साकियो (का.)] नामा जातिया;
तम्हा कुल पब्बजितोमहि, न कामे अभिपत्थयं।
426.
"कामेसवादिनवं दिस्व, नेक्खम्मं दांथु खेमतो;

पधानाय गमिस्सामि, एत्थ मे रंजति मनो'ति।
पब्बज्जसुत्तं पथमं निहितं।

पाली-देवनागरी
3. महावग्गो
1. पब्बज्जासुत्तं
4
पब्बज्जं कित्तयिस्सामि, यथा पब्बजी चखुमा।
यथा विमंसमानो सो, पब्बज्जं समारोचयि॥
4
संभाधोयं गृहासो, रजस्सायतनं इति।
अब्भोकसो पब्बज्जा, इति दिस्वां पब्बजि॥
444.
पब्बजित्वान कायेन, पापकम्मं विवज्जयि।
वचिदुच्चचरितं हित्वा, अजिवं परिशोधयि॥
410
अगम राजघं बुद्धो, मगधानं गिरिब्बजं।
पिंडाय अभिहारेसि, अकिन्नवरलक्खनो॥
411.
तमद्दसा बिम्बिसारो, पसादस्मिं पतिट्ठितो।
दिस्वा लक्षणसंप जपं, इमामथं आभासथ॥
410.
"इमं भोन्तो निसामेथे, अभिरूपो ब्रहा शुचि।
चरणेन च संप संज्ञाओ, युगमत्तनदच पेक्खति॥
4. ...
"ओक्खित्तचक्खु सतिमा, नयं नीचकुलमिव।
अम्बामाभिधावन्तु, कुहिं भिक्खु गमिस्स्ति"॥
4
ते पेसिता अम्बाम्बा, पिट्ठितो अनुबन्धिसुं।
कुहिं गमिस्स्ति भिक्खु, कत्थ वासो भविस्स्ति॥
41.
सपादानं चरमाणो, गुत्तद्वारो सुसंवुतो।
खिप्पं पत्तं अपुरेसि, संपजानो पतिस्स्तो॥
40.66
पिण्डचारं चरित्वान, निखम्म नगरा मुनि।
पाण्डवं अभिहारेसि, एत्थ वासो भविष्यसति॥
41.
दिस्वां वासुपगतं, तयो [ततो (सी॰ पी॰)] दूता उपाविसं।
तेसु एकोव [एको च दूतो (सी॰ स्या॰ पी॰)] आगन्त्वा, राजिनो पतिवेदयि॥
411.
"अस भिक्खु महाराज, पांडवस्स पुरत्थो [पुरखतो (स्या॰ क॰)]।
निसिस साइनो ब्यघुसभोव, सीहोव गिरिगभरे"॥
411.
सुत्वान दूतवचनं, भद्दयानेन खत्तियो।
तर्मन्नूपो नियासि, येन पाण्डवपब्बतो॥
420.
स यानाभूमिं यायित्वा, याना ओरुयः खत्तियो।
पत्तिको उपसङकम्म, असजज नं उपावसी॥

420.
निस्साज्ज राजा सम्मोदि, कथं सारणीयं ततो।
कथं सो वीतिसरेत्वा, इमामथं आभासथ॥
422.
"युवा च दहरो चासि, पठमुप्पत्तको [पठमुप्पत्तिया (सी०), पठमुप्पत्ततो (स्या०)] सुसु।
वणरोहेन संप संज्ञाओ, जातिमा वि खत्तियो॥
4.25.
"सोभयन्तो अनीकग्गं, नागासङ्घपुरक्खतो।
ददामि भोगे भुञ्जज्जसु, जातिं अक्खाहि पुच्छितो"॥
4.
"उजं जिलाओ राज, हिमवंतस्स पस्सतो।"
धनवीरियेन संप संज्ञाओ, कोसलसु [कोसलसस (स्या० क०)] निकेतिनो॥
425.
"आदिच्चा [आदिच्चो (क०)] नाम गोट्टेन, साकिया [साकियो (क०)] नाम जातिया।
तम्हा कुला पब्बजितोम्हि, न कामे अभिपथयं॥
4.
"कामेसवंदनवं दिस्वा, नेक्खम्मं दत्तु खमतो।"
पधानाय गमिस्सामि, एत्थ मे रंजति मनो"ति॥
पब्बज्जासुत्तं पतमं निश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> सुत्तनिपता >> 3.2 पधानसुत्त
वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<--->>>> अगला

मारा (मृत्यु का देवता) बुद्ध को लुभाने का प्रयास करता है, लेकिन निराश होकर उसे पीछे हटना पड़ता है। तुलना करें: सेंट मैथ्यू का सुसमाचार, अध्याय 4।

अंतर्वस्तु

3.2 पधानसुत्त
अनुवाद

1. मेरा मन नेरंगारा नदी के निकट परिश्रम में लगा हुआ था, मैंने परिश्रम किया और निर्वाण (योगक्खेमा) प्राप्त करने के लिए आत्म-मग्न ध्यान में लीन हो गया। (427)

2. तभी नामुची (मरा, मृत्यु के देवता) करुणा भरे शब्दों में मेरे पास आए और बोले: 'तुम दुबले-पतले हो, तुम्हारा रूप-रंग खराब है, मृत्यु तुम्हारे निकट है। (428)

3. 'तुम्हारा हजारवां भाग मृत्यु का है, केवल एक भाग जीवन का है; हे पूजनीय, जीवन जीना श्रेष्ठ है; जीने से तुम्हें पुण्य प्राप्त होगा। (429)

4. 'जब तुम ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करते हो और यज्ञ की अग्नि को प्रज्वलित करते हो, तो अनेक पुण्य कर्म तुम्हारे फल स्वरूप प्राप्त होते हैं; परिश्रम से तुम्हें क्या चाहिए? (430)

5. 'प्रयास का मार्ग कठिन है, पार करना कठिन है, उस पर प्रवेश करना कठिन है;' ये श्लोक कहते हुए मरा बुद्ध के निकट खड़े हो गए। (431)

6. मारा के इस प्रकार बोलने पर भगवान (भगवान बुद्ध) ने कहा: 'हे आलसी के मित्र, हे दुष्ट, तुम यहाँ किसलिए आए हो? (432)

7. 'यद्यपि छोटा सा भी अच्छा कर्म मेरे लिए व्यर्थ है; और मुझे कौन से अच्छे कर्म करने चाहिए, मारा, यह बताओ। (433)

8. 'मुझमें आस्था और दृढ़ इच्छाशक्ति है, और मुझमें पन्ना (प्रत्यक्ष अनुभवात्मक ज्ञान) है; इस प्रकार परिश्रम करते हुए तुम मुझसे जीने के लिए क्यों कहते हो? (434)

9. 'यह (जलती हुई) हवा नदियों की धाराओं को भी सुखा देती है; क्या परिश्रम करते हुए यह धीरे-धीरे मेरा रक्त नहीं सुखा देगी? (435)

10. 'जब रक्त सूखता है, तो पित्त और कफ भी सूख जाते हैं; जैसे-जैसे शरीर क्षीण होता जाता है, मन अधिक शांत होता जाता है, और मेरा ध्यान, पन्ना (प्रत्यक्ष अनुभवात्मक समझ), और ध्यान (स्व-मग्न) समाधि अधिक स्थिर होती जाती है। (436)

11. 'जब मैं इस प्रकार जी रहा हूँ, चरम संवेदनाओं का अनुभव करने के बाद, मेरा मन इंद्रिय सुखों की खोज नहीं करता; देखो, एक प्राणी की पवित्रता। (437)

12. 'तुम्हारी पहली सेना कामवासना कहलाती है, दूसरी असंतोष, तीसरी भूख और प्यास, चौथी इच्छा। (438)

13. 'तुम्हारी पाँचवीं आलस्य और उन्मत्तता कहलाती है, छठी कायरता, सातवीं संशय, आठवीं पाखंड और सुस्ती। (439)

14. 'लाभ, यश, सम्मान, और वह प्रसिद्धि जो झूठे तरीके से प्राप्त की गई है; और वह जो स्वयं को ऊँचा उठाता है और दूसरों को तुच्छ समझता है। (440)

15. 'हे नमुचि (मारा), यह तुम्हारी, अंधकार के देवता की, युद्ध करने वाली सेना है; केवल एक महान व्यक्ति ही इसे जीत सकता है, और इसे जीतने के बाद आनंद प्राप्त करता है। (441)

16. 'इस संसार में जीवन पर धिक्कार है! युद्ध में मरना मेरे लिए पराजित होकर जीने से बेहतर है। (442)

17. 'इस संसार में डूबे हुए कुछ समन (भिक्षु) और ब्राह्मण दिखाई नहीं देते, और वे उस मार्ग को नहीं जानते जिस पर गुणी चलते हैं। (443)

18. 'चारों ओर सेना को सजी हुई और मार को उसके हाथी पर देखकर, मैं युद्ध करने जा रहा हूँ, ताकि वह मुझे मेरे स्थान से न भगा दे। (444)

19. 'तुम्हारी यह सेना, जिसे मनुष्य और देवता का संसार जीत नहीं सकता, मैं इसे पन्ना (प्रत्यक्ष अनुभवजन्य समझ) से ऐसे कुचल दूँगा जैसे पत्थर से कच्चा मिट्टी का बर्तन तोड़ा जाता है। (445)

20. 'अपने विचारों को अपने अधीन और ध्यान को स्थिर करके, मैं राज्य-राज्य घूमूँगा और शिष्यों को व्यापक प्रशिक्षण दूँगा। (446)

21. 'वे उत्साही और ऊर्जावान होंगे, मेरे आदेशों का पालन करेंगे, कामवासना से मुक्त व्यक्ति के आदेशों का, और वे उस स्थान पर जाएँगे जहाँ जाकर वे शोक नहीं करेंगे।' (447)

22. मारा (मृत्युदेव): 'सात वर्षों तक मैंने भगवान (बुद्ध) का कदम-दर-कदम अनुसरण किया; मुझे पूर्णतः प्रबुद्ध, विचारशील (बुद्ध) में कोई दोष नहीं मिला। (448)

23. 'कौआ उस चट्टान के चारों ओर मंडरा रहा था जो चर्बी के ढेर जैसी दिखती थी: "क्या हमें यहाँ कुछ नरम, कुछ मीठा मिलता है?" (449)

24. 'वहाँ कुछ भी मीठा न पाकर कौआ उस स्थान से चला गया। इस प्रकार, जैसे कौआ चट्टान के पास आकर निराश हो गया, हम भी गौतम (बुद्ध) से विमुख हो जाएँगे।' (450)

25. दुःख से व्याकुल होकर उसके वीणा का तार नीचे गिर गया; तब वह दुष्ट यक्ष वहाँ से विलीन हो गया। (451)

पदानसुत्त समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
2. पधानसुत्तं
427.
"तं मां पधानपहितत्तं, नदीं नेरंजरं पति;
विपरक्कम्मा झायन्तं, योगक्खेमास्सा पत्तिया।
428.
"नमुचि करुणां वाचं, भस्मानो उपगामी;
'किसो त्वमसि दुब्बाणो, संतिके मरणं तव।
429.
"'सहस्सभागो मरणस्स, एकांशो तव जीवितम्;
जीव भो जीवितं सेय्यो, जीवं पुन्ननि कहासी।
430.
" कैरतो च ते ब्रह्मचर्यं, अग्गिहुत्तनच जुहतो;
पहुतां चीयते पुन्नं, किं पधानेन कहासी।
431.
"दुग्गो मग्गो पधानाय, दुक्कारो दुरभिसंभवो";
इमा गाथा भाणं मारो, अठ्ठ बुद्धस्स संतिके।
432.
तं तथवादिनं मरं, भगव एतदब्रवी;
"पमत्तबंधु पपीमा, येनत्थेना [सेनात्थेना (?), अत्तानो अत्थेना (अठ्ठा. सावनाना)] इधागातो।
433.
"अनुमत्तोपि [अनुमत्तेनपि (सि. स्या.)] पुनेन, अत्थो मयहं न विज्जति;
यसंचा अत्थो पुन्नेन, ते मारो वट्टुमरहति।
434.
"अत्थि सधा तथा [ततो (सि. पि.), तपो (स्या. का.)] वीर्यं, पन्ना च मम विज्जति;
एवं मां पहितत्तमपि, किं जीवमनुपुच्छसि.
435.
"नादीनमपि सोतानि, अयं वतो विसोसाय;
किंच मे पहितत्तस्सा, लोहितं नुपसुस्से।
436.
"लोहिते सुस्मानमहि, पित्तं सेमहांचा सुस्सति;
मानसेसु खियामानेसु, भय्यो चित्तं पसीदति;
भय्यो सति च पन्ना च, समाधि मम तिथति।
437.
"तस्सा मेवं विहारतो, पत्तसुत्तमवेदनं;
कामेसु [कामे (सि. स्या.)] नापेक्खते चित्तं, पस्सा सत्तास्स सुद्धताम्।

438.
"काम ते पथमा सेना, दुतिया अरति वुच्चति;
ततिया खुप्पिपसा ते, चतुत्थि तन्हा पवुक्कति।
439.
"पंचमं [पंचामी (सी. पी.)] थिनमिद्धं ते, चैथा भीरू पवुक्कति;
सत्तामि विचिकीच्चा ते, मक्खो थम्भो ते अत्थमो।
440.
"लाभो सिलोको सक्करो, मिच्छलाधो च यो यशो;
यो चत्तनं समुक्कंसे, परे च अवजानाति।
441.
"एसा नमुचि ते सेना, कान्हास्साभिप्पाहारिणी;
न नं असुरो जिनाति, जेत्वा च लभते सुखं।
442.
"एसा मुंजं परिहारे, धीरत्थु मम [इडा (का.)] जीवितं;
संगमे मे मतं सेय्यो, यं सी जीवे परजितो।
443.
"पगाथेत्था न डिस्संति, एके समानब्राह्मण;
तन्च मग्गं न जानन्ति, येन गच्छन्ति सुब्बता।
444.
"सामंता धजिनिं दिस्व, युत्तं मरं सवहनां;
युद्धाय पच्चुग्गच्छामि, मां मां ठाना अचावयि।
445.
"यं ते तं नप्पासहति, सेनं लोको सदेवको;
तं ते पन्नया भेच्छामि [गच्छामि (सि.), वेच्छामि (स्या.), वज्झामि (का.)], आमं पत्तव अस्माना [पक्कंवा अमुना (का.)]।
446.
"वसीकरित्वा [वसीं करित्वा (बहुसु)] संकप्पां, सात्यंका सुपतिथितां;
रथ रथं विकारिसं, सावके विनयं पुथु।
447.
"ते अप्पमत्ता पहितत्ता, मम ससंकारका;
अकामास्सा [अकामा (का.)] ते गमिस्संति, यत्थ गन्त्वा न सोकेरे"।
448.
"सत्त वस्सानि भगवन्तं, अनुबन्धिं पदपदं;
ओटारं नाधिगच्छिस्सं, संबुद्धस्स सतीमतो।
449.
"मेदवन्नव पसानं, वायसो अनुपरिगा;
आपेत्था मुदुं [मुदु (सि.)] विन्देमा, अपि असदाना सिया।
450.
"अलाद्धा तत्थ असदं, वायसेत्तो अपक्कमि;
काकोवा सेलमसज्जा, निब्बिजपेमा गोतमम"।
451.
Tassa sokaparetassa, vīṇā kacchā abhassatha;
ततो सो दुम्मणो यक्खो, तत्थेवंतराधायथाति।
पधानसुत्तं दुतियाम् निहितम्।

पाली-देवनागरी
2. पधानसुत्तं
4.

"तं मन पधानपहित्तं, नादिं नेरञ्जरं पति।
विप्र रेखकम झायन्तं, योगखेमस्स पत्तिया॥
4
"नमुचि करुणं वाचं, भास्मानो उपागमि।
'किसो त्वमसि दुब्बन्नो, शांतिके मरणं तव॥
4
"'सहससभागो मरणस्स, एकंसो तव जीवितं।'
जीव भो जीवितं सेय्यो, जीवं पुञ्जनि काहसि॥
430.
"चरतो च ते ब्रह्मचर्यं, अग्गिहुत्तनच जुहतो।
पहुतं चीयते पुंजं, किं पधानेन कहसि॥
4
"'दुग्गो मग्गो पधानाय, दुक्रक्रो दुरभिसंभवो"।
इमा गाथा भानं मारो, अत्था बुद्धस्स शांतिके॥
44वीं.
तं तत्वादिनं मारं, भगव एतदब्रवि।
"पमत्तबन्धु पापिम, येनत्थेन [सेन्थेन (?), अत्तनो अत्थेन (अट्ठ॰ संवन्नना)] इधागतो॥
4
"अनुमत्तोपि [अनुमत्तेनपि (सी॰ स्या॰)] पुञ्जेन, अत्थो म्यहं न विज्जजति।
येसञ्च अत्थो पुञ्जेन, ते मारो वत्तुमरहति॥
4
"अथि साध तथा [ततो (सी॰ पी॰), तपो (स्या॰ क॰)] वीरियां, पञ्चा च मम विज्दजति।
एव मन पहितत्तमपि, किं जीवमनुपुच्छसि॥
4.
"नदिनमपि सोतानि, अयं वातो विसोसये।
किञ्च मे पहितत्तस्स, लोहितं नुपासुस्सये॥
4 .
"लोहिते सुस्समान्महि, पितं सेमहञ्च सुस्स्ति।"
मनसेसु खीयमानेसु, भय्यो चित्तं पसीदति।
भय्यो सति च पञ्चा च, समाधि मम तिट्ठति॥
4
"तस्स मेवं विहारतो, पत्त्ससुत्तमवेदनं।
कामेसु [कामे (सी॰ स्या॰)] नापेक्खते चित्तं, पास सत्तस्स सुद्धतं॥
40
"कामा ते पथम सेना, दुतिया आरती वुच्चचति।"
ततिया ख़ुप्पिपासा ते, चतुर्थी तन्हा पवुचदचति॥
4.
"पंचचमं [पंचमी (सी॰ पी॰)] थिनमिद्धं ते, छट्ठा भीरू पवुचचति।
सत्तमी विचिकिच्चा ते, मक्खो थम्भो ते अट्ठमो॥
440.
"लाभो सिलोको स त्रकारो, मिछलद्धो च यो यसो।
यो चट्टानं समुकंसे, परे च अवजान्ति॥
4
"ऐसा नमुचि ते सेना, कन्हस्साभिप्पहारिणी।"
न नं असुरो जिनाति, जेत्वा च लभते सुखं॥
4
"अस मुनजं परिहारे, धीरथु मम [इद (क॰)] जीवितं।
सङ्गामे मे मतं सेय्यो, यं चे जीवे पराजितो॥

4
"पगाळहेत्थ न दिसंन्ति, एके समन्ब्राह्मण।"
तंदच मग्गं न जानन्ति, येन गच्छन्ति सुब्बता॥
444.
" समंता धजिनं दिस्वा, युत्तं मारं स्वाहनं।
वाराय पच्चुग्गच्छामि, मां मां ठाना अचावायि॥
4
"यं ते तं नप्पसहति, सेनं लोको सदेवको।
तं ते पञ्चनाय भेच्छामि [गच्छामि (सी०), वेच्छामि (स्या०), वज्झामि (क०)], अमं पत्तव असम्ना [पक्काव अमुना (क०)]॥
444.
"वसीकरित्वा [वसिन कारित्वा (बहौसु)] सङ्कप्पं, सतिञ्च सुपतित्थितं।
रट्ठा रट्ठं विचारसं, सावके विनयं पुथु॥
44.
"ते अप्पमत्ता पहित्ता, मम ससंकारका।
अकामस्स [अकामा (क०)] ते गमिस्संति, यत् गन्त्वा न सोचरे"॥
4.
"सत्त वस्सनि भगवन्तं, अनुबन्धिं पदपदं।
ओटारं नाधिगच्छिस्सं, संबुद्धस्स सतीमतो॥
4
"मेदवन्नव पासां, वैसो अनुपरियोग।"
अपेत्थ मुदुं [मुदु (सी०)] विंडेम, अपि असदाना सिया॥
4
"अलद्धा तथा अस्सदं, वायसेत्तो अप्ट्रैक्टमी।"
काकोवा सेलमासज्ज, निब्बिजजापेम गोतमं"॥
4.
तस्स सोकपरेतस्स, विना कच्च अभस्सथ।
ततो सो दुम्मनो यक्खो, तत्थेवन्तरधायथाति॥
पधानसुत्तं दूतियां निश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> सुत्तनिपता >> 3.3 सुभाषितसुत्त
वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<--->>>> अगला

अच्छी तरह से बोलने वाला।

अंतर्वस्तु

3.3 सुभाषित सूत्र (अच्छी वाणी)
अनुवाद
मुझे यह सुनने को मिला:
एक समय भगवान (भगवान बुद्ध) जेतवन के श्रावस्ती में निवास कर रहे थे। भगवान (भगवान बुद्ध) ने यह कहा:

'हे भिक्षुओं, चार गुणों से युक्त वाणी सुसंस्कृत होती है, न कि असभ्य; और बुद्धिमानों के लिए निर्दोष और दोषरहित होती है।'

'कौन से चार गुण?'

हे भिक्षुओं, भिक्षु सुसंस्कृत (सुंदर वाणी) बोलता है , न कि असभ्य; वह धर्म की बात करता है , न कि अधर्म की; वह मनभावन बात बोलता है , न कि अप्रिय; वह सत्य बोलता है , न कि असत्य। हे भिक्षुओं, इन चार गुणों से युक्त वाणी सुसंस्कृत होती है, न कि असभ्य; और बुद्धिमानों के लिए दोषरहित और दोषरहित होती है।' यह भगवान (भगवान बुद्ध) ने कहा। जब सुगत (बुद्ध) ने यह कहा, तब गुरु ने निम्नलिखित कहा:

452.
1. 'सुंदर (सुंदर) भाषा को संत श्रेष्ठ (प्राथमिक) कहते हैं;
जो सही (धम्म) है, वह बोलो, अधार्मिक (अधम्म) नहीं;
जो मनभावन है, वह बोलो, अप्रिय नहीं;
जो सत्य है, असत्य नहीं, वह चौथा है।'

तब पूज्य वंगीसा अपने आसन से उठकर, अपना वस्त्र एक कंधे पर डालकर और अपने जुड़े हुए हाथों को भगवान (बुद्ध) की ओर झुकाकर बोले: 'हे सुगत (बुद्ध), मुझे यह बात सूझी!' 'हे वंगीसा, तुम्हें यह बात सूझी!' भगवान (बुद्ध) ने कहा। तब पूज्य वांगिसा ने भगवान (बुद्ध) के समक्ष खड़े होकर उचित श्लोकों में उनकी स्तुति की:

453.
2. 'ऐसा शब्द बोलो जिससे न तो स्वयं को कष्ट हो और न ही दूसरों को दुख पहुंचे ; ऐसे शब्द ही वास्तव में उत्तम हैं।

454.
3. 'मनभावन शब्द बोलो जो सभी को प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण हों , और जो (कहते हुए) पाप न करते हुए दूसरों को प्रसन्न करें। (454)

455.
4. 'सत्य वास्तव में अमर वाणी है, यह एक सत्य कथन है; जो सत्य है , जो अच्छा है, और जो सही (धम्म) है , उसमें धर्मी दृढ़ रहते हैं, ऐसा कहा जाता है।

456.
5. 'बुद्ध के वे शब्द जो निश्चित रूप से निर्वाण (मुक्ति, मोक्ष, अमरता) लाते हैं और कष्टों का अंत करते हैं, ऐसे (शब्द) वास्तव में सर्वश्रेष्ठ हैं।'

सुभाषितसुत्त समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
3. सुभासितसुत्तं
एवम् मे सुतम् — एक समयं भगव सावत्थियं विहारति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स अरामे। तत्र खो भगव भिक्खु अमांतेसि -
"भिक्खवो"ति। "भदंते'ति ते भिक्खु भगवतो पच्चसोसुम्।' भगव एतादावोका -
"चतुहि, भिक्खवे, अन्गेहि समन्नागता वाचा सुभाषित होति, न दुब्भासिता, अनवज्जा च अनुनुवज्जा च विष्णुनाम्। कटमेही कैटुही? इधा, भिक्खवे, भिक्खु सुभाषित्येव भासति नो दुब्भासीतम्, धम्मयेव भासति नो अधम्मम, पियान्येव भासति नो अप्पियं, सच्चायेव भासति नो अलीकम्। इमेहि खो, भिक्खवे, कैटुहि अंगेहि समानागत वाचा सुभाषित होति, नो दुब्भासिता, अनवज्जा च अननुवज्जा च विन्निनु'न्ति। इदमवोका भगव। इदं वत्वान् सुगतो अथापरं एतदावोच सत्था -
452.
"सुभाषितं उत्तममहु संतो, धम्मं भाणे नाधम्मं तं दुतियाम्;
पियं भने नाप्पियं तं ततियां, सच्चं भने नालिकं तं चतुत्थ'अन्ति।

अथ खो अयस्मा वंगिसो उत्थयासन एकांशम कत्वा येन भगव तेनांजलिं पनामेत्वा भगवन्तं एतदावोका - "पतिभाति माम्" भगव, पतिभाति मम् सुगत'ति। "पतिभातु तं वांगीसा'ति भगव अवोका। अथ खो अयस्मा वांगिसो भगवन्तं संमुखा सरूपाहि गाथाहि अभित्थवि -

453.
"तमेव वाचं भासेय, ययत्तनं न तपये;
पारे च न विहिंसेय, सा वे वाचा सुभाषिता।
454.
"पियवाचमेव भसेय, या वाचा पतिनंदिता;
यं अनादया पापानि, परेसं भासते पियं।
455.
"सच्चं वे अमाता वाचा, एसा धम्मो सनंतनो;
सच्चे अत्थे च धम्मे च, आहु संतो पतितिता।
456.
"यं बुद्धो भासति वाचं, खेमं निब्बानपत्तिया;
दुक्खस्सन्तकिरियाय, सा वे वचनामुत्तमा'ति।
सुभासितसुत्तं तत्यं निहितं।

पाली-देवनागरी
3. शुभसितासुत्तं
एवं मे सुतं — एक समयं भगव सावथ्यं विहारी जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। तत्र खो भगवा भिक्खु अम्नतेसी - "भिक्खवो"ति। "भदन्ते"ति ते भिक्खु भगवतो पच्चश्चसोसुं। भगवा एतदवोच -
"चतुहि, भिक्खवे, अङ्गेहि सम ज्ञानगाता वाचा सुभासिता होति, न दुब्बसिता, अनवजदजा च अन्नुवजदजा च विष्णुनं। कतमेहि चतुहि? इध, भिक्खवे, भिक्खु सुभासितन्येव भासति नो दुब्बासीतं, धम्मन्येव भासति नो अधम्मं, पियांयेव भासति नो अप्पियं, सचचान्येव भासति नो अलिकं। इमेहि खो, भिक्खवे, चतुहि अङ्गेहि समासज्ञानगाता वाचा सुभासिता होति, नो दुब्बसिता, अनवज्जा च अन्नुवज्जा च विञ्जुन"न्ति। इदमवोच भगवान। इदं वत्वान् सुगतो अथापरं एतदवोच सत्था -
4
"सुभासीतं उत्तममाहु सन्तो, धम्मं भने नाधम्मं तं दुतियां।
पियं भने नप्पियं तं ततियां, सचदचं भने नालिकं तं चतुत्थ"न्ति॥
अथ खो इस्मा वाङ्गिसो उत्थयासना एकंसं चीवरं कत्वा येन भगव तेनदजलिं पनामेत्वा भगवन्तं एतदवोच - "पतिभाति मं भगव, पतिभाति मं सुगता"ति। "पतिभातु तं वाङ्गीसा"ति भगव अवोच। अथ खो इस्मा वाडिंसो भगवन्तं सम्मुख सारुप्पाहि गाथाहि अभिथवि -
4
"तमेव वाचं भासेय, यायत्तानं न तपये।
परे च न विहिंसेय, सा वे वाचा सुभासिता॥
444.
"पियवाचमेव भासेय, या वाचा पतिन्नदिता।"
यं अनादय पापानि, परेसं भासते पियं॥
45.
"सच्चं वे अमता वाचा, एस धम्मो सनन्तनो।"
सचचे अत्थे च धम्मे च, आहु सन्तो पतित्थिता॥
40
"यं बुद्धो भासति वाचं, खेमं निब्बानपत्तिया।
दुक्खससंतकिरियाय, सा वे वचनमुत्तमा"ति॥
सुभासितसुत्तं ततीयं निश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> सुत्तनिपता >> 3.4 सुंदरिकाभारद्वजसुत्त
वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<-->>>> अगला

बुद्ध ने सुंदरिकाभारद्वाज को बताया कि किसे आहुति देनी है, और अंततः ब्राह्मण का धर्म परिवर्तन हो गया।

अंतर्वस्तु

3.4 सुंदरिकाभारद्वाजसुत्त
अनुवाद
मुझे ऐसा ज्ञान प्राप्त हुआ:

एक समय भगवान (भगवान बुद्ध) सुंदरिका नदी के किनारे कोसल में निवास कर रहे थे। उस समय ब्राह्मण सुंदरिकाभारद्वाज ने अग्नि को आहुति दी और उसकी पूजा की। फिर ब्राह्मण सुंदरिकाभारद्वाज ने अग्नि को आहुति देकर और उसकी पूजा करने के बाद अपने आसन से उठकर पृथ्वी के चारों ओर देखा और कहा, 'इस आहुति का शेष भाग किसे प्राप्त होगा?' ब्राह्मण सुंदरिकाभारद्वाज ने भगवान (भगवान बुद्ध) को पास ही एक वृक्ष की जड़ में सिर और शरीर को लपेटे हुए बैठे देखा; उन्हें देखकर उन्होंने अपने बाएं हाथ से आहुति का शेष भाग और अपने दाहिने हाथ से जलपात्र लेकर भगवान (भगवान बुद्ध) के पास गए। तब भगवान (भगवान बुद्ध) ने ब्राह्मण सुंदरिकाभारद्वाज के पदचिन्हों की आवाज सुनकर अपना सिर खोल दिया। तब ब्राह्मण सुंदरिकभरद्वाज ने सोचा, 'यह आदमी मुंडा हुआ है, यह तो मुंडा हुआ है,' और वह वहाँ से वापस लौटना चाहता था। तब ब्राह्मण सुंदरिकभरद्वाज के मन में यह विचार आया: 'यहाँ कुछ ब्राह्मण भी मुंडे हुए हैं, मुझे लगता है कि मुझे ऊपर जाकर उनसे उनके वंश के बारे में पूछना चाहिए।' तब ब्राह्मण सुंदरिकभरद्वाज भगवान (भगवान बुद्ध) के पास गए, और ऊपर जाकर उन्होंने यह कहा: 'आप किस वंश के हैं?'

तब भगवान (भगवान बुद्ध) ने ब्राह्मण सुंदरिकभरद्वाज को श्लोकों में उत्तर दिया:

1. 'मैं न तो ब्राह्मण (पुजारी) हूँ, न राजपूत, न ही कोई वेस (व्यापारी); मैंने आम लोगों के वर्गों का गहन अध्ययन किया है, मैं चिंतन करते हुए संसार में विचरण करता हूँ, मेरे पास कुछ भी नहीं है। (457)

2. 'संघति वस्त्र पहने और घरविहीन, मैं अपने बाल कटवाए हुए, शांत, इस संसार के लोगों से मेलजोल न रखते हुए विचरण करता हूँ।' हे ब्राह्मण! तुमने मुझसे मेरे कुल के बारे में एक अनुचित प्रश्न पूछा है। (458)

3. सुंदरिकभरद्वाज: 'हे प्रभु, ब्राह्मण आपस में मिलकर सत्य पूछते हैं, क्या तुम ब्राह्मण हो?' (459)

भगवान (बुद्ध): 'यदि तुम कहो कि मैं ब्राह्मण हूँ, और मुझे ब्राह्मण न कहो, तो मैं तुमसे उस सविति के बारे में पूछता हूँ जो तीन पदों और चौबीस अक्षरों से बनी है।' (460)

4. सुंदरिकभरद्वाज: 'इस संसार में ईसा, मनुष्यों, क्षत्रियों और ब्राह्मणों ने देवताओं को इतनी अधिक भेंट क्यों चढ़ाई?' (461)

भगवान (बुद्ध): 'जो भेंट चढ़ाते समय पूर्ण और सिद्ध हो, और किसी न किसी देवता का सान्निध्य प्राप्त कर ले, वह सफल होगा, ऐसा मैं कहता हूँ।' (462)

5. 'निश्चित रूप से उनकी भेंट फलदायी होगी,'—ब्राह्मण ने कहा—'क्योंकि हमने ऐसे सिद्ध पुरुष को देखा; क्योंकि आपके जैसे व्यक्ति को न देखकर कोई और इस भेंट का आनंद उठाएगा।' (463)

6. भगवान (बुद्ध): 'अतः, हे ब्राह्मण, क्योंकि तुम यहाँ कुछ माँगने आए हो, माँग लो; शायद तुम्हें यहाँ कोई शांत, क्रोध रहित, पीड़ा रहित, इच्छा रहित, और अच्छी समझ वाला व्यक्ति मिल जाए।' (464)

7. सुंदरिकभरद्वाज: 'हे गौतम (बुद्ध), मुझे अर्पण करने में आनंद आता है, मैं अर्पण करना चाहता हूँ, परन्तु मुझे समझ नहीं आ रहा; क्या आप मुझे निर्देश देंगे, मुझे बताएँगे कि किस स्थिति में अर्पण सफल होता है।' (465)

8. भगवान (बुद्ध): 'अतः, हे ब्राह्मण, मेरी बात सुनो, मैं तुम्हें धर्म सिखाऊँगा।' 9. 'वंश के बारे में मत पूछो, बल्कि आचरण के बारे में पूछो; यह सत्य है कि लकड़ी से अग्नि उत्पन्न होती है; (इसी प्रकार) एक दृढ़ मुनि (संत), यद्यपि निम्न कुल का हो, नम्रता से संयमित रहने पर (पापों से) श्रेष्ठ हो सकता है।' (466)

10. 'जो सत्य से वश में हो, संयम से युक्त हो, सिद्ध हो, ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करता हो, ऐसे व्यक्ति को समय आने पर लोगों को अर्पण करना चाहिए; अच्छे कर्मों को ध्यान में रखने वाला ब्राह्मण अर्पण करे।' (467)

11. जो लोग इंद्रिय सुखों का त्याग करके, घर छोड़कर, संयमित होकर, सीधे शटल के समान विचरण करते हैं, उन्हें उचित समय पर आहुति देनी चाहिए; अच्छे कर्मों का सूचक ब्राह्मण आहुति दे। (468)

12. जिनके जुनून समाप्त हो गए हैं, जिनकी इंद्रियां शांत हैं, जो राहु के चंगुल से चंद्रमा के समान मुक्त हो गए हैं, उन्हें उचित समय पर आहुति देनी चाहिए; अच्छे कर्मों का सूचक ब्राह्मण आहुति दे। (469)

13. जो लोग किसी भी चीज से आसक्त हुए बिना, सदा चिंतनशील होकर, स्वार्थ का त्याग करके संसार में विचरण करते हैं, उन्हें उचित समय पर आहुति देनी चाहिए; अच्छे कर्मों का सूचक ब्राह्मण आहुति दे। (470)

14. 'जो इंद्रिय सुखों का त्याग करके विजयी होकर विचरण करता है, जो पुनर्जन्म और मृत्यु के अंत को जानता है, जिसने निर्वाण (परिनिभूत) का दिव्य ज्ञान प्राप्त कर लिया है, जो गहरे जल के समान शांत है, तथागत (बुद्ध) आहुति के पात्र हैं। (471)

15. 'धर्मियों के साथ न्याय करने वाला और अधर्मियों से दूर रहने वाला तथागत (बुद्ध) अनंत पन्ना (प्रत्यक्ष अनुभवात्मक ज्ञान) से युक्त है; इस लोक और परलोक दोनों में निष्कलंक, तथागत आहुति के पात्र हैं। (472)

16. 'जिसमें छल, अहंकार नहीं रहता, जो लोभ, स्वार्थ, इच्छा से मुक्त है, जिसने क्रोध को त्याग दिया है, जो शांत है, वह ब्राह्मण जिसने दुःख के दाग को दूर कर दिया है, तथागत (बुद्ध) आहुति के पात्र हैं। (473)

17. 'जिसने मन के सभी विश्राम स्थलों को त्याग दिया है, जिसके लिए कोई आसक्ति नहीं है, जो इस लोक या परलोक में किसी भी चीज़ की लालसा नहीं रखता, तथागत (बुद्ध) आहुति के योग्य हैं। (474)

18. 'जो शांत हैं, जिन्होंने (अस्तित्व की) धारा को पार कर लिया है और धम्म को सर्वोच्च दृष्टि से जानते हैं, जिनके जुनून नष्ट हो गए हैं, जो अंतिम शरीर धारण किए हुए हैं, तथागत (बुद्ध) आहुति के योग्य हैं। (475)

19. 'जिसके अस्तित्व के प्रति जुनून और कठोर वाणी नष्ट हो गए हैं, (और इसलिए) विद्यमान नहीं हैं, वह सिद्ध और हर तरह से मुक्त तथागत (बुद्ध) आहुति के योग्य हैं। (476)

20. 'जिसने सभी बंधनों को त्याग दिया है, जिसके लिए कोई बंधन नहीं है, जो अहंकारी प्राणियों में अहंकार से मुक्त है, जिसने दुख और उसके क्षेत्र और विषय को भेद दिया है, तथागत (बुद्ध) आहुति के योग्य हैं। (477)

21. 'जो स्वयं को इच्छाओं के अधीन किए बिना एकांत (अर्थात निर्वाण) को देखता है, जिसने दूसरों द्वारा सिखाए जाने वाले दृष्टिकोण पर विजय प्राप्त कर ली है, जिसके लिए इंद्रियों के कोई विषय नहीं हैं, तथागत (बुद्ध) आहुति के योग्य हैं। (478)

22. 'जिसके लिए सभी प्रकार के धर्म, उन्हें भेदने के बाद, नष्ट हो जाते हैं, (और इसलिए) अस्तित्व में नहीं रहते, जो शांत है, आसक्ति के नाश (अर्थात निर्वाण) में मुक्त है, तथागत (बुद्ध) आहुति के योग्य हैं। (479)

23. 'जो बंधन और पुनर्जन्म के विनाश को देखता है, जिसने कामवासना के मार्ग से पूर्णतः परहेज किया है, जो शुद्ध, निर्दोष, निष्कलंक, निर्मल है, तथागत (बुद्ध) आहुति के योग्य है। (480)

24. 'जो स्वयं को स्वयं से नहीं मापता, जो शांत, ईमानदार, दृढ़, इच्छा रहित, अखिल (कठोरता) से मुक्त, संशय से मुक्त है, तथागत (बुद्ध) आहुति के योग्य है। (481)

25. 'जिसके लिए मूर्खता का कोई कारण नहीं है, जिसे सभी धर्मों में अलौकिक अंतर्दृष्टि प्राप्त है, जो अंतिम शरीर धारण करता है, और जिसने पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया है, जो सर्वोच्च, धन्य है, (उसके लिए) इस प्रकार यक्ष का शुद्धिकरण होता है।' (482)

26. सुंदरिकभारद्वाज: 'मेरी आहुति सच्ची आहुति हो, क्योंकि मुझे सिद्ध पुरुषों में से ऐसा ही एक मिला; ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) मेरे साक्षी हैं, भगवान (बुद्ध) मुझे स्वीकार करें, भगवान (बुद्ध) मेरी आहुति का आनंद लें। (483)

27. भगवान (बुद्ध): 'श्लोकों से जो प्राप्त होता है, उसका मैं आनंद नहीं ले सकता, हे ब्राह्मण; बुद्ध श्लोकों से प्राप्त होने वाली चीजों को अस्वीकार करते हैं। हे ब्राह्मण, जब तक धम्म विद्यमान है, यही बुद्धों का अभ्यास है। (484)

28. 'अन्य भोजन और पेय के साथ तुम्हें उस परिपूर्ण, महान ऋषि (संत) की सेवा करनी चाहिए, जिसकी वासनाएं नष्ट हो गई हों और जिसका दुराचार समाप्त हो गया हो, क्योंकि यह अच्छे कर्मों की तलाश करने वाले के लिए एक क्षेत्र है।' (485)

29. सुंदरिकभरद्वाज: 'हे भगवान (भगवान बुद्ध), तो मैं जानना चाहता हूँ कि मुझ जैसे व्यक्ति से दान का आनंद कौन उठाएगा, और आपके उपदेश को स्वीकार करने के बाद यज्ञ के समय मैं किसे (अर्पण के योग्य मानकर) प्रार्थना करूँ।' (486)

30. भगवान (भगवान बुद्ध): 'जिसके मन में कोई कलह नहीं है, जिसका मन शांत है, जिसने कामवासनाओं से मुक्ति पा ली है, (487)

31. 'जिसने अपने पापों पर विजय प्राप्त कर ली है, जो पुनर्जन्म और मृत्यु को जानता है, जो ज्ञान से परिपूर्ण मुनि (संत) है, जिसने अर्पण का सहारा लिया है, (488)

32. 'उसे भोजन और पेय से पूजें और आदर दें; इससे दान सफल होगा।' (489)

33. सुंदरिकभरद्वाज: 'हे बुद्ध, आप अर्पण के योग्य हैं, आप सद्‌गुणों के रोपण के लिए सर्वोत्तम क्षेत्र हैं, समस्त जगत को अर्पित किए जाने के पात्र हैं; आपको जो दिया जाएगा वह महान फल देगा।' (490)

तब ब्राह्मण सुंदरिकभरद्वाज ने भगवान (बुद्ध) से यह कहा: 'हे पूज्य गौतम (बुद्ध) यह उत्तम है! हे पूज्य गौतम (बुद्ध) यह उत्तम है! जैसे कोई गिरी हुई वस्तु को उठाता है, या छिपी हुई वस्तु को प्रकट करता है, या भटके हुए व्यक्ति को मार्ग दिखाता है, या अंधकार में तेल का दीपक जलाता है ताकि देखने वाले वस्तु को देख सकें, वैसे ही पूज्य गौतम (बुद्ध) ने अनेक तरीकों से धम्म का स्पष्टीकरण किया है; मैं पूज्य गौतम (बुद्ध), धम्म और भिक्षु सभा की शरण लेता हूँ; मैं पूज्य गौतम (बुद्ध) से वस्त्र और आदेश प्राप्त करना चाहता/चाहती हूँ।

ब्राह्मण सुंदरिकभरद्वाज ने भगवान बुद्ध से दीक्षा (पब्बज्जा) प्राप्त की और उपसंपदा (दीक्षा) भी प्राप्त की; उपसंपदा प्राप्त करने के बाद, पूज्य भरद्वाज ने एकांत, एकांतप्रिय, परिश्रमी, उत्साही और ऊर्जावान जीवन व्यतीत किया और थोड़े ही समय में अपने ज्ञान से धर्म जीवन की उस सर्वोच्च पूर्णता को प्राप्त कर लिया, जिसके लिए कुलीन परिवार के लोग अपने घर को त्यागकर घरहीन हो जाते हैं। उन्होंने यह अनुभव किया, 'पुनर्जन्म का नाश हो गया, धर्मपरायण जीवन व्यतीत किया गया, जो करना था वह कर लिया गया, इस जीवन में अब कुछ और करने को नहीं बचा था।' इस प्रकार पूज्य सुंदरिकभरद्वाज ब्राह्मण अरहतों (पूर्णतः प्रबुद्ध) में से एक बन गए।

सुंदरिकभरद्वाजसूत्र समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
4. सुंदरिकाभारद्वाजसुत्तम्
एवं मे सुतं - एकं समयं भगव कोसलेसु विहारति सुंदरिकाया नादिया तीरे। तेन खो पाना समयेन सुंदरिकाभारद्वाजो ब्राह्मणो सुंदरिकाया नादिया तीरे अग्गि जुहति, अग्गिहुत्तं परिचरति। अथ खो सुंदरिकाभारद्वाजो ब्राह्मणो अग्गि जुहित्वा अग्गिहुत्तं परिचरित्वा उत्थयासना

समंता चतुद्दिसा अनुविलोकेसि - "को नु खो इमं हब्यसेसं भुञ्जेय"ति? अद्दसा खो सुंदरिकाभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं अविदुरे अनंतरस्मि रुक्खमुले ससीसं परुतं निसिन्नम्; दिस्वाना वामेन हत्थेन हब्यसेसं गहेत्वा दक्खिनेन हत्थेन कमंडलुम गहेत्वा येन भगव तेनुपशंकामि। अथ खो भगव सुंदरिकाभारद्वजस्स ब्राह्मणस्स पदसद्देन सीसं विवारी। अथ खो सुन्दरिकाभारद्वाजो ब्राह्मणो - "मुण्डो अयं भवाम्, मुण्डको अयं भव"न्ति ततोवा पुना निवत्तीतुकामो अहोसि। अथ खो सुंदरिकाभारद्वाजस ब्राह्मणस्स एतदहोसि - "मुंडापि हि इधेकच्चे ब्राह्मण भवन्ति, यन्नुनाहं उपसंकमित्वा जातिं पुचेय्य"न्ति। अथ खो सुंदरिकाभारद्वाजो ब्राह्मणो येन भगव तेनुपशंकामि; उपसंकमित्वा भगवन्तं एतदावोचा - " किञ्चको भव'न्ति?

अथ खो भगव सुन्दरिकाभारद्वाजं ब्राह्मणं गाथाहि अज्जभासि -

457.

"न ब्राह्मणो नोमहि न राजपुत्टो, न वेस्सयणो उदा कोचि नोमहि;
गोत्तं परिणय पुथुज्जनानं, अकिंचनो मंता कैरामि लोके।

458.

"संघातिवासी अगाहो कारामि [अगिहो (का. सी. पि.) अगेहो (कत्थचि)], निवुत्तकेसो अभिनिब्बुत्तो;
अलिप्पामानो इधा मनवेहि, अकालं मां ब्राह्मण पुच्चसि गोत्तपन्हं"।

459.

"पुच्चन्ति वे भो ब्राह्मणा, ब्राह्मणेभि सह ब्राह्मणो नो भवन्ति।

460.

"ब्राह्मणो हि सी त्वं ब्रूसी, मंचा ब्रूसी ब्राह्मणम्;
तं तं सवित्तिं पुच्छमि, तिपादं चतुविसातक्खरं।

461.

"किं निसिता इसयो मनुजा, खटिया ब्राह्मणा [पाथमपादन्तो] देवतानं;
यान्नमकप्पयिन्सु पुथु इधा लोके [दुतियापादन्तो (सि.)]।

462.

"यदन्तगु वेदगु यान्नकाले, यस्साहुतिं लभे तस्सिज्जेति ब्रूमि"।

463.

"अद्धा हि तस्स हुतामिज्जे, (इति ब्राह्मणो)
यं तदिसं वेदगुमद्दसाम;
तुम्हादिसाणहि अडस्सनेण, अन्नो जनो भुञ्जति पुरासां"।

464.

"तस्मातिह त्वं ब्राह्मण अत्थेन, अत्तिको उपसंकम्मा पुच्च;
संतं विधुमं अनिघं निरासं, अप्पेविध अभिविन्दे सुमेधं"।

465.

"यान्ने रतोहं भो गोतम, यान्नं यिथुकामो नाहं पजानामि;
अनुसासतु मम् भावं, यत्थ हुतं इज्जते ब्रुहि मे तं"।
"तेन हि त्वं, ब्राह्मण, ओदाहस्सु सोतं; धम्मं ते देसेस्सामि —

466.

"मा जातिं पुच्चि चरणाञ्च पुच्च, कत्था हवे जयति जातवेदो;
निकाकुलिनोपि मुनि धीतिमा, अंजनियो होति हिरणीसेधो।

467.

"सच्चेना दंतो दमासा उपेतो, वेदांतगु वुसितब्रह्मचारियो;
कालेन तमहि हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुनापेक्खो [पुन्नपेखो (सि. पि.)] यजेथा।

468.

"ये कामे हित्वा अगाहा कैरन्ति, सुसन्नत्तत्ता तसरनव उज्जुम्;
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुनापेक्खो यजेथा।

469.

"ये वीतराग सुसमाहितिन्द्रिय, कैंडोवा रहुग्गहाणा पमुत्ता;
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुनापेक्खो यजेथा।

470.

"असज्जमाना विकारन्ति लोके, सदा सता हित्वा ममयितानि;

कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुनापेक्खो यजेथा।
471.
"यो कामे हित्वा अभिभूयचारि, यो वेदि जातिमरणस्सा अन्तम्;
परिणिब्बुतो उदकरहदोवा सितो, तथागतो अरहति पुरासां।
472.
"समो समेहि विसामेहि दूरे, तथागतो होति अनन्तपन्नो;
अनुपालितो इधा वा हुरं वा, तथागतो अर्हति पुरासासं।
473.
"यमहि न माया वसति न मानो, यो वितालोभो अमो निरासो;
पनुन्नकोधो अभिनिब्बुतत्तो, यो ब्राह्मणो सोकमलाम् अहसि;
तथागतो अरहति पुरासाम्।
474.
"निवेसनं यो मनसो अहसि, परिग्गहा यस्सा न शांति केचि;
अनुपादियानो इधा वा हुरं वा, तथागतो अरहति पुरासासं।
475.
"समाहितो यो उदतारि ओघं, धम्मं कैननासि परमया दितिथिय;
खिन्नसावो अन्तिमदेधाधारी, तथागतो अर्हति पुरासासं।
476.
"भवस्व यस्सा वाचि खरा च, विधूपिता अथगता न शांति;
स वेदागु सब्बाधि विप्पमुत्तो, तथागतो अरहति पुरासां।
477.
"संगतिगो यस्सा न शांति संगा, यो मनसत्तेसु अमानसत्तो;
दुक्खं परिणय सखेत्तवत्थुम्, तथागतो अरहति पुरासाम्।
478.
"आसं अनिस्साया विवेकादस्सी, परवेद्यं दिथिमुपतिवत्तो;
अरम्मना यस्सा न संति केचि, तथागतो अरहति पुरासासं।
479.
"परोपारा [परोवरा (सी.पी.)] यस्सा समेच्च धम्म, विधूपिता अथगता न शांति;
सन्तो उपादानखाये विमुत्तो, तथागतो अरहति पुरासाम्।
480.
"संयोजनं जातिखयंतदस्सी, योपानुदि रागपथं असेसं;
सुद्धो निदोसो विमलो अकाको [अकामो (सि. स्या.)], तथागतो अरहति पुरासां।
481.
"यो अत्तनो अत्तनं [अत्तनत्तनं (सि. स्या.)] नानुपासति, समाहितो उज्जुगतो थित्तत्तो;
सा वे अनेजो अखिलो अकांखो, तथागतो अरहति पुरासां।
482.
"मोहंतरा यस्सा न शांति केचि, सब्बेसु धम्मेसु च नानादस्सी;
शरीरान्च अन्तिमं धारेति, पत्तो च संबोधिमनुत्तरं शिवं;
एत्तावता यक्खस्सा शुद्धि, तथागतो अरहति पुरासां"।
483.
"हुतांका [हुत्तांका (सि. का.)] मयहं हुतमत्तु सच्चं, यम तदिसं वेदगुणं अलत्थं;
ब्रह्मा हि सक्खि पतिगणहतु मे भगव, भुञ्जतु मे भगव पुरदासम्"।
484.
"गाथाभिगीतां मे भोजनेयं, संपासतं ब्राह्मण नेसा धम्मो;
गाथाभिगीतां पनुदन्ति बुद्ध, धम्मे सति ब्राह्मण वुत्तिरसा।
485.
"अन्नेन च केवलिनं महेसिं, खिनासावं कुक्कुक्कवुपसंतम्;
अन्नेन पनेण उपाथहस्सु, खेतान्हि तं पुन्नपेक्खस्सा होति"।

486.
"साधाहं भगव तथा विज्ञानं, यो दक्खिनं भुञ्जेय मदिस्सा;
यं यान्नकाले परियेसामानो, पप्पुय्य तव शासनं।"
487.
"सारम्भा यस्सा विगत, चित्तं यस्सा अनाविलम्;
विप्पमुत्तो च कामेहि, थिनं यस्सा पनुदितम्।
488.
"सीमंतानां विनीतारं, जातिमरणकोविदं;
मुनिं धन्यसम्पन्नं, तदिसं यन्नमगतम्।
489.
"भकुटिं [भुकुटिं (का. सी.), भकुटिं (का. सी., मा. नि. 1.226)] विनयित्वना, पंजालिका नमस्सथ;
पूजेथा अन्नपानेन, एवं इज्जन्ति दक्खिना।
490.
"बुद्धो भावं अरहति पुरदासं, पुन्नखेत्तमनुत्तरम्;
अयागो सब्बलोकस्सा, भोतो दिनं महप्फला'न्ति।
अथ खो सुंदरिकाभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदावोचा - " अभिकान्तं, भो गोतम, अभिकान्तम्, भो गोतम! सेय्याथापि, भो गोतम, निक्कुज्जितं वा उक्कुज्जेय्या, पतिच्चन्नं वा विवरेया, मुधास्सा वा मग्गं आचिक्खेया, अंधकारे वा तेलापज्जोतम धारेया - चक्खुमंतो रूपाणी दक्खन्तीति; एवमेवं भोता गोतमेना अनेकापरियायेन धम्मो पकासितो। एषाहं भवंतं गोतमं शरणं गच्छामि धम्मञ्च भिक्खुसंघाञ्च। लभेयाहं भोतो गोतमस्सा संतिके पब्बज्जं, लभेयं उपसम्पदा'न्ति। अलत्थ खो सुंदरिकाभारद्वाजो ब्राह्मणो...पे... अरहतं अहोसिति।
सुंदरिकाभारद्वाजसुत्तं चतुत्थं निहितं।

पाली-देवनागरी
4. सुन्दरिकभरद्वाजसुत्तं
एवं मे सुतं — एकं समयं भगव कोसलेसु विहारति सुंदरिकाय नादिया तीरे। तेन खो पन समयेन सुंदरिकाभरद्वाजो ब्राह्मणो सुंदरिकाय नादिया तीरे अग्गिं जुहति, अग्गिहुत्तं परिचरति। अथ खो सुंदरिकाभारद्वाजो ब्राह्मणो अग्गिन जुहित्वा अग्गिहुत्तं परिचरित्वा उत्थयासना समंता चतुद्दिसा अनुविलोकेसि - "को नु खो इमं हब्यसेसं भुंजदजेय"ति? अद्दसा सुंदरिकभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं अविदूरे अञ्जन्तरस्मिं रुखमूले ससीसं पारुतं निसि सिनजं; दिस्वां वामेन हत्थेन हब्यसेसं गहेत्वा दक्खिनेन हत्थेन कमंडलुं गहेत्वा येन भगवा तेनुपसङकमि। अथ खो भगवा सुंदरिकभारद्वाजस्स ब्राह्मणस पदसद्देन सीसं विवारी। अथ खो सुंदरिकाभारद्वाजो ब्राह्मणो - "मुंडो अयं भवं, मुंडको अयं भव"न्ति ततोव पुन निवत्तितुकामो अहोसि। अथ खो सुंदरिकाभारद्वाजस्स ब्राह्मणस्स एतदहोसि - "मुंडपि हि इधेकच्छे ब्राह्मणा भवन्ति, यन्नुनाहं उपसङ्कमित्वा जातिं पुच्छेय"न्ति। अथ खो सुन्दरिकभारद्वाजो ब्राह्मणो येन भगवा तेनुपसङकमि; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं एतदवोच - "किञ्जच्चो भव"न्ति?
अथ खो भगवत् सुन्दरिकभारद्वाजं ब्राह्मणं रामायणहि अज्भासि -
4
"न ब्राह्मणो नोम्हि न राजपुत्तो, न वेस्सायनो उद कोचि नोम्हि।
गोत्तं परिञ्चयाय पुथुज्जनानं, अकिञ्चनो मन्त चरामि लोके॥
4वीं.
"सङ्घाटीवासी अघो चरामि [अगिहो (क० सी० पी०) अगेहो (कत्थचि)], निवुत्तकेसो अभिनिब्बुत्ततो।
अलिप्पमानो इध मनवेहि, अक्लदलं मन ब्राह्मण पुच्छसि गोत्तपञ्च॥"
4 50.
"पुच्छन्ति वे भो ब्राह्मणा, ब्राह्मणेभि सह ब्राह्मणो नो भव"न्ति॥
4.
"ब्राह्मणो हि चे त्वं ब्रूसि, मञ्च ब्रूसि अब्राहमणं।
तं तं सवित्तिं पुच्छमि, तिपादं चतुविसत्खरं॥
4
"किं निस्सीता इसयो मनुजा, खत्तिया ब्राह्मणा [पथमपदंतो] देवतानं।
यञ्जमकप्पयिन्सु पुथु इध लोके [दुतियपादन्तो (सी०)]॥
4

"यदन्तगु वेदगू यञ्चकाले, यस्साहुतिं लभे तस्सिज्जेति ब्रूमि"॥
466.
"अद्धा हि तस्स हुतमिज्झे, (इति ब्राह्मणो)
यं तदिसं वेदगुमद्दसाम्।
तुम्हादीसांनहि अदस्सनेन, अञ्जनो जनो भुञ्जति पुरळासन्"॥
4
"तस्मातिह त्वं ब्राह्मण एथेन, अथिको उपसङकम पुच्छ।
सन्तं विधुमं अनीघं निरासं, अप्पेविध अभिविंदे सुमेधं॥
4.
"यञ्जने रतोहं भो गोतम, यञ्जन्न यित्थुकामो नहं पजानामि।
अनुसास्तु मन भवन, यथा हुतं इज्ज़ते ब्रूहि मे तं"॥
"तेन हि त्वं, ब्राह्मण, ओदहस्सु सोतं; धम्मं ते देसेस्सामि -
4.
"मा जातिं पुच्छि चरणाञ्च पुच्छ, कत्था हवे जायति जातवेदो।
नीचाकुलिनोपि मुनि धीतिमा, अजाणियो होति हिरिनिसेधो॥
4
"सच्चेन दन्तो दमसा उपेतो, वेदांतगू वुसीतब्रह्मचारियो।"
कालेन तमहि हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुंजपेक्खो [पुंजपेखो (सी० पी०)] यजेथ॥
चार सौ
"ये कामे हित्वा अघा चरन्ति, सुसंज्ञत्ता तस्रव उज्जुं।
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुंजपेक्खो यजेथ॥
46.
"ये वीतरागा सुसहितिन्द्रिय, चंदोव राहुघाना पमुत्ता।
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुंजपेक्खो यजेथ॥
400
असज्जमाना विचरन्ति लोके, सदा सत् हित्वा ममयितानि।
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुंजपेक्खो यजेथ॥
450.
"यो कामे हित्वा अभिभूयचारी, यो वेदि तेमरानसस अंतं।
परिनिब्बुतो उदकरहदोव सीतो, तथागतो अरहति पुरळासन॥
4.
"समो समेहि मेविहि दूरे, तथागतो होति अनंतपञ्चो।
अनोपलित्तो इध वा हुरं वा, तथागतो अरहति पुरळासन्॥
4.
"यम्हि न मया वसति न मानो, यो वीतलोभो अम्मो निरासो।
पनुन्नकोधो अभिनिब्बुत्ततो, यो ब्राह्मणो सोकमलं अहासि।
तथागतो अरहति पुरळासन्॥
4
"निवेसनं यो मनसो अहासि, परिग्गहा यस न शांति केचि।
अनुपादियानो इध वा हुरं वा, तथागतो अरहति पुरासं॥
450.
"समाहितो यो उद्तारि ओघं, धम्मं चञ्चसि परमाय दिट्ठिया।
खिनासावो अन्तिमदेहधारी, तथागतो अरहति पुरळासं॥
46.
"भवस्व यस् वाचि खरा च, विधूपिता अथगता न शांति।"
स वेदगु सब्बधि विप्पमुत्तो, तथागतो अरहति पुरासं॥
477.
"सङ्गातिगो यस न सन्ति सङ्गा, यो मनसत्तसु अमानसत्तो।

दुक्खं परिज्ञानाय सखेत्तवथुं, तथागतो अरहति पुरळासन्॥
4.
"असं अनिस्साय विवेकादस्सी, परवेदियं दिट्ठिमुपतिवत्तो।
अरमना यस् न सन्ति केचि, तथागतो अरहति पुरळासन्॥
4.
"परोपरा [परोवरा (सी० पी०)] यस समेचच धम्मा, विधूपिता अथगता न सन्ति।
सन्तो उपादानखाये विमुत्तो, तथागतो अरहति पुरळासं॥
4.
"संयोजनं जातिखयंतदस्सी, योपानुदि रागपथं असेसं।
सुद्धो निदोसो विल्मो अकाचो [अकामो (सी० स्या०)], तथागतो अरहति पुरळासन॥
4
"यो अत्तनो अत्तानं [अत्तनात्तनं (सी० स्या०)] नानुपस्स्ति, समाविष्टो उज्दजुगतो थितत्तो।
स वे अनेजो अखिलो अकङ्खो, तथागतो अरहति पुरासं॥
4.
"महत्र यस् न सन्ति केचि, सब्बेसु धम्मेसु च नन्ददस्सी।"
शरीरं च अन्तिमं धारेति, पत्तो च सम्बोधिमनुत्तरं शिवं।
एत्तावता यक्षस्स सुद्धि, तथागतो अरहति पुरळासन्॥
4.
"हुत्तञ्च [हुत्तञ्च (सी० क०)] म्यहं हुतमथु सच्दचं, यं तदिसं वेदगुणं अलथं।
ब्रह्मा हि सक्खि पतिग्नहातु मे भगवा, भुञ्जतु मे भगवा पुरळासं॥
4 सप्ताह.
"गाथाभिगीतं मे अभोजनेयं, सम्पस्सतं ब्राह्मण नेस धम्मो।
गाथाभिगीतं पनुदन्ति बुद्धा, धम्मे सति ब्राह्मण वुत्तिरसा॥
4.
"अञ्जेन च केवलिनं महेसिं, खिनास्वं कुकुचदचवुपसन्तं।
अ खोजेन प्राप्तेन उपट्ठहस्सु, खत्तञ्हि तं पुंजपेखस्स होति"॥
466
"साधाहं भगवान तथा विज्ञानं, यो दक्खिनं भुञ्जेय मादिसस्स।
यं यञ्चकाले प्रियेसमानो, पप्पुय तव ससनं"॥
4.
" सारंभ यस अतीता, चित्तं यस अनाविलं।
विप्पमुत्तो च कामेहि, थिनं यस् पनुदितं॥
4.
"सीमान्तानां विनेतरं, जातिमरणकोविदं।
मुनिं मोनेय्यसंप जपं, तदिसं यज्ञमगतं॥
4 सप्ताह
"भुकुटिन [भुकुटिन (क० सी०), भकुटिन (क० सी०, म० नि० 1.226)] विज्ञित्वान, पञ्जलिका नमस्सथ।
पूजेथ अपायनपानेन, एवं इज्जन्ति दक्षिणा॥
4
"बुद्धो भवनं अरहति पुरासं, पुञ्चेत्तमनुत्तरं।
अयागो सब्बलोकस्स, भोतो दीन नारायणं महपफल"न्ति॥
अथ खो सुन्दरिकभारद्वाजो ब्राह्मणो भगवन्तं एतदवोच – "अभिक्रोकान्तं, भो गोतम, अभिक्रोकान्तं, भो गोतम! सेयथापि, भो गोतम, त्र निकुज्जजितं वा उक्राकुज्जेय, पतिच्छ संज्ञां वा विवेरेय, मूळहस्स वा मग्गं अचिक्खेय, अंधकारे वा तैलपजजोतं धारेयय - चक्खुमंतो रूपाणि दक्खनतिति; एवमेवं भोता गोतमेन अनेकप्रिययेन धम्मो पाकसितो। एसहं भवन्तं गोतमं शरणं गच्छामि धम्मनदच भिक्खुसङ्घघ्नदच। लभेयहं भोतो गोतमस्स संतिके पब्बजं, लभेयं उपसम्पदा"न्ति। अलत्थ खो सुन्दरिकभारद्वाजो ब्राह्मणो...पे०...अर्हतं अहोसिति।
सुंदरिकाभरद्वाजसुत्तं चतुत्थं निश्चितं।

वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<--->>>> अगला

पूछे जाने पर बुद्ध ने माघा को उन लोगों के बारे में बताया जो भेंट चढ़ाने के योग्य हैं और भेंट चढ़ाने के आशीर्वाद के बारे में भी बताया।

अंतर्वस्तु

3.5 मगसूत्र
अनुवाद
मुझे यह सुनने को मिला:

एक समय भगवान (भगवान बुद्ध) राजगृह में, गिज्जकूट नामक पर्वत पर निवास कर रहे थे।

तब युवक माघ भगवान (भगवान बुद्ध) के पास गया, और उनसे मधुर वार्तालाप करने के बाद, एकांत में बैठ गया; एकांत में बैठकर युवक माघ ने भगवान (भगवान बुद्ध) से यह कहा:

'हे पूज्य गौतम (बुद्ध), मैं उदार दाता हूँ, दानशील हूँ, भीख मांगने योग्य हूँ; मैं न्यायपूर्वक धन की खोज करता हूँ, और न्यायपूर्वक धन की खोज करने के बाद, मैं न्यायपूर्वक प्राप्त धन में से एक, दो, तीन, चार, पाँच, छह, सात, आठ, नौ, दस, बीस, तीस, चालीस, पचास, सौ और उससे भी अधिक लोगों को देता हूँ।' (मैं जानना चाहता हूँ), हे पूज्य गौतम (बुद्ध), क्या मैं इस प्रकार दान करते हुए, इस प्रकार भेंट करते हुए, बहुत पुण्य उत्पन्न करता हूँ?'

'निश्चित रूप से, हे युवक, क्या तुम इस प्रकार भेंट करते हुए बहुत पुण्य उत्पन्न करते हो? हे युवक, जो उदार दाता है, दानशील है, भीख मांगने योग्य है, और जो न्यायपूर्वक धन की खोज करता है, और न्यायपूर्वक धन की खोज करने के बाद, अपने न्यायपूर्वक अर्जित धन में से एक, दो, तीन, चार, पाँच, छह, सात, आठ, नौ, दस, बीस, तीस, चालीस, पचास, सौ और इससे भी अधिक दान करता है, वह बहुत पुण्य उत्पन्न करता है।'

तब युवक माघा ने भगवान बुद्ध को श्लोकों में संबोधित किया:

1. 'मैं आदरणीय गौतम बुद्ध से, जो उदार हैं,' - युवक माघा ने कहा, - 'पीले वस्त्र धारण किए हुए, घरविहीन विचरण करते हैं:' 'जो गृहस्थ है, भिक्षा मांगने योग्य है, दानदाता है, जो कल्याण की इच्छा रखता है, कल्याण को ध्यान में रखते हुए दान करता है, और इस संसार में दूसरों को भोजन और पेय देता है, - ऐसे दानदाता का दान कहाँ (अर्थात किसे दिया जाए) सफल होगा?' (491)

2. 'हे माघा, जो गृहस्थ है, भिक्षा मांगने योग्य है, दानदाता है,' - भगवान बुद्ध ने कहा, - 'जो कल्याण की इच्छा रखता है, कल्याण को ध्यान में रखते हुए दान करता है, और इस संसार में दूसरों को भोजन और पेय देता है, ऐसा दान उन लोगों के साथ सफल होगा जो दान के योग्य हैं।' (492)

3. 'जो गृहस्थ है, भिक्षा मांगने योग्य है, दान देने योग्य है,'—उस युवक ने कहा—'जो कल्याण की इच्छा रखता है, कल्याण को ध्यान में रखते हुए दान करता है, और इस संसार में दूसरों को भोजन और पेय देता है,—हे भगवान (बुद्ध), मुझे (मैं ऐसा ही हूँ) दान के योग्य व्यक्तियों के बारे में बताइए।' (493)

4. भगवान (बुद्ध): 'वास्तव में जो लोग संसार में बिना किसी आसक्ति के और बिना किसी वस्तु के विचरण करते हैं, पूर्ण, आत्मसंयमित, ऐसे लोगों को उचित समय पर दान देना चाहिए; जो ब्राह्मण अच्छे कर्मों को ध्यान में रखते हैं, वे दान करें।' (494)

5. 'जो सभी बंधनों और बेड़ियों को तोड़कर वश में हो गए हैं, जो वश में हैं, मुक्त हैं, पीड़ा से मुक्त हैं और इच्छा से मुक्त हैं, ऐसे लोगों को उचित समय पर आहुति देनी चाहिए; अच्छे कर्मों को ध्यान में रखने वाला ब्राह्मण आहुति दे। (495)

6. 'जो सभी बंधनों से मुक्त हो गए हैं, जो वश में हैं, मुक्त हैं, पीड़ा से मुक्त हैं और इच्छा से मुक्त हैं, ऐसे लोगों को उचित समय पर आहुति देनी चाहिए; अच्छे कर्मों को ध्यान में रखने वाला ब्राह्मण आहुति दे। (496)

7. 'जो लोग वासना, घृणा और मूर्खता दोनों का त्याग करके अपनी इच्छाओं का नाश कर चुके हैं और ब्रह्मचर्य का जीवन व्यतीत करते हैं, ऐसे लोगों को उचित समय पर आहुति देनी चाहिए; अच्छे कर्मों को ध्यान में रखने वाला ब्राह्मण आहुति दे। (497)

8. 'जिनमें छल, अहंकार न हो, जो भोग-विलास से मुक्त हों, स्वार्थ से मुक्त हों, कामुक इच्छाओं से मुक्त हों, ऐसे लोगों को उचित समय पर आहुति देनी चाहिए; अच्छे कर्मों को ध्यान में रखने वाले ब्राह्मण को आहुति देनी चाहिए। (498)

9. 'जो लोग लोभ में लीन हुए बिना, जीवन की धारा पार करके, स्वार्थ से मुक्त होकर, कामुक इच्छाओं से मुक्त होकर विचरण करते हैं, ऐसे लोगों को उचित समय पर आहुति देनी चाहिए; अच्छे कर्मों को ध्यान में रखने वाले ब्राह्मण को आहुति देनी चाहिए। (499)

10. 'जिनमें संसार में किसी भी चीज की इच्छा न हो, न ही इस लोक या परलोक में किसी भी जन्म की, ऐसे लोगों को उचित समय पर आहुति देनी चाहिए; अच्छे कर्मों को ध्यान में रखने वाले ब्राह्मण को आहुति देनी चाहिए। (500-501)

11. 'जो लोग इंद्रिय सुखों का त्याग करके, घर छोड़कर, संयमित और सीधे शटल के समान विचरण करते हैं, उन्हें उचित समय पर आहुति देनी चाहिए; अच्छे कर्मों की इच्छा रखने वाला ब्राह्मण आहुति दे। (502)

12. 'जिनके मनोभाव शांत हो गए हैं, जिनकी इंद्रियां शांत हैं, जो राहु के चंगुल से चंद्रमा के समान मुक्त हो गए हैं, उन्हें उचित समय पर आहुति देनी चाहिए; अच्छे कर्मों की इच्छा रखने वाला ब्राह्मण आहुति दे। (503)

13. 'जो शांत हैं, जिनके मनोभाव शांत हो गए हैं, जो क्रोध रहित हैं, और जिनका इसलोक से प्रस्थान करने के बाद पुनर्जन्म नहीं होता, उन्हें उचित समय पर आहुति देनी चाहिए; अच्छे कर्मों की इच्छा रखने वाला ब्राह्मण आहुति दे। (504)

14. 'जो लोग पुनर्जन्म और मृत्यु को पूरी तरह से त्यागकर सभी संदेहों पर विजय प्राप्त कर चुके हैं, उन्हें उचित समय पर आहुति देनी चाहिए; अच्छे कर्मों को ध्यान में रखने वाला ब्राह्मण आहुति दे। (505)

15. 'जो लोग स्वयं को प्रकाश की खोज में संसार में विचरण करते हैं, जिनके पास कुछ भी नहीं है, जो हर तरह से मुक्त हैं, उन्हें उचित समय पर आहुति देनी चाहिए; अच्छे कर्मों को ध्यान में रखने वाला ब्राह्मण आहुति दे। (506)

16. 'जो लोग इस संसार में यह सही ढंग से समझते हैं कि "यह अंतिम (जीवन) है, अब कोई पुनर्जन्म नहीं है," उन्हें उचित समय पर आहुति देनी चाहिए; अच्छे कर्मों को ध्यान में रखने वाला ब्राह्मण आहुति दे।(507)

17. 'जो सिद्ध पुरुष हो, आत्म-मग्न ध्यान में प्रसन्न रहता हो, विचारशील हो, पूर्ण ज्ञान से परिपूर्ण हो, अनेकों का आश्रयदाता हो, ऐसे पुरुष को समय आने पर आहुति देनी चाहिए; अच्छे कर्मों को ध्यान में रखने वाला ब्राह्मण आहुति दे।' (508)

18. 'निःसंदेह मेरा प्रश्न व्यर्थ नहीं था, भगवान (बुद्ध) ने मुझे आहुति के योग्य व्यक्तियों के विषय में बताया है; क्योंकि तुम इस संसार में इसे सत्यतः जानते हो, जैसे तुम्हें यह धर्म ज्ञात है।' (509)

19. 'जो गृहस्थ हो, भिक्षा मांगने योग्य हो, दान देने वाला हो,'—मघा नामक युवक ने कहा—'जो कल्याण की इच्छा रखता हो, कल्याण को ध्यान में रखते हुए आहुति देता हो, और इस संसार में दूसरों को भोजन और पेय देता हो,—हे भगवान (बुद्ध), मुझे (मैं ऐसा ही व्यक्ति हूँ) आहुति देने के आशीर्वाद के बारे में बताइए।' (510)

20. 'हे माघ, अर्पण करो,' - भगवान बुद्ध ने कहा, - 'और अर्पण करते समय अपने मन को सभी चीजों में शांत रखो; अर्पण करने वाले का उद्देश्य अर्पण है, इसमें दृढ़ रहकर वह द्वेष (दोष, द्वेष) को त्याग देता है।' (511)

21. 'जिसका राग (वासना) समाप्त हो गया है, वह द्वेष (दोष, द्वेष) को दबाकर असीम मित्रता का भाव विकसित करेगा; निरंतर परिश्रम से दिन-रात वह समस्त लोकों में अनंत अच्छाई फैलाएगा।' (512)

22. माघ: 'कौन समृद्ध होता है? कौन मुक्त है और कौन बंधा हुआ है? कौन स्वयं ब्रह्मलोक (देवदूतों का लोक) जा सकता है? हे मुनि (संत), जब मुझसे पूछा जाए, तो मुझे, जो नहीं जानता, यह बताओ।' भगवान (बुद्ध) मेरे साक्षी हैं कि आज मुझे ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) के दर्शन हुए हैं, क्योंकि आप हमारे लिए ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) के समान हैं, यही सत्य है; हे महिमावान, ब्रह्मलोक कैसे प्राप्त किया जा सकता है?' (513)

23. 'हे माघ, जो तीन प्रकार का आहुति देता है,' - भगवान (बुद्ध) ने कहा, 'ऐसा व्यक्ति आहुति के योग्य लोगों के साथ समृद्ध होगा; अतः, उचित आहुति देने पर, जो भी भिक्षा मांगने योग्य है, वह ब्रह्मलोक प्राप्त करता है, ऐसा मैं कहता हूँ।' (514)

यह सुनकर, युवक माघ ने भगवान (बुद्ध) से इस प्रकार कहा: 'उत्कृष्ट, हे पूज्य गौतम (बुद्ध)! उत्कृष्ट, हे पूज्य गौतम (बुद्ध)! जैसे कोई गिरी हुई चीज़ को उठाता है, या छिपी हुई चीज़ को प्रकट करता है, या भटके हुए को रास्ता दिखाता है, या अंधेरे में तेल का दीपक जलाता है ताकि देखने वाले उसे देख सकें, वैसे ही पूज्य गौतम (बुद्ध) ने अनेक तरीकों से धम्म का स्पष्टीकरण किया है; मैं पूज्य गौतम (बुद्ध) की, धम्म की और भिक्षुओं की सभा की शरण लेता हूँ। पूज्य गौतम (बुद्ध) मुझे उपासक (अनुयायी) के रूप में स्वीकार करें, जिसने अब से अपने पूरे जीवन भर उनकी शरण ली है।'

मघसूत्र समाप्त।

___

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

___

पाली-रोमन
5. माघसुत्तं
एवं मे सुतं - एक समयं भगव राजगहे विहारति गिज्जकुते पब्बते। अथ खो माघो मानवो येन भगव तेनुपसंकामि; उपसंकमित्वा भगवत् सद्धिं सम्मोदि । सम्मोदानियं कथं सारण्यं वितिसरेत्व एकमंतं निसीदि। एकमंतं निसिन्नो खो माघो मानवो भगवन्तं एतदावोचा -
"अहांहि, भो गौतम, दयाको दानपति वदान्नि याकायोगो; धम्मेन भोगे परियेसामि; धम्मेना भोगे परियेसित्व धम्मलद्धेहि भोगेहि धम्मधिगतेहि एकस्सपि ददामि दविन्नमपि तिन्नमपि कटुन्नमपि पञ्चन्नमपि चन्नमपि सत्तनमपि अथथन्नमपि नवन्नमपि दशन्नमपि ददामि, विसायपि तिनस्यापि कत्तलिस्यापि पन्नस्यापि ददामि, सतस्सपि ददामि, भय्योपि ददामि। कच्चहं, भो गोतम, एवं ददंतो एवं यजन्तो बहुं पुन्नं पसावमि'ति?
"तग्ग त्वं, मानवव, एवं ददंतो एवं यजंतो बहुं पुन्नं पसवसि। यो खो, मानव, दयाको दानपति वदन्निउ याकायोगो; धम्मेना भोगे परियेसति; धम्मेन भोगे परियेसीत्वा धम्मलद्धेहि भोगेहि धम्मधिगतेही एकस्सपि ददाति...पे...सतस्सपि ददाति, भयोपि ददाति, बहुं सो पुन्नं पसवति"ति। अथ खो माघो मानवो भगवन्तं गाथाय अज्जभासि -
491.
"पुच्चमहं गोतमं वदन्नुं, (इति माघो मनावो)
कसायवासीं अगहं [अगिहं (सि.), अगेहं (पि.)] कैरंतम;
यो याकायोगो दानपति [दानपति (सि. स्या. पि.)] गहठो, पुनात्थिको [पुन्नपेखो (सि. पि. का.)] यजति पुनापेक्खो;
ददं परेसं इधा अन्नपानं, कथं हुतं यजमानस्स सुज्जे"।
492.
"यो याकायोगो दानपति गहथो, (माघाटी भगवान)
पुन्नत्थिको यजति पुन्नपेक्खो;
ददां परेसं इधा अन्नपानं, अराधाये दक्खिनेयभि तदि"।
493.
"यो याकायोगो दानपति गहथो, (इति माघो मनावो)
पुन्नत्थिको यजति पुन्नपेक्खो;
ददां परेसं इधा अन्नपानं, अक्खाहि मे भगव दक्खिनये"।

494.
"ये वे असत्ता [अलाग्गा (स्या.)] विकारन्ति लोके, अकिंचना केवलिनो यत्ता;
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुनापेक्खो यजेथा।
495.
"ये सब्बासंयोजनबंधनच्चिदा, दन्त विमुत्त अनिघ निरासा;
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुनापेक्खो यजेथा।
496.
"ये सब्बासंयोजानाविप्पमुत्ता, दन्त विमुत्ता अनिघा निरासा;
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुनापेक्खो यजेथा।
497.
"रागाञ्च दोसाञ्च पहाय मोहं, खिनासाव व्युसितब्रह्मचर्य;
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुनापेक्खो यजेथा।
498.
"येसु न माया वसति न मानो, खिनासाव वसुसितब्रह्मचर्य;
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुनापेक्खो यजेथा।
499.
"ये वितालोभ अमा निरासा, खिनासावा वुसीतब्रह्मचर्य;
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुनापेक्खो यजेथा।
500.
"ये वे न तन्हासु उपतिपन्ना, वितरेय ओघं अमामा कैरन्ति;
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुनापेक्खो यजेथा।
501.
"येसं तन्हा नत्थि कुहिनसी लोके, भावभवाय इधा वा हुरं वा;
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुनापेक्खो यजेथा।
502.
"ये कामे हित्वा अगाहा कैरन्ति, सुसन्नत्तत्ता तसरनव उज्जुम्;
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुनापेक्खो यजेथा।
503.
"ये वीतराग सुसमाहितिन्द्रिय, कैंडोवा रहुग्गहाणा पमुत्ता;
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुनापेक्खो यजेथा।
504.
"समितविनो वीतरागा अकोपा, येसं गति नत्थिधा विप्पहया;
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुनापेक्खो यजेथा।
505.
"जहित्वा जातिमरणं असेसं, कथंकथिं सब्बमुपतिवत्ता;
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुनापेक्खो यजेथा।
506.
"ये अट्टदीपा विकारन्ति लोके, अकिंचन सब्बाधि विप्पमुत्ता;
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुनापेक्खो यजेथा।
507.
"ये हेत्थ जानन्ति यथा तथा इदं, अयमन्तिमा नत्थि पुनब्भवोति;
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुनापेक्खो यजेथा।
508.
"यो वेदागु झनरतो सतीमा, संबोधिपट्टो सरणं बहुनां;
कालेन तमहि हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुनपेक्खो यजेथा"।
509.
"अद्धा अमोघा मम पुच्चना आहु, अक्खासि मे भगव दक्खिनये;
त्वन्हेत्था जनसि यथा तथा इदं, तथा हि ते विदितो एसा धम्मो।

510.
"यो याकायोगो दानपति गहथो, (इति माघो मनावो)
पुन्नत्थिको यजति पुन्नपेक्खो;
ददां परेसं इधा अन्नपानं,
अक्खाहि मे भगवा यन्नसम्पदं"।
511.
"यजस्सु यजमानो माघाति भगवान, सब्बत्थ च विप्पसादेहि चित्तं;
अराम्मनं यजमानस्स यान्नो, एत्थप्पतिथया जहाति दोसं।
512.
"तो वीतरागो पविनेय दोसं, मेत्तं चित्तं भवायमप्पमणं;
रत्तिंदिवं सतातमप्पमत्तो, सब्बा दिसा फरति अप्पमन्नं।"
513.
"को सुज्जति मुक्कति बज्जति च, केनत्तना गच्छति [केनत्थेना गच्छति (का.)] ब्रह्मलोकम्;
अजानतो मे मुनि ब्रूहि पुत्थो, भगव हि मे सक्खि ब्रह्मज्जदिथो;
तुवंहि नो ब्रह्मसमोसि सच्चं, कथं उपपज्जति ब्रह्मलोकं जुटिमा"।
514.
"यो यजति तिविधं यान्नसम्पदं, (माघाती भगवान)
अराधये दक्खिनेयभि तदि;
एवं यजित्वा सम्मा याकायोगो,
उपपज्जति ब्रह्मलोकन्ति ब्रूमि'ति।
एवं वुट्टे, माघो मनवो भगवन्तं एतदावोचा - "अभिक्कन्तं, भो गोतम...पे...अज्जतग्गे पाणुपेतं शरणं गता"न्ति।
माघसुत्तं पंचमं नियतं।

पाली-देवनागरी
5. माघसुत्तं
एवं मे सुतं – एक समयं भगवा राजघे विहारी गिज्झकूटे पब्बते। अथ खो माघो मन्वो येन भगवान तेनुपसङकमि; उपसङ्कमित्वा भगवत् सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनेयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमंतं निसिदि। एकमन्तं निसि सत्यो खो माघो मानवो भगवन्तं एतदवोच -
"अहंहि, भो गोतम, दायको दानपति वदंझू याचयोगो; धम्मेन भोगे प्रियेसामि; धम्मेन भोगे परियेसित्वा धम्मलधेहि भगेहि धम्मधिगतेहि एकस्सपि ददामि द्वि असापि तिन्नमपि चतु सिनापि चतु सिनापि पञ्च सिनापि छ सिनापि सत्त सिनापि अट्ठमपि अट्ठमपि नव ददामि दश सान्यापि तिनसायपि चत्तालिसयपि पञ्चस्यापि ददामि, सत्सपि ददामि, भय्योपि ददामि। कच्छचाहं, भो गोतम, एवं ददन्तो एवं यजन्तो बहुं पुञ्जन पसवामि"ति?
"तग्घ त्वं, मानव, एवं ददन्तो एवं यजन्तो बहुं पुञ्जन पसवसि। यो खो, मानव, दायको दानपति वदंझू याचयोगो; धम्मेन भोगे परियेसति; धम्मेन भोगे परियेसित्वा धम्मलधेहि भोगेहि धम्मधिगतेहि एकस्सपि ददाति...पे०...सत्स्सपि ददाति, भय्योपि ददाति, बहुं सो पुन्नं पसवती"ति। अथ खो माघो मानवो भगवन्तं गाथाय अज्झासि -
4
पुच्छमहं गोतमं वदञ्चुन, (इति माघो मानवो)
कासायवासिं अघं [अगिहं (सी०), अगेहं (पी०)] चरंतं।
यो याचयोगो दानपति [दानपति (सी० स्या० पी०)] गहत्थो, पुञ्जथिको [पुञ्जपेखो (सी० पी० क०)] यजति पुञ्जपेखो।
ददं परेसं इध अ अन्नानानं, कथं हुतं यजमानस्स सुज्झे"॥
4
"यो याचयोगो दानपति गहत्थो, (माहति भगवान)
पुञ्जथटिको यजति पुञ्जपेक्खो।
ददं परेसं इध अ अन्नानपानं, आराध्ये दक्खिनेयैभि तादि"॥
4.
"यो याचयोगो दानपति गहत्थो, (इति माघो मानवो)
पुञ्जथटिको यजति पुञ्जपेक्खो।
ददं परेसं इध अ अन्नानानं, अक्खाहि मे भगवा दक्षिणये"॥

4.
"ये वे असत्ता [अलग्गा (स्या०)] विचरन्ति लोके, अकिञ्चना केवलिनो यत्ता।
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुंजपेक्खो यजेथ॥
44 वीडियो.
"ये सबसंयोजनबंधनचिदा, दंता विमुत्ता अनीघा निरासा।
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुंजपेक्खो यजेथ॥
4
"ये सब्बसंयोजनविप्पमुत्ता, दंता विमुत्ता अनीघा निरासा।
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुंजपेक्खो यजेथ॥
4.
"राघ्नच दोसञ्च पहाय मोहं, खिनासावा वुसीतब्रह्मचरिया।
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुंजपेक्खो यजेथ॥
4.
"येसु न माया वसति न मानो, खिनासावा वूसितब्रह्मचरिया।"
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुंजपेक्खो यजेथ॥
4.
"ये विटलोभा अम्मा निरसा, खिनासावा वुसीतब्रह्मचारिया।
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुंजपेक्खो यजेथ॥
.
"ये वे न तन्हासु उपातिप संज्ञा, वितरेय ओघं अम्मा चरन्ति।
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुंजपेक्खो यजेथ॥
50.
"येसं तंहा नत्थि कुहिञ्चि लोके, भवाभवाय इध वा हुरं वा।
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुंजपेक्खो यजेथ॥
52.
"ये कामे हित्वा अघा चरन्ति, सुसंज्ञत्ता तस्रव उज्जुं।
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुंजपेक्खो यजेथ॥
500.
"ये वीतरागा सुसहितिन्द्रिय, चंदोव राहुघाना पमुत्ता।
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुंजपेक्खो यजेथ॥
5
" समिताविनो वीतरागा अकोपा, येसं गति नत्थिध विप्पय।
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुंजपेक्खो यजेथ॥
पांच-पांच.
"जहित्वा जातिमरणं असेसं, कथंकथिं सब्बमुनपतिवत्ता।
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुंजपेक्खो यजेथ॥
5
"ये अत्तदीपा विचरन्ति लोके, अकिञ्चना सब्बधि विप्पमुत्ता।
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुंजपेक्खो यजेथ॥
57.
"ये हेत्थ जानन्ति यथा तथा इदं, अयमन्तिमा नत्थि पुनभवोति।
कालेन तेसु हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुंजपेक्खो यजेथ॥
5
"यो वेदगू झानर्तो सतीमा, सम्बोधिप्ततो शरणं बहुअनं।
कालेन तमहि हब्यं पवेच्छे, यो ब्राह्मणो पुंजपेक्खो यजेत्॥
50वीं.
"अद्धा अमोघा मम पुच्छना आहु, अक्खासि मे भगवा दक्खिनये।
त्वन्हेत्थ जानासि यथा तथा इदं, तथा हि ते विदितो एस धम्मो॥

51.
"यो याचयोगो दानपति गहत्थो, (इति माघो मानवो)
पुञ्जथटिको यजति पुञ्जपेक्खो।
ददं परेसं इध अ संज्ञापानं,
अक्खाहि मे भगवान यज्ञसम्पदं"
511.
"यजस्सु यजमानो माघाति भगवान, सब्बत्थ च विप्पसादेहि चित्तं।
अरम्मानं यजमानस्स यञ्चो, एत्थप्पतिट्ठाय जहाति दोसं॥
511.
"सो वीतरागो पविनेय दोसं, मेत्तं चित्तं भावमप्प्मनं।
रत्तिन्दिवं सततमप्पमत्तो, सब्बा दिसा भारती अप्पमञ्च॥
5.25.
"को सुज्झति मुच्छदति बज्जति च, केनत्तना गच्छति [केन्त्थेना गच्छति (क०)] ब्रह्मलोक।
अजानतो मे मुनि ब्रुहि पुत्थो, भगवा हि मे सक्खि ब्रह्मजददित्थो।
तुवंहि नो ब्रह्मसमोसि सच्दचं, कथं उपपज्जति ब्रह्मलोकं जुटिम"॥
544.
"यो यजति तिविधं यज्ञसम्पदं, (माघाति भगवान)
आराध्ये दक्षिणेयेभि तादि।
एवं यजित्वा सम्मा याचयोगो,
उपपज्जति ब्रह्मलोकन्ति ब्रूमी"ति॥
एवं वुत्ते, माघो वोमां भगवन्तं एतदवोच - "अभिक्रोकान्तं, भो गोतम...पे०...अजदत्गे पाणुपेतं शरणं गत"न्ति।
माघसुत्तं पञ्चमं निश्चितं।

टिपिटक >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> सुत्तनिपात >> 3.6 सभियासुत्त,
वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<--->>>> अगला

परिब्जाक (तपस्वी) सबिया अपने समय के छह प्रसिद्ध गुरुओं के पास अपने प्रश्नों के उत्तर पाने के लिए जाते हैं, लेकिन जब उनके संदेह दूर नहीं होते, तो वे गौतम (बुद्ध) के पास जाते हैं और उनसे पूछते हैं कि ब्राह्मण, समन, नाहतक, खेत्तागिन, कुशल, पंडित, मुनि, वेदगु, अनुविदित, धीर, अग्नि, सोत्तिया, आर्य, करणवत और परिब्जाक बनने के लिए क्या आचरण करना चाहिए। भगवान बुद्ध उनके प्रश्नों का उत्तर देते हैं, और अंततः सबिया को बुद्ध से वस्त्र और आदेश प्राप्त होते हैं।

अंतर्वस्तु

3.6 सबियासूत्र
अनुवाद
मुझे यह सुनने को मिला:

एक समय भगवान (भगवान बुद्ध) वेलुवन के राजगृह में, कलांदकनिवापा में निवास करते थे। उस समय परिब्बाजक (घूमने वाले भिक्षु, तपस्वी) सबिया से एक वृद्ध दयालु देवता ने प्रश्न पूछे: 'हे सबिया, चाहे वह समन (भिक्षु) हो या ब्राह्मण, जो भी इन प्रश्नों का उत्तर तुम्हें पूछे जाने पर दे, तुम्हें उसके निकट पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत करना चाहिए।'

तब परिब्जाक (तपस्वी) सबिया ने उस देवता से प्रश्न सीखकर, उन सभी भिक्षुओं और ब्राह्मणों के पास गए, जिनके भिक्षुओं की सभाएँ और अनुयायियों की भीड़ थी, और जो प्रसिद्ध शिक्षक और नेता थे, और जिन्हें जनमानस में श्रेष्ठ माना जाता था, जैसे पुराण-कस्सपा, मक्खली-गोसाला, अजित-केसकंबली, पकुधा-कक्कयन, संगया-बेलत्थिपुत्त और निगंथ-नटपुत्त (जैन गुरु)। उनके पास जाकर उन्होंने प्रश्न पूछे। परिब्जाक (तपस्वी) सबिया द्वारा पूछे गए प्रश्नों का उत्तर देने में वे सफल नहीं हुए, और असफल होने पर उन्होंने क्रोध, घृणा और असंतोष प्रकट किया, और उन्होंने भी परिब्जाक (तपस्वी) सबिया से प्रश्न पूछे।

तब परिब्बाजक (तपस्वी) सबिया के मन में यह विचार आया: 'जितने भी समन और ब्राह्मण हैं जिनके पास भिक्षुओं की सभा, अनुयायियों की भीड़ है और जो प्रसिद्ध शिक्षक, विख्यात नेता हैं, जिन्हें जनता उत्कृष्ट मानती है, जैसे पुराण-कस्सपा, मक्खली-गोसला, अजित-केशकंबली, पकुधा-कक्कयन, संगया-बेलत्थिपुत्त और निगंथ-नटपुत्त (जैन शिक्षक), जब मैंने उनसे प्रश्न पूछे तो वे उत्तर देने में सफल नहीं हुए, और असफल होने पर उन्होंने क्रोध, घृणा और असंतोष दिखाया, और उन्होंने बदले में मुझसे भी इस विषय पर प्रश्न पूछे; निश्चय ही मुझे लगता है कि मैं अपने छोड़े हुए मार्ग पर लौट जाऊंगा और इंद्रिय सुखों का आनंद लूंगा।'

तब परिब्बजक (तपस्वी) सबिया के मन में यह विचार आया: 'इस समना गौतम (बुद्ध) के पास भिक्षुओं की सभा और अनुयायियों की भीड़ दोनों हैं, और वे एक प्रसिद्ध शिक्षक, एक विख्यात नेता हैं, जिन्हें जनमानस उत्कृष्ट मानता है, मुझे लगता है कि मुझे समना गौतम (बुद्ध) के पास जाकर ये प्रश्न अवश्य पूछने चाहिए।' तब परिब्बजक (तपस्वी) सबिया के मन में यह विचार आया: 'जितने भी भिक्षु और ब्राह्मण (पुजारी) पतित, वृद्ध, उम्रदराज, वृद्धावस्था में पहुँच चुके, अनुभवी, लंबे समय से दीक्षित, भिक्षुओं की सभाओं और अनुयायियों की भीड़ वाले, प्रसिद्ध शिक्षक, विख्यात नेता, जनमानस द्वारा उत्कृष्ट माने जाने वाले, जैसे पुराण-कस्सपा, मक्खली-गोसला, अजित-केसकंबली, पकुधा-कक्कयन, संगया-बेलत्थिपुत्त और निगंथ-नटपुत्त, जब मैंने उनसे प्रश्न पूछे तो वे उत्तर देने में सफल नहीं हुए, और असफल होने पर उन्होंने क्रोध, घृणा और असंतोष दिखाया, और उन्होंने भी बदले में मुझसे इस विषय पर प्रश्न पूछे; (मैं जानना चाहूँगा) कि क्या समना गौतम (बुद्ध) इन प्रश्नों का उत्तर दे पाएँगे, क्योंकि समना गौतम (बुद्ध) जन्म से युवा हैं और तपस्वी जीवन में नए हैं।'

तब परिब्जाक (तपस्वी) सबिया के मन में यह विचार आया: 'समना गौतम (बुद्ध) को उनकी युवावस्था के कारण कम नहीं आँका जाना चाहिए; भले ही समना (भिक्षु) युवा हों, फिर भी वे पराक्रमी और शक्तिशाली हैं; मुझे लगता है कि मुझे समना गौतम (बुद्ध) के पास जाकर ये प्रश्न पूछने चाहिए।' तब परिब्जाक (तपस्वी) सबिया राजगृह की यात्रा पर निकल पड़े, और अपनी यात्रा में नियमित क्रम से घूमते हुए वे राजगृह, वेलुवन, कलंदकनिवापा और भगवान (बुद्ध) के पास पहुँचे, और भगवान (बुद्ध) के पास आकर उन्होंने उनसे सुखद वार्तालाप किया, और उनसे कुछ सुखद और उल्लेखनीय वार्तालाप करने के बाद वे अलग बैठ गए; अलग बैठे हुए परिब्बजक (तपस्वी) सबिया ने भगवान (बुद्ध) से श्लोकों में बात की:

1. 'मैं चिंतित और संशय में आया हूँ,'—सबिया ने कहा,—'प्रश्न पूछने की इच्छा से। क्या आप मेरे द्वारा पूछे गए इन प्रश्नों को क्रमबद्ध रूप से दूर करेंगे और मुझे सही ढंग से समझाएँगे?' (515)

2. 'हे सबिया, तुम दूर से आए हो,'—भगवान (बुद्ध) ने कहा,—'प्रश्न पूछने की इच्छा से; मैं तुम्हारे द्वारा पूछे गए इन प्रश्नों को क्रमबद्ध रूप से दूर करूँगा और तुम्हें सही ढंग से समझाऊँगा।' (516)

3. 'हे सबिया, मुझसे एक प्रश्न पूछो; तुम्हारे मन में जो भी प्रश्न हो, मैं उसका उत्तर दूँगा और तुम्हारे संशय को दूर करूँगा।' (517)

तब परिब्बाजक (तपस्वी) सबिया के मन में यह विचार आया: 'यह अद्भुत है, यह सचमुच आश्चर्यजनक है, जो स्वागत मुझे अन्य समनों (भिक्षुओं) और ब्राह्मणों (पुजारियों) से नहीं मिला, वह मुझे गौतम (बुद्ध) से मिला है।' ऐसा कहते हुए, प्रसन्न, आनंदित और अत्यंत उत्साहित होकर उन्होंने भगवान (भगवान बुद्ध) से एक प्रश्न पूछा: 'मनुष्य को (अनिवार्य रूप से) क्या प्राप्त करना चाहिए कि लोग उसे भिक्षु (भिक्षु) कहें?' - सबिया ने कहा - 'लोग उसे दयालु कैसे कह सकते हैं, और वह कितना विनम्र है? उसे प्रबुद्ध (बुद्ध) कैसे कहा जा सकता है? हे भगवान (भगवान बुद्ध), क्या आप मुझे इसका उत्तर समझा सकते हैं?' (518)

5. 'हे सभिय, जिसने स्वयं अपने द्वारा निर्मित मार्ग से पूर्ण सुख प्राप्त किया है,' - भगवान (बुद्ध) ने ऐसा कहा - 'जिसने संशय पर विजय प्राप्त की है, जिसने लाभ और संपत्ति दोनों को त्यागकर जीवन व्यतीत किया है, जिसने पुनर्जन्म का नाश किया है, वह भिक्षु है। (519)

6. 'सदा शांत और एकाग्र रहने वाला, वह समस्त संसार में किसी को भी हानि नहीं पहुँचाता, वह समन (भिक्षु) जिसने (जीवन की) धारा को पार कर लिया है और अविचलित है; जिसके लिए कोई इच्छाएँ (उस्साद) नहीं हैं, वह करुणामय है। (520)

7. 'सृष्टि में जिसकी इंद्रियाँ आंतरिक और बाह्य रूप से प्रशिक्षित हैं, वह जो इस और परलोक में प्रवेश करने के बाद मृत्यु की कामना करता है, प्रशिक्षित होकर वह वश में हो जाता है। (521)

8. 'जो कोई भी समस्त कालों (कप्पा), संसार चक्र (संसार), प्राणियों के लुप्त होने और पुनर्जन्म (पुनर्जन्म) पर विचार करने के बाद, दोषमुक्त, पापमुक्त, शुद्ध और पुनर्जन्म से मुक्त हो, उसे ही प्रबुद्ध (बुद्ध) कहते हैं।' (522)

तब परिब्जाक (तपस्वी) शाभिया ने भगवान (बुद्ध) के वचनों को सुनकर प्रसन्नता और आनंदित होकर भगवान (बुद्ध) से एक और प्रश्न पूछा: 9. 'मनुष्य को (अनिवार्य रूप से) क्या प्राप्त करना चाहिए कि लोग उसे ब्राह्मण कहें?' - शाभिया ने कहा - 'और उसे (भिक्षु) कैसे कहा जा सकता है? और नाहतक कैसे? उसे नाग कैसे कहा जा सकता है? हे भगवान (बुद्ध), क्या आप मुझे (इस विषय में) समझा सकते हैं?' (523)

10. हे सभ्य, जो सभी पापों को दूर करके, भगवान बुद्ध ने कहा, निष्कलंक, शांत, दृढ़चित्त और संसार (पुनर्जन्म का चक्र) पार करने के बाद परिपूर्ण हो जाता है, उसे ब्राह्मण कहते हैं। (524)

11. जो शांत, अच्छे और बुरे को त्यागकर, दोषमुक्त होकर, इस और परलोक को समझकर, और पुनर्जन्म और मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लेता है, उसे समन कहते हैं। (525) 12. जो

भी, संसार में आंतरिक और बाह्य रूप से सभी पापों को धोकर, समय के अधीन देवताओं और मनुष्यों के बीच समय (कप्प) में प्रवेश नहीं करता, उसे नहतक कहते हैं। (526)

13. 'जो संसार में कोई अपराध नहीं करता, जो सभी बंधनों और बेड़ियों को त्यागकर किसी भी चीज से आसक्त नहीं रहता, मुक्त होकर, ऐसा व्यक्ति नाग (पापरहित) कहलाता है।' (527)

तब परिब्जाक (तपस्वी) सबिया ने भगवान (बुद्ध) के वचनों को सुनकर प्रसन्नता और आनंदित होकर, भगवान (बुद्ध) से एक प्रश्न पूछा: 14. 'बुद्ध किसे खेत्गिना कहते हैं?' - सबिया ने कहा - 'वे किसी को कुशल कैसे कह सकते हैं? और पंडित कैसे? उसे मुनि कैसे कहा जा सकता है? हे भगवान (बुद्ध), क्या आप मुझे इसका उत्तर समझा सकते हैं?' (528)

15. हे सभ्य, भगवान बुद्ध ने कहा, 'जो सभी लोकों का अध्ययन करने के बाद, दिव्य और मानवीय, तथा ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) के लोक का अध्ययन करके, सभी लोकों के मूल बंधन से मुक्त हो जाता है, वह अपने आप में खेट्टागिन (लोकों पर विजय प्राप्त करने वाला) कहलाता है।' (529)

16. 'जो सभी खजानों, दिव्य और मानवीय, तथा ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) के खजाने का अध्ययन करने के बाद, सभी खजानों के मूल बंधन से मुक्त हो जाता है, वह अपने आप में कुशल (सुखद) कहलाता है।' (530) 17. '

जो आंतरिक और बाह्य दोनों प्रकार की इंद्रियों का अध्ययन करने के बाद, स्पष्ट पन्ना (प्रत्यक्ष अनुभवात्मक समझ) से संपन्न हो जाता है और बुराई और अच्छाई (कन्हसुक्क) पर विजय प्राप्त कर लेता है, वह अपने आप में पंडित (बुद्धिमान) कहलाता है।' (531)

18. 'जो धर्मी और अधर्मी के धर्म को आंतरिक और बाह्य रूप से समस्त संसार में समझ लेता है, वह देवताओं और मनुष्यों द्वारा पूजनीय होता है, वह बंधनों के जाल को तोड़कर मुनि कहलाता है।' (532)

तब परिब्जाक (तपस्वी) सबिया ने भगवान (बुद्ध) के वचनों को सुनकर प्रसन्नता और आनंदित होकर भगवान (बुद्ध) से एक प्रश्न पूछा: 19. 'किसी व्यक्ति को (अनिवार्य रूप से) क्या प्राप्त करना चाहिए कि लोग उसे वेदगु कहें?' - सबिया ने कहा - 'और कैसे (वे उसे) अनुविदित कहें? और कैसे वीर्यवत? कोई व्यक्ति अग्निया कैसे बनता है? हे भगवान (बुद्ध), क्या आप मुझे (इस विषय में) समझा सकते हैं?' (533)

20. हे सभ्य, जिसने समस्त इंद्रियों पर विजय प्राप्त कर ली है,'—भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा—'जो इंद्रियों के प्रति आसक्ति से मुक्त है, वह समस्त इंद्रियों पर विजय प्राप्त करने के बाद वेदगु (इंद्रियों से मुक्त) कहलाता है। (534)

21. जिसने नाम और रूप के भ्रम को आंतरिक और बाह्य रूप से, जो रोग का मूल है, देखकर समस्त रोगों के मूल बंधन से मुक्त हो गया है, वह ऐसा होने के कारण अनुविदित (सुज्ञ) कहलाता है। (535)

22. जिसने इस संसार में समस्त पापों से घृणा करते हुए, नरक के कष्टों पर विजय प्राप्त कर बलवान और शक्तिशाली हो गया है, वह ऐसा होने के कारण धीर (= वीरयवत, दृढ़) कहलाता है। (536)

23. 'जिसके आंतरिक और बाह्य बंधन टूट जाते हैं, जो सभी बंधनों के मूल बंधन से मुक्त हो जाता है, उसे ही अगनिय (उच्च कुल का) कहा जाता है।' (537)

तब परिब्जाक (तपस्वी) सबिया ने भगवान (बुद्ध) के वचनों को सुनकर प्रसन्नता और आनंदित होकर भगवान (बुद्ध) से एक प्रश्न पूछा: 24. 'मनुष्य को क्या प्राप्त करना चाहिए कि लोग उसे सोत्तिय कहें?' - सबिया ने कहा - 'वे उसे आर्य कैसे कह सकते हैं? और करणवत कैसे? वह परिब्जाक (तपस्वी) कैसे बन सकता है? हे भगवान (बुद्ध), क्या आप मुझे इसका उत्तर समझा सकते हैं?' (538)

25. हे सभ्य, जिसने संसार के सभी धर्मों को सुनकर और समझकर, भगवान बुद्ध ने कहा, 'जो कोई भी कुकर्म और जो कुछ भी निष्कर्मित है, उस पर विजय प्राप्त करता है, संशय से मुक्त होता है, मुक्त होता है, हर तरह से पीड़ा से मुक्त होता है, उसे ज्ञानी (विद्यावान) कहते हैं।' (539)

26. 'जिसने वासनाओं और इच्छाओं का त्याग करके, ज्ञानवान होकर, फिर से गर्भ में प्रवेश नहीं करता, त्रिगुण चिन्ह, कामवासना के कीचड़ को दूर भगाकर, और फिर से कप्प में प्रवेश नहीं करता, उसे आर्य (महान) कहते हैं।' (540)

27. 'जो इस संसार में, करणों में सर्वोच्च लाभ प्राप्त करके, कुशल है, जिसने हमेशा धर्म को समझा है, किसी चीज से आसक्त नहीं है, मुक्त है, और जिसके लिए कोई वासना नहीं है, वह करणवत (साक्ष्यों से युक्त) है।' (541)

28. 'जो कोई भी ऊपर, नीचे, आर-पार और मध्य में कष्टदायी कर्मों से परहेज करता है, जो दिव्य समझ के साथ विचरण करता है, जिसने छल, अहंकार, लोभ और क्रोध, नाम और रूप, का अंत कर दिया है, उसे परिब्बजक (एक विचरण करने वाला भिक्षु, तपस्वी) कहते हैं जिसने (सर्वोच्च) लाभ प्राप्त किया है।' (542)

तब परिब्बाजक (तपस्वी) सबिया ने भगवान (बुद्ध) के वचनों को सुनकर प्रसन्नता और आनंदित होकर, अपने आसन से उठकर, अपना ऊपरी वस्त्र एक कंधे पर रखकर, अपने जुड़े हुए हाथों को भगवान (बुद्ध) की ओर झुकाकर, उचित श्लोकों में भगवान (बुद्ध) की स्तुति की: 29. 'सामनों (भिक्षुओं) के वाद-विवादों से संबंधित 36 (दार्शनिक) विचारों पर विजय प्राप्त करके, आपने धारा के अंधकार को पार कर लिया है। (?) (543)

30. 'आप पीड़ा के अंत और उससे परे पहुँच गए हैं, आप एक संत हैं, पूर्णतः प्रबुद्ध हैं, मैं आपको अपनी वासनाओं का नाश करने वाला मानता हूँ, आप गौरवशाली, विचारशील, महान पन्ना (प्रत्यक्ष अनुभवात्मक समझ) वाले हैं, हे पीड़ा का अंत करने वाले, आपने मुझे पार कराया है। (544)

31. 'क्योंकि आपने मेरी तड़प देखी और मुझे मेरे संदेह से पार कराया, हे मुनि (संत), जिन्होंने ज्ञान के मार्ग में सर्वोच्च लाभ प्राप्त किया है; हे अदिच्छों के सच्चे सगे सगे सगी, आपको प्रणाम।आप दयालु हैं। (545)

32. 'हे प्रत्यक्षदर्शी, आपके समक्ष मेरे मन में जो संदेह था, वह दूर हो गया है; निश्चय ही आप पूर्णतः प्रबुद्ध मुनि हैं, आपके लिए कोई बाधा नहीं है। (546)

33. 'और आपके सभी कष्ट दूर हो गए हैं, आप शांत, संयमित, दृढ़ और सत्यवादी हैं। (547)

34. 'हे निष्पापों के श्रेष्ठ, महान, जब आप बोलते हैं, तो सभी देवता और नारद एवं पब्बत भी आप पर प्रसन्न होते हैं। (548)

35. 'हे श्रेष्ठ पुरुष, आपको प्रणाम, हे श्रेष्ठ पुरुष, आपको प्रणाम; मनुष्य और देवताओं के संसार में आपके समान कोई नहीं है। (549)

36. 'आप बुद्ध हैं, आप गुरु हैं, आप मृत्यु के देवता को जीतने वाले मुनि हैं; इच्छा का नाश करके आपने इस पीढ़ी को पार किया है और इस पीढ़ी को आगे बढ़ाया है। (550)

37. 'आपने अस्तित्व के तत्वों (उपाधि) पर विजय प्राप्त कर ली है, आपने वासनाओं का नाश कर दिया है, आप सिंह हैं, इच्छा से मुक्त हैं, आपने भय और आतंक को पीछे छोड़ दिया है। (551)

38. 'जैसे सुंदर कमल जल से नहीं चिपकता, वैसे ही आप अच्छे और बुरे, किसी से भी आसक्त नहीं हैं; हे महानुभाव, अपने चरण फैलाइए, सबिया गुरु के चरणों की पूजा करता है।' (552)

तब परिब्बाजक (तपस्वी) सबिया ने भगवान (भगवान बुद्ध) के चरणों में सिर झुकाकर भगवान (भगवान बुद्ध) से यह कहा:

'यह उत्तम है, हे पूज्य! यह उत्तम है, हे पूज्य!' जैसे कोई गिरी हुई चीज़ को उठाता है, या छिपी हुई चीज़ को प्रकट करता है, या भटके हुए को रास्ता दिखाता है, या अंधेरे में तेल का दीपक जलाता है ताकि देखने वाले उसे देख सकें, वैसे ही पूज्य गौतम (बुद्ध) ने अनेक तरीकों से धम्म का स्पष्टीकरण किया है; मैं पूज्य गौतम (बुद्ध), धम्म और भिक्षु सभा की शरण लेता हूँ; मैं पूज्य भगवान (भगवान बुद्ध) से वस्त्र और दीक्षा प्राप्त करना चाहता हूँ। '

हे सभ्य, जो पहले किसी अन्य पंथ (अन्नतित्तियपुब्बा) का अनुयायी था, इस धर्म (धम्मविनय) में दीक्षित होना चाहता है, और वस्त्र और दीक्षा प्राप्त करना चाहता है, वह चार महीने तक सेवा करता है; चार महीने बीत जाने के बाद, जिन भिक्षुओं के मन शांत हो गए हैं, वे उसे वस्त्र और दीक्षा देकर भिक्षु बनने का आदेश देंगे, (क्योंकि) मैं भी इस मामले में व्यक्तियों के भेद को स्वीकार करता हूँ।'

हे पूज्यवर, यदि वे जो पहले किसी अन्य धर्म के अनुयायी थे और इस धर्म में दीक्षित होना चाहते हैं तथा वस्त्र एवं दीक्षा प्राप्त करना चाहते हैं, चार माह तक सेवा करें और चार माह बीत जाने के बाद उनके मन को शांत करने वाले भिक्षु उन्हें वस्त्र एवं दीक्षा दें ताकि वे भिक्षु बन सकें, तो मैं भी चार माह तक सेवा करूंगा और चार माह बीत जाने के बाद उनके मन को शांत करने वाले भिक्षु मुझे वस्त्र एवं दीक्षा देंगे ताकि मैं भिक्षु बन सकूं।

परिबजक (तपस्वी) सबिया ने भगवान बुद्ध से वस्त्र और दीक्षा प्राप्त की। उपसम्पदा प्राप्त कर पूज्य सबिया ने एकांत, एकांतप्रिय, परिश्रमपूर्ण, उत्साही और ऊर्जावान जीवन व्यतीत करते हुए, इस जन्म में अल्पकाल में ही अपने ज्ञान से धर्ममय जीवन की उस सर्वोच्च पूर्णता को प्राप्त कर लिया, जिसके लिए कुलीन परिवार के लोग अपने घर त्यागकर निर्धन हो जाते हैं। उन्होंने अनुभव किया, 'पुनर्जन्म का नाश हो गया, धर्ममय जीवन व्यतीत कर लिया गया, जो करना था वह कर लिया गया, इस जन्म में अब कुछ और करने को नहीं बचा था।' इस प्रकार पूज्य सबिया अर्हत (पूर्णतः प्रबुद्ध) हो गए।

सबियासूत्र समाप्त होता है।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
6. सब्हियसुत्तं
एवं मे सुतं - एकं समयं भगव राजगहे विहारति वेशुवने कलंदकनिवापे। तेन खो पना समयेन सभियास्सा परिब्बाजकस्सा पुराणसालोहिताय देवताय पन्हा उददिष्ठ होन्ति - ''यो ते, सभिया, समणो वा ब्राह्मणो वा इमे पन्हे पुथो' ब्याकारोति तस्स संतिके ब्रह्मचर्यं कैरेयसि'ति।
अथा खो सभियो परिब्बाजको तस्स देवताय संतिके ते पन्हे उग्गहेत्वा ये ते समानब्राह्मणा संघिनो गणिणो गणचरिया नाता यस्स्सिनो तित्थकारा साधुसम्मत बहुजनास्सा, सेयथिदं - पुरणो कसापो मक्खलिगोसालो अजितो केसाकंबलो पाकुधो [काकुधो (सि.) पाकुद्धो (स्या. कां.)] कक्कानो सांचायो [संजयो (सि. स्या. कं. पि.)] बेलाठपुट्टो [बेलाथिपुत्तो (सि. पि.), वे!अ!!हपुत्तो (सि.)] निगंथो नातपुट्टो [नातपुत्तो (सि. पि.)], ते उपासंकमित्वा ते पन्हे पुच्छति। ते सभियेन परिब्बाजकेन पन्हे पुत्था न संपयन्ति; असम्पायंता कोपञ्च दोसाञ्च अप्पाकायाञ्च पतुकरोंति। अपि च सभ्यं येव परिब्जकं पतिपुच्छन्ति।
अथा खो सभियास्सा परिब्बाजाकस्सा एतदहोसी - ''ये खो ते भोंतो समानब्राह्मण संघिनो गणिनो गणचरिया नाता यसासिनो तित्थकारा साधुसम्मत बहुजनस्सा, सेयथिदम - पुरणो कस्सपो...पे... निगंथो नात्पुट्ठो, ते मया पन्हे पुट्ठा न संपयन्ति, असंपयंता कोपञ्च दोसाञ्च अप्पाकायाञ्च पातुकरोंति; अपि च मन्नेवेत्था पतिपुच्छन्ति। यन्नून्नहं हिनायावत्तित्व कामे परिभुञ्जेय'न्ति।

अथ खो सभियस्सा परिब्बाजकस्सा एतदहोसि - " अयम्पि खो समानो गोतमो संघि सेवा गनि च गणनचरियो च नातो यस्सासि तित्थकारो साधुसमातो बहुजनस्सा; यन्नुनाहं समानं गोतमं उपसंकमित्वा इमे पन्हे पुचेय्या'न्ति।
अथा खो सभियास्सा परिब्बाजकस्सा एतादहोसि - "येपि खो ते [ये खो ते (स्या.), यां खो ते (का.)] भोंतो समानब्राह्मणा जिन्ना वुधा महल्लका अद्धगाता वयोनुप्पट्टा थेरा रत्तान्नु सिरापबजिता संघिनो गणिनो गणचरिया नाताता यसस्सिनो तित्थकारा साधुसम्मता बहुजनस्सा, सेयथिदं - पुराणो कस्सपो...पे। ... निगंठो नातपुत्तो, तेपि मया पन्हे पुत्था न संपायन्ति, असंपयंता कोपञ्च दोसाञ्च अप्पक्कायञ्च पातुकरोंति, अपि च मन्नेवेत्था पतिपुच्छन्ति; किं पना मे समणो गोतमो इमे पन्हे पुथो ब्याकारिस्सति! समानो हि गोतमो दहारो सेवा जाति, नवो च पब्बज्जयति।
अथा खो सभियास्सा परिब्बाजाकस्सा एतादाहोसी - " समानो खो [सामानो खो गोतामो (स्या. का.)] दहरोती न उन्नाताब्बो न परिभोत्बो। दहरोपि सेसा समानो गोतमो महिद्धिको होति महानुभावो, यन्नुन्नहं समानं गोतमं उपसंकमित्वा इमे पन्हे पुचेय'अन्ति।
अथ खो सभियो परिब्बाको येन राजगहं तेन कारिकां पक्कमि। अनुपुब्बेन कारिकां कारमाणो येन राजगहं वेशुवनं कलंदकनिवापो, येन भगवान तेनुपशंकामि; उपसंकमित्वा भगवत् सद्धिं सम्मोदि । सम्मोदानियं कथं सारण्यं वितिसरेत्व एकमंतं निसीदि। एकमंतं निसिन्नो खो सभियो परिब्बाजको भगवन्तं गाथाय अज्झाभासि -
515.
"कांखि वेचिकचि आगमम्, (इति सभियो)
पन्हे पुच्छितुं अभिकंखमानो;
तेसन्तकारो भवहि [भवहि मे (पी. का.)] पन्हे मे पुठो,
अनुपुब्बं अनुधम्मं ब्याकारोहि मे"।
516.
"दुरतो अगतोसि सभिया, (इति भगवान)
पन्हे पुच्छितुं अभिकंखमानो;
तेसंतकारो भवामि [तेसामंतकारोमी ते (का.)] पन्हे ते पुथो,
अनुपुब्बं अनुधम्मं ब्याकारोमि ते।
517.
"पुच्च मां सभिया पन्हां, यं किंचि मनसिच्चसि;
तस्स तस्सेव पन्हास्सा, अहं अंतं करोमि ते"ति।
अथ खो सभियस्सा परिब्बाजकस्सा एतदाहोसि - "अच्चरियं वात, भो, अब्भूतं वात, भो!" यं वताहं अणनेसु समानेब्राह्मनेसु ओकासकममट्टमपि [ओकासमट्टमपि (सि. पि.)] नालत्थं तं मे इदं समानेण गोतमेना ओकासकमं काटा"न्ति। अत्तमानो पमुदितो उडग्गो पितसोमनस्सजातो भगवन्तं पन्हां अपुच्चि -
518.
" किं पत्तिनमहु भिक्खुनं, (इति सभियो)
सोरतं केन कथाञ्च दन्तमाहु;
बुद्धितो कथां पावुच्चति,
पुठो मे भगव ब्याकारोही"।
519.
"पज्जेना कटेन अत्तना, (सभ्यति भगवान)
परिनिब्बानागतो वितीनकंखो;
विभावञ्च भवन्च विप्पाहाय,
वुसितावा खिन्नपुनाभवो स भिक्खु।
520.
"सब्बत्था उपेक्खको सतीमा, न सो हिंसाति कांची सब्बालोके;
तिन्नो समानो अनाविलो, उस्सदा यस्सा न शांति सोरतो सो।
521.
"Yassindriyāni bhāvitāni, ajjhattaṃ bahiddhā ca sabbaloke;
निब्बिज्झा इमं पराञ्च लोकं, कालं कनखति भावितो स दन्तो।
522.
"कप्पानि विसेय केवलानि, संसारं दुभयं कटुपपातम्;
विगतराजमनांगनां विशुद्धं, पत्तं जातिखायं तमहु बुद्ध'न्ति।

अथ खो सभियो परिब्बाजको भगवतो भासीतं अभिनंदित्वा अनुमोदित्वा अत्तमानो पमुदितो उडग्गो पितसोमनस्सजातो भगवन्तं उत्तरम् [उत्तरी (का.)] पण्हं अपुच्चि -
523.
" किं पत्तिनमहु ब्राह्मणं, (इति सभियो)
समानं केन कथांच नहतकोटि;
Nāgoti kathaṃ pavuccati,
पुठो मे भगव ब्याकारोही"।
524.
"बहित्वा सब्बपापाकानि, (सभ्यति भगवान)
विमलो साधुसमाहितो चितत्तो;
Saṃsāramaticca kevalī so,
असितो तदि पवुचते स ब्रह्मा।
525.
"समितवि पहाय पुन्नपापं, विराजो नात्वा इमं पराञ्च लोकं;
जातिमरणं उपतिवत्तो, समानो तदि पवुक्कते तथात्ता।
526.
"निन्हाया [निन्हाया (स्या.)] सब्बापापकनि, अज्झट्टं बहिद्धा च सब्बलोके;
देवमानुस्सेसु कप्पियेसु, कप्पां नेति तमाहु नहतको'ति।
527.
"अगुं न करोति किञ्ची लोके, सब्बासंयोगे [सब्बायोगे (का.)] विसज्जा बंधनानी;
सब्बत्था न सज्जाति विमुत्तो, नागो तदि पवुक्कते तथात्ता'ति।
अथा खो सभियो परिब्बाको...पे... भगवन्तं उत्तरं पण्हं अपुच्चि -
528.
कं खेत्जिनं वदन्ति बुद्ध, (इति सभियो)
कुसलं केन कथाञ्च पण्डितोति;
मुनि नाम कथं पवुच्चति,
पुठो मे भगव ब्याकारोही"।
529.
"खेत्तानि विसेय केवलानि, (सभ्यति भगवान)
Dibbaṃ mānusakañca brahmakhettaṃ;
सब्बाखेट्टामूलबंधना पमुट्टो,
खेत्ताजीनो तदि पावुकते तथात्ता।
530.
"कोसानि विसेय केवलानि, दिब्बं मानुसकंचा ब्रह्मकोसां;
सब्बकोसामूलबंधना पमुत्तो, कुसालो तदि पावुक्कते तथात्ता।
531.
" दुभयानि विसेया पण्डाराणि, अज्झट्टं बहिद्ध च सुद्धिपन्नो;
कान्हां सुक्कं उपतिवत्तो, पण्डितो तदि पावुक्कते तथात्ता।
532.
"असतांच सतांच नात्वा धम्मं, अज्झट्टं बहिद्ध च सब्बलोके;
देवमनुस्सेहि पूजनीयो, सङ्गं जलमात्च्च सो मुनि'ति।
अथा खो सभियो परिब्बाको...पे... भगवन्तं उत्तरं पण्हं अपुच्चि -
533.
"किं पत्तिनमहु वेदगुं, (इति सभियो)
अनुविदितं केन कथाञ्च वीर्यवती;
Ājāniyo kinti nāma hoti,
पुठो मे भगव ब्याकारोही"।
534.

वेदनि विसेय केवलानि, (सभ्यति भगवान)
समानानं यानीधत्ति [यानीपत्थि (सि. स्या. पि.)] ब्राह्मणानां;
Sabbavedanāsu vītarāgo,
सब्बं वेदामेटिका वेदागु सो।
535.
"Anuvicca papañcanāmarūpaṃ, ajjhattaṃ bahiddhā ca rogamūlaṃ;
सब्बरोगमूलबंधना पमुत्तो, अनुविदितो तदि पावुक्कते तथात्ता।
536.
"विरातो इधा सब्बापाकेहि, निरयदुक्खं अतिच्च वीर्यवा सो;
तो वीर्यवा पधानावा, धीरो तदि पवुक्कते तथात्ता।
537.
"यस्सासु लुनानि बंधनानि, अज्झट्टं बहिद्ध च संगमुलाम्;
सब्बसंगमूलबंधना पमुत्तो, अजानियो तदि पावुक्कते तथात्ता'ति।
अथा खो सभियो परिब्बाको...पे... भगवन्तं उत्तरं पण्हं अपुच्चि -
538.
"किं पत्तिनमहु सोत्तियं, (इति सभियो)
अरियं केन कथाञ्च चारणावती;
परिब्बाजाको किन्ति नाम होति,
पुठो मे भगव ब्याकारोही"।
539.
"सुत्वा सब्बधम्मं अभिनयाय लोके, (सभ्यति भगव)
सवज्जनवज्जं यदत्ति किञ्चि;
अभिभूं अकथाकथिं विमुत्तं,
अनिघं सब्बाधिमहु सोत्तियोति।
540.
"चेत्वा आसवनि आलयनि, विद्वा सो न उपेति गभसेयम्;
सान्नं तिविधं पनुज्ज पंकं, कप्पं नेति तमाहु अरिओति।
541.
"यो इधा कारनेसु पत्तिपत्तो, कुसालो सबबदा अजानाति [अजानि (स्या.)] धम्मम;
सब्बत्था न सजजति विमुत्तचित्तो [विमुत्तो (सि.)], पतिघा यस्सा न शांति कारनव सो।
542.
"दुक्खवेपक्कं यदत्ति कम्मं, उद्धमाधो तिरियं वापि [तिरियान्चापि (स्या.)] मज्झे;
परिब्बाजयित्वा परिण्णचारि, मयां मनमथोपि लोभकोधं;
परियंतमकासि नामरूपं, तं परिब्बाजकमहु पत्तिपत्त'न्ति।
अथ खो सभियो परिब्जको भगवतो भासितं अभिनंदित्वा अनुमोदित्वा अत्तमानो पमुदितो उडग्गो पितसोमनस्सजातो उत्थायसना एकांशं उत्तरसंगं करित्वा येन भगव तेनंजलिं पनामेत्वा भगवंतं संमुखा सरूपाहि गाथाहि अभित्थवि -
543.
"यानि च तिनि यानि च सत्थि, समनप्पवदसितानि [समानप्पावदानिसितानि (स्या. का.)] भूरिपन;
संनक्खरासन्ननिस्सीतानि, ओसरनानि विनेया ओघतमगा।
544.
"अंटागुसी परागु [परागुसी (स्या. पी. का.)] दुक्खस्सा, अरहसी सम्मासंबुद्धो खिनासावं तं मन्ने;
जुतिमा मुतिमा पहुतापन्नो, दुक्खससंतकारं अतरेसि मां।
545.
"यं मे कण्खिटामन्नसि, विचिकीच्च मां तारयि नमो ते;
मुनि मोनपथेसु पत्तिपट्ट, अखिल आदिच्चबंधु सोरतोसि।
546.
"या मे कंखा शुद्ध असि, तम मे बयाकासि चक्खुमा;
अद्धा मुनिसि सम्बुद्धो, नत्थि निवारण तव।

547.
"उपायसा च ते सब्बे, विददस्ता विनादिकता;
सतीभूतो दमप्पत्तो, धितिमा सच्चनिकमो।
548.
"तस्सा ते नागानागस्सा, महावीरस्सा भासतो;
सब्बे देवानुमोदन्ति, उभो नारदपब्बता।
549.
"नमो ते पुरिसाजनना, नमो ते पुरिसुत्तमा;
सदेवकास्मि लोकस्मि, नत्थि ते पतिपुग्गलो।
550.
"तुवं बुद्धो तुवं सत्था, तुवं मराभिभू मुनि;
तुवं अनुसये चेत्वा, तिणो तारेसि मं पजं।
551.
"उपधि ते समतिक्कंता, आसव ते पदलिता;
सिहोसि अनुपादनो, पहिनाभयभेरवो।
552.
"पुण्डरीकं यथा वग्गु, तोये न उपलिम्पति [तोयेना न उपलिप्पति (सि.), तोये न उपलिप्पति (पि.), तोयेना न उपलिम्पति (का.)];
एवं पुन्ने च पापे च, उभये त्वं न लिम्पसि;
पदे वीर पसारेहि, सभियो वंदति सत्थुनो'ति।
अथ खो सभियो परिब्बाजको भगवतो पदेसु सिरसा निपतित्व भगवन्तं एतदावोचा - "अभिकांतं, भन्ते...पे... एषाहं भगवन्तं शरणं गच्छामि धम्मञ्च भिक्खुसंघान्च; लभेयाहं, भंते, भगवतो संतिके पब्बज्जं, लभेयं उपसम्पदा'न्ति।
"यो खो, सभिया, अन्नतित्तियापुब्बो इमास्मिं धम्मविनये आकांखति पब्बजं, आकांखति उपसम्पदां, सो कत्तारो मासे परिवासति; चतुन्नं मसानं अक्येन अराद्धचित्त भिक्खु पब्बाजेंती, उपसम्पादेंति भिक्खुभवाय। अपि च मेत्था पुग्गलवेमत्तता विदितै'ति।
"ससे, भंते, अन्नतित्तियापुब्बा इमस्मिं धम्मविनय आकांखंता पब्बज्जं, आकांखंता उपसम्पदां चत्तारो मासे परिवासन्ति, चतुन्नं मसानं अक्येना अरद्धचित्त भिक्खु पब्बाजेन्ति, उपसंपादेन्ति भिक्खुभवाय, अहं चत्तारि वस्सानि परिवासिसामि; चतुन्नं वस्सणं अक्येन अराद्धचित्त भिक्खु पब्बाजेंटु उपसम्पादेंतु भिक्खुभावयति। अलत्थ खो सभियो परिब्बाजको भगवतो संतिके पब्बजं अलत्थ उपसम्पदां...पे... अनंतरो खो पन्यास्मा सभियो अरहतं अहोसिति।
सभियसुत्तं चट्ठं नियतं।

पाली-देवनागरी
6. सभैसुत्तं
एवं मे सुतं - एकं समयं भगवा राजघे विहारी वेळुवने कलंदकनिवापे। तेन खो पन समयेन सभियस परिब्बाजकस पुराणसलोहिताय देवताय पञ्हा उद्दित्था होन्ति - "यो ते, सभि, समणो वा ब्राह्मणो वा इमे पंघे पुत्थो बयाक्रोति तस्स संतिके ब्रह्मचर्यं चरेयसी"ति।
अथ खो सभियो परिब्बाजको तस्सा देवताय संतिके ते पंघे उग्गेत्वा ये ते समनब्राह्मणा सङ्घिनो गणिनो गणचारिया नता यस्स्सिनो तिथकरा साधुसम्मता बिजनेसस, सेयथिदं - पुरनो कास्पो मखलिगोसालो राजितो केसकम्बलो पकुधो [ककुधो (सी) पकुद्धो (स्याह्यदि) कं०)] कच्छचानो सञ्चयो [सञ्जज्यो (सी० स्या० कं० पी०)] बेलट्ठपुत्तो [बेळदल्लट्ठिपुत्तो (सी० पी०), वेळट्ठ्पुटट्टो (स्या०)] निगंठो नटपुत्तो [नातपुत्तो (सी० पी०)], ते उपसङकमित्वा ते पंघे पुच्छति। ते सभियेन परिब्बजकेन पंघे पुत्था न संपायन्ति; अस्पाम्यन्ता कोपञ्च दोसञ्च अप्पचन्द्चयञ्च पातुक्रोन्ति। अपि च सब्बं येव परिब्बाजकं पतिपुच्छन्ति।
अथ खो सभियसस परिब्बाजकस एतदहोसि - "ये खो ते भोन्तो समन्ब्राह्मण साङ्घिनो गाणिनो गणाचार्य ञताता यसस्सिनो तिथकरा साधुसम्मता बहुजनस्स, सेय्यथिदं - पुरणो कस्सपो...पे.... निगन्थो नात्पुत्तो, ते मया पंघे पुत्था न संपायन्ति, अस्पायन्ता कोपञ्च दोसञ्च अप्पचचन्दच पतुक्रोन्ति; अपि च मन्नेवेत्थ पतिपुच्छन्ति। य सत्यनाहु सत्यनाहं हिनायावत्तित्वा कामे परिभुञ्जेय"न्ति।
अथ खो सभियस परिब्बज्क्स एतदहोसि - " अयम्पि खो समणो गोतमो सङ्घी चेव गणी च गणचारियो च नहतो यस्सी तिथकरो साधुसम्मतो बहुजनस्स; यन्नुनाहं समानं गोतमं उपसङ्कमित्वा इमे पंघे पुच्छेय"न्ति।
अथ खो सभियस परिब्बाजकस एतदहोसि - "येपि खो ते [ये खो ते (स्या०), यां खो ते (क०)] भोन्तो समन्ब्राह्मण जिन्ना वुद्धा महादलका अद्धगाता वयोअनुप्पत्ता थेरा रत्तनड्ड चिरपब्जिता सङ्घिनो गणिनो गणचरिया नता यसस्सिनो तिथकरा मधुसमता भानसस, सेय्यथिदं — पूर्णो कास्पो...पे० ... निगंठो नात्पुत्ततो, तेपि मया पञ्चे पुत्था न संपायन्ति, अस्पयंता कोपञ्च दोसञ्च अप्पच्चयञ्च पतुक्रोन्ति, अपि च मन्देवेत्थ पतिपुच्छन्ति; किं पन मे समानो गोतमो इमे पंघे पुत्थो ब्याकरिस्सति! समानो हि गोतमो दहरो चेव जातिया, नवो च पब्बज्जाया'ति।

अथ खो सभियसस परिब्बजकस एतदहोसि - "समानो खो [समानो खो गोतमो (स्या० क०)] दहरोति न उञ्जातब्बो न परिभोतब्बो। दहरोपि चेस समणो गोतमो महिद्धिको होति महानुभावो, यन्नुनाहं समानं गोतमं उपसङ्कमित्वा इमे पंघे पुच्छेय"न्ति।
अथ खो सभियो परिब्बजको येन राजघं तेन चारिकं पक्कामि। अनुपुब्बेन चारिकं चरमाणो येन राजघं वेळुवनं कलंदकनिवापो, येन भगव तेनुपसङकमी; उपसङ्कमित्वा भगवत् सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनेयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमंतं निसिदि। एकमन्तं निसि नारायणो खो सभियो परिब्बाजको भगवन्तं पुराणाय अज्झासि -
51.
"काङ्खी वेचिचिचि आगमं, (इति सभियो)
पंघे पुच्छितुं अभिकङ्खमानो।
तेसन्तकरो भवही [भवही मे (पी० क०)] पंघे मे पुत्थो,
अनुपुब्बं अनुधम्मं ब्याकरोहि मे"॥
5
दूरतो आगतोसि सभि, (इति भगवान)
पंघे पुच्छितुं अभिकङ्खमानो।
तेसन्तकरो भवामि [तेसमन्तकरोमि ते (क०)] पञ्हे ते पुत्थो,
अनुपुब्बं अनुधम्मं ब्याक्रोमि ते॥
51.
" पुच्छ मन सभिय पञ्चं, यं किञ्चचि मनसिच्छसि।
तस्स तस्सेव पञ्चस्स, अहं अन्तं करोमि ते"ति॥
अथ खो सभियस परिब्बाजकस एतदहोसि - "अच्छ्रियां वत, भो, अब्भुतं वत, भो! यं वातहं अञ्जनेसु समनब्राह्मनेसु ओकासकम्मत्तमपि [ओकासमत्तमपि (सी० पी०)] नालथं तं मे इदं समानेन गोतमेन ओकासकम्मं कत"न्ति। अत्तमनो पमुदितो उद्ग्गो पीतिसोमनस्सजातो भगवन्तं पञ्चं अपुच्छि -
511.
"किं पत्तनमहु भिक्खुनं, (इति सभियो)
सोरतं केन कथं च दन्तमाहु।
बिधोति कथं पवुच्चति,
पुत्थो मे भगवा ब्याकरोहि"॥
511.
"पज़्जेन कटेन अत्तना, (सभियाति भगवान)
परिणिब्बानागतो वितिन्नकङखो।
विभवाञ्च भवनाच विप्पय,
वुसित्व खिणपुनब्भवो स भिक्खु॥
520.
"सब्बत्थ उपेक्खको सतिमा, न सो हिंसति कंचि सब्बलोके।
तिन्नो समानो अनाविलो, उस्सदा यस न शांति सोरतो सो॥
520.
"यसिन्द्रियानि भवितानि, अज्झत्तं बधिधा च सब्लोके।"
निब्बिज्झ इमं पञ्च लोकं, कालं कङ्खति भावितो स दन्तो॥
522.
"कप्पानि विचेय केवलानि, संसारं दुभयं चतुर्पापातं।
अतीतरजमनङ्गानं विशुद्धं, पत्तं जातिखयं तमहु बुद्ध"न्ति॥
अथ खो सभियो परिब्बाजको भगवतो भासितं अभिनन्दित्वा शिष्ट्वा अत्तमनो पमुदितो उद्ग्गो पितसोमनस्सजातो भगवन्तं उत्तरिं [उत्तरी (क०)] पञ्हं अपुच्छि -
5.25.
"किं पत्तनमहु ब्राह्मणं, (इति सभियो)
समानं केन कथंडच हतकोटोति।
नागोति कथं पवुच्चति,
पुत्थो मे भगवा ब्याकरोहि"॥
5.

" बहित्वा सब्बपापकनि, (सभियाति भगवान)
विमलो साधुसमाहितो ठितत्तो।
दुनियामतिचाच केवली सो,
असितो तदि पवुच्चते स ब्रह्मा॥
522.
"समिताविं पहाय पुञ्जपापं, विरजो नत्वा इमं पञ्च लोकं।
जातिमरणं उपतिवततो, समणो तदि पवुच्चते तथात्ता॥
5 2000.
"निन्हाय [निन्हा (स्या०)] सब्बपापकनि, अज्झत्तं बधिधा च सब्लोके।
देवमनुस्सेसु कप्पियेसु, कप्पं नेति तमाहु हन्तको"ति॥
5
"अगुं न करोति किञ्चचि लोके, सब्बसंयोगे [सब्बयोगे (क०)] विजज बंधनानि।
सब्बत्थ न सजजति विमुत्तो, नागो तदि पवुच्चते तथात्ता"ति॥
अथ खो सभियो परिब्बाजको...पे०... भगवन्तं उत्तरिं पञ्चं अपुच्छि —
5
कं खेतत्जिनं वदन्ति बुद्धा, (इति सभियो)
कुसलं केन कथनश्च पण्डितोति।
मुनि नाम कथं पवुच्छति,
पुत्थो मे भगवा ब्याकरोहि"॥
5
खेतानि विचेय केवलानि, (सभ्यति भगवान)
दिब्बं मनुस्कंदच ब्रह्मखेत्तं।
सब्बेखेत्तमूलबन्धना पमुत्तो,
खत्तजिनो तदि पवुचचते तथात्ता॥
530.
"कोसानि विचेय केवलानि, दिब्बं मनुस्कंदच ब्रह्मकोसं।
सब्बकोसमूलबंधना पमुत्तो, कुसलो ताड़ी पवुचदमचते तथात्ता॥
5 सप्ताह
"दुभयानि विचेय पण्डराणि, अज्झत्तं बधिधा च सुद्धिपञ्चो।
कण्हं सुकं उपतिवततो, पण्डितो तादि पवुच्चते तथात्ता॥
5वीं शताब्दी.
"असत्ञ्च शतञ्च ञ्त्वा धम्मं, अज्झत्तं बधिधा च सब्बलोके।
देवमनुस्सेहि पूजनीयो, सङ्गं जलमतिचद्च सो मुनि"ति॥
अथ खो सभियो परिब्बाजको...पे०... भगवन्तं उत्तरिं पञ्चं अपुच्छि —
5.
"किं पत्तनमहु वेदगुणं, (इति सभियो)
अनुविदितं केन कथाञ्च वीरियवती।
आजानियो किन्ति नाम होति,
पुत्थो मे भगवा ब्याकरोहि"॥
5
वेदनि विचेय केवलानि, (सभ्यति भगवान)
समानानं अर्थात्धाति [यानीपथी (सी० स्या० पी०)] ब्राह्मणानं।
सब्बवेदनासु वीतरागो,
सब्बं वेदमतिचदच वेदगु सो॥
5.
"अनुविचदच पपञ्चनामरूपं, अज्झत्तं बधिधा च रोगमूलं।
सब्बरोगमूलबन्धना पमुत्तो, अनुविदितो तादि पवुचदचते तथात्ता॥
5

"विरतो इध सब्बपापकेहि, निरादुक्खं अतिचच वीरियवा सो।
सो वीरियवा पधानवा, धीरो तादि पवुच्चते तथात्ता॥
5
"यस्सु लुनानि बंधनानि, अज्झत्तं बधिधा च सङ्गमूलं।
सब्बसङ्गमूलबन्धना पमुत्तो, अजाणियो ताड़ी पवुचदचते तत्थ"ति॥
अथ खो सभियो परिब्बाजको...पे०... भगवन्तं उत्तरिं पञ्चं अपुच्छि –
5वीं.
"किं पत्तनमहु सोत्त्यं, (इति सभियो)
अरियां केन कथं च चरणवति।
परिबब्बाजको किन्ति नाम होति,
पुत्थो मे भगवा ब्याकरोहि"॥
5.
"सुत्वा सब्बधम्मं अभिन्याय लोके, (सभ्यति भगवान)
सवज्जनवजजं यदत्थि किञ्च।
अभिभुं अकथंकथिं विमुत्तं,
अनिघं सब्बधिमहु सोत्तियोति॥
5-4.
"चेत्वा आसवानि अलयानि, विद्वा सो न उपेति गभसेयं।
सञ्जनं तिविधं पनुज्जज पकं, कप्पं नेति तमाहु अरियोति॥
5
"यो इध चरणेसु पत्तिपट्टो, कुसलो सब्बदा अजानति [अजानि (स्या०)] धम्मं।
सब्बत्थ न सज्जाति विमुत्तचित्तो [विमुत्तो (सी०)], पतिघा यस्स न शांति चरणवा सो॥
5
"दुक्खवेपकं कृतं यदत्थि कम्मं, उद्धमधो तिरियं वापि [तिरियाञ्चपि (स्या०)] मज्झे।
परिब्बाजायित्वा परिञ्चचारि, मम मनमथोपि लोभकोधं।
पर्यन्तमकासि नामरूपं, तं परिब्बाजकमाहु पत्तप्त"न्ति॥
अथ खो सभियो परिब्बाजको भगवतो भासितं अभिनंदित्वा शिष्ट्वा अत्तमनो पमुदितो उद्ग्गो पीतिसोमनस्सजातो उत्थयासना एकंसं उत्तरासङगं कारित्वा येन भगव तेनञ्जालिं पनामेत्वा भगवन्तं सम्मुखा सारुप्पाहि ग्राधिहि अभिथवि -
5
"यानि च तीनि अर्थात् च सत्थि, समनप्पवदसितानि [समनप्पवदंसितानि (स्या० क०)] भूरिपञ्च।
सञ्खक्रासञ्चदन्निस्सितानि, ओसरानानि विनेय्य ओघतमगा॥
5.
"अंतगुसि पारगु [पारगुसि (स्या० पी० क०)] दुक्खस्स, अरहसि सम्मासम्बुद्धो खिनास्वं तं मञ्चे।
जुतिमा मुतिमा पहुतपञ्चो, दुक्खासान्तकरं अतरेसि मं॥
544.
"यं मे कङ्खितमञ्चसि, विचिकिच्चा मन तारयि नमो ते।"
मुनि मोनपथेसु पत्तिपट्ट, अखिल आदिचदबंधु सोरतोसि॥
5
"या मे कङ्खा पूरे आसि, तं मे ब्याकासि चक्खुमा।
अद्धा मुनिसि संबुद्धो, नत्थि निवर्ण तव॥
5.
"उपायसा च ते सब्बे, विद्धास्ता विनळिकता।
सीटिभूतो दमप्पत्तो, धितिमा सच्चनिकदमको॥
5
"तस्स ते नागनागस्स, महावीरस्स भासतो।
सब्बे देवानुमोदन्ति, उभो नारदपब्बता॥
5
"नमो ते पुरिसाञ्जन्, नमो ते पुरिसुत्तम।

सदेवकस्मिं लोकस्मिं, नत्थि ते पतिपुग्गलो॥
5
"तुवं बुद्धो तुवं सथा, तुवं मराभिभू मुनि।
तुवं अनुसये चेत्वा, तिन्नो तारेसि मं पजं॥
5.55.
" उपधि ते समति त्रैकान्ता, असवा ते पदलिता।
सीहोसि अनुपादनो, पहिणभयभेरवो॥
5
"पुण्डरीकं यथा वग्गु, तोये न उपलिम्पति [तोयेन न उपलिप्पति (सी०), तोयेन न उपलिम्पति (पी०), तोयेन न उपलिम्पति (क०)]।
एवं पुञ्जे च पापे च, उभये त्वं न लिम्पसि।
पदे वीर पसरेहि, सभियो वन्दति सथुनो"ति॥
अथ खो सभियो परिब्बाजको भगवतो पदेसु दृश्य निपतित्व भगवन्तं एतदवोच - "अभि निषेधं, भन्ते...पे.... असहं भगवन्तं शरणं गच्छामि धम्मन्दच भिक्खुसङ्घञ्च; लभेयहं, भन्ते, भगवतो शांतिके पब्बज्जं, लभेयं उपसम्पदा"न्ति।
"यो खो, सभि, अञ्जनतिथियपुब्बो इमस्मिं धम्मविनये आक्खति पब्बज्जं, आक्खति उपसम्पदं, सोत्ता चारो मासे परिवसति; चतु दर्शनं मसानं आच्छच्येन अर्धचित्ता भिक्खु पब्बजेन्ति, उपसम्पादन्ति भिक्खुभवाय। अपि च मेत्थ पुग्गलवेमत्तता विदिता"ति।
"सच्चे, भंते, अञ्जनतिथियपुब्बा इमस्मिं धम्म्विनये एकङखंता पब्बज्जं, एकंखंता उपसम्पदं चत्तारो मासे परिवासन्ति, चतु दर्शनं मसानं अच्चचयेन अर्धचित्ता भिक्खु पब्बजेन्ति, उपसम्पादन्ति भिक्खुभवाय, अहं चत्तारि वस्सनि परिवसिअमि; चतु दर्शनं वस्सानं अच्चचयेन अर्धचित्ता भिक्खु पब्बजेंटु उपसम्पदेंतु भिक्खुभावया"ति। अलत्थ खो सभियो परिब्बजको भगवतो शांतिके पबजजं अलत्थ उपसम्पदं...पे०... अञ्जन्तरो खो पणयस्मा सबहियो अरहतं अहोसिति।
सभैसुत्तं छट्ठं निश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> सुत्तनिपात >> 3.7 सेलासुट्टा
वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<-->>>> अगला

जटिल वंश केनिया ने बुद्ध और उनके अनुयायियों को अगले दिन उनके साथ भोजन करने के लिए आमंत्रित किया। ब्राह्मण वंश सेला अपने तीन सौ युवकों के साथ वहाँ पहुँचा; तैयारियों को देखकर उसने पूछा कि क्या हो रहा है, और उसे बताया गया कि बुद्ध अगले दिन आने वाले हैं। 'बुद्ध' शब्द सुनते ही सेला ने पूछा कि बुद्ध कहाँ रहते हैं, उनके पास गया, उनसे बातचीत की और उनका मन बदल गया; उनके अनुयायियों का भी मन बदल गया।

अंतर्वस्तु

3.7 सेलासुट्टा
अनुवाद
मुझे यह सुनने को मिला:

एक समय भगवान (भगवान बुद्ध) अंगुत्तरापा में घूमते हुए, 1250 भिक्षुओं के एक बड़े समूह के साथ, अंगुत्तरापा के एक शहर अपाना गए।

और जटाधारी तपस्वी केनिया ने यह सुना: 'शाक्य वंश के पुत्र, आदरणीय गौतम बुद्ध, समना (तपस्वी), शाक्य कुल से निकलकर अंगुत्तरापा में 1250 भिक्षुओं के विशाल समूह के साथ विचरण करते हुए अपाना पहुँचे हैं, और आदरणीय गौतम बुद्ध का स्वागत इन प्रशंसात्मक शब्दों ने किया: "यह भगवान हैं, आदरणीय, पूर्णतः प्रबुद्ध, दिव्य ज्ञान और सद्गुणों से परिपूर्ण, आनंदमय, संसार के ज्ञाता,

अतुलनीय, मनुष्यों को वश में करने वाले सारथी, स्वामी, देवताओं और मनुष्यों में पूर्णतः प्रबुद्ध (बुद्ध) और ईश्वर के रूप में; वे इस संसार और देवताओं के संसार, मारों, ब्राह्मणों और समनाओं और ब्राह्मणों, देवताओं और मनुष्यों सहित सभी प्राणियों का उपदेश देते हैं, स्वयं भी उन्हें जानता और आमने-सामने देखा है; वे धम्म का उपदेश देते हैं जो आरंभ, मध्य और अंत में उत्तम है, अर्थपूर्ण और शब्दों से समृद्ध है, पूर्ण है; वे पूर्ण ब्रह्मचर्य का जीवन सिखाते हैं, और ऐसे अर्हतों (पूर्णतः प्रबुद्ध) का दर्शन सुखद होता है।'

तब जटिला केनिया उस स्थान पर गए जहाँ भगवान (बुद्ध) थे, और वहाँ जाकर उन्होंने उनसे मधुर वार्तालाप किया, और कुछ सुखद और उल्लेखनीय वार्तालाप के बाद वे अलग बैठ गए; और जब जटिला केनिया अलग बैठे थे, तब भगवान (बुद्ध) ने धम्म प्रवचन द्वारा उन्हें उपदेश दिया, सलाह दी, प्रेरित किया और प्रसन्न किया। तब जटिला केनिया, भगवान (बुद्ध) द्वारा धम्म प्रवचन के माध्यम से उपदेश, सलाह, प्रेरणा और प्रसन्नता प्राप्त करने के बाद, भगवान (बुद्ध) से यह कहा: 'आदरणीय गौतम (बुद्ध) कल भिक्षुओं की सभा के साथ मेरा भोजन ग्रहण करें।'

यह सुनकर भगवान बुद्ध ने जटिला केनिया को उत्तर दिया: 'हे केनिया, भिक्षुओं की सभा विशाल है, जिसमें एक हजार दो सौ पचास भिक्षु हैं, और तुम ब्राह्मणों के घनिष्ठ मित्र हो।'

दूसरी बार जटिला केनिया ने भगवान बुद्ध से कहा: 'हे पूज्य गौतम बुद्ध, यद्यपि भिक्षुओं की सभा विशाल है, जिसमें एक हजार दो सौ पचास भिक्षु हैं, और मैं ब्राह्मणों के घनिष्ठ मित्र हूँ, फिर भी पूज्य गौतम बुद्ध कल भिक्षुओं की सभा सहित मेरा भोजन ग्रहण करें।'

दूसरी बार भगवान बुद्ध ने जटिला केनिया को कहा: 'हे केनिया, भिक्षुओं की सभा विशाल है, जिसमें एक हजार दो सौ पचास भिक्षु हैं, और तुम ब्राह्मणों के घनिष्ठ मित्र हो।'

तीसरी बार जटिला केनिया ने भगवान (बुद्ध) से यह कहा: 'हे पूज्य गौतम बुद्ध, यद्यपि भिक्षुओं की सभा बड़ी है, जिसमें एक हजार दो सौ पचास भिक्षु हैं, और मैं ब्राह्मणों से घनिष्ठ रूप से परिचित हूँ, फिर भी पूज्य गौतम बुद्ध कल भिक्षुओं की सभा के साथ मेरा भोजन ग्रहण करें।' भगवान (बुद्ध) मौन रहकर सहमत हो गए।

तब जटिला केनिया ने भगवान (बुद्ध) की सहमति जानकर, अपने आसन से उठकर अपने आश्रम में गए, और वहाँ पहुँचकर उन्होंने अपने मित्रों, सेवकों, रिश्तेदारों और सगे-संबंधियों को संबोधित करते हुए कहा: 'हे मेरे पूज्य मित्रों, सेवकों, रिश्तेदारों और सगे-संबंधियों, मेरी बात सुनो; मैंने समना गौतम बुद्ध को कल भिक्षुओं की सभा के साथ मेरे साथ भोजन करने के लिए आमंत्रित किया है; जहाँ आपको मेरी शारीरिक सेवा करनी होगी।'

'हे पूज्यवर,' ऐसा कहते हुए केनिया, जटिला के मित्रों, सेवकों, रिश्तेदारों और सगे-संबंधियों ने उनकी विनती का पालन करते हुए चूल्हे खोदे, कुछ ने लकड़ियाँ काटीं, कुछ ने बर्तन धोए, कुछ ने पानी के बर्तन रखे और कुछ ने आसन तैयार किए। दूसरी ओर, केनिया, जटिला ने स्वयं एक गोलाकार मंडप बनवाया।

उस समय ब्राह्मण सेला अपाना में निवास करते थे, जो तीनों वेदों, शब्दकोश, केतुभ, व्युत्पत्ति, इतिहास (पाँचवाँ वेद) के ज्ञाता, छंदों में पारंगत, व्याकरणविद्, लोकप्रिय विवादों में निपुण और एक महान व्यक्ति के लक्षण रखने वाले थे। उन्होंने तीन सौ युवकों को भजन सिखाए। उस समय केनिया, जटिला, ब्राह्मण सेला के घनिष्ठ मित्र थे। फिर ब्राह्मण सेला तीन सौ युवकों से घिरे हुए पैदल चलकर उस स्थान पर पहुँचे जहाँ केनिया, जटिला का आश्रम था। ब्राह्मण सेला ने केनिया के आश्रम में जटिलों को देखा, उनमें से कुछ चूल्हे खोद रहे थे, कुछ लकड़ियाँ काट रहे थे, कुछ बर्तन धो रहे थे, कुछ जलपात्र रख रहे थे, कुछ आसन तैयार कर रहे थे, और दूसरी ओर जटिल केनिया स्वयं एक गोलाकार मंडप बना रहे थे; जटिल केनिया को देखकर उन्होंने कहा: 'क्या पूज्य केनिया अपने पुत्र या पुत्री का विवाह समारोह मना रहे हैं, या कोई बड़ा यज्ञ होने वाला है, या मगध के राजा बिम्बिसार, जिनके पास विशाल सेना है, को कल के लिए आमंत्रित किया गया है?'

'मुझे न तो पुत्र का विवाह मनाना है और न ही पुत्री का विवाह, और न ही मगध के राजा बिम्बिसार को, जिनके पास बड़ी सेना है, कल के लिए आमंत्रित किया गया है, फिर भी मेरा एक महान यज्ञ निकट है।' शाक्य वंश के पुत्र समना गौतम (बुद्ध), शाक्य कुल से निकलकर, अंगुत्तरापा में एक हजार दो सौ पचास भिक्षुओं के विशाल समूह के साथ विचरण करते हुए अपाना पहुँचे, और वहाँ पूज्य गौतम (बुद्ध) का स्वागत इन प्रशंसात्मक शब्दों से हुआ: "यह हैं भगवान (बुद्ध), पूज्य, पूर्णतः प्रबुद्ध, ज्ञान और सद्गुणों से परिपूर्ण (विज्याचरण), सुखी, संसार के ज्ञाता, अतुलनीय, मनुष्यों को वश में करने वाले सारथी, स्वामी, देवताओं और मनुष्यों के प्रबुद्ध (बुद्ध), महिमामय। मैंने इन्हें कल भिक्षुओं के समूह सहित आमंत्रित किया है।" '

क्या आपने कहा कि वे बुद्ध हैं, हे पूज्य केनिया?'

'जी हाँ, मैं कहता हूँ, हे पूज्य सेला, कि वे बुद्ध हैं।'

'क्या आपने कहा कि वे बुद्ध हैं, हे पूज्य केनिया?' '

जी हां, मैं कहता हूं, हे पूज्य सेला, कि वह बुद्ध हैं।'

तब ब्राह्मण सेला के मन में यह विचार आया: 'यह ध्वनि "बुद्ध" (वास्तव में) दुर्लभ है, लेकिन हमारे भजनों में एक महान पुरुष के बत्तीस लक्षण पाए जाते हैं, और इन लक्षणों से संपन्न महान पुरुष के लिए केवल दो ही शर्तें हैं: यदि वह गृहस्थी में रहता है तो वह राजा है, सर्वव्यापी (राजा), न्यायप्रिय राजा, चौगुनी (पृथ्वी) का स्वामी, विजेता, जिसने अपनी प्रजा की सुरक्षा प्राप्त की है और सात रत्नों से युक्त है। ये उसके सात रत्न हैं, अर्थात्, चक्र रत्न, हाथी रत्न, अश्व रत्न, मोती रत्न, स्त्री रत्न, गृहस्थ रत्न और सातवां रत्न प्रधान है। उसके एक हजार से अधिक पुत्र हैं, वीर, महान शारीरिक शक्ति से युक्त और विदेशी सेनाओं को कुचलने वाले; उसने इस सागर से घिरी पृथ्वी को बिना लाठी और बिना हथियार के, केवल न्याय के बल पर जीता है और (गृहस्थी में) रहता है।' परन्तु दूसरी ओर, यदि वह अपने घर से निकलकर बेघर हो जाए, तो वह संत बन जाता है, पूर्णतः प्रबुद्ध हो जाता है, संसार के परदे को हटा देता है। और हे पूज्य केनिया, अब वह पूज्य गौतम (बुद्ध), संत और पूर्णतः प्रबुद्ध कहाँ निवास करते हैं?'

यह कहकर, जटिला केनिया ने अपना दाहिना हाथ फैलाकर ब्राह्मण सेला से कहा: 'हे पूज्य सेला, वहाँ जहाँ वह नीली वन रेखा है।'

तब ब्राह्मण सेला अपने तीन सौ युवकों के साथ उस स्थान पर गए जहाँ भगवान (भगवान बुद्ध) विराजमान थे। तब ब्राह्मण सेला ने उन युवकों को संबोधित करते हुए कहा: 'आओ, पूज्यजनों, चुपचाप, कदम-कदम बढ़ाते हुए, क्योंकि भगवान (भगवान बुद्ध) तक पहुँचना कठिन है, वे सिंहों की तरह अकेले चलते हैं, और जब मैं पूज्य समना गौतम (बुद्ध) से बात करूँ, तो तुम बीच में टोकना मत, बल्कि प्रतीक्षा करना, पूज्यजनों।'मेरे भाषण के अंत के लिए।'

तब ब्राह्मण सेला उस स्थान पर गए जहाँ भगवान बुद्ध विराजमान थे, और वहाँ पहुँचकर उन्होंने भगवान बुद्ध से सुखद वार्तालाप किया। उनसे कुछ सुखद और उल्लेखनीय वार्तालाप करने के बाद वे एकांत में बैठ गए। एकांत में बैठे हुए ब्राह्मण सेला ने भगवान बुद्ध के शरीर पर एक महान पुरुष के बत्तीस लक्षण देखे। ब्राह्मण सेला ने भगवान बुद्ध के शरीर पर एक महान पुरुष के बत्तीस लक्षण देखे, सिवाय दो लक्षणों के; दो लक्षणों के संबंध में उन्हें संदेह था, वे संशय में थे, वे संतुष्ट नहीं थे, वे इस बात से आश्वस्त नहीं थे कि उनका गुप्तांग झिल्ली में लिपटा हुआ है और उनकी जीभ बड़ी है।

तब भगवान (भगवान बुद्ध) के मन में यह विचार आया: 'यह ब्राह्मण सेला मुझमें एक महान पुरुष के बत्तीस लक्षण देखता है, सिवाय दो के। महान पुरुष के दो लक्षणों के संबंध में उसे संदेह है, वह संकोच करता है, वह संतुष्ट नहीं है, वह आश्वस्त नहीं है कि मेरा जननांग झिल्ली से ढका हुआ है और मेरी जीभ बड़ी है।' तब भगवान (भगवान बुद्ध) ने एक ऐसा चमत्कारी प्राणी बनाया जिससे ब्राह्मण सेला भगवान (भगवान बुद्ध) के जननांग को झिल्ली से ढका हुआ देख सके। तब भगवान (भगवान बुद्ध) ने अपनी जीभ बाहर निकालकर अपने दोनों कानों को छुआ और सहलाया, दोनों नथुनों को छुआ और सहलाया, और अपने पूरे माथे को अपनी जीभ से ढक लिया।

तब ब्राह्मण सेला के मन में यह विचार आया: 'समना गौतम (बुद्ध) एक महान पुरुष के बत्तीस लक्षणों से संपन्न हैं, उन सभी से, न कि (केवल) उनमें से कुछ से, और फिर भी मैं नहीं जानता कि वे बुद्ध हैं या नहीं; मैंने वृद्ध ब्राह्मणों, शिक्षकों और उनके पूर्व शिक्षकों को यह कहते सुना है कि जो संत और पूर्णतः प्रबुद्ध होते हैं, उनकी स्तुति करने पर वे स्वयं प्रकट होते हैं। मेरा विचार है कि मैं समना गौतम (बुद्ध) की स्तुति उपयुक्त श्लोकों में आमने-सामने करूँ। तब ब्राह्मण सेला ने भगवान (भगवान बुद्ध) की स्तुति उपयुक्त श्लोकों में आमने-सामने की:

1. 'हे भगवान (भगवान बुद्ध), आपका शरीर परिपूर्ण है, आप तेजस्वी हैं, उच्च कुल के हैं, आपका रूप सुंदर है, आपका रंग स्वर्ण है, आपके दाँत अत्यंत श्वेत हैं, आप बलवान हैं। (553)

2. 'उच्च कुल के पुरुष के सभी लक्षण आपके शरीर पर हैं, एक महान पुरुष के लक्षण। (554)

3. 'आपकी आँखें उज्ज्वल हैं, आपका मुखमंडल सुंदर है, आप महान, सीधे, राजसी हैं, आप समनाओं (भिक्षुओं) की सभा के बीच सूर्य के समान चमकते हैं।' (555)

4. 'आप सुंदर रूप वाले भिक्षु हैं, आपकी त्वचा सोने जैसी है; आप जैसे सर्वोच्च सौंदर्य से परिपूर्ण होने पर भी, भिक्षु होने का क्या लाभ? (556)

5. 'आप राजा बनने के योग्य हैं, सार्वभौमिक राजाओं के राजा, चौकोणीय (पृथ्वी) के शासक, विजेता, जंबू वन (अर्थात भारत) के स्वामी। (557)

6. 'खत्तीय और धनी राजा आपके प्रति समर्पित हैं; हे गौतम (बुद्ध), राजाओं के राजा, मनुष्यों के नेता के रूप में शासन करें।' (558)

7. 'हे सेला, मैं राजा हूँ,' - भगवान (बुद्ध) ने कहा, - 'एक अतुलनीय, धर्म राजा (धम्मराजन), मैं न्याय (धम्मेना) से धर्मचक्र चलाता हूँ, एक ऐसा धर्मचक्र जो अजेय है।' (559)

8. 'आप स्वयं को पूर्णतः प्रबुद्ध (संबुद्ध) मानते हैं,' - ब्राह्मण सेला ने कहा, - 'एक अतुलनीय, धर्म राजा; "मैं न्याय से धर्मचक्र चलाता हूँ," हे गौतम (बुद्ध) आप ऐसा कहते हैं।' (560)

9. 'आपका सेनापति कौन है, आपका शिष्य कौन है, गुरु का उत्तराधिकारी कौन है, आपके द्वारा चलाए गए धर्मचक्र को आपके बाद कौन चलाएगा?' (561)

10. 'हे सेला, मेरे द्वारा घुमाया गया चक्र,' - भगवान (बुद्ध) ने ऐसा कहा, - 'धर्म का अतुलनीय चक्र, सारिपुत्त को मेरे पीछे घुमाना है, वह तथागत (बुद्ध) का अनुसरण करेगा। (562)

11. 'जो जानना है वह (मेरे द्वारा) ज्ञात है, जो साधना करनी है वह (मेरे द्वारा) साधना है, जो छोड़ना है वह (मेरे द्वारा) छोड़ दिया गया है, इसलिए मैं बुद्ध हूँ, हे ब्राह्मण। (563)

12. 'मेरे बारे में अपने संदेह को दूर करो, मुझ पर विश्वास रखो, हे ब्राह्मण, बुद्धों के दर्शन बार-बार प्राप्त करना कठिन है। (564)

13. 'जिनका दर्शन संसार में बार-बार आपके लिए कठिन है, उनमें से मैं, हे ब्राह्मण, पूर्णतः प्रबुद्ध, अतुलनीय चिकित्सक हूँ। (565)

14. 'मैं सबसे श्रेष्ठ, अद्वितीय, मार (मृत्युदेव) की सेना का नाश करने वाला हूँ; सभी शत्रुओं को पराजित करके मैं चारों ओर से सुरक्षित होकर आनंदित होता हूँ।' (566)

15. सेला: 'हे पूज्यजनों, इस पर ध्यान दें: जैसा कि स्पष्ट दृष्टि वाले (बुद्ध) कहते हैं, (वैसा ही है): वह चिकित्सक, महान विजेता और वन में सिंह के समान गर्जना करने वाला है। (567) 16.

'जो उसे, जो सबसे श्रेष्ठ, अद्वितीय, मार की सेना का नाश करने वाला है, देखकर भी तृप्त नहीं होता, चाहे वह कुन्हभिजातिका (काष्ठ वंश) का ही क्यों न हो।' (568)

17. 'जो मुझे पसंद करता है, वह मेरा अनुसरण करे; जो मुझे पसंद नहीं करता, वह चला जाए; मैं तुरंत ही उस व्यक्ति (प्रत्यक्ष अनुभवजन्य ज्ञान) की उपस्थिति में दीक्षा लूंगा जिसे उत्कृष्ट ज्ञान प्राप्त है (अर्थात बुद्ध)।' (569)

18. सेला के अनुयायी: 'यदि पूर्णतः प्रबुद्ध का यह सिद्धांत आपको प्रसन्न करता है, तो हम भी उस व्यक्ति (प्रत्यक्ष अनुभवजन्य ज्ञान) की उपस्थिति में दीक्षा लेंगे जिसे उत्कृष्ट ज्ञान प्राप्त है।' (570)

19. इन तीन सौ ब्राह्मणों ने हाथ जोड़कर (सभा में प्रवेश के लिए) निवेदन किया: 'हे भगवान (बुद्ध), हम आपकी उपस्थिति में एक पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत करना चाहते हैं।' (571)

20. 'हे सेला, धर्म का जीवन (मेरे द्वारा) अच्छी तरह सिखाया जाता है,' - भगवान (बुद्ध) ने कहा, - 'एक तात्कालिक, तत्काल (जीवन), जिसमें गंभीरता से सीखने वाले के लिए तपस्वी बनना व्यर्थ नहीं है।' (572)

तब ब्राह्मण सेला ने अपने अनुयायियों के साथ भगवान (बुद्ध) के समक्ष वस्त्र धारण किए और आदेश ग्रहण किए। फिर उस रात के अंत में, जटिला केनिया ने अपने आश्रम में उत्तम पौष्टिक और नरम भोजन की व्यवस्था करके भगवान (बुद्ध) को भोजन का समय बताया: 'हे पूज्य गौतम (बुद्ध), भोजन तैयार है।' तब भगवान (बुद्ध) ने सुबह अपने वस्त्र धारण किए, कुंड और वस्त्र धारण किए, जटिला केनिया के आश्रम गए और वहाँ पहुँचकर भिक्षुओं के समूह के साथ तैयार आसन पर बैठ गए। तब जटिला केनिया ने बुद्ध की अध्यक्षता में भिक्षुओं के समूह को अपने हाथों से उत्तम पौष्टिक और नरम भोजन परोसा। तब जटिला केनिया, भोजन समाप्त कर चुके और कटोरे से हाथ निकाल चुके भगवान (बुद्ध) के पास जाकर, एक नीची चौकी पर अलग बैठ गए। जब जटिला अलग बैठे थे, तब भगवान (बुद्ध) ने उन्हें इन श्लोकों से प्रसन्न किया: 21. 'यज्ञ में प्रमुख अग्नि है, भजनों में प्रमुख सविति है, पुरुषों में राजा प्रमुख है, और जल में सागर प्रमुख है (नादिनम)। (573)

22. 'तारों में चंद्रमा प्रमुख है, ज्वलनशील वस्तुओं में सूर्य प्रमुख है, और अच्छे कर्म करने और भेंट चढ़ाने वालों में संघ प्रमुख है।' (574)

तब भगवान (बुद्ध) ने जटिला केनिया को इन श्लोकों से प्रसन्न करके, अपनी चौकी से उठकर चले गए। फिर पूज्य सेला ने अपने अनुयायियों के साथ एकांत, एकांतप्रिय, परिश्रमपूर्ण, उत्साही और ऊर्जावान जीवन व्यतीत करते हुए, इस जीवन में थोड़े ही समय में अपने ज्ञान से धर्म (धार्मिक) जीवन की उस सर्वोच्च पूर्णता को प्राप्त कर लिया, जिसके लिए कुलीन परिवार के लोग अपने घरों को छोड़कर बेघर हो जाते हैं; उन्होंने यह अनुभव किया कि 'पुनर्जन्म का चक्र टूट गया है, धर्ममय जीवन जी लिया गया है, जो करना था वह कर लिया गया है, इस जीवन के लिए और कुछ नहीं करना बाकी है', और पूज्य सेला अपने अनुयायियों के साथ अर्हतों (पूर्णतः प्रबुद्ध) में से एक बन गए। तब पूज्य सेला अपने अनुयायियों के साथ भगवान (भगवान बुद्ध) के पास गए, और वहाँ पहुँचकर उन्होंने अपना ऊपरी वस्त्र एक कंधे पर डाला और अपने जुड़े हुए हाथों को भगवान (भगवान बुद्ध) की ओर झुकाकर उन्हें श्लोकों में संबोधित किया: 23. 'हे प्रत्यक्षदर्शी, क्योंकि हमने इससे पहले आठवें दिन आपकी शरण ली थी, हे भगवान (भगवान बुद्ध), सात रातों में हमने आपके उपदेशों का प्रशिक्षण प्राप्त किया है। (575)

24. 'आप बुद्ध हैं, आप गुरु हैं, आप वह मुनि (संत) हैं जिन्होंने मृत्यु के देवता (मरा) पर विजय प्राप्त की है, आपने आसक्तियों को काटकर (अस्तित्व की धारा को) पार किया है और इन प्राणियों को अपने अधीन कर लिया है। (576)

25. 'आपने अस्तित्व के तत्वों (उपाधि) पर विजय प्राप्त कर ली है, आपने वासनाओं का नाश कर लिया है, आप एक ऐसे सिंह हैं जो किसी भी चीज को नहीं पकड़ते, आपने भय और खतरे को पीछे छोड़ दिया है। (577)

26. 'ये तीन सौ भिक्षु यहाँ हाथ जोड़कर खड़े हैं; हे महानुभाव, अपने चरण फैलाइए, नाग गुरु के चरणों की पूजा करें।' (578)

सेलासुत्त समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन

7. सेलासुत्तं

एवं मे सुतं - एकं समयं भगवान अंगुत्तरापेसु कारिकां कारमाणो महता भिक्खुसंघेन सद्धिः अद्धहतेसासेहि भिक्खुसतेहि येना आपानं नाम अंगुत्तरापणं निगमो तदवसारि। अस्सोसि खो केनियो जतिलो "समानो खलू, भो, गोतमो शाक्यपुत्टो शाक्यकुला पब्बाजितो अंगुत्तरापसु कारिकां कारमानो महता भिक्खुसांगेन सद्धिः अद्धहतेदसेहि भिक्खुसतेहि अपानं अनुप्पट्टो. तं खो पण भवन्तं गोतमं एवं कल्याणो कित्तिसद्दो अब्भुग्गतो - 'इतिपि सो भगव अरहं सम्मासंबुद्धो विज्जाचरणसंपन्नो सुगतो लोकविदु अनुत्तरो पुरीसदम्मसारथी सत्था देवमनुस्सनम् बुद्धो भगवति [भगव (स्या. पि.)]. तो इमं लोकं सदेवकं समारकं सब्रह्मकं सस्सामणब्राह्मणि पजं सदेवमनुस्सं सयं अभिन्न सच्चिकत्व पवेदेति। तो धम्मं देसति आदिकल्याणं मज्झेकल्याणं परियोसनकल्याणं सत्थं सब्यञ्जनं, केवलपरिपुन्नं परिशुद्धं ब्रह्मकार्यं पकासेति। साधु खो पण तथरूपाणं अर्हतं दस्सानं होति'ति।

अथ खो केनियो जतिलो येन भगव तेनुपसांकमि; उपसंकमित्वा भगवत् सद्धिं सम्मोदि । सम्मोदानियं कथं सारण्यं वितिसरेत्व एकमंतं निसीदि। एकमंतं निसिन्नं खो केनीयं जटिल भगव धम्मिया कथया संदस्सेसि समादपेसि समुत्तेजेसि संपहंसेसि। अथ खो केनियो जतिलो भगवता धम्मिया कथया संदस्सीतो समादापिटो समुत्तेजितो संपहंसितो भगवन्तं एतदावोचा - "अधिवसेतु मे भावं गोतमो स्वातनय भट्टं

सद्धिंमं" भिक्खुसंघेनाति। एवं वुट्टे, भगव केनियां जतिलं एतदावोका - "महा खो, केनिया, भिक्खुसांघो अद्धतेदासानि भिक्खुसतानि; त्वञ्च ब्राह्मणेषु अभिप्पसन्नो'ति।

दुतियामपि खो केनियो जतिलो भगवन्तं एतदावोचा - "किंचपि, भो गोतम, महा भिक्खुसांघो अद्धतेदसानि भिक्खुसतानि, अहंका ब्राह्मणेषु अभिप्पसन्नो; अधिवसेतु मे भावं गोतमो स्वातनय भट्टं सद्धिं भिक्खुसंगने'ति। दुतियामपि खो भगव केनीयं जतिलं एतदावोचा - "महा खो, केनिया, भिक्खुसंगघो अद्धतेसानि भिक्खुसतानि; त्वञ्च ब्राह्मणेषु अभिप्पसन्नो'ति।
ततियामपि खो केनियो जतिलो भगवन्तं एतदावोचा - " किञ्चपि, भो गोतम, महा भिक्खुसांघो अद्धतेदसानि भिक्खुसतानि, अहंका ब्राह्मणेषु अभिप्पसन्नो, अधिवासतु [अधिवसेत्वेव (सि.)] मे भावं गोतमो स्वतानाय भट्टं सद्धिं भिक्खुसंघेना'ति। अधिवासीसि भगव तुन्हिभावेन। अथ खो केनियो जतिलो भगवतो अधिवासन विदित्वा उत्थान येन सको अस्समो तेनुपशंकामि; उपसंकमित्व मित्तमच्चे नातिसालोहिते अमांतेसि - "सुनन्तु मे भवन्तो मित्तमच्चा नातिसालोहिता, समानो मे गोतमो निमन्तितो स्वतनया भट्टं सद्धिं भिक्खुसंगघेन, येन मे कायवेय्यावतिकं करेयथा'ति। "एवं, भो'ति खो केनियास्सा जतिलास्सा मित्तमक्का न्यातिसालोहिता केनियास्सा जातिलासा पतीसुत्वा अप्पेकैसे उधनानि खानंती, अप्पेकैसे कांथानि फलेंटी, अप्पेकैसे भजनानि धोवंती, अप्पेकैसे उदकामाणिकं पतिथपेंती, अप्पेकैसे आसननि पणनापेंती। केनियो पना जतिलो सामन्येव मंडलमडं पतियदेति।
तेन खो पना समयेन सेलो ब्राह्मणो आपणे पतिवासति, तिन्नं वेदानां परागु सनिघंदुकेतुभानं सक्खराप्पभेदानां इतिहसापञ्चमानं पढ़ाको वेय्याकारणो लोकायतमहापुरीसलक्खनेसु अनावयो, तिनि च मानववकसतानि मन्ते वचेती।
तेना खो पना समयेन केनियो जतिलो सेले ब्राह्मणे अभीप्पसन्नो होति। अथा खो सेलो ब्राह्मणो तीहि मनवकसतेहि परिवुतो जंघाविहारं अनुचंकमामानो अनुविक्रमणो येन केनियास्सा जतिलास्सा अस्सामो तेनुपसांकमि। अड्डासा खो सेलो ब्राह्मणो केनियासा जतिलासा अस्समे [केइसासामी जतिले (सी. पी.)] अप्पेकैसे उधनानि खानंते...पे... अप्पेकैसे आसननि पणनापेंटे, केनियाम पना जतिलां साम्येव मंडलमण्डन पतियदन्तम्। दिसवना केनियाम जतिलं एतादावोका - "किं नू खो भोटो केनियास्सा आवाहो वा भविष्यसति, विवाहो वा भविष्यसति, महायान्नो वा पक्कुपाथितो, राजा वा मागधो सेनियो" बिम्बिसार निमन्तितो स्वतःया सद्धिः बालकायेनति?
"न मे, भो सेला, आवाहो वा भविष्यसति विवाहो वा, नापि राजा मागधो सेनियो बिम्बिसार निमन्तितो स्वतःनाय सधिं बलकायेन; अपि च खो मे महायान्नो पक्कुपत्थितो। अत्थि समणो गोतमो शाक्यपुतो शाक्यकुल पब्बजितो अंगुत्तरापसु कारिकां कारमाणो महता भिक्खुसंघेन सद्धिः अद्धहतेदसेहि भिक्खुसतेहि आपानं अनुप्पत्तो। तं खो पण भवन्तां गोतमं...पे... बुद्धो भगवती। तो मे निमन्तितो स्वतःनाय भट्टं सद्धिं भिक्खुसंगने'ति। "बुद्धोती, भो केनिया, वदेसी"? "बुद्धोति, भो सेला, वदामि"। "बुद्धोती, भो केनिया, वदेसी"? "बुद्धोति, भो सेला, वदामि"ति।
अथ खो सेलास्सा ब्राह्मणस्सा एतदाहोसि - "घोसोपि खो एसो दुल्लभो लोकस्मिं यदिदं बुद्धिति।" अगातानि खो पनमहकं मंतेसु द्वत्तींसमहापुरिसलक्खानानि, येहि समन्नागतस्स महापुरिसस्सा दवेव गतियो भवन्ति अनन्या। ससे अग्रं अज्झावसति राजा होति चक्कवत्ती धम्मिको धम्मराज चतुरंतो विजितावि जनपदत्थावरियाप्पत्तो सत्तरतनसमन्नागतो। तस्सीमनि सत्त रतनानि भवन्ति, सेयथिदं - चक्करतनं, हट्टिरतनं, अस्सरतनं, मनिरतनं, इत्थिरतनं, गहपतिरत्नं, परिणयकरतनमेव सत्तमं। परोसहस्सां खो पनास्सा पुत्ता भवन्ति सुरा वीरांगरूपा परसेनप्पमद्दना। तो इमं पथविं सागरपरियंतं अदंडेन असत्थेन धम्मेन अभिविजय अज्झावसति। ससे खो पण अग्रस्मा अंगरियं पब्बजति, अरहं होति सम्मासंबुद्धो लोके विवत्तच्चदो [विवत्तच्चद्दो (सि. पि.)]। कहं पना, भो केनिया, एतराहि सो भावं गोतमो विहारति अरहं सम्मासंबुद्धोऽति?
एवं वुट्टे, केनियो जतिलो दक्खिनं बहुं पग्गहेत्वा सेलं ब्राह्मणं एतदावोका - "येनेसा, भो सेला, निलावनराजि"ति। अथ खो सेलो ब्राह्मणो तेहि मानववकसतेहि सद्धिं येन भगव तेनुपशंकामि। अथा खो सेलो ब्राह्मणो ते मनावके अमांतेसि - "अप्पसद्दा भोंतो आगच्छंतु, पदे पदं निक्खिपंता।" दुरासदा हि ते भगवन्तो [भवन्तो (स्या. का.)] सिहाव एककारा। यदा चाहं, भो, समानेन गोतमेना सद्धिं मन्तेयुं, मा मे भोन्तो अंतरान्तरा कथां ओपतेथा; कथापरियोसनं मे भवन्तो अगामेंटु'ति।
अथ खो सेलो ब्राह्मणो येन भगव तेनुपसंकामि; उपसंकमित्वा भगवत् सद्धिं सम्मोदि । सम्मोदानियं कथं सारण्यं वितिसरेत्व एकमंतं निसीदि। एकमंतं निसिन्नो खो सेलो ब्राह्मणो भगवतो काये द्वत्तींसमहापुरिसलक्खानानि समन्नेसि [सम्मन्नेसि (सि. स्या.)]। अद्दसा खो सेलो ब्राह्मणो भगवतो काये द्वत्तिनसमाहापुरिसलक्खनानि येभुय्येन थपेत्वा द्वे। द्विसु महापुरिसलक्खनेसु कांखति विकिसिच्छति नाधिमुच्चति न संपसीदति - कोसोहिते च वत्थगुये, पहुताजीवहतया चति।
अथ खो भगवतो एतदहोसि - "पस्सति खो मे अयं सेलो ब्राह्मणो द्वत्तिन्समहापुरिसलक्खानानि येभुय्येन थपेत्वा द्वे। द्विसु महापुरिसलक्खनेसु कांखति विकिसिच्छति नाधिमुच्चति न संपसीदति - कोसोहिते च वत्थगुये, पहुताजीवहतया चा"ति। अथ खो भगव तथारूपं इद्धभिसंखारं अभिसंखसि [अभिसंखरेसि (स्या. का.)], यथा अडससा सेलो ब्राह्मणो भगवतो कोसोहितं वत्थगुयहं। अथ खो भगव जीवहं निन्नमेत्वा उभोपि कणसोतानि अनुमसि पतिमसि, उभोपि नासिकासोटानि अनुमसि पतिमासि, केवलमपि नालतामंडलं जीव्या चदेसी।
अथ खो सेलास्सा ब्राह्मणस्सा एतदाहोसि - "समन्नागतो खो समानो गोतमो द्वत्तिन्समहापुरीसलक्खनेहि परिपुणेहि, नो अपुरिपुणेहि। नो च खो नं जानामि बुद्धो वा नो वा। सुतं खो पण मेटं ब्राह्मणां वुद्धानं महल्लकाणं अचरियपचारियानं भस्मानां - 'ये ते भवन्ति अरहंतो

सम्मासम्बुद्ध, ते साके वन्ने भन्नमने अत्तनं पाटुकरोन्ति। यन्नुनाहं समानं गोतमं सम्मुखा सरूपाहि गाथाहि अभित्तवेय'न्ति। अथ खो सेलो ब्राह्मणो भगवन्तं सम्मुख सरूपाहि गाथाहि अभित्थवि -

553.

"परिपुणकायो सुरुचि, सुजातो चारुदस्सानो;

सुवाणावणोसि भगवान, सुसुक्कदाथोसि वीर्यवा।

554.

"नरस्सा हि सुजातस्सा, ये भवन्ति वियञ्जना;

सब्बे ते तव कायास्मिं, महापुरिसलक्खना।

555.

"पसन्ननेत्तो सुमुखो, ब्रहा उजु पतापवा;

मज्जे समानसंगहस्सा, एडिककोवा विरोकासी।

556.

"कल्याणादस्सणो भिक्खु, कांचानसन्निभट्टको;

किं ते समनभावेन, एवं उत्तमवनिनो।

557.

"राजा अरहसि भवितुं, चक्कवत्ती रथेसभो;

चतुरंतो विजितावी, जंबुसंदस्सा [जंबुमंदस्स (का.)] इस्सारो।

558.

"खट्टिया भोगीराजानो [भोजराजानो (सि. स्या.)], अनुयंता [अनुयुत्ता (सि.)] भवन्तु ते;

राजभिराजा मनुजिंदो, रज्जं करेहि गौतम।"

559.

"राजहामास्मि सेलति, (भगव) धम्मराज अनुत्तरो;

धम्मेन चक्कं वत्तेमि, चक्कं अप्पटिवत्तियं"।

560.

"संबुद्धो पतिजानासि, (इति सेलो ब्राह्मणो) धम्मराज अनुत्तरो;

'धम्मेण चक्कं वत्तेमि', इति भाससि गोतम।

561.

"को नु सेनापति भोतो, सावको सत्थुरनवयो;

को ते तमनुवत्तेति, धम्मचक्कं पवत्तितं।"

562.

"माया पवत्तितं चक्कं, (सेलति भगव) धम्मचक्कं अनुत्तरम्;

सारिपुत्तो अनुवत्तेति, अनुजातो तथागतम्।

563.

"अभिन्यायं अभिनीतं, भवेतब्बाञ्च भविताम्;

पहतब्बं पहीनं मे, तस्मा बुद्धोस्मि ब्राह्मण।

564.

"विनयसु मयि कंखं, अधिमुक्कसु ब्राह्मण;

दुल्लाभं दस्सानं होति, संबुद्धानं अभिनहासो।

565.

"येसं वे [येसं वो (पि.), यस्सा वे (स्या.)] दुलाभो लोके, पतुभावो अभिनहसो;

सोहं ब्राह्मण सम्बुद्धो, सल्लकट्टो अनुत्तरो।

566.

"ब्रह्मभूतो अतितुलो, मारसेनप्पमद्दनो;

सब्बामित्ते वसीकत्वा, मोदामि अकुतोभ्यो"।

567.

"इमं भवन्तो निसामेथा, यथा भासति चक्खुमा;

सल्लकत्तो महावीरो, सिहोवा नदति वने।

568.

"ब्रह्मभूतं अतितुलं, मरसेनप्पमद्दनं;
को दिस्वा नप्पसीडेय, अपि कान्हाभिजातिको।
569.
"यो मां इच्छति अन्वेतु, यो वा निच्चति गच्छतु;
इधाहं पब्बजिस्सामि, वरपन्नस्सा संतिके"।
570.
"इवान्से [एतान्से (सि. पि.)] रुक्काति भोटो, सम्मासंबुद्धसासने [सम्मासंबुद्धसासनं (सि. स्या. कां. पि.)];
मयामपि पब्बाजीस्सामा, वरपन्नस्सा संतिके"।
571.
"ब्राह्मण तिसाता इमे, याकन्ति पंजलिकता;
ब्रह्मचर्यं करिश्मा, भगव तव संतिके"।
572.
"स्वक्खातम ब्रह्मचर्यं, (सेलति भगव) संदिथिकमकालिकम्;
यत्थ अमोघा पब्बज्जा, अप्पमत्तस्सा सिक्खतो'ति।
अलत्थ खो सेलो ब्राह्मणो सपरिसो भगवतो संतिके पब्बजं, अलत्थ उपसम्पदाम्। अथा खो केनियो जतिलो तस्स रत्तिया अचयेना साके असमे पणितं खादनीय भोजन्यं पतियादापेत्वा भगवतो कलां अरोकापेसि - " कालो, भो गोतम, नियतं भट्टं'न्ति। अथ खो भगव पुब्बनहासमयं निवसेत्व पत्तशिवरामदाय येन केनियस्सा जतिलास्सा अस्समो तेनुपशंकामि; उपसंकमित्वा पन्नते आसने निसीदि सद्धिं भिक्खुसंघेन।
अथा खो केनियो जतिलो बुद्धप्पामुखं भिक्खुसंघं पणितेन खादनीयेन भोजन्येन सहत्था संतप्पेसि संपवारेसि। अथ खो केनियो जतिलो भगवन्तं भुत्ताविं ओनीतपट्टपनिं अनंतारं निकं आसनं गहेत्वा एकमंतं निसिदि। एकमंतं निसिन्नं खो केनीयं जटिलं भगव इमाही गाथाहि अनुमोदी -
573.
"अग्गिहुत्तमुखा यन्न, सविति छंदसो मुखं;
राज मुखं मनुस्नानं, नदीं सागरो मुखं।
574.
"नक्खत्तनं मुखं कैंडो, आदिको तपतं मुखं;
पुन्नं आकंखमनानं, संगो वे यजतां मुखं'न्ति।
अथ खो भगव केनीयं जटिलं इमाही गाथाहि अनुमोदित्वा उत्थान पक्कमि। अथा खो अयस्मा सेलो सपरिसो एको वुपकाठो अप्पामत्तो अतापी पहितत्तो विहारन्तो नसीरासे...पे... अन्नतरो खो पनापस्मा सेलो सपरिसो अरहतं अहोसि।
अथ खो अयस्मा सेलो सपरिसो येन भगव तेनुपासकमि, उपसंकमित्वा एकंसं सिवाराम कत्वा येन भगवान तेनंजलिं पनामेत्वा भगवन्तं गाथाय अज्झाभासि -
575.
"यं तं शरणमगम्हा [मगम्मा (सि. स्या. का.)], इतो अठहामि चक्खुमा;
सत्तारत्तेन भगवान, दंतमह तव सासने।
576.
"तुवं बुद्धो तुवं सत्था, तुवं मराभिभू मुनि;
तुवं अनुसये चेत्वा, तिणो तारेसिमं पजं।
577.
"उपधि ते समतिक्कंता, आसव ते पदलिता;
सिहोसि [सिहोवा (मा. नि. 2.401)] अनुपादनो, पहिनाभयभेरवो।
578.
"भिक्खवो तिसता इमे, तिथंथन्ति पंजलिकता;
पदे वीर पसारेहि, नागा वंदन्तु सत्थुनोऽति।
सेलासुत्तं सत्तमं निहितं।

एवं मे सुतं - एकं समयं भगवान अङ्गुत्तरापेसु चारिकं चरमाणो महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं अन्नतेळसेहि भिक्खुसतेहि येन अपनं नाम अङ्गुत्तरापानां निगमो तदवसारि। अस्सोसि खो केनियो कॉम्प्लेक्सो " समानो खलु, भो, गोतमो साक्यपुत्तो साक्यकुला पब्बजितो अङ्गुत्तरापेसु चारिकं चरमानो महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं अन्नतेळसेहि भिक्खुसतेहि अपणं अनुप्पत्तो। तं खो पन भवन्तं गोतमं कल्याण एवंवो कित्तिसद्दो अब्भुग्गतो - 'इतिपि सो भगव अरहं सम्मासम्बुद्धो विजजाचरणसम्प संज्ञाओ सुगतो लोकविदु अनुत्तरो पुरिसदमसारथि सत्था देवमनुस्सानं बुद्धो भगवति [भगवा (स्या० पी०)]। सो इमं लोकं सदेवकं समारकं सब्रह्मकं सस्सामन्ब्राह्मणिं पजं सदेवमनुस्सं सयं अभिज्ञान सच्चिकत्व पवेदेति। सो धम्मं देसति आदि कल्याणं मज्झे कल्याणं परियोसं कल्याणं साथं सब्यञ्जनं, केवलपरिपुन्नं परिशुद्धं ब्रह्मचर्यं पकसेति। साधु खो पन तथारूपानं अरहतं दस्सनं अस्तित्वति।

अथ खो केनियो कॉम्प्लेक्सो येन भगवा तेनुपसङकमि; उपसङ्कमित्वा भगवत् सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनेयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमंतं निसिदि। एकमंतं निसि नामं खो केनियं जटिलं भगवा धम्मिया कथाय सन्दपेसि समादपेसि समुत्तेजेसि संफानसेसि। अथ खो केनियो कॉम्प्लेक्सो भगवता धम्मिया न्याय सन्दस्सितो समादपिटो समुत्तेजितो सम्हंसिटो भगवन्तं एतदवोच - "अधिवासेतु मे भवन गोतमो स्वातनय भट्टं सद्धिं भिक्खुसङघेना"ति। एवं वुत्ते, भगवा केनियं कॉम्प्लेक्सं एतदवोच - "महा खो, केनिय, भिक्खुसङघो अन्ननतेळसानि भिक्खुस्तानी; त्वञ्च ब्राह्मणेसु अभिप्पस नागानो"ति।

दुतीयम्पि खो केनियो कॉम्प्लेक्सो भगवन्तं एतदवोच - " किञ्चदचापि, भो गोतम, महा भिक्खुसङ्घो अन्नतेळसानि भिक्खुस्ताननि, अहन्नदच ब्राह्मणेसु अभिप्पस सत्यो; अधिवासेतु मे भवन गोतमो स्वातनय भट्टं सद्धिं भिक्खुसङघेना"ति। दुतियम्पि खो भगव केणियं कॉम्प्लेक्सं एतदवोच - "महा खो, केणिय, भिक्खुसङ्घो अन्नतेळसानि भिक्खुस्तानी; त्वञ्च ब्राह्मणेसु अभिप्पस नागानो"ति।

ततियामपि खो केनियो कॉम्प्लेक्सो भगवंतं एतदवोच - " किञ्चदचापि, भो गोतम, महा भिक्खुसङ्घो अन्नतेळसानि भिक्खुस्ताननि, अहंदच ब्राह्मणेषु अभिप्पस साइनो, अधिवासेतु [अधिवसेत्वेव (सी०)] मे भावं गोतमो स्वातनय भट्टं सद्धिं भिक्खुसङघेना"ति। अधिवाससि भगवान तुन्हिभावेन। अथ खो केनियो कॉम्प्लेक्सो भगवतो अधिवेशनं विदित्वा उत्थयासना येन सको अस्समो तेनुपसङकमि; उपसङ्कमित्वा मित्तमच्छे नतिसालोहिते अम्नतेसि - " सुनन्तु मे भवन्तो मित्तमचदचा नतिसालोहिता, समणो मे गोतमो निमन्तितो स्वातनय भट्टं सद्धिं भिक्खुसङ्घेन, येन मे कायवैवैटिकं करैयथा" । "एवं, भो"ति खो केनियस कॉम्प्लेक्सस मित्तमचाचे नतिसालोहिता केनियस कॉम्प्लेक्सस पेटिससुट्वा अप्पेकचाचे उधन्नानि खन्नति, अप्पेकचाचे कत्थानि फलेन्ति, अप्पेकचाचे भजनानि धोवन्ति, अप्पेकचाचे उदकमणिकं पतिथपेंती, अप्पेकचाचे असनानि पञ्चापेन्ति। केनियो पन कॉम्प्लेक्सो सामन्येव मंडलमाळं पटियादेति।

तेन खो पन समयेन सेलो ब्राह्मणो आपने पतिकसति, तिन्नं वेदानं परागु सनिघंडुकेतुभं सखारप्पभेदानं इतिहासपञ्चमानं पदको वैय्याकरणो लोकायतमहापुरिसलक्खनेसु अनवयो, तेनि च मनवकस्तानी मन्ते वाचेति।

तेन खो पन समयेन केनियो कॉम्प्लेक्सो सेले ब्राह्मणे अभिप्पस सान्याओ होति। अथ खो सेलो ब्राह्मणो तेहि मानवकस्तेहि परिवुतो जङ्घविहारं अनुचङकममानो अनुविचरमणो येन केनियस कॉम्प्लेक्सस्स अस्समो तेनुपसङकमी। अद्दसा खो सेलो ब्राह्मणो केनियस कॉम्प्लेक्स अस्समे [केनिसमये कॉम्प्लेक्स (सी० पी०)] अप्पेकचदचे उधनानि खानन्ते...पे०... अप्पेकचचे आसननि पंडनपेंटे, केनियं पन कॉम्प्लेक्सं सामंयेव मंडलमाळं पटियादेंतां। दिस्वां केन्यां कॉम्प्लेक्सं एतदवोच - "किं नू खो भोतो केनियस आवाहो वा भविष्यस्ति, विवाहो वा भविष्यस्ति, महायज्ञनो वा पच्चुपत्थितो, राजा वा माग्धो सेनियो सेनियो बिम्बिसारो निमन्तितो स्वातनय सद्धिं बलकायेना"ति? "न मे, भो सेल, आवाहो वा भविष्यस्ति विवाहो वा, नापि राजा माधधो सेनियो बिम्बिसारों निमन्तितो स्वातनाय सद्धिं बलकायेन; अपि च खो मे महायञ्चो पच्चुपत्थितो। अथि समानो गोतमो साक्यपुत्तो साक्यकुला पब्बजितो अङ्गुत्तरापेसु चारिकं चरमाणो महता भिक्खुसङ्घेन सद्धिं अन्नतेळसेहि भिक्खुसतेहि अपणं अनुप्पत्तो। तं खो पन भवन्तं गोतमं...पे०... बुद्धो भगवती। सो मे निमन्तितो स्वातनाय भट्टं सद्धिं भिक्खुसङघेना"ति। "बुद्धोति, भो कैनिया, वदेसी"? "बुद्धोति, भो सेल, वदामि"। "बुद्धोति, भो कैनिया, वदेसी"? "बुद्धोति, भो सेल, वदामि"ति।

अथ खो सेलस ब्राह्मणस्स एतदहोसि - "घोसोपि खो एसो दुल्लभो लोकस्मिं इदिदं बिधोति। आगतानि खो पनम्हाकं मंतेसु दत्तिन्समहापुरिसलक्खानानि, येहि सम ज्ञानगतस्स महापुरिस्स्स द्वेव गतियो भवन्ति आनंद। सचे राजं अज्जवसति राजा होति चकवति धम्मिको धम्म चातुरंतो विजिताविं जिलाथावरियप्पत्तो सत्तरतनसम संज्ञागतो। तस्सिमानि सत्त रत्नानि भवन्ति, सेयथिदं - च त्रैकर्तनं, हत्थिरतनं, अस्सरत्नं, मणिरत्नं, इत्थिरतनं, गहपतिरत्नं, परिणयकरतनमेव सत्तमं। कंसहस्सं खो पंसस पुत्ता भवन्ति सुरा वीरङ्गरूपा परसेनप्पमद्दना। सो इमं पथविं सागरपरियन्तं अदन्देन असत्थेन धम्मेन अभिविजय अज्झावसति। सचे खो पन अग्रस्मा अंगरियं पब्बजति, अरहं होती सम्मासम्बुद्धो लोके विवत्तच्छदो [विवत्तच्छद्दो (सी० पी०)]। कहं पन, भो केनिय, अतरि सो भवन गोतमो विहारति अरहं सम्मासम्बुद्धो"ति?

एवं वुत्ते, केनियो कॉम्प्लेक्सो दक्खिनं बाहुं पग्गहेत्वा सेलं ब्राह्मणं एतदवोच - "येनेसा, भो सेल, नीलराजवनि"ति। अथ खो सेलो ब्राह्मणो तेहि मानवकस्तेहि सद्धिं येन भगव तेनुपसङ्कमि। अथ खो सेलो ब्राह्मणो ते मानवके अम्नतेसि — "अप्पसद्दा भोन्तो आगच्छन्तु, पदे पदं निक्खिपन्ता। दुरसदा हि ते भगवन्तो [भवन्तो (स्या० क०)] सीहाव एकचरा। यदा चाहं, भो, समानेन गोतमेन सद्धिं मंतेयुं, मा मे भोंतो अंतरकांतरा कथं ओपेटेथ; कथापरियोसानं मे भवन्तो आगमेन्तु"ति।

अथ खो सेलो ब्राह्मणो येन भगव तेनुपसङकमि; उपसङ्कमित्वा भगवत् सद्धिं सम्मोदि। सम्मोदनेयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमंतं निसिदि। एकमन्तं निसि सत्यो खो सेलो ब्राह्मणो भगवतो काये दत्तिंसमहापुरिसलक्खानानि सम सत्येसि [सम्म् सत्येसि (सी० स्या०)]।

अद्दसा खो सेलो ब्राह्मणो भगवतो काये द्वत्तिंसमहापुरिसलक्खानानि येभुयेन योगेत्वा द्वे। द्वीसु महापुरिसलक्खनेसु कङ्खति विचिचिच्छति नाधिमुच्छति न सम्पासिदति - कोसोहिते च वत्थगुय्हे, पहुतजिव्हताय चाति।
अथ खो भगवतो एतदहोसि - "पस्स्ति खो मे अयं सेलो ब्राह्मणो दत्तिंसमहापुरिसलक्खानानि येभुय्येन योगेत्वा द्वे। द्वीसु महापुरिसलक्खनेसु कङ्खति विचिचिच्छति नाधिमुच्छति न सम्पासिदति - कोसोहिते च वत्थगुय्हे, पहुतजिव्हताय चा"ति। अथ खो भगवत् तथारूपं इधाभिसङ्खारं अभिसङ्खासि [अभिसङ्खारेसि (स्या० क०)], यथा अददस सेलो ब्राह्मणो भगवतो कोसोहितं वत्थगुयहं। अथ खो भगव जिव्हं नि सत्यमेत्वा उभोपि कणसोतानि अनुमसि पतिमसि, उभोपि नासिकसोतानि अनुमसि पतिमसि, केवलमपि नलाटमंडलं जिव्हाय छदेसि।
अथ खो सेलस ब्राह्मणस्स एतदहोसि - " सम नयनगातो खो समणो गोतमो दत्तिंसमहापुरिसलक्खनेहि परिपुन्नेहि, नो अपुरिपुन्नेहेहि। नो च खो नं जाना बुद्धो वा नो वा। सुतं खो पन मेतं ब्राह्मणानं वुजानं महादलकानं आचार्यपचारिअनं भास्मानानं - 'ये ते भवन्ति अरहंतो सम्मासंबुद्धा, ते सके वन्नने भंडनामे अत्तानं पातुक्रोण्ति'। यन्नुनाहं समानं गोतमं सम्मुखा सरुप्पाहि गाथाहि अभिथवेय"न्ति। अथ खो सेलो ब्राह्मणो भगवन्तं सम्मुख सारुप्पाहि गाथाहि अभिथवि -
5
"परिपुन्नकायो सुरुचि, सुजातो चारुदस्सनो।
सुवन्न्वन्नोसि भगवा, सुसुक्रोकदाथोसि वीरियवा॥
554.
"नरस् हि सुजातस्स, ये भवन्ति विज्ञजना।"
सब्बे ते तव कायस्मिं, महापुरीसलखना॥
54.
"पस साइननेत्तो सुमुखो, ब्रहा उजु पातापवा।"
मज़्झे समानसङ्घसस, आदिचचोव विरोचसि॥
5.
"कल्याणदास्सनो भिक्खु, कंचनस्सनोभिभत्तचो।
किं ते समन्भावेन, एवं उत्तमवन्निनो॥
5
"राजा अरहसि भवितुं, च्रकवत्ती रथेशभो।"
चतुरंतो विजितावी, जंबूसंडस्स [जंबुमंडस्स (क०)] इसरो॥
55.
"खट्टिया भोगिराजानो [भोजराजानो (सी० स्या०)], अनुयंता [अनुयुत्ता (सी०)] भवन्तु ते।
राजाभिराजा मनुजिंदो, रजं करेहि गोतम॥
559.
"राजाहस्मि सेलति, (भगवा) धम्मराजा अनुत्तरो।"
धम्मेन चकं वत्तेमि, चकं अप्पतिवत्तियं"॥
5- ...
"संबुद्धो पतिजानासि, (इति सेलो ब्राह्मणो) धम्मराजा अनुत्तरो।
'धम्मेन चकं वत्तेमि', इति भासि गोतम॥
5 सप्ताह.
"को नो सेनापति भोतो, सावको सथुर्न्वयो।
को ते तमनुवत्तेति, धम्मचकं पवत्तितं"॥
5
"माया पवत्तितं चक्रकं, (सेलति भगवान) धम्मच चक्रकं अनुत्तरं।
सारिपुत्तो अनुवत्तेति, अंजातो तथागतं॥
5वीं शताब्दी.
" अभिज्ञेयं अभिज्ञातं, भवेत्ब्ब्च भवैतं।
पहतब्बं पहिणं मे, तस्मा बुद्धोस्मि ब्राह्मण॥
5
"विन्यासु मयि कङ्खं, अधिमुच्छस्सु ब्राह्मण।
दुल्लभं दशसनं होति, संबुद्धानं अभिनहसो॥
5.

"येसं वे [येसं वो (पी०), यस्स वे (स्या०)] दुल्लभो लोके, पातुभावो अभिनहसो।
सोहं ब्राह्मण सम्बुद्धो, सल्लकत्तो अनुत्तरो॥
5.
"ब्रह्मभूतो अतितुलो, मार्सेनप्पमद्दनो।"
सब्बामित्ते वसीकत्वा, मोदामि अकुतोभ्यो"॥
5
"इमं भवन्तो निसामेथे, यथा भासति चखुमा।
सल्लल्कत्तो महावीरो, सीहोव नदति वने॥
5.
"ब्रह्मभूतं अतितुलं, मारसेनप्पमद्दनं।
को दिस्वा नप्पसीदेय, अपि कन्हाभिजातिको॥
56.
"यो मं इच्छति अन्वेतु, यो वा निच्छति गच्छतु।
इधाहं पब्बजिस्सामि, वरपञ्चस्स शांतिके॥
500
"एवञ्चे [एतञ्चे (सी० पी०)] रुच्चाचति भोतो, सम्मासम्बुद्धसासने [सम्मासम्बुद्धसासनं (सी० स्या० कं० पी०)]।
मयम्पि पब्जिस्साम, वरपञ्चस्स सन्तिके॥
5.
"ब्राह्मण तिस्ता इमे, याचन्ति पञ्जलिकता।"
ब्रह्मचर्यं चारिसाम, भगव तव शांतिके॥
5.
"स्वक्खातं ब्रह्मचर्यं, (सेलति भगवान) संदित्थिकमकालिकां।
यत्थ अमोघ पब्बज्जा, अप्पमत्तस्स सिक्खतो"ति॥
अलत्थ खो सेलो ब्राह्मणो सपरिसो भगवतो शांतिके पब्बजं, अलत्थ उपसम्पदं। अथ खो केनियो कॉम्प्लेक्सो तस्सा रत्तिया आचदच्येन साके अस्स्मे पणितं भोजनीयं भोजन्यं पटियादापेत्वा भगवतो कालं अरोचापेसि - "कालो, भो गोतम, नित्थितं भत्त"न्ति। अथ खो भगवा पुब्बनहस्यामं निवासेत्वा पत्तचीवर्मादाय येन केनियस कॉम्प्लेक्सस अस्समो तेनुपसङकमी; उपसङ्कमित्वा पञ्जन्ते असने निसिदि सद्धिं भिक्खुसङ्घेन।
अथ खो केनियो कॉम्प्लेक्सो बुद्धप्पमुखं भिक्खुसङ्घं पनीतेन खादनीयेन भोजनियेन सहत्था सन्तप्पेसि संपवारेसि। अथ खो केनियो कॉम्प्लेक्सो भगवन्तं भुत्ताविं ओनीतपत्तपाणिं अञ्जन्तरं नीचं आसनं गहेत्वा एकमन्तं निसिदि। एकमन्तं निसि नासिकं खो केनियं जटिलं भगवा इमहि गाथाहि अनुमोदि -
5.
"अग्गिहुत्तमुखा यज्ञा, सवित्ती छंदसो मुखं।
राजा मुखं मनुस्सानं, नदीनं सागरो मुखं॥
5.
"नक्खत्तानं मुखं चंदो, आदिचदमचो तपतं मुखं।
पुञ्जनं अक्ङखमानानं, सङ्घो वे यजत् मुख"न्ति॥
अथ खो भगव केनियं जटिलं इमाहि गाथाहि मधुर्वा उत्थयासना पकामि। अथ खो इस्मा सेलो सपरिसो एको वुपकट्ठो अप्पमत्तो अबपि पहितत्तो विहारन्तो नचिरस्से ...पे०... अञ्जन्तरो खो पनापस्मा सेलो सपरिसो अरहतं अहोसि।
अथ खो इस्मा सेलो सपरिसो येन भगवा तेनुपसङ्कमि, उपसङ्कमित्वा एकंसं चीवरं कत्वा येन भगवान तेनंजलिं पनामेत्वा भगवन्तं गाथाय अज्झासि -
550.
"यं तं सरणमगम्ह [मगम्म (सी० स्या० क०)], इतो अट्ठमि चक्खुम।
सत्तरत्तेन भगवान, दन्तमह तव सस्ने॥
56.
"तुवं बुद्धो तुवं सथा, तुवं मराभिभू मुनि।
तुवं अनुसये चेत्वा, तिन्नो तारेसिमं पजं॥
577.
" उपधि ते समति त्रैकान्ता, असवा ते पदलिता।

सीहोसी [सीहोव (म० नि० 2.401)] अनुपादनो, पहिनेभयेरवो॥
500
"भिक्खवो तिसता इमे, तिट्ठन्ति पञ्जलिकता।"
पदे वीर पसरेहि, नागा वन्दन्तु सथुनो"ति॥
सेलसुत्तं सत्तमं निश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> सुत्तनिपात >> 3.8 सल्लसुत्त,
वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<-->>>> अगला

जीवन छोटा है, सभी मनुष्य मृत्यु के अधीन हैं, परन्तु संसार के नियमों को जानने वाले बुद्धिमान शोक नहीं करते, और जो शोक से मुक्त हो जाते हैं उन्हें आशीर्वाद प्राप्त होता है। --दशरथ जातक का पाठ।

अंतर्वस्तु

3.8 सल्लसुट्टा
अनुवाद
1. इस संसार में मनुष्यों का जीवन बिना किसी कारण के और अज्ञात है, कष्टों से भरा, क्षणभंगुर और पीड़ा से युक्त। (579)

2. क्योंकि जन्म लेने वालों के लिए मृत्यु से बचने का कोई साधन नहीं है; वृद्धावस्था के बाद मृत्यु होती है, जीवित प्राणियों का स्वभाव ऐसा ही होता है। (580)

3. जैसे पके फल जल्दी गिरने के खतरे में होते हैं, वैसे ही जन्म लेने वाले मनुष्य हमेशा मृत्यु के खतरे में रहते हैं। (581)

4. जैसे कुम्हार द्वारा बनाए गए सभी मिट्टी के बर्तन अंततः टूट जाते हैं, वैसे ही मनुष्यों का जीवन होता है। (582)

5. युवा और वयस्क, मूर्ख और बुद्धिमान, सभी मृत्यु के वश में आ जाते हैं, सभी मृत्यु के अधीन हैं। (583)

6. जो मृत्यु से पराजित होकर परलोक जाते हैं, उनमें से पिता अपने पुत्र को नहीं बचा पाता, न ही रिश्तेदार अपने रिश्तेदारों को। (584)

7. ध्यान दें! जब रिश्तेदार देख रहे होते हैं और बहुत विलाप कर रहे होते हैं, तब एक-एक करके मनुष्य को ले जाया जाता है, जैसे किसी बैल को वध के लिए ले जाया जा रहा हो। (585)

8. अतः संसार मृत्यु और क्षय से ग्रस्त है, इसलिए बुद्धिमान शोक नहीं करते, क्योंकि वे संसार के नियम जानते हैं। (586)

9. जिसके मार्ग को तुम नहीं जानते, न उसके आने का समय और न ही उसके जाने का समय, क्योंकि तुम दोनों छोर नहीं देख पाते, इसलिए तुम्हारा शोक व्यर्थ है। (587)

10. यदि शोक करने वाले को कुछ लाभ होता है, (यद्यपि वह केवल) स्वयं को हानि पहुँचाने वाला मूर्ख है, तो बुद्धिमान भी ऐसा ही करे। (588)

11. न तो रोने से और न ही शोक करने से किसी को मन की शांति प्राप्त होगी; (इसके विपरीत), उसका दर्द और बढ़ेगा और उसका शरीर कष्ट भोगेगा। (589)

12. वह दुबला-पतला और पीला पड़ जाएगा, स्वयं को हानि पहुँचाएगा, (और फिर भी) मरे हुओं का उद्धार नहीं होता, इसलिए विलाप करना व्यर्थ है। (590)

13. जो शोक नहीं छोड़ता, वह केवल पीड़ा में और भी गहरा डूबता जाता है; मृतकों का विलाप करते हुए वह शोक के वश में हो जाता है। (591)

14. दूसरों को मरते हुए देखो, वे लोग जो अपने कर्मों के अनुसार अपने कर्मों का फल पाते हैं, वे प्राणी जो मृत्यु के वश में होकर यहीं कांप रहे हैं। (592)

15. लोग जिस तरह से सोचते हैं कि ऐसा होगा, वैसा ही होता है, इस संसार में निराशा उतनी ही अधिक होती है; देखो, संसार की यही शर्तें हैं। (593)

16. चाहे कोई व्यक्ति सौ वर्ष या उससे भी अधिक जीवित रहे, अंततः वह अपने सगे-संबंधियों से बिछड़ जाता है और इस संसार में जीवन त्याग देता है। (594)

17. इसलिए जो पूर्णतः प्रबुद्ध अरहतों के वचन सुनकर विलाप को वश में करे, वह मरे हुए व्यक्ति को देखकर कहे: 'वह मुझे अब नहीं मिलेगा।' (595)

18. जैसे जलती हुई आग को पानी से बुझाया जा सकता है, वैसे ही बुद्धिमान, समझदार, विद्वान और चतुर व्यक्ति उत्पन्न हुए दुःख को शीघ्रता से दूर भगा देता है, जैसे हवा रुई के गुच्छे को उड़ा ले जाती है। (596)

19. जो व्यक्ति अपनी ही खुशी चाहता है, उसे अपना विलाप, शिकायत और दुःख रूपी तीर निकाल लेना चाहिए। (597)

20. जिसने (पाप के) तीर को निकाल दिया है और किसी भी चीज़ पर निर्भर नहीं है, उसे मन की शांति प्राप्त होगी और वह जागृत हो जाएगा; जिसने सभी दुःखों पर विजय प्राप्त कर ली है, वह दुःख से मुक्त हो जाएगा और निर्वाण प्राप्त करेगा। (598)

सल्लसुत समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
8. सल्लसुत्तं
579.
अनिमित्तमनन्नतः , मच्चानं इधा जीवितम्;
काशीरञ्च परित्तञ्च, तञ्च दुक्खेन संयुताम्।
580.
न हि सो उपक्कमो अत्ति, येन जाता न मियारे;
जरामपि पट्वा मरणं, एण्डधम्म हि पणिनो।
581.
फलानामिव पक्कणं, पतो पतनतो [पापतातो (सि. पि. अट्ठा.)] भयं;
एवं जटां मक्कणं, निक्कं मरणतो भयं।
582.
यथापि कुम्भकारस्स, काटा मत्तिभाजना;
सब्बे भेदनपरियंता [भेदापरियंता (स्या.)], एवं मक्कन जीवितं।
583.
दहरा च महंता च, ये बाला ये च पंडिता;
सब्बे मक्कुवासं यंति, सब्बे मक्कुपरायणा।

584.
तेसंं मक्कुपरेताणं, गच्छतं परलोकतो;
न पिता तायते पुत्तं, नाति वा पना नाताके।
585.
पेक्खतं येव नातिनां, पस्सा लालपतं पुथु;
एकमेकोवा मक्कनं, गोवज्जो विया नियति [नियति (बहुसु)]।
586.
एवमबभाहतो लोको, मक्कुना च जराया च;
तस्मा धीरा न सोकन्ति, विदित्वा लोकपरियम्।
587.
यस्सा मग्गं न जाणसी, अगतस्सा गतस्सा वा;
उभो अन्ते असम्पासं, निरत्थं परिदेवसि।
588.
परिदेवयमनो सी, किञ्चिदत्थं उदाब्बहे;
सम्मूढो हिंसामत्तनं, कयिरा सी नं विकक्खणो।
589.
ना ही रुणेन सोकेना, शांतिं पप्पोति चेतासो;
भय्यासुप्पज्जते दुक्खं, शरीरं कपाहन्नति।
590.
किसो विवाणो भवति, हिंसामत्तनमत्तना;
न तेन पेटा पलेन्ति, निरत्था परिदेवना।
591.
सोकमप्पाजहं जंतु, भय्यो दुक्खं निगच्छति;
अनुत्थुणन्तो कालङ्कतम् [कालकतम् (सि. स्या.)], सोकस्सा वसमन्वागु।
592.
अण्णेपि पस गामिने, यथाकम्मुपगे नारे;
मैककुनो वासमागम्मा, फंदंतेविधा पणिनो।
593.
येन येन हि मन्नन्ति, ततो तं होति अनंता;
एतादिसो विनाभावो, पस्सा लोकस्स परियायम्।
594.
अपि वससातं जीवे, भय्यो वा पण मनावो;
सतिसंघ विना होति, जहाँति इधा जीवितम्।
595.
तस्मा अरहतो सुत्वा, विनेय परिदेवितम्;
पेतं कलंकतं दिस्व, नेसो लब्भा मया इति।
596.
यथा शरणमादित्तं, वारिणा परिनिब्बये [परिनिब्बुतो (सि. का.)];
एवमपि धीरो सपनानो, पण्डितो कुसालो नरो;
खिप्पमुप्पतितं सोकं, वातो तुलनव धंसये।
597.
Paridevṃ pajappañca, domanassañca attano;
अत्तानो सुखामेसानो, अब्बाहे सल्लामत्तनो।
598.
अब्बूहसल्लो असितो, शांतिं पप्पुय्य सीतासो;
सब्बासोकं अतिक्कन्तो, असोको होति निब्बुतोति।
सल्लसुत्तं अठहमं निट्ठितं।

पाली-देवनागरी
8. सलदलसुत्तं
5.
अनिमित्तमञ्ञ्चातं, मच्छदानं इध जीवितं।
कसीरञ्च परित्तनच, तञ्च दुक्खेन संयुतम्॥
5.
न हि सो त्राटक उपकमो अथि, येन जात न मियारे।
जर्मपि पत्वा मरणं, एवंधम्मा हि पाणिनो॥
5
फलानमिव पटुकानं, पतो पतनतो [पपत्तो (सी० पी० अट्ठ०)] भयं।
एवं जतन मचदचनं, निच्चचं मरन्तो भयं॥
5.
यथापि कुंभकारस्स, कता मत्तिकभाजना।
सब्बे भेदनपरियंता [भेदपरियंता (स्या०)], मच एवमचान जीवितं॥
5वीं वर्षगांठ।
धरा च महंता च, ये बाला ये च पण्डिता।
सब्बे मचचुवसं यन्ति, सब्बे मचचुपरायणा॥
5 प्रतिशत.
तेसं मच्छुपरेतनं, गच्छतं परलोकतो।
न पिता तायते पुत्तं, ञाति वा पण नाटके॥
5वीं सदी.
पेक्खतं येव नातिनं, पास्स लालपतं पुथु।
एकमेकोव मच्द्चानं, गोवज़्ज़ो विय नियति [नियति (बहुसु)]॥
5वीं शताब्दी.
एवेम्बभाहतो लोको, मच्छचूना च जराय च।
तस्मा धीरा न सोचन्ति, विदित्वा लोकप्रियं॥
5
यस्स मग्गं न जानासि, आगतस्स गतस्स वा।
उभो अन्ते असम्पासं, निरथं परिदेवसि॥
5.
परिदेवयमानो चे, किञ्चिदत्थं उद्ब्बहे।
सम्मूळधो हिंसमतानां, कयिरा चे नं विचखणो॥
5 प्रतिशत
न हि रुन्नेन सोकेन, सन्तिं पप्पोति चेतसो।
भय्यसुप्पजदजते दुक्खं, शरीरं चुपहञ्जति॥
5
किसो विवन्नो भवति, हिंसमत्तनमत्तना।
न तेन पेटा पलेन्ति, निरथा परिदेवना॥
5
सोकमप्पजहं जन्तु, भय्यो दुक्खं निगच्छति।
अनुत्थुनन्तो कालङ्कतं [कालकतं (सी० स्या०)], सोकस्स वासमन्वगु॥
5
अञ्जेपि पास गामिने, यथाकममुपगे नरे।
मच्छचुनो वस्मागम्म, फंदन्तेविध पाणिनो॥
5
येन येन हि मन्नन्ति, ततो तं होति अञ्जन्था।
एतादिसो विनाभावो, पस्स लोकस्स परियायं॥
5.

अपि वस्सत्सं जीवे, भय्यो वा पण मानवो।
नतिसङ्घा विना होति, जहाँति इध जीवितं॥
5वां संस्करण.
तस्मा अरहतो सुत्वा, विनेय्य परिदेवितं।
पेटं कालङ्कतं दिस्वा, नेसो लब्भा माया इति॥
5.
यथा सरणमादित्तं, वारिना परिनिब्बये [परिनिब्बुतो (सी० क०)]।
एवमपि धीरो सपञ्चो, पण्डितो कुसलो नरो।
खिप्पमुप्पितं सोकं, वातो तुलव धंसये॥
5.
परिदेवं पजप्पनच, दोमनसंसदच अत्तनो।
अत्तनो सुखमेसानो, अब्बे सल्लमत्तनो॥
5.
अब्बुळहसललो असितो, सन्तिं पप्पुय्य चेतसो।
सब्बसोकं अतिरक्तकांतो, असोको होति निब्बुतोति॥
सल्ललसुत्तं अट्ठमं निश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> सुत्तानिपात >> 3.9 वासेत्थसुत्त,
वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<--->>>> अगला

जातिवाद और नस्लभेद के विषय में। भारद्वाज और वसेत्था नामक दो युवकों के बीच विवाद उत्पन्न हुआ। भारद्वाज का तर्क था कि मनुष्य जन्म से ब्राह्मण होता है, जबकि वसेत्था का कि कर्मों से। वे समना गौतम (बुद्ध) से पूछने के लिए सहमत हुए, और उन्होंने उत्तर दिया कि मनुष्य अपने कर्मों से ही ब्राह्मण होता है। दोनों युवकों का धर्म परिवर्तन हो गया। (मज्झिमानिकय से)

अंतर्वस्तु

3.9 वसेत्थसुत्त
अनुवाद
मुझे यह सुनने को मिला:

एक समय भगवान (भगवान बुद्ध) इच्छानंगल वन में इच्छानंगल में निवास करते थे। उस समय इच्छानंगल में कई प्रतिष्ठित और धनी ब्राह्मण रहते थे, जैसे ब्राह्मण चांकी, ब्राह्मण तारुक्खा, ब्राह्मण पोक्खरसती, ब्राह्मण जनुस्सोनी, ब्राह्मण तोडेय्या और अन्य प्रतिष्ठित और धनी ब्राह्मण।

तब वसेत्था और भारद्वाज नामक दो युवकों के बीच टहलते हुए यह संवाद हुआ:

'ब्राह्मण कैसे बनता है?'

भारद्वाज ने कहा: 'जब कोई माता और पिता दोनों की ओर से उच्च (ब्राह्मण) वंश का हो, सातवीं पीढ़ी तक शुद्ध वंश का हो, जन्म से न तो अपवित्र हो और न ही निंदित, इस प्रकार वह ब्राह्मण होता है।'

युवक वसेत्था ने कहा, "जब कोई व्यक्ति गुणी और पवित्र कर्मों से संपन्न होता है, तो वह ब्राह्मण कहलाता है।"

न तो युवक भारद्वाज वसेत्था को समझा सका और न ही युवक वसेत्था भारद्वाज को समझा सका। तब वसेत्था नाम के युवक ने भारद्वाज नाम के युवक से कहा, "हे भारद्वाज, शाक्य वंश के इस समना गौतम (बुद्ध) ने इच्छनांगल वन में निवास किया है। आदरणीय गौतम (बुद्ध) का स्वागत करते हुए उन्होंने कहा, "यह भगवान बुद्ध हैं, जो आदरणीय, प्रबुद्ध और महिमामय हैं। हे आदरणीय भारद्वाज, आइए हम समना गौतम (बुद्ध) के पास चलें और वहाँ जाकर उनसे इस विषय पर प्रश्न करें। समना गौतम (बुद्ध) के उत्तर से ही हम समझ जाएँगे।" "

अच्छी बात है, हे आदरणीय," भारद्वाज नाम के युवक ने वसेत्था को उत्तर दिया। फिर वसेत्थ और भारद्वाज नाम के दो युवक भगवान बुद्ध के पास गए और वहाँ पहुँचकर उनसे सुखद वार्तालाप किया। कुछ सुखद और उल्लेखनीय वार्तालाप के बाद वे अलग बैठ गए। अलग बैठकर वसेत्थ ने भगवान बुद्ध को श्लोकों में संबोधित किया:

1. 'हम तीनों वेदों के सर्वमान्य और मान्यता प्राप्त गुरु हैं, मैं पोक्खरसती का शिष्य हूँ और यह युवक तारुक्खा का शिष्य है। (599)

2. 'हम तीनों वेदों के ज्ञाताओं से परिपूर्ण हैं, हम पदक (छंदों में पारंगत), व्याकरणविद् और अपने गुरुओं के समान पाठ करने में निपुण हैं। (600)

3. 'हे गौतम बुद्ध, जाति भेद को लेकर हमारा एक विवाद है!' भारद्वाज कहते हैं, एक व्यक्ति जन्म (जाति) से ब्राह्मण है, और मैं कहता हूँ, कर्मों से; हे प्रत्यक्षदर्शी, इसे जान लो! (601)

4. 'हम दोनों एक दूसरे को समझाने में असमर्थ हैं, (इसलिए) हम आपसे पूछने आए हैं (जो) पूर्णतः प्रबुद्ध के रूप में प्रसिद्ध हैं। (602)

5. 'जैसे पूर्णिमा के चंद्रमा की आराधना करने वाले लोग हाथ जोड़कर उसकी पूजा करते हैं, वैसे ही संसार में गौतम (बुद्ध) की पूजा की जाती है। (603)

6. 'हम गौतम (बुद्ध) से, जो संसार को देखने वाली सर्वदृष्टि रखते हैं, पूछते हैं: क्या मनुष्य जन्म से ब्राह्मण है, या कर्मों से? हमें, जो नहीं जानते, बताइए, ताकि हम ब्राह्मण को जान सकें।' (604)

7. 'हे वसेत्था, मैं तुम्हें उचित क्रम में जीवों के प्रजाति-वार सटीक भेद समझाऊंगा, क्योंकि उनकी प्रजातियाँ अनेक हैं।' (605)

8. 'जान लो, घास और वृक्ष, यद्यपि वे इसे प्रदर्शित नहीं करते, फिर भी प्रजाति-कारक लक्षण उनमें मौजूद हैं, और उनकी प्रजातियाँ अनेक हैं।' (606)

9. 'तो (जान लो कि) कीड़े, पतंगे और विभिन्न प्रकार की चींटियाँ, प्रजाति निर्धारण के चिह्न उनके लिए हैं, और उनकी प्रजातियाँ अनेक हैं। (607)

10. 'चार पैरों वाले (जानवरों), छोटे और बड़े, उनके लिए भी प्रजाति निर्धारण के चिह्न हैं, और उनकी प्रजातियाँ अनेक हैं। (608)

11. 'साँपों, लंबी पीठ वाले साँपों को भी जान लो, प्रजाति निर्धारण के चिह्न उनके लिए हैं, और उनकी प्रजातियाँ अनेक हैं। (609)

12. 'फिर पानी में तैरने वाली मछलियों को भी जान लो, प्रजाति निर्धारण के चिह्न उनके लिए हैं, और उनकी प्रजातियाँ अनेक हैं। (610)

13. 'तो तुम उन पक्षियों को भी जान लो जो पंखों पर उड़ते हुए हवा में विचरण करते हैं, उनमें प्रजाति निर्धारण के चिह्न होते हैं, और उनकी प्रजातियाँ अनेक प्रकार की होती हैं। (611)

14. 'जैसे इन प्रजातियों में प्रजाति निर्धारण के चिह्न प्रचुर मात्रा में होते हैं, वैसे ही मनुष्यों में प्रजाति निर्धारण के चिह्न प्रचुर मात्रा में नहीं होते। (612)

15. 'उनके बाल, सिर, कान, आँखें, मुँह, नाक, होंठ या भौंहों के संबंध में नहीं, (613)

16. 'न ही उनकी गर्दन, कंधे, पेट, पीठ, कूल्हे, स्तन, स्त्री अंग, यौन संबंध के संबंध में, (614)

17. 'न ही उनके हाथ, पैर, हथेलियाँ, नाखून, पिंडली, जांघें, रंग या आवाज के संबंध में अन्य प्रजातियों की तरह प्रजाति निर्धारण के चिह्न होते हैं। (615)

18. 'शरीरधारी प्राणियों में अंतर होता है, परन्तु मनुष्यों में ऐसा नहीं होता; मनुष्यों में अंतर केवल नाममात्र का होता है।' (616)

19. 'हे वसेत्थ, जो कोई गौपालन करके जीवन यापन करता है, जान लो कि वह किसान है, ब्राह्मण नहीं।' (617)

20. 'और हे वसेत्थ, जो कोई विभिन्न यांत्रिक कलाओं से जीवन यापन करता है, जान लो कि वह कारीगर है, ब्राह्मण नहीं।' (618)

21. 'हे वसेत्थ, जो कोई व्यापार करके जीवन यापन करता है, जान लो कि वह व्यापारी है, ब्राह्मण नहीं।' (619)

22. 'हे वसेत्थ, जो कोई दूसरों की सेवा करके जीवन यापन करता है, जान लो कि वह सेवक है, ब्राह्मण नहीं।' (620)

23. 'और मनुष्यों में से जो कोई चोरी करके जीवन यापन करता है, हे वसेत्था, यह जान लो, वह चोर है, ब्राह्मण नहीं। (621)

24. और जो कोई मनुष्य धनुर्विद्या से जीवन यापन करता है, हे वसेत्था, यह जान लो, वह सैनिक है, ब्राह्मण नहीं। (622)

25. और जो कोई मनुष्य गृहस्थी अनुष्ठान करके जीवन यापन करता है, हे वसेत्था, यह जान लो, वह यज्ञकर्ता है, ब्राह्मण नहीं। (623)

26. और जो कोई मनुष्य गाँव और देश का स्वामी है, हे वसेत्था, यह जान लो, वह राजा है, ब्राह्मण नहीं। (624)

27. और मैं किसी को उसके जन्म या किसी विशेष माता से उत्पन्न होने के कारण ब्राह्मण नहीं कहता; वह भोवादी कहला सकता है, और वह धनी हो सकता है, (परन्तु) जो कुछ भी नहीं रखता और कुछ भी नहीं लेता, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ। (625)

28. जो कोई भी सभी बंधनों को तोड़कर विचलित नहीं होता, सभी बंधनों से मुक्त हो जाता है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ। (626)

29. जो व्यक्ति शत्रुता, आसक्ति और संशय सहित सभी बाधाओं को नष्ट करके बुद्ध बन जाता है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ। (627) 30.

जो कोई भी निर्दोष रहते हुए निंदा, मार और बंधनों को सहता है, जो अपनी सहनशक्ति में बलवान है और इस शक्ति को अपनी सेना मानता है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ। (628)

31. जो व्यक्ति क्रोध से मुक्त है, पवित्र कर्मों से संपन्न है, गुणी है, इच्छा रहित है, वश में है और अंतिम शरीर धारण किए हुए है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ। (629)

32. जो व्यक्ति कमल के पत्ते पर जल की तरह या सुई की नोक पर सरसों के दाने की तरह इंद्रिय सुखों से आसक्त नहीं रहता, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ। (630)

33. जो व्यक्ति इस संसार में अपने दुखों के नाश को जान लेता है, जिसने अपना बोझ उतार दिया है और मुक्त हो गया है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ। (631)

34. जो व्यक्ति गहन ज्ञान (प्रत्यक्ष अनुभवात्मक समझ) रखता है, जो बुद्धिमान है, जो सही और गलत मार्ग को जानता है, जिसने सर्वोच्च सुख प्राप्त कर लिया है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ। (632)

35. जो व्यक्ति गृहस्थों और बेघरों के साथ मेलजोल नहीं रखता, जो बिना घर के घूमता है और जिसकी आवश्यकताएँ कम हैं, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ। (633)

36. जो कोई भी कांपते और बलवान प्राणियों को पीड़ा पहुँचाने से परहेज करते हुए, न तो हत्या करता है और न ही हत्या का कारण बनता है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ। (634)

37. जो शत्रुओं के बीच शत्रुता नहीं करता, जो हिंसकों के बीच शांतिप्रिय रहता है, जो सब कुछ छीनने वालों के बीच किसी भी चीज को नहीं छीनता, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ। (635)

38. जिस व्यक्ति का राग, द्वेष, दोष, अहंकार और पाखंड सुई की नोक से सरसों के दाने की तरह गिर जाते हैं, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ। (636)

39. जो व्यक्ति सत्य, शिक्षाप्रद और कठोर शब्दों से रहित वाणी बोलता है, जिससे वह किसी को ठेस नहीं पहुँचाता, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ। (637)

40. संसार में जो कोई भी वह वस्तु नहीं लेता जो उसे दी नहीं गई हो, चाहे वह लंबी हो या छोटी, छोटी हो या बड़ी, अच्छी हो या बुरी, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ। (638)

41. जो व्यक्ति इस लोक या परलोक की इच्छा नहीं रखता, जो इच्छाहीन और मुक्त है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ। (639)

42. जो व्यक्ति इच्छाहीन है, जो जानबूझकर संदेह से मुक्त है; और जिसने अमरता की गहराई प्राप्त कर ली है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ। (640)

43. इस संसार में जिसने भी अच्छे और बुरे, दोनों बंधनों पर विजय प्राप्त कर ली है, जो दुःख और अपवित्रता से मुक्त है, और शुद्ध है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ। (641)

44. जो व्यक्ति चंद्रमा के समान निर्मल है, शुद्ध, शांत और अविचलित है, जिसने आनंद का नाश कर दिया है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ। (642)

45. 'जो कोई भी इस कठिन दलदल को पार कर चुका है, (जो) पुनर्जन्मों (संसार) और मूर्खता के संसार चक्र को पार कर चुका है, जो पार कर चुका है, जो दूसरे तट पर पहुँच चुका है, जो ध्यानमग्न है, इच्छा और संदेह से मुक्त है, बिना किसी चीज को पकड़े शांत है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ। (643)

46. 'जो कोई भी इस संसार में, इंद्रिय सुखों का त्याग करके, घरविहीन घूमता है, और इंद्रिय सुखों के अस्तित्व (कामभाव) को नष्ट कर देता है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ। (644)

47. 'जो कोई भी इस संसार में, इच्छा का त्याग करके, घरविहीन घूमता है, और इच्छा के अस्तित्व (तन्हाभाव) को नष्ट कर देता है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ। (645) 48. '

जो कोई भी मानवीय आसक्ति (योग) को छोड़कर, दिव्य आसक्ति पर विजय प्राप्त कर लेता है, और सभी आसक्ति से मुक्त हो जाता है, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ। (646)

49. 'जो व्यक्ति सुख और विरह को त्यागकर शांत और अस्तित्व के तत्वों से मुक्त (निरुपाधि) हो, जो महान हो और समस्त संसार पर विजय प्राप्त कर चुका हो, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ। (647)

50. 'जो व्यक्ति प्राणियों के लुप्त होने और पुनरागमन को पूर्णतः जानता हो, किसी भी चीज़ से आसक्त न हो; सुखी (सुगत) और प्रबुद्ध हो, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ। (648) 51. '

जिस व्यक्ति का मार्ग न तो देवता, न गंधर्व, न मनुष्य जानते हों, और जिसकी वासनाएँ नष्ट हो चुकी हों, जो संत हो, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ। (649)

52. 'जिस व्यक्ति के लिए न आगे, न पीछे, न मध्य में कुछ है, जो कुछ भी धारण नहीं करता और किसी भी चीज़ को नहीं पकड़ता, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ। (650)

53. 'जो पुरुष बैल के समान निर्भीक हो, जो प्रख्यात हो, महान हो, महान ऋषि (महेसी) हो, विजयी हो, इच्छा से मुक्त हो, शुद्ध हो, प्रबुद्ध हो, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ। (651)

54. 'जो पुरुष अपने पूर्व जन्मों को जानता हो, जो स्वर्ग और नरक दोनों को देखता हो, और जन्म-जन्म के नाश को प्राप्त कर चुका हो, उसे मैं ब्राह्मण कहता हूँ। (652)

55. 'क्योंकि संसार में जिसे "नाम" और "वंश" कहा गया है, वह केवल एक शब्द है; जिसे यहाँ-वहाँ कहा गया है, वह आम सहमति से समझा जाता है। (653)

56. 'अज्ञानियों के विचार लंबे समय से चले आ रहे हैं।अज्ञानी लोग हमें बताते हैं कि व्यक्ति जन्म (जाति) से ब्राह्मण होता है। (654)

57. 'जन्म से कोई ब्राह्मण नहीं होता, न ही जन्म से कोई ब्राह्मण नहीं होता; कर्मों से ही कोई ब्राह्मण होता है, कर्मों से ही कोई ब्राह्मण नहीं होता। (655)

58. 'कर्म से ही कोई किसान बनता है, कर्म से ही कोई कारीगर बनता है, कर्म से ही कोई व्यापारी बनता है, कर्म से ही कोई सेवक बनता है। (656)

59. 'कर्म से ही कोई चोर बनता है, कर्म से ही कोई सैनिक बनता है, कर्म से ही कोई यज्ञकर्ता बनता है, कर्म से ही कोई राजा बनता है। (657)

60. 'इस प्रकार ज्ञानी, जो चीजों के कारण को देखते हैं और कर्म के परिणाम को समझते हैं, वे इस कर्म को उसके वास्तविक स्वरूप में जानते हैं। (658)

61. 'कर्म से ही संसार का अस्तित्व है, कर्म से ही मनुष्य जाति का अस्तित्व है, प्राणी कर्म से उसी प्रकार बंधे हैं जैसे गाड़ी का मुख्य कांटा पहिए को घुमाता रहता है।' (659)

62. 'ध्यान (तपस्या), पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन, आत्मसंयम और संयम द्वारा, एक ब्राह्मण होता है, ऐसा व्यक्ति (वे कहते हैं) सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण। (660)

63. 'जो त्रिविध ज्ञान से संपन्न है, शांत है और पुनर्जन्म को नष्ट कर चुका है, हे वसेत्थ, यह जान लो, वह बुद्धिमान ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) और सक्का (देवताओं के राजा) का प्रिय है।' (661)

यह कहकर, युवक वसेत्थ और भारद्वाज ने भगवान (भगवान बुद्ध) से इस प्रकार कहा:

'यह उत्कृष्ट है, हे पूज्य गौतम (बुद्ध)! यह उत्कृष्ट है, हे पूज्य गौतम (बुद्ध)!' जैसे कोई गिरी हुई चीज़ को उठाता है, या छिपी हुई चीज़ को प्रकट करता है, या भटके हुए को रास्ता दिखाता है, या अंधेरे में तेल का दीपक जलाता है ताकि देखने वाले उसे देख सकें, वैसे ही पूज्य गौतम (बुद्ध) ने अनेक तरीकों से धम्म का स्पष्टीकरण किया है; हम पूज्य गौतम (बुद्ध), धम्म और भिक्षु सभा की शरण लेते हैं; पूज्य गौतम (बुद्ध) हमें अपने अनुयायी (उपासक) के रूप में स्वीकार करें, जिन्होंने आज से जीवन भर के लिए उनकी शरण ली है।'

वसेत्थसूत्र समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन

9. Vāseṭṭhasuttaṃ

एवं मे सुतम् - एकं समयं भगव इच्छानंगले विहारति इच्छानंगलवनसंडे। तेन खो पना समयेन सम्भुला अभिनाता अभिनाता ब्राह्मणमहाशाला इच्छानंगले पतिवासन्ति, सेयथिदं - चंकि ब्राह्मणो, तारुक्खो ब्राह्मणो, पोक्खरसति ब्राह्मणो, जानुसोनि [जानुसोनि (का.)] ब्राह्मणो, तोडेय्यो ब्राह्मणो, अन्ये च अभिन्नता अभिनाता ब्राह्मणमहाशाला। अथ खो वासेठभारद्वाजनां मनावनं जघविहारं अनुचंकमंतानां अनुविक्रमणं। पी.)] अयमन्तरकथा उदापादि - "कथं, भो, ब्राह्मणो होति"ति?

भारद्वाजो मनावो एवमहा - "यतो खो, भो, उभतो सुजातो होति मतितो च पितितो च संशुद्धगहानिको याव सत्तम पितामहयुग अक्खित्टो अनुपक्कुठो जातिवादेन, एतत्वता खो भो ब्राह्मणो होति'ति।

वासेठो मनावो एवमाहा - "यतो खो, भो, सिलावा च होति वत्सम्पन्नो [वत्सम्पन्नो (सि. स्या. मा. नि. 2.454)] च, एततावता खो, भो, ब्राह्मणो होति"ति। नेवा खो असक्खि भारद्वाजो मनवो वसेट्ठं मनावं सन्नापेटुं, न पना असक्खी वसेठो मनावो भारद्वाजं मनावं सन्नापेटुम्. अथ खो वासेठो मनवो भारद्वाजं मनवं अमांतेसि - " अयं खो, भो [अयं भो (सि. स्या. का.), अयं खो (पि.)] भारद्वाज, समणो गोतमो शाक्यपुत्तो शाक्यकुला पब्बजीतो इच्छानंगले विहारति इच्छानंगलवनसंडे; तं खो पण भवंतं गोतमं एवं कल्याणो कित्तिसद्दो अब्भुग्गतो - 'इतिपि...पे...बुद्धो भगवति। अयामा, भो भारद्वाज, येन समानो गोतमो तेनुपसांकमिस्सामा; उपसंकमित्वा समानं गोतमं एतमत्थं पुच्चिस्सम्। यथा नो समणो गोतमो ब्याकारिस्सति तथा नं धरेस्सामति। "एवं, भो'ति खो भारद्वाजो मनावो वसेट्ठस्सा मनावस्सा पकासोसि।'

अथ खो वासेठभारद्वाज मानवा येन भगव तेनुपससंकमिंसु; उपसंकमित्वा भगवत् सद्धिं सम्मोदिंसु । सम्मोदानियं कथं सारण्यं वितिसरेत्व एकमंतं निसिदिंसु। एकमंतं निसिन्नो खो वासेठो मनावो भगवन्तं गाथाहि अज्जभासि -

599.

"अनुन्नतापटिन्नाता, तेविज्जा मायामस्मुभो;
अहं पोक्खरासतिस्सा, तारुक्खस्सायं मनावो।

600.

"तेविज्जनं यदक्खातं, तत्र केवलिनोस्मसे;
पादकास्मा वेय्यकरण, जप्पे आचार्यसादिसा।

601.

"तेसं नो जातिवादस्मि, विवाडो अत्थि गोतम;
जातिय ब्राह्मणो होति, भारद्वाजो इति भासति;
अहंका कम्मुना [कम्मना (सी. पी.) इवमुपरिपि] ब्रुमि, एवं जनाहि चक्खुमा।

602.

"ते न सक्कोमा सन्नापेटुं, अण्णामन्नं मयां उभो;
भवंतं [भगवंतं (का.)] पुथुमागम्हा, संबुद्धं इति विस्सुतां।

603.

"चंदं यथा खयतितं, पेक्का पंजालिका जना;
वंदमाना नमसन्ति, एवम् लोकस्मि गोतमम्।

604.

"चक्खुं लोके समुप्पन्नं, मयं पुच्चम गोतमं;
जातिया ब्राह्मणो होति, उदाहु भवति कम्मुना;
अजानतं न पब्रुहि, यथा जनेसु ब्राह्मणम्।'

605.

"तेसं वो अहं बयक्खिस्सं, (वसेट्ठति भगव) अनुपुब्बं यथातथाम्;
जातिविभंगं पणनां, अनामन्ना हि जातियो।

606.

"तिनारुक्खेपि जानथ, न कपि पतिजानारे;
लिंगं जातिमयं तेसं, अण्णामन्ना हि जातियो।

607.

"ततो किते पतंगे च, याव कुंथकिपिल्लिके;
लिंगं जातिमयं तेसं, अण्णामन्ना हि जातियो।

608.

"चटुप्पदेपि जानथ, खुद्दके च महल्लके;
लिंगं जातिमयं तेसं, अण्णामन्ना हि जातियो।
609.
"पादुदारेपि जानथ, उरगे दीघपीठिके;
लिंगं जातिमयं तेसं, अण्णामन्ना हि जातियो।
610.
"ततो मच्छेपि जानथ, ओडके वेरिगोकेरे;
लिंगं जातिमयं तेसं, अण्णामन्ना हि जातियो।
611.
"ततो पक्खीपि जानथ, पत्तयाने विहंगमे;
लिंगं जातिमयं तेसं, अण्णामन्ना हि जातियो।
612.
"यथा एतासु जातिसु, लिंगं जातिमयं पुथु;
एवं नत्थि मनुस्सेसु, लिंगं जातिमयं पुथु।
613.
"न केसेहि न सीसेना, न कानेहि न अक्खिभि;
न मुखेन न नासाय, न ओत्थेहि भमुहि वा।
614.
"न गिवय न अणसेहि, न उदारेण न पिठिया;
न सोणिया न उरसा, न सम्बद्ध न मेथुने [न सम्बद्ध न मेथुना (स्या. का.)]।
615.
"न हत्थेहि न पदेहि, नांगुलीहि नखेहि वा;
न जंघहि न उरुहि, न वनेण सरेण वा;
लिंगं जातिमयं नेव, यथा अनानासु जातिसु।
616.
"पक्कट्टां सारिरेसु [पक्कट्टं ससारिरेसु (सि. पि.)], मनुस्सेस्वेतां न विज्जति;
वोकरनचा मनुस्सेसु, समानन्या पावुक्कति।
617.
"यो हि कोचि मनुस्सेसु, गोरक्खं उपजिवति;
एवं वसेठ जनाहि, कस्सको सो न ब्राह्मणो।
618.
"यो हि कोसि मानुस्सेसु, पुथुसिप्पेना जीवति;
एवं वसेठ जनाहि, सिप्पिको सो न ब्राह्मणो।
619.
"यो हि कोचि मनुस्सेसु, वोहारं उपजिवति;
एवं वसेठ जनाहि, वाणीजो सो न ब्राह्मणो।
620.
"यो हि कोसि मानुस्सेसु, पैरापेसेना जीवति;
एवं वसेठ जनाहि, पेसिको [पेसको (का.)] सो न ब्राह्मणो।
621.
"यो हि कोचि मनुस्सेसु, अदिन्नं उपजिवति;
एवं वसेठ जनाहि, कोरो एसो न ब्राह्मणो।
622.
"यो हि कोचि मनुस्सेसु, इस्सत्थं उपजिवति;
एवं वसेठ जनाहि, योधाजीवो न ब्राह्मणो।
623.
"यो हि कोसि मानुस्सु, पोरोहिस्केना जीवति;
एवं वसेठ जनाहि, याजको एसो न ब्राह्मणो।

624.
"यो हि कोचि मनुस्सेसु, गमं रथान्च भुञ्जति;
एवं वसेठ जनाहि, राजा एसो न ब्राह्मणो।
625.
"न चाहं ब्राह्मणं ब्रूमि, योनिजं मतिसंभवं;
भोवादी नाम सो होति, सासे [सा वे (सि. स्या.)] होति साकिंकानो;
अकिंचनं अनादानं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम्।
626.
"सब्बासंयोजनं चेत्वा, सो वे न परितासस्ति;
संगतिगं विसंयुत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम्।
627.
"चेत्वा नद्धिं वर्त्तञ्च, संदानं सहनुक्कमम्;
उक्खित्तपालिघं बुद्धं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।
628.
"अक्कोसं वधबन्धञ्च, अदुत्थो यो तितिक्खति;
खांतिबलं बालनिकं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।
629.
"अक्कोधनं वातवन्तं, सिलवन्तं अनुस्सदं;
दन्तं अन्तिमशरीरं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम्।
630.
"वारी पोक्खरापत्तेव, अरगेरिवा ससापो;
यो न लिम्पति कामेसु, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम्।
631.
"यो दुक्खस्सा पजानाति, इधेव खयमत्तनो;
पन्नभरं विषयुत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम्।
632.
"गम्भीरपन्नं मेधाविं, मग्गमग्गस्स कोविदं;
उत्तमत्तमनुप्पट्टं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम्।
633.
"असंसठहं गहथेहि, अनागारेहि कुभयं;
अनोकसारीमपिच्चं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम्।
634.
"Nidhāya daṇḍaṃ bhūtesu, tasesu thāvaresu ca;
यो न हन्ति न घटेति, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम्।
635.
"अविरुद्धं विरुद्धेसु, अत्तादंडेसु निब्बुतं;
सदानेसु अनादानं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम्।
636.
"यस्सा रागो च दोसो च, मानो मक्खो च पतितो;
ससापोरिव अरग्गा, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम्।
637.
"अक्ककसं विनापाणि, गिरं सच्चमुदिरये;
याया नाभिसजे कांची, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम्।
638.
"योधा दीघं वा रस्सं वा, अनुं थूलं सुभासुभं;
लोके अदिन्नं नादियाति, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।
639.
"आसा यस्सा न विज्जन्ति, अस्मिं लोके परमहि च;

निरसासं [निरासयं (सि. स्या. पि.), निरासाकं (?)] विसंयुत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।
640.
"यस्सालय न विज्जन्ति, अनन्याय अकथाकथि;
अमतोगधामनुप्पट्टं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम्।
641.
"योधा पुनान्च पापञ्च, उभो संगमुपच्चगा;
अशोकं विराजं शुद्धं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।
642.
" चंदव विमलं शुद्धं, विप्पसन्नमनविलं;
नन्दीभवपरिक्खिनं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम्।
643.
"योमं पालिपथं दुग्गं, संसारं मोहमक्कगा;
तिणो पारंगतो झायि, अनेजो अकथानकथि;
अनुपादाय निब्बुतो, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम्।
644.
"योधा कामे पहंत्वाण, अनागारो परिब्बाजे;
कामभवपरिक्खिनं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम्।
645.
"योधा तंहं पहंत्वाण, अनागारो परिब्बाजे;
तन्हाभावपरिक्खिनं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम्।
646.
"हित्वा मानुसकं योगं, दिब्बं योगं उपचगा;
सब्बयोगविसंयुत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम्।
647.
"हित्वा रतिञ्च अरतिं, सतीभूतं निरूपधिं;
सब्बलोकाभिभूं वीरं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।
648.
"क्यूतिं यो वेदि [यो'वेति (?) इतिवुत्तके 99 अष्टकथासावन पासितब्बा] ततनं, उपपत्तिनका सब्बासो;
असत्तं सुगतं बुद्धं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।
649.
"यस्सा गतिं न जानन्ति, देवा गंधब्बमनुसा;
खिन्नसवं अरहंतां, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।
650.
"यस्सा शुद्ध च पच्च च, मज्झे च नत्थि किंचनं;
अकिंचनं अनादानं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम्।
651.
"उषभं पवरं वीरं, महेसिं विजितविनं;
अनेजां नहतकं बुद्धं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं।
652.
"पुब्बेनिवासं यो वेदि [यो'वेति (?) इतिवुत्तके 99 अष्टकथासंवना पासितब्बा], सग्गापायंका पाससति;
अथो जातिक्खयं पत्तो, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणम्।
653.
"समन्ना हेसा लोकस्मि, नमगोट्टं पकप्पितं;
सम्मुच्च समुदगतं, तत्थ तत्थ पकप्पितं।
654.
"दीघ्रत्तमनुसायितं, दिथिगतमजनातं;
अजनंता नहीं [अजंनता ते (अथ.) मा. नि. 2.460] पब्रुवन्ति, जाति होति ब्राह्मणो।
655.

"न जच्चा ब्राह्मणो होति, न जच्चा होति ब्राह्मणो;
कम्मुना ब्राह्मणो होति, कम्मुना होति ब्राह्मणो।
656.
"कस्सको कम्मुना होति, सिप्पिको होति कम्मुना;
वनिजो कम्मुना होति, पेसिको होति कम्मुना।
657.
"कोरोपि कम्मुना होति, योधाजीवोपि कम्मुना;
याजको कम्मुना होति, राजपि होति कम्मुना।
658.
"एवमेतं यथाभूतं, कम्मं पासन्ति पंडिता;
पाटिकसमुप्पादस्सा, कम्मविपाककोविदा।
659.
" कम्मुना वट्टति लोको, कम्मुना वट्टति पजा;
कम्मनिबंधना सत्ता, रथस्सनिव ययातो।
660.
"तपेण ब्रह्मचर्येण, संयमेन दमेण च;
एतेन ब्राह्मणो होति, एतं ब्राह्मणमुत्तमम्।
661.
"तिहि विज्जहि सम्पन्नो, सन्तो खिन्नपुनाभवो;
एवं वसेठ्ठ जनाहि, ब्रह्मा सको विजानता'न्ति।
एवं वुट्टे, वसेठभारद्वाज मनव भगवन्तं एतदावोकुम् - "अभिकांतं, भो गोतम...पे... उपासके नो भावं गोतमो धरेतु अजतग्गे पाणुपेटे" [पाणुपेतम् (का.)] शरणं गते'ति।
वसेत्थसुत्तं नवमं निहितं।

पाली-देवनागरी
9. वासेट्ठसुत्तं
एवं मे सुतं - एकं समयं भगव इच्छानङ्गले विहरति इच्छानङ्गलवंसंदे। तेन खो पन समयेन सम्भुला अभिज्ञाता अभिज्ञाता ब्राह्मणमहाशाला इच्छानङ्गले पित्वासन्ति, सेयथिदं - चङकी ब्राह्मणो, तारुक्खो ब्राह्मणो, पोखरसति ब्राह्मणो, जानुसोनि [जानूसोनि (क०)] ब्राह्मणो, तोदेय्यो ब्राह्मणो, अञ्जनजे च अभिनन्दना अभिज्ञाता ब्राह्मणमहाशाला। अथ खो वासेट्ठभारद्वाजं मन्वानं जङ्घविहारं अनुचङकमन्तानां अनुविचरण्तानं [अनुचङकममानानां अनुविचरमानणं (सी० पी०)] अयमंत्रकथा उद्पादि - "कथं, भो, ब्राह्मणो होता"ति?
ऋद्धो मानवो एवमः - "यतो खो, भो, उभतो सुजातो होती मतितो च पितितो च संसुद्धघहनिको याव सत्तमा पितामहयुगा अखित्टो अनुपक्राकुत्थो जातिवादेन, एत्तावता खो भो ब्राह्मणो"'ति।
वासेट्ठो मन्वो एवमाः - "यतो खो, भो, सीलवा च होति वत्सम्प संज्ञाओ [वत्ससम्प संज्ञाओ (सी० स्या० म० नि० 2.454)] च,त्ता एवता खो, भो, ब्राह्मणो होता है"ति। नेव खो असक्खि भारद्वाजो मन्वो वासेट्ठं मानवं सञ्जापेतुं, न पन असक्खि वासेट्ठो मानवो मानवो वासेट्ठं मानवं सञ्जापेतुं।
अथ खो वासेट्ठो मान वो ऋद्धं मानवं अम्नतेसि — "अयं खो, भो [अयं भो (सी० स्या० क०), अयं खो (पि०)] अथ खो वासेत्थो मां, सखापुत्तो साक्यकुला पब्जितो इच्छानङ्गले विहरति इच्छाङगलवनसंदे; तं खो पन भवन्तं गोतमं कल्याण एववो कित्तिसद्दो अब्भुग्गतो - 'इतिपि...पे०...बुद्धो भगव'ति। आयाम, भो भार्घ, येन समानो गोतमो तेनुपसङकमिश्स्साम; उपसङ्कमित्वा समानं गोतमं एतमत्थं पुच्छिस्सम्। यथा नो समानो गोतमो ब्याकरिस्सित तथा नं धारेस्सामा"ति। "एवं, भो"ति खो भारद्वाजो मन्वो वासेट्ठस्स मानवस्स पचदचसोसि।
अथ खो वासेट्ठभारद्वाजा मनवा येन भगवान तेनुपसङकमिंसु; उपसङ्कमित्वा भगवत् सद्धिं सम्मोदिंसु। सम्मोदनेयं कथं सारणीयं वीतिसारेत्वा एकमंतं निसिदिन्सु। एकमन्तं निसि सत्यो खो वासेत्थो मानवो भगवन्तंहि गाथाअजभासि -
5.
"अनुञ्जनात्पतिञ्जनता, तेविज्जा मयमसमुभो।
अहं पोखरासतिस्स, तारुक्खास्सायं मानवो॥

.

"तेविज्जनं यदक्खातं, तत्र केवलिनोस्मसे।
मेडलस्म वैय्याकरण, जप्पे आचरीसादिसा॥
600.
"तेसं नो जातिवादस्मिं, विवादो अथि गोतम।
जातिया ब्राह्मणो होति, भारद्वाजो इति भासति।
अहंदच कम्मुना [कम्मना (सी० पी०) एवमुपरिपि] ब्रूमि, जनहि चखुम॥
2002.
"ते न सचित्रकोम संज्ञपेतुं, अञ्जनमञ्चं मयं उभो।
भवन्तं [भगवंतं (क०)] पुत्थुमागम्हा, संबुद्धं इति विस्सुतं॥
.
"चंदं यथा ख्यातितं, पेचदच पञ्जलिका जना।
वन्दमाना नमस्संन्ति, एवं लोकस्मि गोतमं॥
6.
"चक्खुं लोके समुप्प गायनं, मयं पुच्छम गोतमं।
जातिया ब्राह्मणो होति, उदाहु भवति कम्मुना।
अजानतं नो पब्रूहि, यथा जानेसु ब्राह्मणं॥
66.
"तेसं वो अहं बक्खिससं, (वसेट्ठति भगवान) अनुपुब्बं यथात्थं।
जातिविभङ्गं पनानं, अञ्जमञ्चा हि जातियो॥
.
" तिनरुक्खेपि जानथ, न चापि पतिजनारे।
लिङ्गं जातिमयं तेसं, अञ्जनमञ्चा हि जातियो॥
.
"ततो कीते पतंगे च, याव कुंठकिपिल्लिके।
लिङ्गं जातिमयं तेसं, अञ्जनमञ्चा हि जातियो॥
.
"चटुप्पदेपि जानथ, कुद्दके च महल दलके।
लिङ्गं जातिमयं तेसं, अञ्जनमञ्चा हि जातियो॥
.
"पादुदरेपि जानथ, उर्गे दीघपिट्ठिके।"
लिङ्गं जातिमयं तेसं, अञ्जनमञ्चा हि जातियो॥
.
"ततो मच्छेपि जानथ, ओडके वारिगोचरे।
लिङ्गं जातिमयं तेसं, अञ्जनमञ्चा हि जातियो॥
11.
"ततो पक्खीपि जानथ, पत्तयाने विहङ्गमे।
लिङ्गं जातिमयं तेसं, अञ्जनमञ्चा हि जातियो॥
11.
"यथा एतासु जातिसु, लिङ्गं जातिमयं पुथु।
एव नत्थि मनुस्सेसु, लिङ्गं जातिमयं पुथु॥
.
"न केसेहि न सीसेन, न कन्नेहि न अखिभि।
न मुखेन न नासाय, न ओट्ठेहि भमुहि वा॥
6.
"न गिवै न अनसेहि, न उड्रेण न पिट्ठिया।"
न सोणिया न उर्सा, न सम्बद्ध न मेथुने [न सम्बद्ध न मेथुना (स्या० क०)]॥
65.
"न हत्थेहि न पादेही, नङ्गुलिहि नखेहि वा।

न जङ्घहि न उरूहि, न वन्नेन सरेन वा।
लिङ्गं जातिमयं नेव, यथा अञ्जनसु जातिसु॥

.
"पच्चत्तनदच सरिरेसु [पचदचत्तं सरिरेसु (सी० पी०)], मनुस्सेस्वेतं न विज्दजति।
वोकारञ्च मनुस्सेसु, समञ्चया पवुच्चति॥
611.
"यो हि कोचि मनुस्सेसु, गोरखं उपजीवति।
एवं वासेट्ठ जानाहि, कस्सको सो न ब्राह्मणो॥
611.
"यो हि कोचि मनुस्सेसु, पुथुसिप्पेन जीवति।
एवं वासेट्ठ जानाहि, सिप्पिको सो न ब्राह्मणो॥
1.
"यो हि कोचि मनुस्सेसु, वोहारं उपजीवति।
एवं वासेट्ठ जानाहि, वाणीजो सो न ब्राह्मणो॥

.
"यो हि कोचि मनुस्सेसु, परपेप्पसेन जीवति।
एवं वासेट्ठ जानाहि, पेस्सिको [पेस्सको (क०)] सो न ब्राह्मणो॥
12.
"यो हि कोचि मनुस्सेसु, आदि नारायणं उपजीवति।"
एवं वासेट्ठ जानाहि, चोरो एसो न ब्राह्मणो॥
. 2010.
"यो हि कोच्चि मनुस्सेसु, इसत्थं उपजीवति।
एवं वासेट्ठ जानाहि, योधाजीवो न ब्राह्मणो॥

.
"यो हि कोचि मनुस्सेसु, पोरोहिच्चेन जीवति।
एवं वासेट्ठ जानाहि, याजको एसो न ब्राह्मणो॥

.
"यो हि कोचि मनुस्सेसु, गमं रत्थञ्च भुञ्जति।
एवं वासेट्ठ जानाहि, राजा एसो न ब्राह्मणो॥
652.
न इच्छां ब्राह्मणं ब्रूमि, योनिजं मत्तिसंभवं।
भोवादी नाम सो होति, सचे [स वे (सी० स्या०)] होति सकिञ्चनो।
अकिञ्चनं अनादानं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

.
"सब्बसंयोजनं चेत्वा, सो वे न परित्स्स्त।"
सङ्गातिगं विसंयुत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

.
"चेत्वा नद्धिं वर्त्तञ्च, सन्दानं सहनुत्रकमं।
उक्खित्तपालिघं बुद्धं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

.
"अत्रकोसं वधबंधनच, अदुत्थो यो तितिखति।
खांतिबलं बलानीकं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

.
"अत्रकोधनं वतवन्तं, सीलवन्तं अनुस्सदं।
दन्तं अन्तिमसारं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥
30.
"वारी पोखरपत्तेव, अर्गेरिव सस्पो।
यो न लिम्पति कामेसु, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

631.
"यो दुक्खस्स पजानाति, इधेव खयमत्तनो।
प सत्याभारं विसंयुत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥
6 छु.
"गंभीरपञ्चं मेधाविं, मग्गमग्गस्स कोकिडं।
उत्तमत्थमनुप्पत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥
.
"असंसत्थं गहत्थेहि, अनागारेहि दुभयं।
अणोकसारिमप्पिच्छं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥
634.
"निधाय दण्डं भूतेषु, तसेसु थावरेसु च।
यो न हन्ति न घटेति, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥
.
"अविरुद्धं विरुद्धेसु, अत्तदण्डेसु निब्बुतं।
सदानेसु अनादानं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥
.
"य्स्स रागो च दोसो च, मनो मक्खो च पतितो।
सस्पोरिव अरग्गा, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥
.
"अक त्राटकसं विज्ञपनिं, गिरं सचचमुदिरये।
याय नाभिसजे काञ्चि, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥
66.
"योध दीघं व रस्सं वा, अत्यां तूलं शुभाशुभं।
लोके आदि सनातनं नादयति, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥
.
"आसा यस न विज्जन्ति, अस्मिं लोके परमहि च।
निरासासं [निरासयं (सी० स्या० पी०), निरासकं (?)] विसंयुत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥
40.
"यस्सालय न विज्जन्ति, अञ्जनया अकथंकथि।"
अमतोघमनुप्पत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥
6
"योध पुञ्जनदच पपञ्च, उभो सङ्गमुपचचगा।
असोकं विरजं सुद्धं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥
.
"चंदव विक्रमं सुद्धं, विप्पस नारायणमनाविलं।
नन्दीभवपरिक्खिनं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥
.
"योमं पालिपथं दुग्गं, संसारं मोहमचदचगा।
तिन्नो पारङ्गतो झायि, अनेजो अकथंकथि।
अनुपादाय निब्बुतो, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥
644.
"योद्ध कामे वस्त्वान, अनागारो परिब्बजे।
कामभवपरिक्खिनं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥
644.
"योध तंहं वल्त्त्वान, अनागारो परिब्बजे।"
तन्हाभवपरिक्खिनं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥
.
"हित्वा मनुस्कं योगं, दिब्बं योगं उपच्चगा।"

सब्बयोगविसंयुत्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

.
"हित्वा रतिञ्च आरतीं, सीटिभूतं निरूपधिं।
सब्ब्लोकाभिभुं वीरं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

.
"चूतिं यो वेदि [यो'वेति (?) इतिवुत्तके 99 अट्ठकथासंवन्ना पसिटतब्बा] तातानं, उपपत्तिनदच सब्बसो।
असत्तं सुगतं बुद्धं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

.
"यस्स गतिं न जानन्ति, देवा गंधब्बमनुसा।
खिनास्वं अरहन्तं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

.
"यस्स पूरे च पच्च च, मज्जे च नत्थि किञ्चनं।
अकिञ्चनं अनादानं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

.
"उषाभं पवरं वीरं, महेसिं विजिताविनं।
अनेजं हंतकं बुद्धं, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

.
"पुब्बेनिवासन यो वेदि [यो'वेति (?) इतिवुत्तके 99 अठ्ठकथासंवन्ना पसिटतब्बा], सग्गापयञ्च पसस्ति।
अथो जातीयखयं पत्तो, तमहं ब्रूमि ब्राह्मणं॥

.
"संज्ञा हेसा लोकस्मिं, नामगोत्तं पक्प्पितं।
सम्मुच्चचा समुदगतं, तत्थ तत्थ पकप्पितं॥
44.
" दीघर्तत्तमनुसायितं, दिट्ठिगतमजानतं।
अजानंता नो [अजानंता ते (अट्ठ्०) मा० नि० 2.604] पब्रुवन्ति, जातिया होती ब्राह्मणो॥
65.
न जच्चा ब्राह्मणो होति, न जच्चा ब्राह्मणो होति।
कम्मुना ब्राह्मणो होति, कम्मुना होति अब्राह्मणो॥

.
"कस्सको कम्मुना होति, सिप्पिको होति कम्मुना।
वाणीजो कम्मुना होति, पेस्सिको होति कम्मुना॥

.
"चोरोपि कम्मुना होति, योधाजीवोपि कम्मुना।
याजको कम्मुना होति, राजापि होति कम्मुना॥
666.
"एवमेतं यथाभूतं, कम्मं पसंन्ति पण्डिता।
पतीचदचसमुप्पाददस्सा, कम्मविपाककोविडा॥
50.
" कम्मुना वट्टति लोको, कम्मुना वट्टति पजा।
कम्मनिबंधना सत्य, रथस्सणिव यायतो॥
66.
"तपेण ब्रह्मचरियेन, संयमेन दमेण च।
एतेन ब्राह्मणो होति, एतं ब्राह्मणमुत्तमं॥

.
" तेहि विजजाहि संप नारायणो, सन्तो खिनपुनबभवो।"
एवं वासेत्थ जानाहि, ब्रह्मा सद्दशको विजानत"न्ति॥
एवं वुत्ते, वासेट्ठभारद्वाजा मनवा भगवन्तं एतदवोचुं - "अभि निषेधं, भो गोतम...पे०... उपासके नो भवन गोतमो धारेतु अजदतग्गे पाणुपेते [पाणुपेतं (क०)] शरणं गते"ति।

वासेट्ठसुत्तं नवमं निश्चितं।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> सुत्तनिपता >> 3.10 कोकालिकसुत्त
वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<-->>>> अगला

कोकालिका बुद्ध के समक्ष सारिपुत्त और मोग्गलाना की निंदा करता है; इसलिए बुद्ध से विदा होते ही उसे फोड़े हो जाते हैं, उसकी मृत्यु हो जाती है और वह पद्मा नरक में चला जाता है, जिसके बाद बुद्ध भिक्षुओं को नरक में चुगली करने वालों के दंड के बारे में बताते हैं।

अंतर्वस्तु

3.10 कोकलिकासुट्टा
अनुवाद
मुझे ऐसा सुनने को मिला:

एक समय भगवान (भगवान बुद्ध) सावत्थी में, जेतवन में, अनाथपिंडिका के उद्यान में निवास कर रहे थे। तब भिक्षु कोकालिका भगवान (भगवान बुद्ध) के पास आए, और प्रणाम करने के बाद वे अलग बैठ गए; अलग बैठकर भिक्षु कोकालिका ने भगवान (भगवान बुद्ध) से यह कहा: "हे प्रभु, सारिपुत्त और मोग्गलाना में बुरी इच्छाएँ हैं, वे बुरी इच्छाओं के वश में हो गए हैं।"

यह सुनकर भगवान (भगवान बुद्ध) ने भिक्षु कोकालिका से इस प्रकार कहा: "ऐसा मत कहो, कोकालिका; ऐसा मत कहो, कोकालिका; हे कोकालिका, सारिपुत्त और मोग्गलाना के विषय में अपने मन को शांत करो: सारिपुत्त और मोग्गलाना प्रिय हैं।" दूसरी बार भिक्षु कोकालिका ने भगवान बुद्ध से कहा: 'हे पूज्य भगवान बुद्ध, यद्यपि आप मुझे निष्ठावान और विश्वसनीय प्रतीत होते हैं, फिर भी सारिपुत्त और मोग्गलाना में बुरी इच्छाएँ हैं, वे बुरी इच्छाओं के वश में हो गए हैं।' दूसरी बार भगवान बुद्ध ने

भिक्षु कोकालिका से कहा: 'ऐसा मत कहो, कोकालिका; ऐसा मत कहो, कोकालिका; हे कोकालिका, सारिपुत्त और मोग्गलाना के प्रति अपने मन को शांत करो: सारिपुत्त और मोग्गलाना प्रिय हैं।'

तीसरी बार भिक्षु कोकालिका ने भगवान बुद्ध से कहा: 'हे पूज्य भगवान बुद्ध, यद्यपि आप मुझे निष्ठावान और विश्वसनीय प्रतीत होते हैं, फिर भी सारिपुत्त और मोग्गलाना में बुरी इच्छाएँ हैं, सारिपुत्त और मोग्गलाना बुरी इच्छाओं के वश में हो गए हैं।' तीसरी

बार भगवान बुद्ध ने भिक्षु कोकालिका से कहा: 'ऐसा मत कहो, कोकालिका; ऐसा मत कहो, कोकालिका; हे कोकालिका, सारिपुत्त और मोग्गलाना के प्रति अपने मन को शांत करो: सारिपुत्त और मोग्गलाना प्रिय हैं।'

फिर भिक्षु कोकालिका अपने आसन से उठकर भगवान बुद्ध को प्रणाम करके उनके चारों ओर दाहिनी ओर परिक्रमा करते हुए चले गए; और उनके जाने के कुछ ही समय बाद, उनके पूरे शरीर पर सरसों के दाने जितने बड़े फोड़े निकल आए; पहले वे सरसों के दाने जितने बड़े थे, फिर राजमा जितने बड़े हो गए; फिर वे चने जितने बड़े हो गए; फिर वे कोलात्थी के अंडे जितने बड़े हो गए (?); फिर वे कोलात्थी के अंडे जितने बड़े हो गए, फिर वे बेर जितने बड़े हो गए; फिर वे आंवला के फल जितने बड़े हो गए; फिर वे कच्चे बेलुवा के फल जितने बड़े हो गए; फिर वे बिल्ली के फल जितने बड़े हो गए। बिल्ली फल के आकार के बराबर बड़े होने के बाद, वे टूट गए और उनमें से मवाद और रक्त बह निकला। तब भिक्षु कोकालिका उस रोग से मर गए, और मरने के बाद वे सारिपुत्त और मोग्गलाना के प्रति शत्रुतापूर्ण भाव प्रदर्शित करते हुए पद्मा नरक में चले गए। फिर जब रात्रि बीत गई, तो सुंदर रूप वाले महादूत ब्रह्मा सहमपति ने पूरे जेतवन को प्रकाशित करते हुए भगवान बुद्ध के पास पहुँचे, और भगवान बुद्ध को प्रणाम करने के बाद वे एकांत में खड़े हो गए, और एकांत में खड़े होकर ब्रह्मा सहमपति ने भगवान बुद्ध से यह कहा: 'हे प्रभु, भिक्षु कोकालिका मर गए हैं और मृत्यु के बाद, हे प्रभु, सारिपुत्त और मोग्गलाना के प्रति शत्रुतापूर्ण भाव प्रदर्शित करते हुए भिक्षु कोकालिका पद्मा नरक में चले गए हैं।'

यह कहकर ब्रह्मा सहमपति ने भगवान बुद्ध को प्रणाम किया और उनके चारों ओर दाहिनी ओर परिक्रमा करते हुए वहीं अंतर्धान हो गए।

उस रात्रि के अंत में भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को संबोधित करते हुए कहा: “हे भिक्षुओं, कल रात जब रात लगभग बीत चुकी थी, तब सुंदर रूप वाले ब्रह्मा सहमपति ने सारे जेतवन को प्रकाशित करते हुए भगवान बुद्ध के पास आकर उन्हें प्रणाम किया और एकांत में खड़े होकर ब्रह्मा सहमपति ने भगवान बुद्ध से कहा: “हे प्रभु, भिक्षु कोकालिका की मृत्यु हो गई है; और मृत्यु के बाद, हे प्रभु, सारिपुत्त और मोग्गलाना के प्रति शत्रुतापूर्ण भाव रखने वाले भिक्षु कोकालिका पद्म नरक में चले गए हैं।” यह कहकर ब्रह्मा सहमपति ने कहा, "हे भिक्षुओं," और मुझे प्रणाम करके, मेरे चारों ओर दाहिनी ओर चलकर वे वहाँ अंतर्धान हो गए।

यह सुनकर एक भिक्षु ने भगवान बुद्ध से पूछा, "हे प्रभु, पद्म नरक में जीवन कितना लंबा है?" "

हे भिक्षु, पद्म नरक में जीवन बहुत लंबा है।"इतने वर्षों, इतने सौ वर्षों, इतने हजार वर्षों या इतने लाख वर्षों की गणना करना आसान नहीं है।

'परन्तु, हे प्रभु, क्या तुलना करना संभव है?'

'हाँ, संभव है, हे भिक्षु'; ऐसा कहकर भगवान बुद्ध ने (इस प्रकार) कहा:

'हे भिक्षु, यदि बीस खरी तिल से भरा एक कोसल भार हो, और कोई व्यक्ति सौ वर्ष बाद उसमें से एक-एक तिल निकालकर खाए, तो हे भिक्षु, इस प्रकार से बीस खरी तिल से भरा वह कोसल भार एक अब्बुद नरक से भी जल्दी समाप्त हो जाएगा; और हे भिक्षु, जैसे बीस अब्बुद नरक हैं, वैसे ही एक निरब्बुद नरक है; और हे भिक्षु, जैसे बीस निरब्बुद नरक हैं, वैसे ही एक अब्बाह नरक है; और हे भिक्षु, जैसे बीस अब्बाह नरक हैं, वैसे ही एक अहाह नरक है;' हे भिक्षु, जैसे बीस अहहा नरक हैं, वैसे ही एक अतता नरक है; हे भिक्षु, जैसे बीस अतता नरक हैं, वैसे ही एक कुमुद नरक है; हे भिक्षु, जैसे बीस कुमुद नरक हैं, वैसे ही एक सोगंधिका नरक है; हे भिक्षु, जैसे बीस सोगंधिका नरक हैं, वैसे ही एक उप्पलाक नरक है; हे भिक्षु, जैसे बीस उप्पलाक नरक हैं, वैसे ही एक पुंडरीका नरक है; हे भिक्षु, जैसे बीस पुंडरीका नरक हैं, वैसे ही एक पद्म नरक है; और हे भिक्षु, सारिपुत्त और मोग्गलाना के प्रति शत्रुतापूर्ण भाव प्रदर्शित करते हुए भिक्षु कोकालिक पद्म नरक में चले गए हैं। भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा, और यह कहने के बाद सुगत गुरु ने आगे इस प्रकार कहा:

1. 'प्रत्येक मनुष्य के जन्म के साथ उसके मुँह में कुल्हाड़ी जन्म लेती है, जिससे मूर्ख व्यक्ति अपशब्द बोलने पर स्वयं को ही काट लेता है। (662)

2. 'जो व्यक्ति निंदनीय की प्रशंसा करता है या प्रशंसनीय की निंदा करता है, वह अपने मुँह में पाप एकत्रित करता है, और उस पाप के कारण उसे कोई आनंद नहीं मिलेगा। (663)

3. 'जुए में धन खोने का पाप तुच्छ है; यह एक बड़ा पाप है जो सुगतों के विरुद्ध मन को भ्रष्ट करता है। (664)

4. 'एक लाख निरब्बुदों में से वह छत्तीस और पाँच अब्बुदों के पास जाता है; क्योंकि वह आर्य (प्रबुद्ध) की निंदा करता है, इसलिए वह अपने वाणी और मन का कुकर्म करने के कारण नरक में जाता है। (665)

5. 'झूठ बोलने वाला नरक में जाता है, या जो कुछ करके कहता है, "मैंने यह नहीं किया है;" मृत्यु के बाद ये दोनों बराबर हो जाते हैं, दूसरे लोक में (वे दोनों) नीच कर्म के दोषी होते हैं। (666)

6. 'जो किसी निर्दोष, पवित्र, पापरहित व्यक्ति को ठेस पहुँचाता है, ऐसे मूर्ख पर बुरा कर्म हवा में फेंकी गई धूल की तरह पलट जाता है। (667)

7. 'जो लोभ के गुण से ग्रस्त होता है, ऐसा व्यक्ति अपनी वाणी में दूसरों की निंदा करता है, (स्वयं) अविश्वासी, कंजूस, विनम्र, कृपण और चुगली करने वाला होता है। (668)

8. 'हे अपशब्द बोलने वाले, झूठे, नीच, निंदा करने वाले, दुष्ट, बुराई करने वाले, नीच, पापी, घटिया जन्म वाले मनुष्य, इस संसार में बकवास मत करो।(अन्यथा) तुम नरक के निवासी बनोगे। (669)

9. 'तुम दूसरों के दुर्भाग्य के लिए अपवित्रता फैलाते हो, तुम धर्मियों की निंदा करते हो, स्वयं पाप करते हो, और बहुत से बुरे कर्म करके तुम लंबे समय तक नरक के कुंड में जाओगे। (670)

10. 'क्योंकि कर्म व्यर्थ नहीं जाते, वे निश्चय ही तुम्हारे पास लौटेंगे, उनका स्वामी उनसे मिलेगा, पाप करने वाला मूर्ख परलोक में अपने आप को पीड़ा देगा। (671)

11. 'जहाँ लोहे की छड़ों से प्रहार किया जाता है, वहाँ वह नुकीले किनारों वाले लोहे के खंभे पर जाता है; फिर वहाँ उसके लिए उपयुक्त भोजन होता है, जो लोहे के लाल-गरम गोले के समान होता है। (672)

12. 'जो लोग वहाँ कुछ कहना चाहते हैं, वे मीठी बातें नहीं कहते, वे प्रसन्न चेहरों के साथ पास नहीं आते; उन्हें अपने कष्टों से शरण नहीं मिलती, वे सुलगते अंगारों पर लेटते हैं, वे धधकती चिता में प्रवेश करते हैं। (673)

13. 'उन्हें जाल से ढककर लोहे के हथौड़ों से मार डालते हैं; वे घने अंधकार में चले जाते हैं, क्योंकि वह पृथ्वी के शरीर के समान फैला हुआ है। (674)

14. 'फिर वे लोहे के बर्तन में प्रवेश करते हैं, वे धधकती चिता में प्रवेश करते हैं, क्योंकि उन्हें उन (लोहे के बर्तनों में) लंबे समय तक उबाला जाता है, चिता में ऊपर-नीचे कूदते हुए। (675)

15. 'फिर जो पाप करता है, वह निश्चित रूप से पदार्थ और रक्त के मिश्रण में उबलता है; वह जिस भी स्थान पर निवास करता है, पदार्थ और रक्त के संपर्क में आने से वह वहाँ सड़ जाता है। (676)

16. 'जो पाप करता है, वह निश्चित रूप से पानी में उबलता है, जो कीड़ों का निवास स्थान है; वहाँ किनारे तक पहुँचना (संभव) नहीं है, क्योंकि बर्तन बिल्कुल एक जैसे हैं। (?) (677)

17. 'फिर वे क्षत-विक्षत अंगों के साथ तीखे असिपत्तवन में प्रवेश करते हैं; जीभ को हुक से पकड़कर, नरक के विभिन्न पहरेदार उन्हें मार डालते हैं। (678)

18. 'फिर वे वेतरानी में प्रवेश करते हैं, जिसे पार करना कठिन है और जिसमें तेज धार वाले उस्तरों की धाराएँ हैं; वहाँ मूर्ख, दुष्ट कर्म करने वाले, बुराई करने के बाद गिर पड़ते हैं। (679)

19. 'वहाँ काले, चित्तीदार कौवों के झुंड रोने वालों को खा जाते हैं, और कुत्ते, सियार, बड़े गिद्ध, बाज़, कौवे उन्हें नोंच डालते हैं। (680)

20. 'यद्यपि यहाँ (नरक में) जीवन दयनीय है जिसे पाप करने वाला मनुष्य देखता है। इसलिए मनुष्य को इस संसार में अपने शेष जीवन में परिश्रमी होना चाहिए, आलसी नहीं। (681)

21. 'बुद्धिमानों द्वारा गिने गए तिल के बीज के वे भार जो पद्म नरक में ले जाए जाते हैं, वे (कई) नहुत और पाँच कोटि, और इसके अतिरिक्त बारह सौ कोटि हैं। (682)

22. 'जब तक इस संसार में नरक को कष्टदायी कहा जाता रहेगा, तब तक लोगों को वहाँ लंबे समय तक रहना पड़ेगा; इसलिए शुद्ध, सौम्य और अच्छे गुणों वाले लोगों को हमेशा वाणी और मन पर नियंत्रण रखना चाहिए।' (683)

कोकालिकासुत्त समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
10. कोकालिकासुत्तं

एवं मे सुतं — एकं समयं भगव सावत्थियं विहारति जेतवने अनाथपिण्डिकस्स अरामे। अथ खो कोकालिको भिक्खु येन भगव तेनुपसंकामि; उपसंकमित्वा भगवन्तं अभिवदेत्वा एकमन्तं निसिदि। एकमंतं निसिन्नो खो कोकालिको भिक्खु भगवन्तं एतदावोचा - "पापिच्चा, भंते, सारिपुत्तमोग्गलाना, पापिकाणं इच्छां वसां गता"ति।
एवं वुट्टे, भगव कोकालिकं भिक्खुं एतादावोका - "मा हेवं, कोकालिका, मा हेवं, कोकालिका!" पसादेही, कोकालिका, सारिपुत्तमोग्गलानेसु चित्तं। पेसला सारिपुत्तमोग्गलाना'ति।
दुतियाम्पि खो...पे... ततियाम्पि खो कोकालिको भिक्खु भगवन्तं एतदावोचा - "किंकापि मे, भन्ते, भगव सद्धायिको पकायिको, अथा खो पपिच्छव सारिपुत्तमोग्गलाना, पापिकाणं इच्छां वसं गता'ति. तत्यामपि खो भगव कोकालिकं भिक्खुं एतदावोचा - "मा हेवं, कोकालिका, मा हेवं, कोकालिका!" पसादेही, कोकालिका, सारिपुत्तमोग्गलानेसु चित्तं। पेसला सारिपुत्तमोग्गलाना'ति।
अथ खो कोकालिको भिक्खु उत्थायसना भगवन्तं अभिवदेत्व पदक्खिनं कत्वा पक्कमि। असिरप्पाक्कनतस्सा च कोकालिकास्सा भिक्खुनो ससपामत्तीहि पिडकाहि सब्बो कायो फूटो [फुठहो (स्या.)] अहोसी; ससपमत्तियो हुत्वा मुग्गमत्तियो अहेसुम; मुग्गमत्तियो हुत्वा कषायमत्तियो अहेसुम; कषायामत्तियो हुत्वा कोलाथिमतिमतियो अहेसुम्; कोलाथिमट्टियो हुत्वा कोलमट्टियो एहेसुं; कोलमत्तियो हुत्वा अमलकमत्तियो अहेसुम; अमलकमट्टियो हुत्वा बेजुवासलातुकमत्तियो अहेसुम; बेउवसलानुकमट्टियो हुत्वा बिलमट्टियो एहेसुं; बिल्मत्तियो हुत्वा पभिज्जिण्सु; पुब्बांका लोहितांका पग्गरिंसु। अथा खो कोकालिको भिक्खु तेनेवाबाधेन कालमाकासि। कालंकतो च कोकालिको भिक्खु पदुमं निरयं उपपज्जि सारिपुत्तमोग्गलानेसु चित्तं अघतेत्वा।
अथ खो ब्रह्मा सहम्पति अभिकान्ताय रत्तिया अभिकान्तवनो केवलकप्पां जेतवनं ओभासेत्व येन भगव तेनुपशंकामि; उपसंकमित्वा भगवन्तं अभिवदेत्वा एकमन्तं अथासि। एकमंतम, थितो खो ब्रह्मा सहमपति भगवन्तं एतदावोका - "कोकालिको, भन्ते, भिक्खु कालान्कतो; कालंकतो च, भंते, कोकालिको भिक्खु पदुमं निरयं उपापन्नो सारिपुत्तमोग्गलानेसु चित्तं अघतेत्व'ति। इदमावोचा ब्रह्मा सहम्पति; इदं वत्वा भगवन्तं अभिवदेत्वा पदक्खिनं कत्वा तत्थेवंतराध्यायि।
अथ खो भगव तस्स रत्तिया अच्चयेन भिक्खु अमांतेसि - "इमं, भिक्खवे, रत्तिं ब्रह्मा सहंपति अभिकांतया रत्तिया...पे... इदामावोका, भिक्खवे, ब्रह्मा सहंपति, इदं वट्वा माम् पदक्खिनं कत्वा तत्थेवंतराध्यायति।
एवं वुट्टे, अन्नतरो भिक्खु भगवन्तं एतदावोचा - "किवदिघं नु खो, भंते, पदुमे निराये अयुप्पमण'न्ति? "दीघं खो, भिक्खु, पदुमे निराये अयुप्पमानं; तं न सुकारं संखातुं एत्तकानि वस्सनि इति वा एत्तकानि वस्ससतानि इति व एत्तकानि वस्ससहसानि इति व एत्तकानि वस्ससतसाहस्सनि इति वा'ति। "सक्का पाना, भंते, उपमा [उपमाम् (सि. स्या. का.)] कातु"न्ति? "सक्का, भिक्खु'ति भगव अवोका - "सेयथापि, भिक्खु, विशतिखारिको कोसलको तिलवाहो; ततो पुरिसो वस्सासतस्स्स्स्स्स्स्स्स्स्सा अचयेना एकमेकं तिलं उधरेय्य। खिप्पतरं खो सो भिक्खु विसतिखारिको कोसलको तिलवाहो इमिना उपक्कमेने परिक्खयं परियादानं गच्चेया, नटवेव एको अब्बुदो निरायो। सेय्याथापि, भिक्खु, विसाति अब्बुदा निराया एवमेको निरब्बुदो निरायो। सेयथापि, भिक्खु, विसाति निरब्बुदा निराया एवमेको अबाबो निरायो। सेय्याथापि, भिक्खु, विसाति अबाबा निराया एवमेको अहाहो निरायो। सेय्यथापि, भिक्खु, विसाति अहा निराया एवमेको अततो निरायो। सेय्याथापि, भिक्खु, विसाति अताता निराया एवमेको कुमुदो निरायो। सेय्याथापि, भिक्खु, विसाति कुमुदा निराया एवमेको सोगंधिको निरयो। सेय्याथापि, भिक्खु, विसाति सौगंधिका निराया एवमेको उप्पलको निरयो। सेयथापि, भिक्खु, विसाति उप्पलका निराया एवमेको पुण्डरीको निरायो। सेयथापि, भिक्खु, विसाति पुण्डरीका निराया एवमेको पदुमो निरायो। पदुमं खो पाना भिक्खु निरायं कोकालिको भिक्खु उपापन्नो सारिपुत्तमोग्गलानेसु चित्तं अघतेत्व'ति। इदमावोच भगव, इदं वत्वान् सुगतो अथापरं एतदावोच सत्था -
662.
"पुरिसस्सा हि जातस्सा, कुठारी [कुधारी (का.)] जायते मुखे;
याया छिन्दति अत्तानं, बालो दुब्भासीतं भानां।
663.
"यो निंदियं पसंसति, तं वा निन्दति यो पसंसियो;
विचिनाति मुखेन सो कलिं, कलिना तेन सुखं न विंदति।
664.
"अप्पमत्तो अयं कलि, यो अक्खेसु धनपराजयो;
सब्बासापि सहापि अत्तना, अयमेव महत्तारो [महंतकारो (सि.)] कलि;
यो सुगतसु मनं पदोसये।
665.
"सतं सहस्नानं निरब्बुदानं, छत्तीसति पंच च अब्बुदानी [अब्बूदानं (का.)];
यमरियागार्हि निरायं उपेति, वाचं मनञ्च पणिधाय पापकं।
666.
"अभूतवादी निरायं उपेति, यो वापि कत्वा न करोमिचा;
उभोपि ते पेक्का समा भवन्ति, निहिनकम्मा मनुजा परत्था।
667.

"यो अप्पादुथस्स नरस्सा दुस्सति, सुद्धस्स पोस्सस अनंगनस्स;
तमेव बालं पचेति पापं, सुखुमो रजो पतिवतव खित्तो।
668.
"यो लोभगुणे अनुयुत्तो, सो वाचसा परिभासति अन्ने;
असद्दो कादारियो अवदान्नु, मच्छरी पेसुनियां [पेसुनियास्मिं (बहुसु)] अनुयुत्तो।
669.
"मुखादुग्गा विभूत अनारिया, भूनाहु [भुनहत (स्या. का.)] पापक दुक्कटकारी;
पुरिसंत काली अवजाता, मा बहुभानिधा नेरायिकोसि।
670.
"राजमाकिरसि अहिताय, संते ग्रहसि किब्बिसकारी;
बहुनि दुष्चरितानि चरित्वा, गच्छसि खो पापतं सिरत्तं।
671.
"न हि नास्सति कस्सासि कम्मं, एति हत् लभतेव सुवामि;
दुक्खं मंडो परलोके, अत्तानि पस्सति किब्बिसकारी।
672.
"अयोशंकुसमाहत्थानं, तिंढाधर्मयसुलमुपेति;
अथ तत्तायोगुस्सन्निभं, भोजनमत्थि तथा पतिरूपं।
673.
"न हि वग्गु वदंति वदंता, नाभिजवंति न तनमुपेंती;
अंगारे संथते सयान्ति [सेन्ति (सि. स्या. पि.)], गिनिसम्पज्जलितं पविसन्ति।
674.
"जालेना च ओनहियाना, तत्थ हनन्ति अयोमयकुतेभि [अयोमयकुतेहि (सि. स्या. पि.)];
अन्धैव तिमिसामयन्ति, तं वितानहि यथा महिकायो।
675.
"अथ लोहमयं पण कुम्भीम्, गिनिसम्पज्जलितं पविसन्ति;
पचन्ति हि तासु सिरारट्टं, अग्निसमासु [गिनिसामसु (का.)] समुप्पिलवते।
676.
"अथ पुब्बलोहितामिस्से, तत्थ किं पच्चति किब्बिसाकरि;
यं यं दिसकं [दिसातम (सि. स्या. पि.)] अधिसेति, तत्थ किलिससति सम्फुसमानो।
677.
"पूववसथे सलिलास्मिं, तत्थ किं पच्चति किब्बिसकारी;
गंतुं न हि तिरुमपत्ति, सब्बासामा हि समंतकपल्ला।
678.
"असिपत्तवनं पण तिन्हं, तं पविसन्ति समुच्चिदगत्ता;
जीवहं बलिसेन गहेत्वा, अराजयाराजया विहनन्ति।
679.
"अथ वेतरनिं पण दुग्गं, तिंहधारखुरधारामुपेंती;
तथा मन्दा पापतन्ति, पापकार पापनि करित्वा।
680.
"खदन्ति हि तथा रुदन्ते, समां सबला काकोलगना च;
सोना सिगला [सिगला (सि. पि.)] पतिगिद्धा [पतिगिज्जा (स्या. पि.)], कुलाला व्यास च [कुलाला च व्यास (?)] वितुदन्ति।
681.
"किच्चा वातायं इधा वुट्टी, यं जानो फुसति [पस्सति (सि. स्या. पि.)] किब्बिसकारी;
तस्मा इधा जीवितसे, किक्काकारो सिया नरो न कप्पमज्जे।
682.
"ते गणित विदुहि तिलवाहा, ये पदुमे निरये उपनिता;
नहुतानि हि कोटियो पञ्च भवन्ति, द्वादसा कोटिशतानि पुनाणा [पनये (का.)]।
683.

"याव दुक्खा [दुक्खा (सि. स्या.), दुक्खा (पि. का.)] निराया इधा वुत्ता, तत्थपि तव सिरं वसिताबं;
तस्मा सुचिपेसलसाधुगुनेसु, वाकं मनं सततं [पकाटं (स्या.)] परिरक्खे"ति।
कोकालिकासुत्तं दशमं निहितं।

पाली-देवनागरी
दस. कोलिकासुत्तं
एवं मे सुतं – एकं समयं भगव सावथ्थं विहारी जेतवने अनाथपिण्डिकस्स आरामे। अथ खो कोकालिको भिक्खु येन भगवा तेनुपसङकमी; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवदेत्व एकमन्तं निसिदि। एकमन्तं निसि साइनो खो कोकालिको भिक्खु भगवन्तं एतदवोच - "पापिच्च, भन्ते, सारिपुत्तमोग्गललाना, पापिकानं इच्छानं वसं गता"ति।
एवं वुत्ते, भगवा कोकालिकं भिक्खुं एतदवोच - "मा हेवं, कोकली, मा हेवं, कोकली! पसादेहि, कोकालिका, सारिपुत्तमोग्गललानेसु चित्तं। पेसला सारिपुत्तमोग्गललाना"ति।
दुतियामपि खो...पे०... तत्यामपि खो कोकालिको भिक्खु भगवन्तं एतदवोच – "किञ्चादपि मे, भन्ते, भगवा साधयिको पच्चचयिको, अथ खो पापिच्छव सारिपुत्तमोग्गललाना, पापिकानं इच्छानं वसं गता"ति। ततियाम्पि खो भगव कोकालिकं भिक्खुं एतदवोच - "मा हेवं, कोकाली, मा हेवं, कोकाली! पसादेहि, कोकालिका, सारिपुत्तमोग्गललानेसु चित्तं। पेसला सारिपुत्तमोग्गललाना"ति।
अथ खो कोकालिको भिक्खु उत्थयासना भगवन्तं अभिवादेत्वा पादखिनं कत्वा पककामि। अचिरप्पकान्तस्स च कोकलीसस भिक्खुनो सस्पमत्तीहि पिळकाहि सब्बो कायो फुटको [फुत्थो (स्या०)] अहोसि; सस्पामत्तियो हुत्वा मुग्गमत्तियो अहेसुं; मुग्मतत्तियो हुत्वा कळायमतयो अहेसुं; कळायमतत्तियो हुत्वा कोल्थतिमत्तियो अहेसुं; कोलथिमट्टियो हुतवा कोलमट्टियो एहेसुं; कोलमट्टियो हुत्वा अमलकमेटियो एहेसुं; अमलकमट्टियो हुत्वा बेळुवसलाटुकमत्तियो अहेसुं; बेळुवसलाटुकमत्तियो हुत्वा बिल्लमत्तियो अहेसुं; बिल्लमट्टयो हुत्वा पभिज्जिंसु; पब्बनच लोहितनच पग्घ्रसिंसु। अथ खो कोकालिको भिक्खु तेनेवाबाधेन कालमाकासि। कालङ्कतो च कोकालिको भिक्खु पदुमं निरयं उपपज्जि सारिपुत्तमोग्गललानेसु चित्तं आघातेत्वा।
अथ खो ब्रह्मा सहम्पति अभिक्रियाकांताय रत्तिया अभिक्रियाकांतवन्नो केवलकप्पं जेतवनं ओभासेत्वा येन भगव तेनुपसङ्मिक; उपसङ्कमित्वा भगवन्तं अभिवदेत्वा एकमन्तं अत्थसि। एकमंतं, थितो खो ब्रह्मा सहम्पति भगवन्तं एतदवोच - "कोकालिको, भन्ते, भिक्खु कालङ्कतो; कालङ्कतो च, भन्ते, कोकालिको भिक्खु पदुमं निरयं उपप संज्ञाओ सारिपुत्तमोग्गलनेसु चित्तं आघातेत्व"ति।
इदमवोच ब्रह्मा सहम्पति; इदं वत्वा भगवन्तं अभिवदेत्व पद्दक्खिनं कत्वा तत्थेवन्तरधायि।
अथ खो भगवा तस्सा रत्तिया अचचयेन भिक्खु अम्नतेसि – "इमं, भिक्खवे, रत्तिं ब्रह्मा सहम्पति अभित्रकन्ताय रत्तिया...पे०... इदमवोच, भिक्खवे, ब्रह्मा सहम्पति, इदं वत्वा मं पादखिनं कत्वा तत्थेवन्तरधायि"ति।
एवं वुत्ते, अञ्जन्तरो भिक्खु भगवन्तं एतदवोच - "कीवदिघं नु खो, भन्ते, पदुमे निरये अयप्पमन्"न्ति? "दीघं खो, भिक्खु, पदुमे निरये आयुप्पमनं; तं न सुकरं सङ्खातुं एत्तकानि वस्सनि इति वा एत्तकानि वस्ससस्सतानि इति वा एत्तकानि वस्ससहस्सनि इति वा एत्तकानि वस्ससत्सहस्सनि इति वा"ति। "सांतरका पन, भंते, उपमा [उपमं (सी० स्या० क०)] कातु"न्ति? "सड़कका, भिक्खु"ति भगवान अवोच - "सेयथापि, भिक्खु, वीसतिखारिको कोसलको तिलवाहो; ततो पुरिसो वससत्सस वससत्सस अच्चचयेन एकमेकं तिलं उद्धेरेय। खिप्पतरं खो सो भिक्खु विसतिखारिको कोसलको तिलवाहो इमिना उपक्राकमेन परिक्खयं परियादानं गच्छेय, नत्वेव एको अब्बुदो निरयो। सेयथापि, भिक्खु, वीसति अब्बुदा निरया एवमेको निरबुदो निरयो। सेयथापि, भिक्खु, वीसति निरबुदा निरया एवमेको अब्बो निरयो। सेयथापि, भिक्खु, विसति अब्बा निरया एवमेको अहहो निरयो। सेयथापि, भिक्खु, विसति अहा निरया एवमेको अत्तो निरयो। सेयथापि, भिक्खु, वीसति अत्ता निरया एवमेको कुमुदो निरयो। सेयथापि, भिक्खु, वीसति कुमुदा निरया एवमेको सोगंधिको निरयो। सेयथापि, भिक्खु, वीसति सोगंधिका निरया एवमेको उप्पलको निरयो। सेयथापि, भिक्खु, वीसति उप्पलका निरया एवमेको पुंडरीको निरयो। सेयथापि, भिक्खु, वीसति पुंडरिका निरया एवमेको पदुमो निरयो। पदुमं खो पन भिक्खु निरयं कोकालिको भिक्खु उपप संज्ञाओ सारिपुत्तमोग्गललानेसु चित्तं आघातेत्व"ति। इदमवोच भगवान, इदं वत्वान् सुगतो अथापरं एतदवोच सत्था -

.

"पुरिस्स्स हि जात्स्स, कुठारी [कुदारी (क०)] जायते मुखे।
याय छिन्दति अत्तानं, बालो दुब्बसितं भानं॥
6.
"यो निंदियं पसंसति, तं वा निंदति यो पसंसियो।
विचिनति मुखेन सो कलिं, कलिना तेन सुखं न विन्दति॥
6
"अप्पमत्तो अयं कलि, यो अक्खेसु धनपराजयो।
सब्बस्सापि सहापि अत्तना, अयमेव महत्तरो [महंतकरो (सी०)] कलि।
यो सुगतेसु मनं पदोसये॥

.

"सतं सहस्सानं निर्बुदानं, छत्तींसति पञ्च च अब्बुदानी [अब्बुदानं (क०)]।
यमरियगृहहि निरयं उपेति, वाचं मन्नदच पणिधाय पापकं॥

.
"अभूतवादी निरयं उपेति, यो वापि कत्वा न करोमिचः।
उभोपि ते पेचच समा भवन्ति, निहीनकम्मा मनुजा पार्थ॥

.
"यो अप्पदुट्ठस्स नरस्स दुस्सि्त, सुधस्स पोस्स अनङ्गनस्स।
तमेव बालं पच्चचेतति पापं, सुखुमो रजो पतिवतव हिततो॥
60.
"यो लोभगुणे अनुयुत्तो, सो वचसा प्रतिभासति अञ्चे।
असद्धो काराडियो अवदान्नु, मखसि पेसुनिअन [पेसुनिउस्मिं (बहुसु)] अनुयुत्तो॥

.
"मुखदुग्ग विभूत अनारिय, भुनहु [भुनहत (स्या० क०)] पापक दुत्कारकारी।
पुरिसन्त काली अवजात, मा बहुभानिध नेरायिकोसि॥
6000.
"रजमाकिरसी अहिताय, संते गरसी किब्बिसकारी।"
बहुनि दुच्चचरितानि चरित्वा, गच्छसि खो पापतं चिररतं॥

.
"न हि नस्सति कश्चि कम्मं, एति हतं लभतेव सुवामि।
दुक्खं मनदो परलोके, अत्तनि पस्सति किब्बिसकारी॥

.
"अयोसङ्कुशसमाहतत्थानं, तिंहधारमयसुलमुपेति।
अथ तत्तअयोग्युळस नारायणं, भोजनमथि तथा पतिरूपं॥

.
"न हि वग्गु वदन्ति वदन्ता, नाभिजवन्ति न तनमुपेन्ति।"
अङ्गारे सन्थते सयन्ति [सेन्ति (सी० स्या० पी०)], गिनिसम्पजदलितं पविसन्ति॥
66.
"जालेन च ओन्हियान, तत् हनन्ति अयोमयकुतेभि [अयोमय कुतेहि (सी० स्या० पी०)]।
अन्धव तिमिसमायन्ति, तं वित्तञ्हि यथा महिकायो॥
650.
"अथ लोहमयं पण कुंभिं, गिनिसम्पजदजलितां पविसन्ति।
पच्च्चन्ति हि तासु चिररतं, अग्गिनिस्मसु [गिनिस्समासु (क०)] समुप्पिलवते॥
6.
"अथ पुब्बलोहितमिस्से, तत्थ किं पच्चचति किब्बिसकारी।
यं यं दिसकं [दिसतं (सी० स्या० पी०)] अधिसेति, तत्थ किलिस्सि्त सम्फुसमानो॥
677.
"पुळवावस्थे सलिलस्मिं, तथा किं पचदचति किब्बिसकारी।
गन्तुं न हि तीरमपति, सब्बसमा हि समन्तकपल्ला॥
678.
"असीप्तवनं पण तिन्हं, तं पविसंति समुच्छिदगत्ता।"
जिह्वं बलिसेन गहेत्वा, अर्जयराजाय विहन्ति॥

.
"अथ वेतरनिं पण दुग्गं, तिंहधारखुरधारमुपेन्ति।
तथा मन्दा पापान्ति, पापकरा पापनि कृत्वा॥

.
"खंडन्ति हि तत् रुदन्ते, समां सबला कालकोगना च।"
सोना सिंगाला [सिगला (सी० पी०)] पतिगिधा [पतिगीज्जा (स्या० पी०)], कुल्ल वैसा च [कुल्ला च वैसा (?)] वितुदन्ति॥
6

"किच्चा वत्यं इध वुति, यं जनो फुसति [पस्सति (सी० स्या० पी०)] किब्बिसकारी।
तस्मा इध जीवितसेसे, किच्चाचक्रो सिया नरो न चप्पमज्ज़े॥

.
"ते गणित विदुहि तिलवहा, ये पदुमे निरये उपनीता।
नहुतानि हि कोटियो पञ्च भवन्ति, द्वादस कोटिस्तानिन पञ्चना [पन्याये (क०)]॥

.
"याव दुखा [दुक्खा (सी० स्या०), दुक्ख (पी० क०)] निरया इध वुत्ता, तत्थपि तव चिरं वसीतब्बं।
तस्मा सुचिपेसलसाधुगुणेसु, वाचं मनं सततं [पक्तं (स्या०)] परिरक्खे"ति॥
कोलिकासुत्तं दशमं निश्चितं।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> सुत्तनिपता >> 3.11 नलकासुत्त
वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

____

पिछला <<<<--->>>> अगला

____

इसी (ऋषि, संत) असिता, जिन्हें कन्हासिरी भी कहा जाता है, ने देवताओं को प्रसन्न देखकर इसका कारण पूछा। बुद्ध के जन्म की खबर सुनकर वे तुषिता स्वर्ग से अवतरित हुए। जब शाक्यों ने उन्हें बालक दिखाया, तो उन्होंने सहर्ष उसे ग्रहण किया और उसके बारे में भविष्यवाणी की। बुद्ध ने असिता की बहन के पुत्र नलका को ज्ञान की सर्वोच्च अवस्था का ज्ञान कराया।

____

अंतर्वस्तु

3.11 नलकासुत्त
अनुवाद
वत्थुगथा।

1. दिन के समय, ईशी (ऋषि, संत) असिता ने तिदास देवताओं के आनंदित, प्रसन्न झुंडों और चमकीले वस्त्र पहने देवताओं को देखा, जो अपने वस्त्र उतारकर लहराते हुए हमेशा इंद्र (देवताओं/देवदूतों के राजा) की स्तुति करते थे। (684)

2. देवताओं को प्रसन्न और प्रसन्न देखकर, और अपना आदर प्रकट करते हुए, उन्होंने उस अवसर पर यह कहा: 'देवताओं की सभा इतनी प्रसन्न क्यों है, वे अपने वस्त्र उतारकर क्यों लहरा रहे हैं? (685)

3. 'जब असुरों से मुठभेड़ हुई, देवताओं की विजय हुई और असुर पराजित हुए, तब ऐसा उल्लास नहीं हुआ था। देवताओं ने ऐसा कौन सा अद्भुत दृश्य देखा है कि वे इतने प्रसन्न हैं? (686)

4. 'वे जयजयकार करते हैं, गाते हैं और संगीत बजाते हैं, वे अपने हथियार लहराते हैं और नाचते हैं; हे मेरु पर्वत के शिखरों पर रहने वालों, मैं आपसे विनती करता हूँ, हे पूजनीय! मेरी शंका को शीघ्र दूर करें! (687)

5. बोधिसत्व, जो उत्कृष्ट मोती हैं, अतुलनीय हैं, मनुष्य जगत में, शाक्यों नगर में, लुम्बिनी देश में, कल्याण और आशीर्वाद के लिए जन्म लेते हैं। इसलिए हम प्रसन्न और अत्यंत प्रसन्न हैं। (688)

6. वे, जो सभी प्राणियों में श्रेष्ठ हैं, सर्वोत्कृष्ट पुरुष हैं, पुरुषों में श्रेष्ठ हैं, सभी प्राणियों में श्रेष्ठ हैं, वे इसिस नदी के नाम पर रखे गए वन में (धम्म का) चक्र चलाएंगे, (वे) गर्जना करते सिंह के समान हैं, पशुओं के बलवान स्वामी हैं।' (689)

7. यह ध्वनि सुनकर वे तुषिता स्वर्ग से अवतरित हुए। फिर वे सुद्धोदन के महल में गए और वहाँ बैठकर शाक्यों से यह कहा: 'राजकुमार कहाँ हैं? मैं उनसे मिलना चाहता हूँ।' (690)

8. तब शाक्यों ने असिता नामक बालक (ऋषि, संत) को राजकुमार का दर्शन कराया, जो चमकते सोने के समान था, जिसे किसी कुशल लोहार ने भट्टी के मुख पर गढ़ा हो, और जो तेज से दमकता हुआ और सुंदर रूप धारण किए हुए था। (691)

9. राजकुमार को अग्नि के समान चमकता हुआ, आकाश में विचरण करते तारों के बैल के समान उज्ज्वल, शरद ऋतु के जलते सूर्य के समान, बादलों से मुक्त देखकर, उन्होंने अत्यंत प्रसन्नता प्राप्त की। (692)

10. देवताओं ने आकाश में हजार वृत्तों और असंख्य शाखाओं वाला एक छत्र धारण किया हुआ था, सोने की छड़ियों से यक्षों की पूंछों को हवा दी जा रही थी, परन्तु यक्षों की पूंछों और छत्र को धारण करने वाले दिखाई नहीं दिए। (693)

11. जटाधारी ऋषि, कन्हासिरी नाम के, ने सोने के सिक्के के समान चमकते पीले कंबल और अपने सिर पर रखे सफेद छत्र को देखकर प्रसन्न और प्रसन्न होकर उनका स्वागत किया। (694)

12. और शाक्यों के बैल को पाकर, जो उसे प्राप्त करना चाहता था और चिन्हों और मंत्रों को जानता था, प्रसन्न मन से उसने ऊँची आवाज़ में कहा: 'यह श्रेष्ठ है, पुरुषों में सबसे उत्तम है।' (695)

13. फिर अपने हिजरत को याद करके वे दुखी हुए और रोने लगे; यह देखकर शाक्यों ने रोते हुए ऋषि से पूछा कि क्या राजकुमार के मार्ग में कोई बाधा होगी? (696)

14. शाक्यों को दुखी देखकर ऋषि ने कहा: 'मुझे राजकुमार के लिए कुछ भी अशुभ याद नहीं है, उनके लिए कोई बाधा नहीं होगी, क्योंकि वे कोई साधारण व्यक्ति नहीं हैं। चिंता न करें। (697)

15. 'यह राजकुमार पूर्ण ज्ञान के शिखर पर पहुंचेगा, वह धम्म का चक्र चलाएगा, वह जो अत्यंत शुद्ध (अर्थात निर्वाण) को देखता है, यह (राजकुमार) जनसमूह के कल्याण के लिए तरसता है, और पवित्र ब्रह्मचर्य पर आधारित उसका मार्ग व्यापक रूप से फैलेगा। (698)

16. 'मेरा जीवन यहाँ शीघ्र ही समाप्त हो जाएगा, मेरे जीवन के मध्य में ही मेरी मृत्यु हो जाएगी; मैं उस अतुलनीय व्यक्ति के धम्म को नहीं सुनूंगा; इसलिए मैं दुखी, दुर्भाग्यशाली और पीड़ित हूं।' (699)

17. शाक्यों को अत्यधिक आनंद देने के बाद वह नगर के भीतरी भाग से धर्मपरायण जीवन व्यतीत करने के लिए निकल पड़ा; परन्तु अपनी बहन के पुत्र पर दया करके उसने उसे उस अतुलनीय व्यक्ति के धम्म को अपनाने के लिए प्रेरित किया। (700)

18. 'जब तुम दूसरों से "बुद्ध" (या) "पूर्ण ज्ञान प्राप्त करने वाला धम्म के मार्ग पर चलता है" का नाम सुनो, तो वहां जाकर विवरण प्राप्त करो और उस भगवान (भगवान बुद्ध) के साथ पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत करो।' (701)

19. उनके द्वारा निर्देशित, मित्रवत मन वाले, जिन्होंने भविष्य में अत्यंत शुद्ध (अर्थात निर्वाण) देखा, नलका, संचित पुण्य कर्मों के ढेर के साथ, और सचेतन इंद्रियों से उनके साथ, जिन (अर्थात बुद्ध) की प्रतीक्षा करते हुए निवास करते रहे। (702)

20. उत्कृष्ट जिन द्वारा धम्म का चक्र घुमाने की ध्वनि सुनकर, और जाकर इसिस नदी के बैल को देखकर, वे परिवर्तित होकर, आशित के आदेश का समय आने पर, प्रख्यात मुनि (संत) से सर्वोत्तम ज्ञान के बारे में पूछने लगे। (703) वत्थुगत

समाप्त।

---

21. 'मैं असिता के इन वचनों को सत्य मानता हूँ, इसलिए हे गौतम (बुद्ध), जो सभी विषयों (धर्म) में परिपूर्ण हैं, हम आपसे पूछते हैं। (704)

22. 'हे मुनि (संत), मैं जो गृहस्थ हूँ और भिक्षु जीवन अपनाना चाहता हूँ, पूछे जाने पर सर्वोच्च अवस्था, ज्ञान (मन्नेय) की अवस्था का अर्थ समझाएँ।' (705)

23. 'मैं तुम्हें ज्ञान की अवस्था के बारे में बताता हूँ,' - भगवान (बुद्ध) ने कहा - 'इसे प्राप्त करना और पालन करना कठिन है; आओ, मैं तुम्हें समझाता हूँ, दृढ़ रहो, स्थिर रहो।' (706)

24. 'मनुष्य को समभाव का अभ्यास करना चाहिए: जिसकी गाँव में निंदा और प्रशंसा दोनों होती है, उसे अपने मन को भ्रष्ट न करने का ध्यान रखना चाहिए, उसे शांत और अहंकार रहित जीवन जीना चाहिए।' (707)

25. 'विभिन्न वस्तुएँ जंगल में आग की लपट की तरह गायब हो जाती हैं; स्त्रियाँ मुनि (संत) को प्रलोभित करती हैं, उन्हें ऐसा नहीं करना चाहिए। (708)

26. 'उन्हें सभी प्रकार के कामुक सुखों को त्यागकर, यौन संबंध से विरक्त होना चाहिए, जीवित प्राणियों के प्रति, चाहे वे कमजोर हों या बलवान, उदासीन और उदासीन रहना चाहिए। (709)

27. 'जैसा मैं हूँ वैसा ही ये हैं, जैसा ये हैं वैसा ही मैं हूँ, दूसरों के साथ स्वयं को जोड़कर, उन्हें न तो हत्या करनी चाहिए और न ही किसी को हत्या करने के लिए प्रेरित करना चाहिए। (710)

28. 'इच्छा और लोभ का त्याग करके, उन्हें ऐसा व्यवहार करना चाहिए जैसे वे स्पष्ट रूप से जानते हों कि एक आम आदमी कहाँ फँस जाता है, उन्हें इस नरक को पार करना चाहिए। (711) 29.

'उन्हें खाली पेट रहना चाहिए, कम भोजन करना चाहिए, उनकी आवश्यकताएँ कम होनी चाहिए और उन्हें लोभी नहीं होना चाहिए; इच्छा से ग्रस्त न होकर वे इच्छाहीन होकर सुखी होंगे। (712)

30. 'भिक्षा मांगने के बाद मुनि (संत) वन के बाहरी इलाके में जाकर किसी वृक्ष की जड़ के पास बैठ जाएं। (713)

31. 'ध्यान में लीन होकर और बुद्धिमान होकर वन के बाहरी इलाके में ही आनंद लें, किसी वृक्ष की जड़ के पास बैठकर ध्यान करें। (714)

32. 'फिर जब रात ढलने लगे तो गांव के बाहरी इलाके में चले जाएं, किसी के निमंत्रण पर प्रसन्न न हों और न ही गांव से लाई गई किसी चीज में रुचि लें। (715) 33.

'गांव जाकर मुनि (संत) जल्दबाजी में घरों की ओर न भटकें; भोजन की तलाश करते समय बातचीत बंद कर दें, कोई भी सार्थक बात न करें। (716)

34. '"मुझे जो अच्छा मिला है," "मुझे कुछ भी अच्छा नहीं मिला," दोनों ही स्थितियों में ऐसा सोचते हुए वे अपरिवर्तित होकर वृक्ष के पास लौट आते हैं। (717)

35. "अपने भिक्षापात्र को हाथ में लिए घूमते हुए, मूक होते हुए भी मूक समझे जाने वाले, उसे छोटे से दान पर लज्जित नहीं होना चाहिए, उसे दाता का तिरस्कार नहीं करना चाहिए। (718)

36. 'समना (भिक्षु) द्वारा दर्शाए गए अभ्यास अनेक हैं, वे दो बार दूसरे किनारे पर नहीं जाते, यह एक बार भी नहीं सोचा गया है। (?) (719)

37. 'जिसके लिए कोई इच्छा नहीं है,जिस भिक्षु ने जीवन के प्रवाह को काट दिया है और सभी प्रकार के कर्मों का त्याग कर दिया है, उसे कोई पीड़ा नहीं होती। (720)

38. 'मैं तुम्हें ज्ञान की अवस्था का वर्णन करता हूँ,' - भगवान बुद्ध ने कहा - 'मनुष्य को उस्तरे की धार के समान होना चाहिए, अपनी जीभ से तालू पर प्रहार करके, अपने पेट के प्रति संयमी होना चाहिए। (721)

39. 'मन को आसक्ति से मुक्त रखना चाहिए, सांसारिक मामलों के बारे में अधिक नहीं सोचना चाहिए, निर्मल, स्वतंत्र और पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन के प्रति समर्पित होना चाहिए। (722)

40. 'एकांत जीवन के लिए और संन्यासियों द्वारा किए जाने वाले सेवा कार्य के लिए, उसे यह सीखना चाहिए कि एकांत ही ज्ञान है; वास्तव में उसे अकेले ही आनंद मिलेगा। (723)

41. 'तब वह दस लोकों में प्रकाशमान होगा, बुद्धिमानों, ध्यान करने वालों और इंद्रिय सुखों का त्याग करने वालों की वाणी सुनकर, मेरे अनुयायी को तब और भी अधिक नम्रता और विश्वास के प्रति समर्पित होना चाहिए।' (724)

42. दरारों और खाइयों में बहते पानी से यह समझो: छोटा पानी शोर मचाता है, विशाल सागर शांत रहता है। (725)

43. जो अपूर्ण है वह शोर मचाता है, जो परिपूर्ण है वह शांत रहता है; मूर्ख आधे भरे घड़े के समान है, बुद्धिमान भरे हुए तालाब के समान है। (726)

44. जब समझदार समना (भिक्षु) बहुत बोलता है, तो वह धर्म का ज्ञान रखते हुए उसका उपदेश देता है, और धर्म का ज्ञान रखते हुए वह बहुत बोलता है। (727)

45. परन्तु जो धर्म का ज्ञान रखते हुए संयमी रहता है, और धर्म का ज्ञान रखते हुए अधिक नहीं बोलता, ऐसा मुनि ज्ञान (मोन) का पात्र होता है, ऐसा मुनि ज्ञान (मोन) प्राप्त कर लेता है। (728)

नलकासुत्त समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
11. नालकसुत्तं
684.
आनंदजाते तिदसगाने पतिते, सक्कञ्च इंदं सुसिवसने च देवे;
दुस्सां गहेत्वा अतिरिवा थोमयंते, असितो इसि अडसा दिवाविहारे।
685.
दिसवना देवे मुदितामाने उडग्गे, चित्तिम करित्वान इदमवोका [करित्वा इदमवोकासि (सि.)] तत्थ;
"किं देवासंघो अतिरिवा कल्यारूपो, दुस्सां गहेत्वा रामयथा [भामयथा (सि.)] किं पटिक्का।
686.
"यदापि असि आसुरेहि संगमो, जयो सुरानां असुर परजिता।
तदापि नेतादिसो लोमहंसनो, किमब्भूतं दातु मारु पमोदिता।
687.
"सेएंति गायंति च वदयन्ति च, भुजानि फोएंति [पोएंति (सी. पी.), पोथेंती (का.)] च नक्कयंती च;
पुच्छमि वोहं मेरुमुद्धवासिने, धुनाथ मे संशयं खिप्पा मारिसा"।
688.
"तो बोधिसत्तो रत्नावरो अतुल्यो, मनुस्सालोके हितसुखत्थाय [हितसुखत्या (सि. स्या. पि.)] जातो;
शाक्याना गामे जनपदे लुम्बिन्ये, तेनम्हा तुत्था अतिरिवा कल्यारूपा।
689.
"तो सब्बसत्तुत्तमो अग्गपुग्गलो, नरसाभो सब्बपजानामुत्तमो;
वट्टेसति चक्कमिसिव्हये वने, नादानव सिहो बलव मिगाभिभू"।
690.
तं सद्दां सुत्वा तुरितमवसारि सो, शुद्धोदनस्सा तदा भवनं उपविसि [उपगामी (सि. पि.)];
निसज्ज तत्थ इदमवोकासि सक्ये, "कुहिं कुमारो अहमपि दथुकामो"।
691.

ततो कुमारं जलितमिव सुवन्नं, उक्कामुखेव सुकुसलसंपहः [सुकुसलेना संपहंठ (का.)];
दद्दल्लमणं [दददहमानं (का.)] सिरिया अनोमवनं, दस्सेसु पुत्तं असितवहयस्सा शाक्य।
692.
दिस्वा कुमारं सिखिमिव पज्जलन्तं, तारसभनव नभसिगमं विशुद्धम्;
सूर्यं तपंतं सारदारिवब्भमुत्तं, आनंदजातो विपुलमलत्था पीतिम्।
693.
अनेकसखांच सहस्समंडलं, चट्टं मारु धारयुमंतलिक्खे;
सुवन्नदंदा विटिपतन्ति चामरा, न डिसरे चामरचट्टगाहका।
694.
दिस्वा जाति कान्हासिरिवहयो इसि, सुवन्नानिक्खं विया पाण्डुकम्बाले;
सेतनच चट्टं धारियंता [धारियंता (स्या.), धारयंतं (सि. का.)] मुद्धनि, उदग्गचित्तो सुमनो पतिग्गहे।
695.
पतिग्गहेत्वा पण शाक्यपुंगवं, जिगिसातो [जिगिसाको (सि. स्या. पि.)] लक्खाणमंतपरागु;
पसन्नचित्तो गिरामब्भुदिरयी, "अनुत्तरायं द्विपादनमुत्तमो" [दीपदानमुत्तमो (सि. स्या. पि.)]।
696.
अत्थत्तनो गमनमनुस्सरन्तो, अकाल्यरूपो गययति अस्सुकानि;
दिस्वाना शाक्य इसिमावोकुं रुदंतम्,
"नो सी कुमारे भविष्यसति अंतरायो"।
697.
दिस्वाना साके इसिमावोका अकाल्ये, " नाहं कुमारे अहितामनुस्सरमि;
न कपिमस्सा भविष्यति अंतरायो, न ओरकायं अधिमानसा [अधिमानसा (सि. स्या.)] भवथ।
698.
"सम्बोधियग्गं फुस्सीसत्यं कुमारो, सो धम्मचक्कं परमविशुद्धदस्सी;
वत्तेसत्सयं बहुजनहितानुकम्पि, विट्ठरिकास्सा भविष्यसति ब्रह्मचर्यम्।
699.
"ममञ्च आयु न सिरमिधावसेसो, अथन्तरा मे भविष्यसति कालकिरिया;
सोहं न सोस्सां [सुस्सां (सि. स्या.)] असमधुरस्सा धम्मं, तेनमहि अत्तो ब्यासनंगतो अघावि"।
700.
तो सकियानं विपुलं जनेत्वा पीतिम्, अंतेपुर्मा निग-गमा [निरागम (सि. स्या.), निगमा (का. सि.), निरागामा (पि.)] ब्रह्मचारी;
तो भगिनेयं सयं अनुकंपमानो, समदपेसि असमधुरस्सा धम्मे।
701.
"बुद्धोति घोषं यदा [यादि (स्या. का.)] परतो सुनासी, संबोधिपट्टो विवरति धम्ममग्गं;
गन्त्वाना तत्थ समयं परिपुच्छमानो [सयं परिपुच्छियानो (सि. स्या.)], कैरसु तस्मिं भगवती ब्रह्मचर्यम्"।
702.
तेनानुसीठो हितमानेन तदिना, अनागते परमविशुद्धदस्सीना;
तो नालको उपसिटपुन्नसञ्चयो, जिनं पतिक्खं [पति + इक्खां = पतिक्खं] परिवासी रक्खितिन्द्रियो।
703.
सुत्वन घोषं जिनवरचक्कवत्तन, गन्त्वान दिस्वा इसिनिसभं पसन्नो;
मन्यसेठं मुनिपवरं अपुच्चि, समागते असितवहायस्स ससानेति।
Vatthugāthā niṭṭhitā.
704.
"अनन्यातामेतं वचनं, असितस्स यथातथं;
तं तं गोतम पुच्छामि, सब्बधम्मना परागुम्।
705.
"अनागरीयुपेतस्स, भिक्खाचारियं जिगिसातो;
मुनि पब्रुहि मे पुत्थो, मनीयां उत्तमं पदं"।
706.
"मनीयं ते उपानिस्सां, (इति भगव) दुक्करं दुरभिसंभवं;

हांदा ते नं पवक्खामि, संतंभस्सु दाहो भव।
707.
"समानभागं कुब्बेथा, गेमे अक्कुथवंदितम्;
मनोपादोसं रक्खेय्य, संतो अनुणतो ध्यान।
708.
"उच्चावचा निच्चरन्ति, दये अग्गिसीखुपमा;
नारियो मुनिं पलोभेंति, तासु तं मा पलोभयुं।
709.
"विरातो मेथुना धम्म, हित्वा कामे परोपरे [परोवरे (सि. पि.), वरवरे (सि.)];
अविरुद्धो असरत्तो, पनेसु तसथवारे।
710.
"यथा अहं तथा एते, यथा एते तथा अहं;
अत्तनं उपमं कत्वा, न हनेया न घटये।
711.
"हित्वा इच्छांच लोभञ्च, यत्थ सत्तो पुथुज्जनो;
चक्खुमा पतिपज्जेय, तारेया नरकं इमामं।
712.
"स्नुदारो मिताहारो, अप्पिचस्सा अलोलूपो;
सदा [सा वे (पी.)] इच्छा निच्चतो, अनिच्चो होती निब्बुतो।
713.
"स पिंडाचरण चरित्वा, वनंतमभिहारये;
उपाथितो रुक्खमूलस्मिं, असानुपगतो मुनि।
714.
"सा झाणपसुतो धीरो, वनंते रमितो सिया;
झायेत् रुक्खमूलस्मिं, अत्तनमभितोसयम्।
715.
"ततो रत्या विवसाने [विवसने (सि. स्या. पि.)], गमंतमभिहारये;
आह्वानं नाभिनन्देय, अभिहारञ्च गमातो।
716.
"न मुनि गमामागम्मा, कुलेसु सहसा ध्यान;
घासेसानां छिन्नकथो, न वाचं प्युतं भने।
717.
"अलत्थं यदिदं साधु, नालत्थं कुसलं इति;
उभयेनेव सो ताड़ी, रुक्खावुपनिवात्तति [रुक्खावु'पतिवत्तति (का.), रुक्खाउउपातिवात्तति (स्या.)]।
718.
"सा पत्तपाणि विकान्तो, अमुगो मुगसम्मतो;
अप्पं दानं न हिदेय्य, दातरं नवाजनिया।
719.
"उच्चवाचा हि पतिपदा, समानेण पाकसिता;
न परं दिगुणं यंति, नायिदं एकगुणं मुतं।
720.
"यस्सा च विसाता नत्थि, छिन्नसोतस्सा भिक्खुनो;
किच्चाकिच्चप्पहिनास्सा, परिषाहो न विज्जति।
721.
"मनीयं ते उपनिस्सां, खुराधारुपमो भवे;
जीवहाय तालुमहच्च, उदारे सननतो सिया।
722.
"अलिनचित्तो च सिया, न कपि बहु चिंताये;

निरामगन्धो असितो, ब्रह्मचर्यपरायणो।
723.
"एकासनस्स सिक्खेथा, समनुपासनस्स च;
एकत्तं मोनमक्खातं, एको सी अभिरामिस्ससि;
अथ भासि [भासिहि (सि. स्या. पि.)] दसादिसा।
724.
"सुत्वा धिरानं निग-घोषं, झायिनं कामचागिनं;
ततो हिरिञ्च साधञ्च, भय्यो कुब्बेथ ममको।
725.
"तं नादिहि विजानाथ, सोब्बेसु पदारेसु च;
सनंता यंति कुसोब्भा [कुसुब्भा (सि.)], तुन्हियंति महोदधि।
726.
" यदुनकं तं सनाति, यं पूर्णं संतमेव तं;
अद्धकुंभोपमो बालो, रहदो पुरोवा पण्डितो।
727.
"यं समणो बहुं भासति, उपेतं अट्ठसंहितां;
जनं सो धम्मं देसेटि, जनं सो बहु भासति।
728.
"यो च जनं संयत्ततो, जनं न बहु भासति;
सा मुनि मोनमरहति, सा मुनि मोनमज्झागा'ति।
नालकसुत्तं एकादसमं नियतं।

पाली-देवनागरी
11. नालकसुत्तं
वसात.
आनंदजाते तिदसगणे पतिते, सखंडच इंदं सुचिवसने च देवे।
दुसं गहेत्वा अतिरिव थोमयन्ते, असितो इसि एडदस दिवविहारे॥

.
दिस्वां देवे मुदितमने उद्ग्गे, चित्तं कारित्वान इदमवोच [कारित्वा इदमवोचासि (सी०)] तथा।
"किं देवसङ्घो अतिरिव कल्यरूपो, दुस्सं गहेत्वा रामयथ [भमयथ (सी०)] किं पतिचत्॥
686.
"यदापि असि असुरेहि सङ्गमो, जयो सुरानं असुर हारा॥
तदापि नेतादिसो लोमहंसनो, किम्बभुतं दत्थु मेरु पमोदिता॥

.
"सेळेन्ति गायन्ति च वद्यन्ति च, भुजानि फोतेन्ति [पोथेन्ति (सी० पी०), पोथेन्ति (क०)] च नचचयन्ति च।
पुच्छमि वोहं मेरुमुद्धवासिने, धुनाथ मे संसयां खिप्प मारिसा"॥
688.
"सोबोधिसत्तो रत्नावरो अतुल्यो, मनुस्सलोके हितसुखथाय [हितसुखताय (सी० स्या० पी०)] जातो।
सक्यां गामे जिलाए लुम्बिनेयये, तेनमह तुत्था अतिरिव कल्यरूपा॥

.
"सो सब्बसत्तुत्तमो अग्गपुग्गलो, नरसाभो सब्बसत्तुत्तमो।
वट्टेस्सति च त्रकमसिव्हये वने, नन्दव सीहो बलवा मगाभिभू"॥
6.
तं सद्दं सुत्वा तुरितमव्सि सो, शुद्धोधनस्स तद भवनं उपावसि [उपगामी (सी० पी०)]।
निस्साज्ज तत्थ इदमवोचासि सकये, "कुहिं कुमारो अहमपि दत्थुकामो"॥

.
ततो कुमारं जलितमिव सुवन्नं, उक्राकामुखेव सुकुसलसंपहट्ठं [सुकुसलेन संपहत्थं (क०)]।
दद्दलल्लमानं [दद्दळहमानं (क०)] सिरिया अनोमवन्नं, दस्सेसु पुत्तं असित्व्हयस सक्या॥

.
दिसवा कुमारं सखिमिव पज्जलन्तं, तारासभं नभसिगमं विशुद्धं।
सूर्यं तपन्तं सरदारिवभमुत्तं, आनंदजातो विपुलमलत्थ पीतिं॥
6.
अनेकसाखं च सहस्समण्डलं, छत्तं मरु धार्युमन्तलिखे।
सुवन्नदं वीतिपतन्ति चामरा, न दिस्सरे चामरचत्तगाहका॥
.
दिस्वा जाति कन्हसिरिवह्यो इसि, सुवन्निक्खं विय पाण्डुकम्बले।
सेतञ्च छत्तं धारियन्त [धारियन्त (स्या०), धारयन्तं (सी० क०)] मुद्धनि, उद्ग्गचित्तो सुमनो पतिग्गहे॥
60% वीडियो.
पतिग्गहेत्वा पन्य सकपुङ्गवं, जिगिसतो [जिगिंसको (सी० स्या० पी०)] लक्खणमंतपरागू।
पस संज्ञाचित्तो गिरम्बुधिरयि, "अनुत्तरायं द्विपदानमुत्तमो" [दीपदानमुत्तमो (सी० स्या० पी०)]॥
.
अथत्तनो गमनमनुस्सरन्तो, अकल्यरूपो गळयति अस्सुकानि।
दिस्वां साक्या इसिम्वोचुं रुदन्तं,
``नो चे कुमारे भविसस्ति अन्तरायो"॥
.
दिस्वां साक्ये इसिमवोच अक्लये, "नहं कुमारे अहितमनुस्सरमि।"
न चापिमस्स भविष्यसति अंतरायो, न ओर्कायं अधिमानसा [अधिमानसा (सी० स्या०)] भवथ॥
.
"संबोधियग्गं फुसिस्तायं कुमारो, सो धम्मचत्रकं परमविसुद्धदासि।
वत्तेस्सतायं बहुजनहितानुकम्पि, विठारिकस्स भविष्यस्ति ब्रह्मचर्यं॥
6.
"ममञ्च आयु न चिरमिधवसेसो, अथन्तरा मे भविस्स्ति कालकिरिया।
सोहं न सोस्सं [सुसं (सी० स्या०)] असमधुरस्स धम्मं, तेनमहि अत्तो बिसनंगतो अघवी"॥
700.
सो साकियानं विपुलं जनेत्वा पीतिं, अन्तेपुर्म्हा निग्मा [निर्गमा (सी० स्या०), निगमा (सी० सी०), निर (पी०)] ब्रह्मचारीगम।
सो भगिनेयं सयं अनुकम्पमानो, समादपेसि असमधुरस धम्मे॥
700.
"बुद्धोति घोसं यद [यद्य (स्या० क०)] परतो सुनासि, सम्बोधिप्ततो विवर्ति धम्ममग्गं।
गन्त्वान तथा समयं परिपुच्छमानो [सयं परिपुच्छियानो (सी० स्या०)], चरस्सु तस्मिन भगवती ब्रह्मचर्यं॥
7.
तेनानुसिट्ठो हितमनेन तादिना, अनागते परमविशुद्धस्सिसना।
सो नालको उपचितपुञ्जनसञ्चयो, जिनं पतिक्खं [पति + इखं = पतिक्खं] परिवसि रक्खितिन्द्रियो॥
70.50.
सुत्वान् घोसं जिनवरच त्रकवत्तने, गन्त्वान् दिस्वा इसिनिसभं पस संज्ञाओ।
मोनेयसेत्थं मुनिपवरं अपुच्छि, समागते असिताव्हयस सस्नेति॥
वथुगाथा निश्चितिता।
7 सप्ताह
"अञ्ञातमेतं वचनं, असितस्स यथातथं।
तं तं गोतम पुच्छमि, सब्बधम्मन पारगुं॥
7
"अंगारियुपेतस्स, भिक्खाचरियं जिगीसतो।
मुनि पब्रुहि मे पुत्थो, मोनेयं उत्तमं पदं॥
7
"मोनेयं ते उपञ्ञिस्सं, (इति भगवान) दु:क्रं दुर्लभसंभवं।"
हन्द ते नं पवक्खामि, सन्तम्भस्सु दाळचो भव॥
700

"समानभागं कुब्बेथ, गमे अकुत्थवंदितं।
मनोपदोसं राखेयय, सन्तो अनुन्नतो चरे॥
7
"उच्चाचावचा निच्छरन्ति, दायये अग्गिसीकूपमा।"
नारियो मुनिं पलोभेन्ति, तासु तं मा पलोभ्युं॥
7
"विरतो मेथुना धम्मा, हित्वा कामे परोपरे [परोवरे (सी० पी०), वरावरे (स्या०)]।
अविरुद्धो असरत्तो, पनेसु तस्थवरे॥
7 100.
"यथा अहं तथा एते, यथा एते तथा अहं।
अत्तनं उपमं कत्वा, न हनेयै न घटये॥
711.
"हित्वा इच्छञ्च लोभञ्च, यथा सत्तो पुथुज्जनो।
चखुमा पटिपजजेय, तरेय नरकं इमं॥
711.
"ऊनुदारो मिताहारो, अप्पिच्छस्स अलोलुपो।
सदा [स वे (पी०)] इच्छाय निच्चतो, अनिच्छो होति निब्बुतो॥
7.15.
"स पिण्डचारं चरित्वा, वनन्तमभिहारये।"
उपत्थितो रुक्खमूलस्मिं, असंरूपपगतो मुनि॥
7
" स झानपसुतो धीरो, वनन्ते रमितो सिया।"
झायेत् रुक्खमूलस्मिं, अत्तनमभितोस्यां॥
71.
"ततो रत्या विवसने [विवसने (सी० स्या० पी०)], गमन्तमभिहारये।
आह्वानं नाभिनन्देय, अभिहारञ्च गमतो॥
7.
"न मुनि गम्मागम्म, कुलेसु सहसा चरे।
घासेसनं छी संज्ञाकथो, न वाचं पयुतं भने॥
71.
"अल्लथं यदिदं साधु, नलथं कुसलं इति।
उभयेनेव सो ताड़ी, रुक्खंवुपनिवत्ति [रुक्खंवु'पतिवत्तति (क०), रुक्खण्व उपतिवत्ति (स्या०)]॥
711.
"स पत्तपाणि विचारन्तो, अमुगो मुगसम्मतो।
अप्पं दानं न हीळेयय, दातारं नावजानिया॥
711.
"उचछावचा हि पतिपदा, समानेन पकासिता।"
न पारं दिगुणं यंति, नयिदं एक्गुणं मुतं॥
725.
"य्स्स च विसाता नत्थि, छि नयनसोतस्स भिक्खुनो।
किचाचाकिचचप्पिनस्स, परिळाहो न विज्जति॥
722.
"मोनेयं ते उपञ्जिस्सं, कुर्धारूपमो भवे।"
जिव्हाय तालुमहच, उदेरे संज्ञतो सिया॥
722.
"अलेनचित्तो च सिया, न चापि बहुचिंतये।
निरामगन्धो असितो, ब्रह्मचर्यपरायणो॥
7.25.

"एकासनस्ससिक्खेथ, समनुपासनसस च।'
एकत्तं मोनमकख्तं, एको चे अभिरमिस्सी।
अथ भासीस [भासिहि (सी० स्या० पी०)] दसदिसा॥
7.
"सुत्वा धीराणं निघोसं, झायिनं कामचागिनं।
ततो हिरिञ्च साधनच, भय्यो कुब्बेथ मामको॥
7
"तं नदीहि विजयनाथ, सोब्बेसु पदरेसु च।
सन्नता यन्ति कुसोब्भा [कुसुब्भा (सी०)], तुन्हियान्ति महोदधि॥
7 2000.
" यदुनकं तं शांति, यं पूर्ण संतमेव तं।
अन्नकुंभोपमो बालो, रहदो पुरोव पण्डितो॥
7
"यं समानो बहुं भासति, उपेतं अथसंघितं।
जानं सो धम्मं देसेति, जानं सो बहु भासति॥
7
"यो च जानं संयत्तो, जानं न बहु भासति।
स मुनि मोनमरहति, स मुनि मोनमज्झगा"ति॥
नालकसुतं एकादसमं निश्चितं।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> सुत्तनिपता >> 3.12 द्वयतानुपासनासुत्त,
वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<--->>>> अगला

दुनिया में सभी दर्द उपाधि, अविज्जा, संखरा विन्नान, चरण, वेदना, तन्हा, उपादान, आरंभ, आहार, इंगिता, निस्साय, रूप, मोसाधम्म, सुखा से उत्पन्न होते हैं।

अंतर्वस्तु

3.12 द्वयतनुपस्सनसूत्र
अनुवाद
मुझे ऐसा सुनने को मिला:

एक समय भगवान (भगवान बुद्ध) श्रावस्ती में पुब्बाराम में, मिगारमाता के निवास स्थान पर थे। उस समय उपोसथ तिथि के पंद्रहवें दिन, पूर्णिमा की शाम को, भगवान (भगवान बुद्ध) भिक्षुओं की सभा से घिरे खुले में बैठे थे। तब भगवान (भगवान बुद्ध) ने भिक्षुओं की मौन सभा का अवलोकन करते हुए उन्हें संबोधित किया (इस प्रकार):

'हे भिक्षुओं, जो भी धर्म (सत्य) अच्छे, श्रेष्ठ, मुक्तिदायक और पूर्ण ज्ञान की ओर ले जाने वाले हैं, उन्हें सुनने से आपको क्या लाभ है? हे भिक्षुओं, यदि कोई ऐसा पूछे, तो उन्हें इस प्रकार उत्तर दिया जाएगा: "हाँ, दो धर्मों की सही समझ के लिए।" "आप किन दो धर्मों की बात कर रहे हैं?" "

(मेरा मतलब है), यह पीड़ा है, यह पीड़ा का मूल है," यह एक विचार है, "यह पीड़ा का नाश है, यह पीड़ा के नाश की ओर ले जाने वाला मार्ग है," यह दूसरा विचार है; अतः, हे भिक्षुओं, जो भिक्षु शिक्षा का विधिवत अध्ययन करता है, परिश्रमी, उत्साही और दृढ़ निश्चयी होता

है, उसे दो फलों में से एक फल की अपेक्षा होती है: इस संसार में पूर्ण ज्ञान, या यदि (पांच) गुणों में से कोई भी शेष रह जाए, तो अनागामिन (जो वापस नहीं लौटता) की अवस्था।' भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा, और जब सुगत ने यह कहा, तो गुरु ने आगे कहा:

1. 'जो लोग पीड़ा और पीड़ा के कारण को नहीं समझते, और जहाँ पीड़ा पूरी तरह से समाप्त हो जाती है, और जो पीड़ा के निवारण का मार्ग नहीं जानते, (729)

2. 'वे, विचार की मुक्ति और ज्ञान की मुक्ति से वंचित, संसार (पुनर्जन्म के चक्र) का अंत करने में असमर्थ हैं, वे निश्चित रूप से पुनर्जन्म और क्षय के चक्र में लीन रहेंगे। (730)

3. 'और जो लोग पीड़ा और पीड़ा के कारण को समझते हैं, और जहाँ पीड़ा पूरी तरह से समाप्त हो जाती है, और जो पीड़ा के निवारण का मार्ग जानते हैं, (731)

4. 'वे, विचार की मुक्ति और ज्ञान की मुक्ति से संपन्न, संसार का अंत करने में सक्षम हैं, वे पुनर्जन्म और क्षय के चक्र में लीन नहीं होंगे। (732)

(ख) "यदि शिक्षा का पूर्ण चिंतन किसी अन्य तरीके से किया जाए," हे भिक्षुओं, यदि कोई ऐसा प्रश्न पूछे, तो उन्हें बताया जाएगा कि ऐसा है, और कैसे है: "जो भी पीड़ा उत्पन्न होती है, वह सब उपाधियों (अस्तित्व के तत्वों) के फलस्वरूप होती है," यह एक विचार है, "परन्तु उपाधियों के पूर्ण विनाश से, यानी वासना के अभाव से, पीड़ा का कोई उद्‌गम नहीं होता," यह दूसरा विचार है; अतः, हे भिक्षुओं, जो भिक्षु शिक्षा का विधिवत चिंतन करता है, जो परिश्रमी, उत्साही और दृढ़ निश्चयी है, उसे दो फलों में से एक फल की प्राप्ति होती है: इस संसार में पूर्ण ज्ञान, या यदि (पाँच) गुणों में से कोई भी शेष रह जाए, तो अनागामिन (जो वापस नहीं लौटता) की अवस्था। भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा, और जब सुगत बुद्ध ने यह कहा, तो गुरु ने आगे कहा: 5. 'संसार में अनेक प्रकार के जितने भी दुख हैं, वे उपाधियों के कारण उत्पन्न होते हैं; जो अज्ञानी उपाधि उत्पन्न करता है, वह मूर्ख फिर से दुख भोगता है; इसलिए बुद्धिमान होकर उपाधि उत्पन्न न करो, क्योंकि दुख का जन्म और उत्पत्ति 733 है।

(सी)' "यदि शिक्षा का पूर्ण विचार किसी अन्य तरीके से किया जाए," हे भिक्षुओं, यदि कोई ऐसा प्रश्न पूछे, तो उन्हें बताया जाएगा, कि ऐसा है, और कैसे है: "जो भी दुख उत्पन्न होता है, वह सब अविज (अज्ञान) का परिणाम है," यह एक विचार है, "परन्तु वासना के अभाव में अविज के पूर्ण विनाश से दुख का कोई उद्‌गम नहीं है," यह दूसरा विचार है; अतः, हे भिक्षुओं, जो भिक्षु शिक्षा का विधिवत अध्ययन करता है, जो परिश्रमी, उत्साही और दृढ़ निश्चयी है, उसे दो फलों में से एक फल प्राप्त होता है: इस संसार में पूर्ण ज्ञान, या यदि पाँचों गुणों में से कोई भी शेष रह जाए, तो अनागामिन (पुनः जन्म न लेने वाला) की अवस्था। यह भगवान बुद्ध ने कहा, और जब सुगत ने यह कहा, तो गुरु ने आगे कहा: 6. 'जो बार-बार जन्म-मृत्यु के संसार में जाते हैं, इस तरह या उस तरह अस्तित्व में आते हैं, वह अविज्या (अज्ञान) की अवस्था है। (734)

7. 'क्योंकि यह अविज्या (अज्ञान) वह महान मूर्खता है जिसके कारण यह (अस्तित्व) दीर्घकाल से गुजरा है, परन्तु जो प्राणी ज्ञान का सहारा लेते हैं वे पुनर्जन्म नहीं लेते। (735)

(घ) "यदि शिक्षा का पूर्ण विचार किसी अन्य तरीके से किया जाए," हे भिक्षुओं, यदि कोई ऐसा प्रश्न करे, तो उन्हें बताया जाएगा कि ऐसा विचार है, और कैसे है: "जो भी पीड़ा उत्पन्न होती है, वह सब संस्कारों (पापों) के फलस्वरूप होती है," यह एक विचार है, "परन्तु कर्मों के अभाव से संस्कारों के पूर्ण नाश से पीड़ा का कोई उद्‌गम नहीं होता," यह दूसरा विचार है; अतः, हे भिक्षुओं, जो भिक्षु शिक्षा का विधिवत विचार करता है, जो परिश्रमी, उत्साही और दृढ़ निश्चयी है, उसे दो फलों में से एक फल की प्राप्ति होती है: इस संसार में पूर्ण ज्ञान, या यदि (पाँच) गुणों में से कोई भी शेष रह जाए, तो अनागामिन (जो वापस नहीं लौटता) की अवस्था।' यह भगवान (बुद्ध) ने कहा। (और) जब सुगत ने यह कहा, तो गुरु ने आगे कहा: 8. 'जो भी पीड़ा उत्पन्न होती है, वह सब संस्कारों के फलस्वरूप होती है; संस्कारों के नाश होने से पीड़ा का कोई स्रोत नहीं रहेगा। (736)

9. 'संस्कारों से उत्पन्न होने वाली इस पीड़ा को दुःख समझकर, समस्त संस्कारों के निवारण और चेतना के नाश होने से पीड़ा का नाश होगा; इसे पूर्णतः समझ लेने पर, (737)

10. 'सच्चे दृष्टिकोण वाले और सिद्ध ज्ञानी, जो (सभी बातों को) पूर्णतः समझ चुके हैं और मृत्यु के देवता (मरा) से सभी संबंध समाप्त कर चुके हैं, वे पुनर्जन्म नहीं लेते। (738)

(ई) "यदि शिक्षा का पूर्ण चिंतन किसी अन्य तरीके से किया जाए," हे भिक्षुओं, यदि कोई ऐसा प्रश्न पूछे, तो उन्हें बताया जाएगा कि ऐसा है, और कैसे है: "जो भी पीड़ा उत्पन्न होती है, वह सब विन्नान (चेतना) के फलस्वरूप होती है," यह एक विचार है, "परन्तु विन्नान के पूर्ण विनाश से, वासना के अभाव से, पीड़ा का कोई उद्‌गम नहीं होता," यह दूसरा विचार है; अतः, हे भिक्षुओं, जो भिक्षु शिक्षा का विधिवत चिंतन करता है, जो परिश्रमी, उत्साही और दृढ़ निश्चयी है, उससे दो फलों में से एक फल की अपेक्षा की जा सकती है: इस संसार में पूर्ण ज्ञान, या, यदि (पाँच) गुणों में से कोई भी शेष रह जाए, तो अनागामिन (जो वापस नहीं लौटता) की अवस्था प्राप्त होती है।" भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा, और जब सुगत ने यह कहा, तो गुरु ने आगे कहा: 11. 'जो भी पीड़ा उत्पन्न होती है, वह सब विन्नन्न के फलस्वरूप होती है; विन्नन्न के नाश से पीड़ा का कोई स्रोत नहीं रह जाता। (739)

12. 'विन्नन्न से उत्पन्न होने वाली इस पीड़ा को दुख मानकर, विन्नन्न के नाश होने से इच्छा से मुक्त भिक्षु पूर्णतः सुखी (परिनिभूत) हो जाता है। (740)

(F) "यदि शिक्षा का पूर्ण चिंतन किसी अन्य तरीके से किया जाए," हे भिक्षुओं, यदि कोई ऐसा प्रश्न पूछे, तो उन्हें बताया जाएगा कि ऐसा है, और कैसे है: "जो भी पीड़ा उत्पन्न होती है, वह सब स्पर्श के कारण होती है," यह एक विचार है, "परन्तु वासना के पूर्ण नाश से, वासना के अभाव से, पीड़ा का कोई उद्‌गम नहीं होता," यह दूसरा विचार है; अतः, हे भिक्षुओं, जो भिक्षु शिक्षा का विधिवत चिंतन करता है, जो परिश्रमी, उत्साही और दृढ़ निश्चयी है, उसे दो फलों में से एक फल की प्राप्ति होती है: इस संसार में पूर्ण ज्ञान, या यदि (पाँच) गुणों में से कोई भी शेष रह जाए, तो अनागामिन (जो वापस नहीं लौटता) की अवस्था। भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा, और जब सुगत ने यह कहा, तो गुरु ने आगे कहा: 13. 'जो लोग फस से ग्रस्त हैं, जो जीवन की धारा का अनुसरण करते हैं, जो बुरे मार्ग पर चल पड़े हैं, उनके लिए बंधनों का नाश बहुत दूर है। (741)

14. 'परन्तु जो लोग फस को पूर्णतः समझकर, जानबूझकर निश्चिंतता में आनंद लेते हैं, वे फस की समझ से और इच्छा से मुक्त होकर पूर्णतः सुखी होते हैं। (742)

(G)'"यदि शिक्षा का पूर्ण विचार किसी अन्य तरीके से किया जाए," हे भिक्षुओं, यदि कोई ऐसा प्रश्न पूछे, तो उन्हें बताया जाएगा, ऐसा है, और कैसे है: "जो भी पीड़ा उत्पन्न होती है वह सब वेदनों (संवेदनाओं) के फलस्वरूप होती है," यह एक विचार है, "परन्तु वासना के अभाव में वेदनों के पूर्ण नाश से पीड़ा का कोई उद्‌गम नहीं होता," यह दूसरा विचार है; अतः, हे भिक्षुओं, जो भिक्षु शिक्षा का विधिवत अध्ययन करता है, जो परिश्रमी, उत्साही और दृढ़ निश्चयी है, उसे दो फलों में से एक फल की प्राप्ति होती है: इस संसार में पूर्ण ज्ञान, या यदि पाँचों गुणों में से कोई भी शेष रह जाए, तो अनागामिन (जो वापस नहीं लौटता) की अवस्था। यह भगवान बुद्ध ने कहा, और जब सुगत ने यह कहा, तो गुरु ने आगे कहा: 15. 'सुख या दुख, सुख और दुख की कमी सहित, जो कुछ भी आंतरिक और बाह्य रूप से अनुभव किया जाता है, (743)

16. 'इसे दुख समझकर, नाशवान और भंगुर को स्पर्श करके, (हर चीज के) क्षय को देखकर, भिक्षु विरक्त हो जाता है, वेदों के क्षय से विवश होकर, और पूर्णतः सुखी हो जाता है। (744)

(एच) "यदि शिक्षा का पूर्ण चिंतन किसी अन्य तरीके से किया जाए," हे भिक्षुओं, यदि कोई ऐसा प्रश्न पूछे, तो उन्हें बताया जाएगा कि ऐसा है, और कैसे है: "जो भी पीड़ा उत्पन्न होती है, वह सब तन्हा (लालसा) का परिणाम है," यह एक विचार है, "परन्तु तन्हा के पूर्ण नाश से, वासना के अभाव से, पीड़ा का कोई उद्‌गम नहीं होता," यह दूसरा विचार है; अतः, हे भिक्षुओं, जो भिक्षु शिक्षा का विधिवत चिंतन करता है, जो परिश्रमी, उत्साही और दृढ़ निश्चयी है, उसे दो फलों में से एक फल की अपेक्षा की जा सकती है: इस संसार में पूर्ण ज्ञान, या, यदि (पांच) गुणों में से कोई भी शेष रह जाए, तो अनागामिन (जो वापस नहीं लौटता) की अवस्था प्राप्त होती है।" भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा, और जब सुगत ने यह कहा, तो गुरु ने आगे कहा: 17. 'तन्हा (लालसा) से ग्रस्त मनुष्य, लंबे समय तक इस या उस प्रकार से जन्म-मृत्यु के चक्र में जन्म लेता रहता है, वह पुनर्जन्म (संसार, पुनर्जन्म चक्र) से मुक्ति नहीं पाता। (745)

18. 'तन्हा के इस दर्द के मूल कारण को दुख मानकर, भिक्षु तन्हा (लालसा) से मुक्त होकर, किसी भी चीज को पकड़े बिना, चिंतनशील होकर विचरण करे। (746)

(I) 'यदि शिक्षा का पूर्ण विचार किसी अन्य तरीके से किया जाए,' हे भिक्षुओं, यदि कोई ऐसा पूछता है, तो उन्हें बताया जाएगा, कि ऐसा है, और कैसे है: 'जो भी पीड़ा उत्पन्न होती है, वह सब उपदानों (लालसाओं) का परिणाम है,' यह एक विचार है, 'परन्तु उपदानों के पूर्ण विनाश से, वासना के अभाव से, पीड़ा का कोई मूल नहीं है,' यह दूसरा विचार है; अतः, हे भिक्षुओं, जो भिक्षु शिक्षा का विधिवत अध्ययन

करता है, जो परिश्रमी, उत्साही और दृढ़ निश्चयी है, उसे दो फलों में से एक फल प्राप्त होता है: इस संसार में पूर्ण ज्ञान, या यदि पाँचों गुणों में से कोई भी शेष रह जाए, तो अनागामिन (पुनः जन्म न लेने वाला) की अवस्था। यह भगवान बुद्ध ने कहा, और जब सुगत ने यह कहा, तो गुरु ने आगे कहा: 19. 'अस्तित्व उपदानों का परिणाम है; जो अस्तित्व में आया है वह भोगता है, जो जन्म लेता है वह मरता है, यही भोग का कारण है। (747)

20. 'अत: उपदानों के नाश होने पर, पूर्ण ज्ञान से युक्त ज्ञानी भिक्षु, पुनर्जन्म के नाश को देखकर, पुनः जन्म लेने के लिए नहीं जाते। (748)

(जे) "यदि शिक्षा का पूर्ण चिंतन किसी अन्य तरीके से किया जाए," हे भिक्षुओं, यदि कोई ऐसा प्रश्न पूछे, तो उन्हें बताया जाएगा कि ऐसा है, और कैसे है: "जो भी पीड़ा उत्पन्न होती है, वह सब आरंभों (प्रयासों) का परिणाम है," यह एक विचार है, "परन्तु आरंभों के पूर्ण नाश से, वासना के अभाव में, पीड़ा का कोई उद्गम नहीं होता," यह दूसरा विचार है; अतः, हे भिक्षुओं, जो भिक्षु शिक्षा का विधिवत चिंतन करता है, जो परिश्रमी, उत्साही और दृढ़ निश्चयी है, उसे दो फलों में से एक फल की अपेक्षा की जा सकती है: इस संसार में पूर्ण ज्ञान, या, यदि (पाँच) गुणों में से कोई भी शेष रह जाए, तो अनागामिन (जो वापस नहीं लौटता) की अवस्था प्राप्त होती है।" भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा, और जब सुगत ने यह कहा, तो गुरु ने आगे कहा: 21. 'जो भी पीड़ा उत्पन्न होती है, वह सब आरंभों (पापों, इच्छाओं) का परिणाम है; आरंभों के नाश से पीड़ा का कोई स्रोत नहीं रह जाता। (749)

22, 23. 'आरम्भों से उत्पन्न होने वाली इस पीड़ा को दुख मानकर, सभी आरंभों का त्याग करके, जो भिक्षु अनायास ही मुक्त हो गया है, जिसने जीवन की इच्छा को त्याग दिया है, और जिसका मन शांत है, वह पुनर्जन्म और जन्म-जन्म के चक्र से मुक्त हो गया है; उसके लिए कोई पुनर्जन्म नहीं है। (750, 751)

(के) "यदि शिक्षा का पूर्ण चिंतन किसी अन्य तरीके से किया जाए," हे भिक्षुओं, यदि कोई ऐसा प्रश्न पूछे, तो उन्हें बताया जाएगा, ऐसा है, और कैसे है: "जो भी पीड़ा उत्पन्न होती है, वह सब आहारों (भोजन?) के फलस्वरूप होती है," यह एक विचार है, "परन्तु वासना के अभाव में आहारों के पूर्ण विनाश से पीड़ा का कोई उद्गम नहीं होता," यह दूसरा विचार है; अतः, हे भिक्षुओं, जो भिक्षु शिक्षा का विधिवत चिंतन करता है, जो परिश्रमी, उत्साही और दृढ़ निश्चयी है, उससे दो फलों में से एक फल की अपेक्षा की जा सकती है: इस संसार में पूर्ण ज्ञान, या, यदि (पाँच) गुणों में से कोई भी शेष रह जाए, तो अनागामिन (जो वापस नहीं लौटता) की अवस्था।' भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा, और जब सुगत ने यह कहा, तो गुरु ने आगे कहा: 24. 'जो भी पीड़ा उत्पन्न होती है, वह सब आहारों का परिणाम है; आहारों के नाश से पीड़ा का कोई कारण नहीं रह जाता। (752)

25. 'इस पीड़ा को, जो आहारों से उत्पन्न होती है, दुःख समझकर, सभी आहारों का परिणाम देखकर, सभी आहारों का सहारा न लेकर, (753)

26. 'यह देखकर कि स्वास्थ्य इच्छाओं के नाश से प्राप्त होता है, जो विवेकपूर्ण सेवा करता है और धर्म में दृढ़ रहता है, उसे विद्यमान, सिद्ध नहीं माना जा सकता। (754)

(एल) "यदि शिक्षा का पूर्ण चिंतन किसी अन्य तरीके से किया जाए," हे भिक्षुओं, यदि कोई ऐसा प्रश्न पूछे, तो उन्हें बताया जाएगा कि ऐसा है, और कैसे है: "जो भी पीड़ा उत्पन्न होती है, वह सब आवेग (उत्तेजना) के कारण होती है," यह एक विचार है, "परन्तु आवेग के पूर्ण नाश से, वासना के अभाव से, पीड़ा का कोई स्रोत नहीं होता," यह दूसरा विचार है; अतः, हे भिक्षुओं, जो भिक्षु शिक्षा का विधिवत चिंतन करता है, जो परिश्रमी, उत्साही और दृढ़ निश्चयी है, उसे दो फलों में से एक फल की अपेक्षा की जा सकती है: इस संसार में पूर्ण ज्ञान, या, यदि (पाँच) गुणों में से कोई भी शेष रह जाए, तो अनागामिन (जो वापस नहीं लौटता) की अवस्था प्राप्त होती है।" भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा, और जब सुगत ने यह कहा, तो गुरु ने आगे कहा: 27. 'जो भी पीड़ा उत्पन्न होती है, वह सब अंतर्मन के कारण होती है; अंतर्मन के नाश से पीड़ा का कोई स्रोत नहीं रह जाता। (755)

28. 'अंतरमन से उत्पन्न होने वाली इस पीड़ा को दुख मानकर, अंतर्मन का त्याग करके और संस्कारों (पापों, कर्मों, आदतों) को रोककर, भिक्षु (भिक्षु) इच्छा से मुक्त होकर और किसी भी चीज को न पकड़कर, चिंतनशील होकर विचरण करे। (756)

(एम)'"यदि शिक्षा का पूर्ण चिंतन किसी अन्य तरीके से किया जाए," हे भिक्षुओं, यदि कोई ऐसा पूछता है, तो उन्हें बताया जाएगा, ऐसा है, और कैसे है: "निश्चय (आश्रित) के लिए दुविधा होती है," यह एक विचार है, "स्वतंत्र (मनुष्य) दुविधा में नहीं रहता," यह दूसरा विचार है; अतः, हे भिक्षुओं, जो भिक्षु शिक्षा का विधिवत अध्ययन करता है, जो परिश्रमी, उत्साही और दृढ़ निश्चयी है, उसे दो फलों में से एक

फल प्राप्त होता है: इस संसार में पूर्ण ज्ञान, या यदि पाँचों गुणों में से कोई भी शेष रह जाए, तो अनागामिन (पुनर्जन्म न लेने वाला) की अवस्था। यह भगवान बुद्ध ने कहा, और जब सुगत ने यह कहा, तो गुरु ने आगे कहा: 29. 'स्वतंत्र (मनुष्य) विचलित नहीं होता, और आश्रित (मनुष्य) किसी न किसी रूप में अस्तित्व को थामे रखकर संसार (पुनर्जन्म के चक्र) को पार नहीं कर पाता। (757)

30. 'इसे दु:ख समझकर और जिन चीजों पर तुम निर्भर हो उनमें बड़ा खतरा देखकर, भिक्षु को स्वतंत्र रूप से, किसी भी चीज को थामे बिना, विचारशील होकर विचरण करना चाहिए। (758)

(एन) "यदि शिक्षा का पूर्ण चिंतन किसी अन्य तरीके से किया जाए," हे भिक्षुओं, यदि कोई ऐसा प्रश्न पूछे, तो उन्हें बताया जाएगा, ऐसा है, और कैसे है: "हे भिक्षुओं, निराकार (प्राणी) रूप (अर्थात रूप धारण करने वाले) से अधिक शांत हैं," यह एक चिंतन है, "निरस्त निराकार से अधिक शांत है," यह दूसरा चिंतन है, "इस प्रकार, हे भिक्षुओं, जो भिक्षु शिक्षा का विधिवत चिंतन करता है, जो परिश्रमी, उत्साही और दृढ़ है, उसे दो फलों में से एक फल प्राप्त होता है: इस संसार में पूर्ण ज्ञान, या, यदि (पांच) गुणों में से कोई भी शेष रहता है, तो अनागामिन (जो वापस नहीं लौटता) की अवस्था प्राप्त होती है।" यह भगवान बुद्ध ने कहा, और जब सुगत ने यह कहा, तो गुरु ने आगे कहा: 31. 'जो प्राणी सजीव हैं, और जो निराकार (जगत) में निवास करते हैं, वे मृत्यु के रहस्य को न जानते हुए पुनर्जन्म के लिए विवश हैं। (759)

32. 'परन्तु जो सभी रूपों को पूर्णतः समझकर निराकार (जगत) में स्थिर रहते हैं, जो मृत्यु के रहस्य में मुक्त हो जाते हैं, वे मृत्यु को त्याग देते हैं। (760)

(हे) 'यदि शिक्षा का पूर्ण विचार किसी अन्य तरीके से किया जाए,' हे भिक्षुओं, यदि कोई ऐसा प्रश्न पूछे, तो उन्हें बताया जाएगा, कि ऐसा है, और कैसे है: 'मनुष्य जगत, देवताओं (देवदूतों), मार (राक्षस), ब्रह्मा (प्रधान देवदूत), और समन (भिक्षुओं), ब्राह्मणों (पुजारियों), देवताओं और मनुष्यों के बीच जिसे सत्य माना गया है, वह श्रेष्ठ लोगों द्वारा अपने पूर्ण ज्ञान से वास्तव में असत्य सिद्ध हो गया है,' यह है एक विचारणीय बिंदु यह है कि, "हे भिक्षुओं, मनुष्यों के संसार, देवताओं, मार, ब्रह्मा और सामनों (भिक्षुओं), ब्राह्मणों (पुजारियों), देवताओं और मनुष्यों के बीच जिसे असत्य माना गया है, वही सत्य श्रेष्ठ भिक्षुओं द्वारा अपने पूर्ण ज्ञान के माध्यम से सिद्ध हुआ है।" यह एक अन्य विचारणीय बिंदु है। अत:, हे भिक्षुओं, जो भिक्षु शिक्षा का विधिवत अध्ययन करता है, जो परिश्रमी, उत्साही और दृढ़ निश्चयी है, उससे दो फलों में से एक फल की अपेक्षा की जा सकती है: इस संसार में पूर्ण ज्ञान, या यदि (पांच) गुणों में से कोई भी शेष रह जाए, तो अनागामिन (जो वापस नहीं लौटता) की अवस्था। भगवान बुद्ध ने ऐसा कहा, और जब सुगत ने यह कहा, तो गुरु ने आगे कहा: 33. 'असत्य में सत्य को देखकर, नाम और रूप में निवास करने वाले मनुष्यों और देवताओं के संसार को देखकर, वह सोचता है: "यह सत्य है।" (761)

34. 'वे चाहे जिस तरह से भी सोचें, वह उनके लिए असत्य हो जाता है, और जो असत्य है वह नाशवान है। (762)

35. 'जो असत्य नहीं है, निर्वाण (मुक्ति, मोक्ष, अमरता), जिसे श्रेष्ठ लोग सत्य मानते हैं, वे सत्य की समझ से इच्छा से मुक्त होकर पूर्णतः सुखी हो जाते हैं। (763)

(P) "यदि शिक्षा का पूर्ण विचार किसी अन्य तरीके से किया जाए," हे भिक्षुओं, यदि कोई ऐसा प्रश्न पूछे तो उन्हें बताया जाएगा कि ऐसा विचार है और कैसे है: "हे भिक्षुओं, मनुष्यों, देवताओं, मार, ब्रह्मा और सामन, ब्राह्मण, देवताओं और मनुष्यों के बीच जिसे सुख माना गया है, वही श्रेष्ठ भिक्षुओं ने अपने पूर्ण ज्ञान से वास्तव में कष्ट सिद्ध किया है," यह एक विचार है; "हे भिक्षुओं, मनुष्यों, देवताओं, मार, ब्रह्मा और सामन, ब्राह्मण, देवताओं और मनुष्यों के बीच जिसे कष्ट माना गया है, वही श्रेष्ठ भिक्षुओं ने अपने पूर्ण ज्ञान से वास्तव में सुख सिद्ध किया है," यह दूसरा विचार है।" अत:, हे भिक्षुओं, जो भिक्षु शिक्षा का विधिवत अध्ययन करता है, जो परिश्रमी, उत्साही और दृढ़ निश्चयी है, उससे दो फलों में से एक फल की अपेक्षा की जा सकती है: इस संसार में पूर्ण ज्ञान, या यदि पाँचों गुणों में से कोई भी शेष रह जाए, तो अनागामिन (जो वापस नहीं लौटता) की अवस्था। यह भगवान बुद्ध ने कहा, और जब सुगत ने ऐसा कहा, तो गुरु ने आगे कहा: 36. 'रूप, ध्वनि, स्वाद, गंध और स्पर्श सभी वांछनीय हैं, जब तक वे बने रहते हैं तब तक सुखद और आकर्षक होते हैं, ऐसा कहा जाता है। (764)

37. 'तुम्हारे द्वारा, मनुष्य और देवता के संसार द्वारा ये (चीजें) सुख मानी जाती हैं, परन्तु जब वे समाप्त हो जाती हैं तो वे इसे दु:ख मानते हैं। (765)

38. 'कुलीनों द्वारा विद्यमान शरीर का अंत सुख माना जाता है; यह सांसारिक (मान्यता) के विपरीत है। (766)

39. 'जो वे (सांसारिक) सुख कहते हैं, उसे श्रेष्ठ (आर्य, अरहत, प्रबुद्ध) पीड़ा कहते हैं, जो वे पीड़ा कहते हैं, उसे श्रेष्ठ (आर्य) आनंद के रूप में जानते हैं। (767)

देखो, यहाँ एक ऐसा धर्म है जिसे समझना कठिन है, यहाँ अज्ञानी भ्रमित हैं, वे केवल अंधकार देखते हैं। (768)

40. 'जो (सांसारिक) रूप से घिरे हैं, उनके लिए उदासी है, जो नहीं देखते, उनके लिए अंधकार है, और अच्छे लोगों के लिए यह प्रकट प्रकाश है, जो देखते हैं, उनके लिए प्रकाश है; (निकट होने पर भी), जो मार्ग और धर्म से अनभिज्ञ हैं, वे (कुछ भी) नहीं समझ पाते। (769)

41. 'जो लोग जीवन के जुनून से अभिभूत हैं, जो जीवन की धारा का अनुसरण करते हैं, जो मृत्यु के लोक में प्रवेश कर चुके हैं, वे इस धर्म को पूरी तरह से नहीं समझ पाते। (770)

42. 'अरुद्ध (पूर्णतः प्रबुद्ध) अरहत की पूर्णतः जागृत अवस्था को केवल कौन प्राप्त कर सकता है? इस अवस्था को पूर्णतः समझ लेने पर, वासना से मुक्त लोग पूर्णतः निर्वाण (अमरता) प्राप्त कर लेते हैं।' (771)

ये शब्द भगवान (भगवान बुद्ध) ने कहे। भगवान (भगवान बुद्ध) के वचन सुनकर वे भिक्षु प्रसन्न हुए। जब यह व्याख्या दी जा रही थी, तब साठ भिक्षुओं के मन किसी भी बात को पकड़े बिना मुक्त हो गए।

द्वयतनुपस्सनासुत्त समाप्त हुआ।

महावग्ग समाप्त हुआ।

____

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

____

पाली-रोमन
12. द्वयतानुपासनासुत्तम्
एवं मे सुतम् - एकं समयं भगव सावत्थियं विहारति पुब्बारामे मिगारामतुपासदे। तेन खो पना समयेन भगवान तदाहुपोषथे पन्नरासे पुन्नया पुनमाया रत्तिया भिक्खुसंघपरिवुतो अब्भोकसे निस्न्नो होति। अथ खो भगव तुन्हिभूतं तुन्हिभूतं भिक्खुसंघं अनुविलोकेत्वा भिक्खु अमांतेसि -

''ये ते, भिक्खवे, कुसाला धम्म अरिया निय्यनिक संबोधगामिनो, तेसां वो, भिक्खवे, कुसलानां धम्मनां अरियाणं निय्यानिकं संबोधगामिनं का उपनिसा सवानायति इति सी, भिक्खवे, पुच्छितरो अस्सु, ते एवमसु वचन्या - 'यावदेव द्वयतानां धम्मनां यथाभूतं नाणायति। किञ्च द्वयत् वदेतः?
(1) ''इदं दुक्खं, अयं दुक्खसमुदयोति अयमेकनुपासना। अयं दुक्खनिरोधो, अयं दुःखनिरोधगामिनी पतिपदाति, अयं दुत्यानुपासना। एवं सम्मा द्वयतानुपस्सिनो खो, भिक्खवे, भिक्खुनो अप्पमत्तस्सा अतापिनो पहितत्तस्सा विहारतो द्विन्नं फलानां अनंतारं फलं पटिकंखां - दिट्ठेव्ह धम्मे अनाना, सति वा उपादिसे अनागमिता'ति।
इदमवोका भगव। इदं वत्वान् सुगतो अथापरं एतदावोच सत्था -
729.
''ये दुक्खं नप्पजानन्ति, अथो दुक्खस्सा संभवं;
यत्थ च सब्बासो दुक्खं, असेसं उपरुज्जति;
तन्च मग्गं न जानन्ति, दुक्खुपासमगामिनं।
730.
''सीतोविमुत्तहिना ते, अथो पन्नविमुत्तिया;
अभब्बा ते अंतकिरियाया, ते वे जातिजरूपगा।
731.
''ये च दुक्खं पजानन्ति, अथो दुक्खस्सा संभवं;
यत्थ च सब्बासो दुक्खं, असेसं उपरुज्जति;

तन्च मग्गं पजानन्ति, दुक्खुपासमगामिनं।
732.
"सीतोविमुत्तिसम्पन्ना, अथो पन्नविमुत्तिया;
भब्बा ते अंतकिरियाया, न ते जातिजरूपगा'ति।
(2) "सिया अण्णेनपि परियायेन सम्मा द्वयतानुपासनाति, इति सी, भिक्खवे, पुच्चितरो अस्सु; 'सिया'तिस्सु वचनिया'। कथंका सिया? यं किंचि दुक्खं सम्भोति सब्बं उपाधिपच्चयति, अयमेकनुपासना। उपाधीनं त्वेव असेसविरागणिरोध नत्थि दुक्खस्सा संभवोति, अयं दुत्यानुपासना। एवं सम्मा...पे... अथापरं एतदावोच सत्था -
733.
"उपधिनिदाना पभवन्ति दुक्खा, ये केचि लोकस्मिमनेकरुपा;
यो वे अविद्वा उपधिं करोति, पुनप्पुणं दुक्खमुपेति मंदो;
तस्मा पजानं उपधिं न कयिरा, दुक्खस्सा जातिप्पभवानुपासि'ति।
(3)"'सिय अन्ननेपि परियायेन सम्मा द्वयतानुपस्सनाति, इति सी, भिक्खवे, पुच्चितरो अस्सु; 'सिया'तिस्सु वचनिया'। कथंका सिया? यं किंचि दुक्खं सम्भोति सब्बं अविज्जपच्चयति, अयमेकनुपासना। अविज्जाया त्वेव असेसविरागनिरोध नत्थि दुक्खस्सा संभवोति, अयं दुतियानुपासना। एवं सम्मा...पे... अथापरं एतदावोच सत्था -
734.
" जातिमरणसंसारं, ये वजंति पुनप्पुनं;
इत्थभावान्नथाभावं, अविज्जायेव स गति।
735.
"अविज्जा हयं महामोहो, येनिदं संसितं सिरं;
विज्जगता च ये सत्ता, न ते गच्छन्ति [नागच्छन्ति (सि. पि.)] पुनाभव"न्ति।
(4) "सिअ अण्णेणपि...पे... कथाञ्च सिय्? यं किंचि दुक्खं सम्भोति सब्बं संखारापच्चयति, अयमेकनुपस्सना। संखारणं त्वेव असेसविरागणिरोध नत्थि दुक्खस्सा संभवोति, अयं दुत्यानुपासना। एवं सम्मा...पे... अथापरं एतदावोच सत्था -
736.
"यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति, सब्बं संखारापच्चया;
संखारणं निरोधेन, नत्थि दुक्खस्सा संभवो।
737.
"एतमदीनवं नात्वा, दुक्खं संखारापच्चया;
सब्बासंखरसमथा, संनानं उपरोधन;
एवं दुक्खक्खयो होति, एतं नात्वा यथातथम्।
738.
"सम्मद्दसा वेदागुणो, सम्मदन्याय पंडिता;
अभिभुयं मरसंयोगं, न गच्छन्ति [नागच्छन्ति (सि. पि.)] पुनाभव"न्ति।
(5) "सिअ अण्णेणपि...पे... कथाञ्च सिय्? यं किंचि दुक्खं सम्भोति सब्बं विन्ननपच्चयति, अयमेकनुपासना। विनाशस त्वेव असेसाविरागनिरोध नत्थि दुक्खस्सा संभवोति, अयं दुतियानुपासना। एवं सम्मा...पे... अथापरं एतदावोच सत्था -
739.
"यं किंचि दुक्खं सम्भोति, सब्बां विणनापच्चया;
विनन्नास्सा निरोधेन, नत्थि दुक्खस्सा संभवो।
740.
"एतमदीनवं नात्वा, दुक्खं विनाणपच्चया;
विन्ननुपसमा भिक्खु, निच्चतो परिनिब्बुतो'ति।
(6) "सिअ अण्णेणपि...पे... कथाञ्च सिय्? यं किंचि दुक्खं संभोति सब्बं फस्सापच्चयति, अयमेकनुपासना। फस्स्सा त्वेव असेसाविरागणिरोध नत्थि दुक्खस्सा संभवोति, अयं दुतियानुपासना। एवं सम्मा...पे... अथापरं एतदावोच सत्था -
741.
"तेसं फस्सपरेताणं, भवसोतानुसारिनां;
कुम्मग्गपतिपन्नानं, अरा संयोगनक्खयो।
742.
"ये च फस्सां परिणया, अनन्यायुपासमे [पन्या उपसमे (स्या.)] रता;
ते वे फस्साभिसमय, निच्चता परिणिबुता'ति।

(7) "सिअ अण्णेणपि...पे... कथाञ्च सिय्? यं किंचि दुक्खं सम्भोति सब्बं वेदानापच्चयति, अयमेकनुपासना। वेदानां त्वेव असेसविरागणिरोध नत्थि दुक्खस्सा संभवोति, अयं दुत्यानुपासना। एवं सम्मा...पे... अथापरं एतदावोच सत्था -
743.
"सुखं वा यदि वा दुक्खं, अदुक्खमसुखं सह;
अज्झत्तञ्च बहिद्ध च, यं किञ्च अत्थि वेदितम्।
744.
"एतं दुक्खंति नात्वाना, मोसाधम्मं पलोकिनं [पलोकितं (सि.)];
फुस्सा फुस्सा वयं पासं, एवं तत्थ विजानति [विरज्जति (का. सी.)];
वेदानां खय भिक्खु, निच्चतो परिनिब्बुतो'ति।
(8) "सीय अण्णेणपि...पे... कथाञ्च सय? यं किंचि दुक्खं सम्भोति सब्बं तन्हापच्चयति, अयमेकनुपासना। तन्हाय त्वेव असेसविरागनिरोध नत्थि दुक्खस्सा संभवोति, अयं दुतियानुपासना। एवं सम्मा...पे... अथापरं एतदावोच सत्था -
745.
"तन्हादुतियो पुरिसो, दीघमधना संसारम्;
इत्थभावान्नथाभावं, संसारं नातिवत्तति।
746.
"एतमादीनवं नत्वा, तन्हां [तंहा (बहुसु) इतिवुत्तके 15 पासितब्बां] दुक्खस्सा संभवं;
वितातन्हो अनादानो, सातो भिक्खु परिब्बजे'ति।
(9) "सिअ अण्णेणपि...पे... कथाञ्च सिय्? यं किंचि दुक्खं सम्भोति सब्बं उपादानपच्चयति, अयमेकनुपासना। उपादाननम् [उपादानस्सा (स्या. का.)] त्वेव असेसाविरागणिरोध नत्थि दुक्खस्सा संभवोति, अयं दुतियानुपासना। एवं सम्मा...पे... अथापरं एतदावोच सत्था -
747.
"उपादानपच्चया भावो, भूतो दुक्खं निगच्छति;
जतस्सा मरणं होति, एसो दुक्खस्सा संभवो।
748.
"तस्मा उपादानक्खया, सम्मादानन्या पंडिता;
जातिक्खयं अभिनयाय, न गच्छन्ति पुनाभवाऽन्ति।
(10) "सिअ अण्णेणपि...पे... कथाञ्च सिय्? यं किंचि दुक्खं सम्भोति सब्बं आरंभपच्चयति, अयमेकनुपासना। अरामभानं त्वेव असेसविरागनिरोध नत्थि दुक्खस्सा संभवोति, अयं दुतियानुपासना। एवं सम्मा...पे... अथापरं एतदावोच सत्था -
749.
"यं किंचि दुक्खं सम्भोति, सब्बं आरंभपच्चया;
अरामभानं निरोधेन, नत्थि दुक्खस्सा संभवो।
750.
"एतमादिनवं नात्वा, दुक्खं आरंभपच्चया;
सब्बारंभं पतिनिस्साज्ज, अनारंभे विमुत्तिनो।
751.
"उच्चिन्नभवतानहस्स, संतचित्तस्स भिक्खुनो;
विक्खिनो [वितिणो (सि.)] जतिसंसारो, नत्थि तस्स पुणब्भवो'ति।
(11) "सीय अण्णेनपि...पे...कथञ्च सिया?" यं किंचि दुक्खं सम्भोति सब्बं अहारपच्चयति, अयमेकनुपासना। आहारं त्वेव असेसविरागणिरोध नत्थि दुक्खस्सा संभवोति, अयं दुत्यानुपासना। एवं सम्मा...पे... अथापरं एतदावोच सत्था -
752.
"यं किंचि दुक्खं सम्भोति, सब्बं आहारपच्चया;
आहारं निरोधेन, नत्थि दुक्खस्सा संभवो।
753.
"एतमदीनवं नात्वा, दुक्खं आहारपच्चया;
सब्बाहारं परिणय, सब्बाहारमनिस्सितो।
754.
"आरोग्यं सम्मादानाय, आसवनं परिक्खया;
सांखया सेवी धम्मथो, सांख्यं [संखं (सि. पि.)] नोपेटि वेदगु"ति।

(12) "सिअ अण्णेणपि...पे... कथाञ्च सिय्? यं किंचि दुक्खं सम्भोति सब्बं इंजितापच्चयति, अयमेकनुपासना। इंजितानां त्वेव असेसविरागनिरोध नत्थि दुक्खस्सा संभवोति, अयं दुत्यानुपासना। एवं सम्मा...पे... अथापरं एतदावोच सत्था -
755.
"यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति, सब्बं इन्जितापच्चया;
इन्जितानां निरोधेन, नत्थि दुक्खस्सा संभवो।
756.
"एतमादीनवं नात्वा, दुक्खं इंजितापच्चया;
तस्मा हि एजं वोसज्जा, संखारे उपरुंधिया;
अनेजो अनुपादनो, सातो भिक्खु परिब्बाजे'ति।
(13) "सीय अण्णेनपि...पे... कथाञ्च सय? निस्सीतस्सा कलितं होतिति, अयमेकनुपासना। अनिस्सितो न कैलाति, अयं दुत्यानुपस्सना। एवं सम्मा...पे... अथापरं एतदावोच सत्था -
757.
"अनिस्सिटो न कैलति, निस्सिटो च उपादीयम्;
इत्थभावान्नथाभावं, संसारं नातिवत्तति।
758.
"एतमदीनवं नात्वा, निस्सायेसु महभभयं;
अनिस्सिटो अनुपादनो, सातो भिक्खु परिब्बजे'ति।
(14) "सीय अण्णेणपि...पे... कथाञ्च सय? रुपेहि, भिक्खवे, अरूपा [अरुप्पा (सि. पि.)] संततारति, अयमेकनुपासना। अरूपेहि निरोधो संततरोति, अयं दुत्यानुपासना। एवं सम्मा...पे... अथापरं एतदावोच सत्था -
759.
"ये च रूपपगा सट्टा, ये च अरुपत्थायिनो [अरुपवासिनो (सी. पी.)];
निरोधं अप्पजनंता, आगन्तरो पुनब्भवं।
760.
"ये च रूपे परिणय, अरूपेसु असंहिता [सुसंहिता (सि. स्या. पि.)];
निरोधे ये विमुच्चन्ति, ते जना मक्कुहायिनो'ति।
(15) "सिअ अण्णेणपि...पे... कथाञ्च सिय्? यं, भिक्खवे, सदेवकस्सा लोकससा समरकस्सा सब्रह्मकस्सा सस्सामणब्राह्मणीय पजया सदेवमनुस्साय इदं सच्चन्ति उपनिज्जयितं तदमरियाणं एतं मुसाति यथाभूतं सम्मप्पन्याय सुदिट्ठं, अयमेकनुपस्सना। यं , भिक्खवे, सदेवकस्सा...पे... सदेवमनुस्साय इदं मुसति उपनिज्जयितं, तदमरियाणं एतं सच्चन्ति यथाभूतं सम्मप्पन्याय सुदिट्ठं, अयं दुत्यानुपासना। एवं सम्मा...पे... अथापरं एतदावोच सत्था -
761.
"अनत्तनि अत्तमनिः [अत्तमनि (स्या.), अत्तमानं (पि. का.)], पस्सा लोकं सदेवकम्;
निवित्थं नामरूपस्मि, इदं सच्चन्ति मन्नति।
762.
"येन येन हि मन्नन्ति, ततो तं होति अनंता;
तांहि तस्स मुसा होति, मोसाधम्मनि इत्तरं।
763.
"अमोसधम्मं निब्बाणं, तदरिया सकातो विदु;
ते वे सच्चभिसमय, निच्चता परिणिबुता'ति।
(16) "सिया अन्ननेपि परियायेन सम्मा द्वयतानुपस्सनाति, इति सी, भिक्खवे, पुच्चितरो अस्सु; 'सिया'तिस्सु वचनिया'। कथंका सिया? यं, भिक्खवे, सदेवकस्सा लोकससा समरकस्सा सब्रह्मकस्सा सस्सामणब्राह्मणिय पजया सदेवमनुस्साय इदं सुखन्ति उपनिज्जयितं, तदमरियाणं एतं दुक्खन्ति यथाभूतं सम्मप्पन्नया सुदिट्ठं, अयमेकनुपस्सना। यं, भिक्खवे, सदेवकस्सा...पे... सदेवमनुस्साय इदं दुक्खन्ति उपनिज्जहयितं तदमरियाणं एतं सुखन्ति यथाभूतं सम्मप्पनया सुदिट्ठं, अयं दुत्यानुपस्सना। एवं सम्मा द्वयतानुपस्सिनो खो, भिक्खवे, भिक्खुनो अप्पमत्तस्सा अतापिनो पहितत्तस्सा विहारतो द्विन्नं फलानां अनंतारं फलं पटिकंखां - दिट्ठेव्ह धम्मे अनाना, सति वा उपादिसे अनागमितति। इदमवोका भगव। इदं वत्वान् सुगतो अथापरं एतदावोच सत्था -
764.
"रूपा सद्दा रस गंधा, फस्सा धम्म च केवला;
इत्था कांता मनापा च, यावतत्थिति वुच्चति।
765.

"सदेवकस्सा लोकस्सा, एते वो सुखसम्मता;
यत्था सीते निरुज्जन्ति, तं नेसं दुक्खसम्मतम्।
766.
"सुखंति दीठमार्येहि, सक्कयासुपरोधनं;
पच्चनिकमिदं होति, सब्बलोकेन पसाताम्।
767.
"यं परे सुखतो आहु, तदरिया आहु दुक्खतो;
यं परे दुक्खतो आहु, तदरिया सुखतो विदु।
768.
"पस्सा धम्मं दुराजनं, संपमुढेत्थाविद्दासु [संपमुढेत्था अविद्दसु (सि. पि.), सम्मुढेत्था अविद्दसु (?)];
निवुतानं तमो होति, अंधकारो अपस्सतम्।
769.
"सतञ्च विवत्तं होति, आलोको पस्सतमिव;
संतिके न विजानन्ति, मग्गा धम्मस्सा कोविदा।
770.
"भवरागपरतेहि, भवसोतानुसारिभि;
मरधेय्यानुपन्नेहि, नायं धम्मो सुसंबुद्धो।
771.
"को नु अनंतरामरियहि, पदं संबुद्धुमरहति;
यं पदं सम्मादानन्या, परिनिब्बन्ति अनासाव'ति।
इदमवोका भगव। अत्तमना ते भिक्खु भगवतो भासीतं अभिनंदनंति। इमस्मिं च [इमास्मिं खो (सि.)] पण वेय्यकरनस्मिं भन्नमने सत्थिमत्तनं भिक्खुनं अनुपादया असावेहि चित्तानि विमुच्चिसुति।
द्वयतानुपासनासुत्तं द्वादसमं नियतम्।
Tassuddānaṃ –
सच्चं उपधि अविज्जा च, संखरे विनाशनपञ्चमम्;
फस्वेदनीय तन्हा, उपादानारम्भाहारा;
इन्जितं कलितं रूपं, सच्चं दुक्खेन सोससति।
महावग्गो ततियो निट्ठितो।
Tassuddānaṃ –
पब्बज्जा च पधानञ्च, सुभाषितञ्च सुंदरी;
माघसुत्तं सभियो च, सेलो सल्लंका वुक्कति।
वासेठो कपि कोकालि, नालको द्वयतानुपासना;
द्वादसेतानि सुत्तानि, महावग्गोति वुच्चति।

पाली-देवनागरी
12. द्वैतानुपस्सनासुत्तं
एवं मे सुतं - एकं समयं भगव सावथ्यं विहारति पुब्बारामे मिगारमातुपसदे। तेन खो पन समयेन भगव तदहुपोस्थे प नयनरसे पुन्नय पुन्नमय रत्तिया भिक्खुसङ्घपरिवुतो अब्भोकसे निसि साइनो होति। अथ खो भगव तुन्हिभूतं तुन्हिभूतं भिक्खुसङ्घं अनुविलोकेत्वा भिक्खु अम्नतेसि -
"ये ते, भिक्खवे, कुसला धम्म अरिया नियानिका सम्बोधगामिनो, तेसं वो, भिक्खवे, कुसलानं धम्मनं अरियनं निय्यनिकानं सम्बोधगमीनं का उपनिसा सवनया'ति इति चे, भिखवे, पुच्छितरो अस्सु, ते एवमस्सु वचनिया - 'यावदेव देवयतानां धम्मनं यथाभूतं ज्ञानाय'ति। किञ्च द्वैतं वदेत्?
(1) "इदं दुक्खं, अयं दुक्खसमुदयोति अयमेकानुपस्सना। अयं दुक्खनिरोधो, अयं दुःखनिरोधगामिनी पतिपदाति, अयं दुत्यानुपस्सना। एवं सम्मा द्वैतानुपस्सिनो खो, भिक्खवे, भिक्खुनो अप्पमत्तस्स एतपिनो पहित्तस्स विहारतो द्वि सत्यं फलानं अञ्जन्तरं फलं पतिकखं - दित्थेव धम्मे अंडना, सति वा उपादिसेसे अनागमिता"ति।
इदमवोच भगवान। इदं वत्वान् सुगतो अथापरं एतदवोच सत्था -
7

"ये दुक्खं नप्पजानन्ति, अथो दुक्खस संभाव्यं।
यथा च सब्बसो दुक्खं, असेसं उपरुज्जति।
तंदच मग्गं न जानन्ति, दुक्खूपसमगामिनं॥
730.
"चेतोविमुत्तहिना ते, अथो पञ्चविमुत्तिया।
अभब्बा ते अन्तकिरियाय, ते वे जातिजरूपगा॥
7 सप्ताह
"ये च दुक्खं पजानन्ति, अथो दुक्खस संभाव्यं।
यथा च सब्बसो दुक्खं, असेसं उपरुज्जति।
तंदच मग्गं पजानन्ति, दुक्खुपसमगामिनं॥
744.
"चेतोविमुत्तिसम्प संज्ञा, अथो पञ्चविमुत्तिया।
भब्बू ते अंतकिरियाय, न ते जातिजरूपगा"ति॥

(2) "सिया अञ्जेनपि परियायेन सम्मा द्वयतनुपासना'ति, इति चे, भिक्खवे, पुच्छितारो अस्सु; सिया'तिस्सु वचनिया। कथाच सिया? यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति सब्बं उपधिपच्चयति, अयमेकनुपस्सना। उपधीनं त्वेव असेसविराघनिरोध नत्थि दुक्खस्स संभावोति, अयं दुत्यानुपस्सना। एवं सम्मा...पे०... अथापरं एतदवोच सथा –
7
"उपधिनिदाना पभवन्ति दुक्खा, ये केचि लोकस्मिमनेकरूपा।
यो वे अविद्वा उपधिं करोति, पुनप्पुनं दुक्खमुपेति मन्डो।
तस्मा पजानं उपधिं न कयिरा, दुक्खास जातिप्पभवनुपासि"ति॥

(3)"'सिया अञ्चेनपि परियायेन सम्मा द्वैतानुपासना'ति, इति चे, भिक्खवे, पुच्छितारो अस्सु; सिया'तिस्सु वचनिया। कथाच सिया? यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति सब्बं अविज्जपच्चयति, अयमेकनुपस्सना। अविज्जाजाय त्वेव असेसविराघनिरोधा नत्थि दुक्खससंभवोति, अयं दुत्यानुपस्सना। एवं सम्मा...पे०... अथापरं एतदवोच सथा –
7
जातिमरणसंसारं, ये वजन्ति पुनप्पुनं।
इत्थभावञ्जथाभावं, अविज्जायेव सा गति॥
7.
"अविज्जा हयं महामोहो, येनिदं संसितं चिरं।
विज्जगता च ये सत्ता, न ते गच्छन्ति [नागच्छन्ति (सी० पी०)] पुनब्भव"न्ति॥

(4) "सिया अञ्जेनपि...पे०...कथञ्च सै? यं किञ्चि दुक्खं संभोति सब्बं सङ्खारपचचयति, अयमेकनुपस्सना। सङ्खारणं त्वेव असेसविराघनिरोध नत्थि दुक्खसस संभावोति, अयं दुत्यानुपस्सना। एवं सम्मा...पे०... अथापरं एतदवोच सथा –
7
"यं किञ्चचि दुक्खं सम्भोति, सब्बं सङ्खारपच्चया।
सङ्खारणं निरोधेन, नत्थि दुःखस्सम्भवीओ॥
7
"एतमादिन्वं ञत्वा, दुक्खं सङ्खारपच्चया।
सब्बसङ्खारसमथा, संज्ञानं उपरोधना।
एवं दुक्खक्खयो होति, एतं ञत्वा यथात्थं॥
7.
"सम्मद्दसा वेदगुणो, सम्मदन्याय पण्डिता।
अभिभुय मारसंयोगं, न गच्छन्ति [नागच्छन्ति (सी० पी०)] पुनब्भव"न्ति॥

(5) "सिया अञ्चेनपि...पे०...कथनच सै? यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति सब्बं विघ्नपच्चयति, अयमेकनुपस्सना। विज्ञानं स्स त्वेव असेसविराघनिरोध नत्थि दुक्खस्स संभावोति, अयं दुत्यानुपस्सना। एवं सम्मा...पे०... अथापरं एतदवोच सथा –
7.
"यं किञ्चचि दुक्खं संभोति, सब्बं विघ्नपच्चया।
विज्ञानंसस्स निरोधेन, नत्थि दुक्खसस्संभवो॥
740.
"एतमादिन्वं ञत्वा, दुक्खं विज्ञानपच्चया।

विञ्चानुपस्मा भिक्खु, निच्चतो परिनिब्बुतो"ति॥
(6) "सिया अञ्चेनपि...पे०...कथनच सै? यं किञ्चि दुक्खं संभोति सब्बं फस्सपच्चयति, अयमेकनुपस्सना। फस्सस त्वेव असेसविराघनिरोधा नत्थि दुक्खस्स संभावोति, अयं दुत्यानुपस्सना। एवं सम्मा...पे०... अथापरं एतदवोच सथा –
7
"तेसं फस्सपेरेतानं, भवसोताएप्रिनं।
कुम्मगपटिपनयनं, अरा संयोजनखयो॥
7
"ये च फ़स्सं परिञ्चय, अञ्चयायुपासमे [पञ्चन्या उपसमे (स्या०)] रता।
ते वे फस्साभिषामा, निचता परिनिब्बुता"ति॥
(7) "सिया अञ्चेनपि...पे०... कथाञ्च सै? यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति सब्बं वेदनापच्चयति, अयमेकनुपस्सना। वेदनानं त्वेव असेसविराघनिरोधा नत्थि दुक्खस्स संभावोति, अयं दुत्यानुपस्सना। एवं सम्मा...पे०... अथापरं एतदवोच सथा –
7
"सुखं वा यदि वा दुक्खं, अदुक्खमसुखं सह।
अज्झत्तञ्च बधिधा च, यं किञ्चि अथि वेदितं॥
744.
"एतं दुक्खन्ति ञत्वान, मोषधम्मं पलोकिनं [पलोकितं (सी०)]।
फुस्स फुस्स वयं पस्सं, एवं तत् विजानति [विरज्जति (क० सी०)]।
वेदनानं खया भिक्खु, निच्चतो परिनिब्बुतो"ति॥
(8) "सिया अञ्चेनपि...पे०...कथनच सै? यं किञ्चि दुक्खं संभोति सब्बं तन्हापच्चयति, अयमेकनुपस्सना। तन्हाय त्वेव असेसविराघनिरोधा नत्थि दुक्खस्स संभावोति, अयं दुत्यानुपस्सना। एवं सम्मा...पे०... अथापरं एतदवोच सथा –
7
"तण्हादुतियो पुरिसो, दीघमधां संसारं।"
इत्थभावञ्जथाभावं, संसारं नातिवत्तति॥
7
"एत्मादीनवं नत्वा, तंहं [तन्हा (बहूसु) इतिवुत्तके 15 पास्सित्वं] दुक्खस्स संभावनां।
वितानधो अनादानो, सातो भिक्खु परिब्बजे"ति॥
(9) "सिया अञ्चेनपि...पे०...कथनच सै? यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति सब्बं उपादानपच्चयति, अयमेकनुपस्सना। उपादाननं [उपादानस (स्या० क०)] त्वेव असेसविराघनिरोध नत्थि दुक्खस्स संभावोति, अयं दुत्यानुपस्सना। एवं सम्मा...पे०... अथापरं एतदवोच सथा –
7.
"उपादानपच्चया भावो, भूतो दुःखं निगच्छति।"
जातस्स मरणं होति, एसो दुक्खसस संभावनाओ॥
7.
"तस्मा उपादन्क्खाय, सम्मदञ्चया पण्डिता।
जातिख्यं अभिञ्ञानाय, न गच्छन्ति पुनभभव"न्ति॥
(10) "सिया अञ्चेनपि...पे०... कथाञ्च सै? यं किञ्चचि दुक्खं संभोति सब्बं दीक्षापचयति, अयमेकनुपस्सना। अभिषेकानं त्वेव असेसविराघनिरोध नत्थि दुक्खस्स संभावोति, अयं दुत्यानुपस्सना। एवं सम्मा...पे०... अथापरं एतदवोच सथा –
7.
"यं किञ्चचि दुक्खं सम्भोति, सब्बं दीक्षापच्चया।
आरंभानं निरोधेन, नत्थि दुक्खसस संभावो॥
7
"एत्मादिन्वं ञत्वा, दुक्खं अरापच्चया।"
सब्बारामभं पतिनिस्सज्म, अनारंभे विमुत्तिनो॥
7.
"उच्छि नारायणभवतनहस्स, सन्तचित्तस्स भिक्खुनो।
विक्खिणो [वितिन्नो (सी०)] जातिसंसारो, नत्थि तस्स पुनब्भवो"ति॥
(11) "सिया अञ्चेनपि...पे०...कथनच सै? यं किञ्चचि दुक्खं सम्भोति सब्बं आहारपच्चयति, अयमेकनुपस्सना। आहारां त्वेव असेसविराघनिरोधा नत्थि दुक्खस्स संभावोति, अयं दुत्यानुपस्सना। एवं सम्मा...पे०... अथापरं एतदवोच सथा –
7.

"यं किञ्चचि दुक्खं सम्भोति, सब्बं आहारपच्चया।
आहारां निरोधेन, नत्थि दुक्खस्ससंभवो॥
7.
"एतमादिन्वं ञत्वा, दुक्खं आहारपच्चया।
सब्बाहारं परिञ्चय, सब्बाहारमनिस्सितो॥
744.
"आरोग्यं सम्मदन्या, आस्वानं परिक्खया।
सङ्खाय सेवी धम्मत्तो, सङ्ख्यं [सङ्खं (सी० पी०)] नोपेति वेदगु"ति॥
(12) "सिया अञ्चेनपि...पे०... कथाञ्च सै? यं किञ्चि दुक्खं सम्भोति सब्बं इञ्जितपच्चयति, अयमेकानुपस्सना। इञ्जितानं त्वेव असेसविराघनिरोध नत्थि दुक्ख्सस संभावोति, अयं दुत्यानुपस्सना। एवं सम्मा...पे०... अथापरं एतदवोच सथा –
74.55.
"यं किञ्चचि दुक्खं संभोति, सब्बं इंञ्जितपच्चया।
इञ्जितानं निरोधेन, नत्थि दुःखससम्भवो॥
7.
"एतमादिन्वं ञत्वा, दुक्खं इञ्जितपच्चया।
तस्मा हि एजें वोस्सज्ज़, सङ्खारे उपरुन्धिय।
अनेजो अनुपादनो, सातो भिक्खु परिब्बजे"ति॥
(13) "सिया अञ्चेनपि...पे०... कथाञ्च सै? निस्सीत्स्स चलितं निस्तिति, अयमेकनुपस्सना। अनिसिस्तो न चलतीति, अयं दुत्यानुपस्सना। एवं सम्मा...पे०... अथापरं एतदवोच सथा –
7.
"अनिसितो न चलति, निस्सीतो च उपादेयं।"
इत्थभावञ्जथाभावं, संसारं नातिवत्तति॥
7.
"एत्मादिन्वं ञत्वा, निस्सायेसु महब्बयं।
अनिसिस्तो अनुपदनो, सातो भिक्खु परिब्बजे"ति॥
(14) "सिया अञ्जेनपि...पे०... कथाञ्च सै? रूपेहि, भिक्खवे, अरूपा [अरुप्पा (सी० पी०)] सन्ततराति, अयमेकानुपासना। अरूपेहि निरोधो सन्तरोति, अयं दुत्यानुपासना। एवं सम्मा...पे०... अथापरं एतदवोच सथा –
75.
"ये च रूपुपगा सत्ता, ये च अरूपत्थायिनो [अरूपवासिनो (सी० पी०)]।
निरोधं अप्पजानंता, आगन्तरो पुनब्भवं॥
7-
"ये च रूपे परिञ्जन्या, अरूपेसु असंथिता [सुसंथिता (सी० स्या० पी०)]।
निरोधे ये विमुच्छन्ति, ते जना मच्छछुयिनो"ति॥
(15) "सिया अञ्चेनपि...पे०... कथाञ्च सै? यं, भिक्खवे, सदेवकस्स लोकस्स समरकस सब्रह्मकस सस्सामन्ब्राह्मणीय पजाय सदेवमनुस्साय इदं सच्चन्ति उपनिज्जयितं तदमरियनं एतं मुसाति यथाभूतं सम्मप्पनदन्याय सुदिट्ठं, अयमेकनुपस्सना। यं , भिक्खवे, सदेवकस्स...पे०...सदेवमनुस्साय इदं मुसाति उपनिज्जयितं, तदमरियनं एतं सच्चन्ति यथाभूतं सम्मपञ्चाय सुदिट्ठं, अयं दुतियानुपस्सना। एवं सम्मा...पे०... अथापरं एतदवोच सथा –
7.
"अनत्तनि अत्तमाननिं [अट्टतानि (स्या०), अत्तमानं (पी० क०)], पास्स लोकं सदेवकं।
निविट्ठं नामरूपस्मिं, इदं सच्चन्ति मन्न्ति॥
7.
"येन येन हि मन्नन्ति, ततो तं होति अञ्जथा।
तञ्हि तस्स मुसा होति, मोषधम्मन्हि इत्तरं॥
764.
"अमोषधम्मं निब्बानं, तदरिया सचदचतो विदु।"
ते वे सच्चाभिषामा, निच्चता परिनिब्बुता"ति॥
(16) "सिया अञ्जेनपि परियायेन सम्मा द्वयतानुपस्सना'ति, इति चे, भिक्खवे, पुच्छितारो अस्सु; सिया'तिस्सु वचनिया। कथाच सिया? यं, भिक्खवे, सदेवकस्स लोकस्स समरकस सब्रह्मकस सस्सामन्ब्राह्मणीय पजाय सदेवमनुस्साय इदं सुखन्ति उपनिज्जयितं, तदमरियानं एतं

दुक्खन्ति यथाभूतं सम्मप्पञ्जाय सुदिट्ठं, अयमेकानुपस्सना। यं, भिक्खवे, सदेवकस्स…पे०… सदेवमनुस्साय इदं दुक्खन्ति उपनिज्जयितं तदमरियनं एतं सुखन्ति यथाभूतं सम्मपन्नाय सुदिट्ठं, अयं दुत्यानुपस्सना। एवं सम्मा द्वैतानुपस्सिनो खो, भिक्खवे, भिक्खुनो अप्पमत्तस्स एतपिनो पहित्तस्स विहारतो द्वि सत्यं फलानं अञ्जन्तरं फलं पतिकखं - दित्थेव धम्मे अंडना, सति वा उपादिसेसे अनागमितातिं। इदमवोच भगवान। इदं वत्वान् सुगतो अथापरं एतदवोच सत्था -

7

"रूपा सादा रसा गंधा, फस्सा धम्मा च केवला।"
इत्था कन्ता मनापा च, यावत्तथिति वुचचति॥

7.

"सदेवकस लोकस्स, एते वो सुखसम्मता।
यथा चेते निरुज्जन्ति, तं नेसं दुक्खसम्मतं॥

7.

" सुखन्ति दित्थमर्येहि, सकायासुप्ररोधनं।
पंचचनिकमिदं होति, सब्ब्लोकेन पससटं॥

7.

"यं परे सुखतो आहु, तदरिया आहु दुक्खतो।
यं परे दुःखतो आहु, तदरिया सुखतो विदु॥

7.

"पास धम्मं दुराजनं, सम्मुळहेत्थ अविद्दसु [सम्पमुळहेत्थ अविद्दसु (सी० पी०), सम्मुळहेत्थ अविद्दसु (?)]।
निवुतानं तमो होति, अंधकारो अपस्सतं॥

766.

"सत्ञ्च विवेतं होति, आलोको पस्सतमिव।
शांतिके न विजानन्ति, मग्गा धम्म्स कोकिदा॥

700

"भवरागपरेतेहि, भवसोतापरिभि।
मराधेयानुपन्नेहि, नयं धम्मो सुसम्बुद्धो॥

7.

"को नु अञ्जन्त्रामरियेहि, पदं संबुद्धुमर्हति।"
यं पदं सम्मदन्याय, परिनिब्बन्ति अनासव"ति॥

इदमवोच भगवान। अत्तमना ते भिक्खु भगवतो भासीतं अभिनन्दुन्ति। इमस्मिं च [इम्मस्मिं खो (सी०)] पन वेय्याकरणस्मिं भंजनमाने सत्थिमत्तनं भिक्खूनं अनुपादाय आस्वेहि चित्तानि विमुच्छचिंसुति।

द्वैतानुपस्सनासुत्तं द्वादसमं निश्चितं।

तस्सुद्दनं -

सचचं उपधि अविजज्जा च, सच्चरे विज्ञानपञ्चमं।
फ़स्सवेदनिया तन्हा, उपादानर्मभाहारा।
इञ्जितं चलितं रूपं, सच्दचं दुक्खेन सोळसति॥

महावग्गो ततियो निट्ठितो।

तस्सुद्दनं -

पब्बज्जा च पधानच, सुभासितञ्च सुन्दरी।
माघसुत्तं सभियो च, सेलो सल्लंदलच वुचदचति॥
वासेट्ठो चापि कोकालि, नालको द्वैतानुपस्सना।
द्वादसेतानि सुत्तानि, महावग्गोति वुच्चदचतीति॥

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> सुत्तनिपता >> 4.1 कामसुत्त
वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<-->>>> अगला

कामुक सुखों से बचना चाहिए।

अंतर्वस्तु

4.1 कामसुत्त
अनुवाद
1. यदि इंद्रिय सुखों की इच्छा रखने वाला व्यक्ति सफल हो जाता है, तो वह निश्चय ही प्रसन्न हो जाता है, क्योंकि उसे वह सब प्राप्त हो जाता है जो मनुष्य चाहता है। (772)

2. परन्तु यदि वे इंद्रिय सुख उस व्यक्ति को प्राप्त न हों जो उनकी इच्छा रखता है, तो वह पीड़ा भोगेगा, मानो उसे पीड़ा का तीर लग गया हो। (773)

3. जो व्यक्ति इंद्रिय सुखों से इस प्रकार विवश रहता है जैसे कोई अपने पैर से साँप के सिर को कुचलने से बचता है, वह सत्वमय होकर इस इच्छा पर विजय प्राप्त कर लेगा। (774)

4. जो व्यक्ति इन सुखों, खेतों, वस्तुओं, सोने, गायों और घोड़ों, नौकरों, स्त्रियों, रिश्तेदारों आदि की अत्यधिक लालसा रखता है, (775)

5. पाप उस पर हावी हो जाएँगे, खतरे उसे कुचल देंगे, और पीड़ा उसका पीछा उसी प्रकार करेगी जैसे टूटे हुए जहाज में पानी भर जाता है। (776)

6. अतः व्यक्ति को सदा सत्वमय रहना चाहिए और सुखों से विवश रहना चाहिए; उन्हें त्यागकर, जहाज से पानी निकालकर नदी पार कर दूसरे किनारे पर चले जाना चाहिए। (777)

कामसुत्त समाप्त हो गया है।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
4. अट्ठकवग्गो
1. कामसुत्तं
772.
कामां कामायमानस्स, तस्स सी तं समिज्जति;
अद्धा पीतिमानो होति, लद्धा मको यदिच्छति।
773.
तस्स सी कामयानस्सा [कामायमानस्सा (का.)], चंदजतास्सा जंतुनो;
ते काम परिहयन्ति, सल्लविद्धोवा रुप्पति।
774.
यो कामे परिवज्जेति, सप्पसेवा पदा सिरो;
सोमं [सो इमं (सि. पि.)] विसात्तिकां लोके, सातो समतिवत्तति।
775.
खेतं वत्थुं हिरणं वा, गवस्सं [गवस्सं (सि. स्या. पि.)] दासपोरिसं;
थियो बंधु पुथु कामे, यो नरो अनुगिज्जति।
776.
अबला नं बल्यन्ति, मददन्तेनं परिस्सया;

ततो नं दुक्खमन्वेति, नवं भिन्नमिवोदकम्।
777.
तस्मा जंतु सदा सातो, कामानि परिवज्जाये;
ते पहाया तारे ओघं, नवं सितवव [सिंचित्वा (सि.)] परगुति।
कामसुत्तं पथमं नियतं।

पाली-देवनागरी
4. अट्ठकवग्गो
1. कामसुत्तं
7.
कामं कामयमानस्स, तस्स चे तं समिज्झति।
अद्धा पीतिमनो होति, लद्धा मचचो यदिच्छति॥
7.
तस्स चे कामयानस्स [कामायमानस्स (क०)], छन्दजातस्स जन्तुनो।
ते कामा परिहन्ति, सल्लविद्धोव रूपपति॥
7.
यो कामे परिवज्जेति, सप्पस्पेव पदा सिरो।
सोमं [सो इमं (सी० पी०)] विशत्तिकं लोके, सातो समतिवत्तति॥
750.
खत्तं वथुं हिरणं वा, गवसं [गवसं (सी० स्या० पी०)] डेस्पोरिसं।
थियो बन्धु पुथु कामे, यो नरो अनुगिज्जति॥
76.
अबला नं बलियान्ति, मद्दन्तेनं परिस्या।
ततो नं दुक्खमन्वेति, नवं भि सत्यमिवोदकं॥
777.
तस्मा जंतु सदा सातो, कामानि परिवज्जये।
ते पहाय तरे ओघं, नावं सित्वाव [सिंचित्वा (सी०)] परगुति॥
कामसुत्तं पथमं निश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> सुत्तनिपता >> 4.2 गुहत्थकसुत्त
वी. फौसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<--->>>> अगला

किसी को भी जीवन और इंद्रिय सुखों से आसक्त नहीं होना चाहिए।

अंतर्वस्तु
14.2 गुलात्तकसुत्त
1.1अनुवाद
1.2पाली-रोमन
1.3पाली-देवनागरी
4.2 गुहात्तकसुत्त
अनुवाद
1. जो मनुष्य गुफा (अर्थात शरीर) से चिपका रहता है, जो बहुत पाप से लदा हुआ है और भ्रम में डूबा हुआ है, ऐसा मनुष्य एकांत से बहुत दूर है, क्योंकि संसार के इंद्रिय सुखों को छोड़ना आसान नहीं है। (778)

2. जिनकी इच्छाएँ ही उनके प्रेरक हैं, जो संसार के सुखों से जुड़े हुए हैं, उन्हें मुक्त करना कठिन है, क्योंकि वे दूसरों द्वारा मुक्त नहीं हो सकते, जो आने वाले और जाने वाले सुखों की खोज में लगे रहते हैं, इन और पूर्व के इंद्रिय सुखों की लालसा करते हैं। (779)

3. जो इंद्रिय सुखों के लालची, भोगी और मोहित हैं, जो कंजूस हैं, वे दुष्ट मार्ग पर चलकर पीड़ा सहने पर विलाप करते हैं, कहते हैं: 'जब हम यहाँ से मर जाएँगे तो हमारा क्या होगा?' (780)

4. अतः मनुष्य को यहाँ यह सीख लेना चाहिए कि संसार में जो कुछ भी वह दुष्ट जानता है, उसके कारण वह दुष्टता का अभ्यास न करे; क्योंकि यह जीवन क्षणभंगुर है, ऐसा बुद्धिमान कहते हैं। (781)

5. मैं संसार में इस कांपती हुई जाति को देखता हूँ जो जन्म-मृत्यु की लालसा में डूबी रहती है; वे दुखी मनुष्य हैं जो मृत्यु के मुख पर विलाप करते हैं, पुनर्जन्म की लालसा से मुक्त नहीं होते। (782)

6. उन मनुष्यों को देखो जो स्वार्थ में कांप रहे हैं, जैसे सूखे हुए नाले में कम पानी में मछली; यह देखकर मनुष्य निस्वार्थ भाव से, जन्म-मृत्यु से आसक्ति रखे बिना, विचरण करे। (783)

7. दोनों पक्षों की लालसा को वश में करके, लोभ रहित होकर स्पर्श को पूर्णतः समझकर, स्वयं को दोषी ठहराए गए कर्मों का फल न देकर, बुद्धिमान मनुष्य देखी और सुनी हुई बातों से आसक्त नहीं रहता। (784)

8. नाम को जानकर, मुनि (संत) किसी भी मोह से अछूते हुए नदी पार करें; (कामवासना के बाण को) निकालकर, परिश्रमपूर्वक विचरण करते हुए, वे इस लोक या परलोक की कामना नहीं करते। (785)

गुहात्तकसुत्त समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
2. गुहत्थकसुत्तम्
778.
सत्तो गुहायं बहुनाभिचन्नो, तिट्ठं नरो मोहनस्मिं पगाधो;
दूरे विवेका हि तथाविधो सो, काम हि लोके न हि सुपहाया।
779.
इच्छनिदाना भवसताबधा, ते दुप्पमुन्चा न हि अन्नमोक्खा;
पच्चा शुद्ध वापि अपेक्खमना, इमेव कामे पुरीमेव जपं।
780.
कामेसु गिद्ध पसुता पमुढ़ा, अवदानिया ते विसामे निविथा;
दुक्खुपनिता परिदेवयन्ति, किन्सु भविस्सामा इतो कटासे।
781.
तस्मा हि सिक्खेथा इधेव जंतु, यं किञ्चि ज्ञाना विसमंति लोके;
न तस्स हेतु विषमं कैरेया, अप्पनहिदं जीवितमाहु धीरा।
782.
पसामि लोके परिफंदमानं, पजं इमं तंहगतं भवेसु;
हिना नारा मक्कुमुखे लपंती, अवितानहसे भवभवेसु।
783.
ममयिते पासथ फंदमाने, मच्छेवा अप्पोदके खिनसोते;
एताम्पि दिश्वा अमामो कैरेया, भवेसु असत्तिमकुब्बमानो।
784.
उभोसु अंतेसु विनयाय चंदं, फस्सं परिणय अनानुगिद्धो;
यदत्तागराहि तदाकुब्बमानो, न लिप्पति [न लिम्पति (स्या. का.)] दिट्ठसुतेसु धीरो।

785.
सन्नं परिण्णा वितरेय ओघं, परिग्गहेसु मुनि नोपलित्तो;
अब्बुहसल्लो करमप्पमत्तो, नासीसति [नासीसति (सि. स्या. पि.)] लोकमिमं पराञ्चति।
गुहत्थकसुत्तं कर्तव्यं निहितं।

पाली-देवनागरी
2. गुहत्थकसुत्तं
724.
सत्तो गुलायं बहुनाभिच्छ संज्ञाओ, तिट्ठं नरो मोहनस्मिं पगाळचो।
दूरे विवेका हि तथाविधो सो, काम हि लोके न हि सुप्पाया॥
7.
इच्छानिदाना भवसत्बद्धदा, ते दुप्पमुञ्चा न हि अञ्जनमोक्खा।
पच्चा पूरे वापि अपेखमाना, इमेव कामे पुरीमेव जप्पं॥
7.
कामेसु गिद्धा पसुता पमुळहा, अवदानिया ते विसामे निवित्था।
दुक्खुपनिता परिदेवयन्ति, किंसु भविस्साम इतो चुतासे॥
7.
तस्मा हि सिखेथ इधेव जंतु, यं किञ्चि ज्ञान विसमंति लोके।
न तस्स हेतु विषमं चरेय, अप्पनहिदं जीवितमहु धीरा॥
7.
पस्सामि लोके परिफंदमानं, पजं इमं तंहगतं भवेसु।
हीना नरा मचचुमुखे लपन्ति, अवीतन्हासे भवभवेसु॥
7.
ममयिते पस्सथ फन्दमाने, मच्छेव अप्पोडके खिनसोते।
एतमपि दिस्वा अम्मो चेरेय, भवेसु असत्तिमकुब्बमानो॥
7 सप्ताह.
उभोसु अन्तेसु विनेय छन्दं, फस्सं परिञ्चय अनानुगिद्धो।
यदत्तगरहि तदकुब्बमानो, न लिप्पति [न लिम्पति (स्या० क०)] दिट्ठसुतेसु धीरो॥
7 सप्ताह
सञ्जन परिञ्जन वितरेय ओघं, परिग्गहेसु मुनि नोपलित्तो।
अ उउक्सळहसललो चरमप्पमत्तो, नासीसति [नासिंस्ती (सी० स्या० पी०)] लोकमिमं परञ्चदाति॥
गुहत्थकसुत्तं दूतियां निश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> सुत्तनिपता >> 4.3 दुत्तत्थकसुत्त,

वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<--->>>> अगला

मुनि (संत) किसी भी निंदा के पात्र नहीं हैं, क्योंकि उन्होंने दर्शनशास्त्र की सभी प्रणालियों को त्याग दिया है और इसलिए वे स्वतंत्र हैं।

अंतर्वस्तु

अनुवाद

1. निश्चय ही, कुछ दुष्ट मन वाले निंदा करते हैं, और न्यायप्रिय मन वाले भी निंदा करते हैं, परन्तु मुनि (संत) पर उत्पन्न निंदा नहीं होती; अतः कहीं भी कोई असंतुष्ट (खिला) मुनि (संत) नहीं है। (786)

2. जो अपनी इच्छाओं से प्रेरित और अपनी प्रवृत्तियों से ग्रस्त है, वह अपने (गलत) दृष्टिकोण पर कैसे विजय प्राप्त कर सकता है? अपने कर्मों को करते हुए, वह अपनी समझ के अनुसार बात करे। (787)

3. जो व्यक्ति बिना पूछे अपने सद्गुणों और (पवित्र) कार्यों की दूसरों के सामने प्रशंसा करता है, उसे अच्छे लोग नीच कहते हैं, वह स्वयं की प्रशंसा करने वाला है। (788)

4. परन्तु जो भिक्षु शांत और प्रसन्न मन का है, इस प्रकार अपने सद्गुणों की स्वयं प्रशंसा नहीं करता, उसे अच्छे लोग श्रेष्ठ कहते हैं, वह संसार में कहीं भी इच्छाओं से रहित है। (789)

5. जिसके धर्म मनमाने ढंग से गढ़े और सामने रखे गए हों और भ्रमित हों, क्योंकि वह अपने आप में अच्छा परिणाम देखता है, वह कुप्प-पतिक्क-सन्ती (दृष्टिकोण) में लीन रहता है। (?) (790)

6. क्योंकि दर्शन के सिद्धांतों पर विजय पाना आसान नहीं है, इसलिए धर्मों में से (कभी यह, कभी वह) विचार-विमर्श के बाद अपनाया जाता है; अतः मनुष्य धर्म सिद्धांतों में से (कभी यह, कभी वह) धर्म को त्यागता और अपनाता है। (791)

7. जिसने (पापों से) छुटकारा पा लिया है, उसके लिए संसार में कहीं भी विभिन्न अस्तित्वों के प्रति कोई पूर्वाग्रही दृष्टिकोण नहीं है; जिसने (पापों से) छुटकारा पा लिया है, छल और अहंकार को त्यागकर, उसे किस (मार्ग) पर जाना चाहिए, वह स्वतंत्र है। (792)

8. परन्तु जो आश्रित है, धर्मों में उसकी निंदा होती है; स्वतंत्र को किस (नाम) से और कैसे नाम दिया जाए? क्योंकि उनके द्वारा न तो कुछ ग्रहण किया जाता है और न ही अस्वीकार किया जाता है, उन्होंने इस संसार में हर (दार्शनिक) दृष्टिकोण को त्याग दिया है। (793)

दुत्थत्तकसुत्त समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन

3. दुठ्ठहठकसुत्तम्

786.

वदन्ति वे दुथ्मनापि एके, अथोपि वे सच्चमना वदन्ति;

वदान्च जातं मुनि नो उपेति, तस्मा मुनि नत्थि खिलो कुहिञ्चि।

787.

सकान्हि दितिथिं कथमैककैय्या, चंदनुणितो रुचिया निविथो;

सयं समत्तानि पकुब्बमानो, यथा हि जनेय तथा वदेय।

788.

यो अत्तानो सिलावतानि जंतु, अन्नुपुठहोवा परेसा [परसा (का.)] पावा [पावा (सि. स्या. पि.)];

अनारियधम्मं कुसल तमाहु, यो अतुमानं सयमेव पाव।

789.

सन्तो च भिक्खु अभिनिब्बुतत्तो, इतिहन्ति सिलेसु अकत्थमानो;

तमरियाधम्मं कुसल वदन्ति, यसुस्सादा नत्थि कुहिनचि लोके।

790.

पाकप्पिता संखता यस्सा धम्म, पुरक्खता [पुरेक्खता (सि.)] शांति अविवादता;

यदत्तानि पस्सति अनिसांसं, तं निस्सिटो कुप्पपटिक्का शांतिम्।

791.

दिथिनिवेसा न हि स्वतिवत्ता, धम्मेसु निच्चेय्य समुग्गहितम्;

तस्मा नरो तेसु निवेशेसु, निरस्सति अद्यति च धम्मम्।
792.
धोंससा हि नत्थि कुहिनसि लोके, पकप्पिता दिति भावभवेसु;
मायञ्च मनञ्च पहाय धोनो, सा केन गच्छेया अनुपायो सो।
793.
उपायो हि धम्मेसु उपेति वदं, अनुपयं केन कथं वदेय;
अट्टा निरत्ता [अट्टं निरत्तं (बहुसु)] न हि तस्स अट्ठि, अधोसि सो दिथिमिधेव सब्बन्ति।
दुतथथकसुत्तं तत्यं निहितं।

पाली-देवनागरी
3. दुट्ठट्ठकसुत्तं
766.
वदन्ति वे दुत्थमनापि एके, अथोपि वे सचचमना वदन्ति।
वादञ्च जातं मुनि नो उपेति, तस्मा मुनि नत्थि खिलो कुहिनचि॥
7.
सञ्चहि दिट्ठिं कथमचचयेय, छन्दनुनीतो रुचिया निवित्थो।
सयं समत्तानि पकुब्बमानो, यथा हि जानेय तथा वदेय॥
7.
यो अत्तनो सीलवतनि जंतु, अन्नुपुत्थोव परेस [पारस (क०)] पाव [पावा (सी० स्या० पी०)]।
अनार्यधम्मं कुसला तमाहु, यो अतुमानं सयमेव पाव॥
7 सप्ताह।
सन्तो च भिक्खु अभिनिब्बत्तो, इतिहन्ति सीलेसु अकथमानो।
तमरियधम्मं कुसला वदन्ति, यसुस्सादा नत्थि कुहिनचि लोके॥
7
पकप्पिता सङ्खता यस धम्मा, पुरखता [पुरेखता (सी०)] सन्ति अविवदाता।
यदत्तनि पस्सति अनिसं, तं निस्सितो कुप्पपत्तिच सन्तिं॥
7.
दिट्ठिनिवेसा न हि स्वातिवत्ता, धम्मेसु निच्छेय समुघहितं।
तस्मा नरो तेसु निवेसनेसु, निरस्सति आदियति च धम्मं॥
7
धोनस्स हि नत्थि कुहिञ्चि लोके, पकप्पिता दिट्ठि भवाभेसु।
मञ्च मञ्च मञ्च पहाय धोनो, स केन गच्छेया उपयो सो॥
7.
उपयो हि धम्मेसु उपेति वदं, ओपयं केन कथं वदेय।
अत्ता निरत्ता [अत्तं निरत्तं (बहुसु)] न हि तस्स अट्ठि, अधोसि सो दिट्ठिमिधेव सब्बन्ति॥
दुट्ठत्थकसुत्तं ततीयं नित्थितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> सुत्तनिपता >> 4.4 सुद्धत्थकसुत्त
वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<--->>>> अगला

दर्शनशास्त्र से कोई भी पवित्र नहीं होता; दर्शनशास्त्र के प्रति समर्पित लोग एक गुरु से दूसरे गुरु के पास भटकते रहते हैं, परन्तु बुद्धिमान लोग वासना से प्रेरित नहीं होते और संसार में किसी भी चीज को सर्वोच्च नहीं मानते।

अंतर्वस्तु
14.4 शुद्धकासुत्त

1.1अनुवाद
1.2पाली-रोमन
1.3पाली-देवनागरी
4.4 शुद्धतकासुत्त
अनुवाद
1. मैं एक शुद्ध, परम श्रेष्ठ, स्वस्थ व्यक्ति को देखता हूँ; उसके विचारों से मनुष्य का शुद्धिकरण होता है; इस मत को धारण करके, और इस मत को सर्वोच्च मानकर वह शुद्ध को देखने के लिए ज्ञान की ओर लौटता है। (794)

2. यदि मनुष्य का शुद्धिकरण (उसके दार्शनिक) विचारों से होता है, या वह ज्ञान से दुख को त्याग देता है, तो वह अपने उपाधियों के साथ (आर्यमग्ग, अर्थात् श्रेष्ठ मार्ग से भिन्न) किसी अन्य मार्ग से शुद्ध होता है; उसके विचारों के कारण वह उसे ऐसा कहने के लिए कहता है। (795)

3. परन्तु जो ब्राह्मण देखे या सुने हुए, सद्गुणों और (पवित्र) कर्मों, या सोचे हुए, अच्छे और बुरे से आसक्त नहीं रहता, और इस संसार में कुछ भी न करके, जो कुछ ग्रहण किया है उसे त्याग देता है, वह यह स्वीकार नहीं करता कि शुद्धिकरण किसी अन्य से होता है। (796)

4. अपने पूर्व (गुरु) को त्यागकर वे दूसरे के पास जाते हैं; अपनी इच्छाओं का अनुसरण करते हुए वे अपने बंधन नहीं तोड़ते; वे पकड़ते हैं, वे बंदर की तरह शाखा को पकड़ने के तुरंत बाद छोड़ देते हैं। (797)

5. स्वयं कुछ (पवित्र) कार्य करने के बाद वे अपनी इंद्रियों द्वारा निर्देशित होकर विभिन्न (वस्तुओं) की ओर जाते हैं, परन्तु महान पन्ना (प्रत्यक्ष अनुभवात्मक ज्ञान) वाला व्यक्ति, एक बुद्धिमान व्यक्ति जिसने अपनी बुद्धि से धम्म को समझा है, विभिन्न (व्यवसायों) की ओर नहीं जाता। (798)

6. वह सभी धम्मों के बीच एकांत में रहकर, जो कुछ भी देखा, सुना या सोचा है—इस संसार में कोई भी उसे, जो खुलेआम विचरण करता है, कैसे बदल सकता है? (799)

7. वे (कोई मत) नहीं बनाते, वे (किसी चीज को) प्राथमिकता नहीं देते, वे यह नहीं कहते, 'मैं असीम रूप से शुद्ध हूँ;' आसक्ति की गाँठ काटकर, वे संसार में कहीं भी (किसी चीज) की लालसा नहीं करते। (800)

8. वह एक ब्राह्मण है जिसने (पाप पर) विजय प्राप्त की है; उसके द्वारा जानने और देखने के बाद किसी भी चीज को अपनाया नहीं जाता; वह किसी भी प्रकार के जुनून से प्रभावित नहीं है; इस संसार में उसके द्वारा सर्वोच्च कुछ भी नहीं माना जाता है। (801)

सुद्धत्तकसुत्त समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
4. सुद्धाट्ठकसुत्तं
794.
पसामि शुद्धं परमं अरोगं, दित्थेन संशुद्धि नरस्सा होति;
एवाभिजानं [एताभिजानं (सी. पी.)] परमंति नात्वा, सुद्धानुपसिति पैक्सेति नाणं।
795.
दित्थेन सी शुद्धि नरस्सा होति, नाणेन वा सो पजहति दुक्खं;
अननेना सो सुज्जति सोपधिको, दीथि हि नं पाव तथा वदानं।
796.
न ब्राह्मणो अनानतो सुद्धिमहा, दिट्ठे सुते सिलवते मुते वा;
Puññe ca pāpe ca anūpalitto, attañjaho nayidha pakubbamāno.
797.
पुरिमं पहाय अपरं सीतासे, एजानुगा ते न तरन्ति संगं;

ते उग्गहयन्ति निरसज्जन्ति, कपिव सखां पमुञ्च गहयं [पमुखं गहया (स्या.), पमुञ्च गहया (का.)]।
798.
सयं समादाय वतानि जंतु, उचवाचं गच्छति संनसत्तो;
विद्वा च वेदेहि समेच्च धम्मं, न उच्चवाकं गच्छति भूरिपन्नो।
799.
स सब्बधम्मेसु विसेनिभूतो, यं किंचि दिट्ठं वा सुतं मुतं वा;
Tameva dassiṃ vivaṭaṃ carantaṃ, kenīdha lokasmi vikappayeyya.
800.
न कप्पयन्ति न पुरेक्खरोन्ति, अचन्तशुद्धिति न ते वदन्ति;
अदानगंथं गतितं विसज्जा, असां न कुब्बन्ति कुहिनसि लोके।
801.
सीमातिगो ब्राह्मणो तस्स नत्थि, नात्वा वा दिसवा वा [अनत्वा च दिसवा च (का. सि. का.)] समुग्गहितम्;
न रागरागी न विरागरत्तो, तसीधा नत्थि परमुग्गहितन्ति।
शुद्धाथकसुत्तं चतुत्थं नियतं।

पाली-देवनागरी
4. सुद्धट्ठकसुत्तं
7
पस्सामि सुद्धं परमं अरोगं, दिट्ठेन संशुद्धि नरस्स होति।
एवाभिजानं [एताभिजानं (सी० पी०)] परमंति ञत्वा, सुद्धानुपस्सति पच्चचेतति ज्ञानं॥
7.7.
दित्थेन चे सुद्धि नरस होति, न्यानेन वा सो पजहति दुक्खं।
अञ्जेन सो सुज्झति सोपधिको, दिट्ठि हि नं पाव तथा वदानं॥
7.
न ब्राह्मणो अञ्जन्तो सुद्धिमः, दित्थे सुते सीलवते मुते वा।
पुञ्जने च पापे चानोप्लित्टो, अत्तनदजहो नयिध पकुब्बमानो॥
7.
पुरीमं पहाय अपरं सीतासे, एजानुगा ते न तरन्ति सङ्गं।
ते उग्गहन्ति निरस्सजन्ति, कपिव साखं पमुञ्चं गहायं [पमुखं गहाय (स्या०), पमुञ्च गहाय (क०)]॥
7.
सयं समदाय वतनि जंतु, उच्छदावचं गच्छति संज्ञसत्तो।
विद्वा च वेदेहि समेच्छ धम्मं, न उच्छवाचं गच्छति भूरिपञ्चनो॥
7.
स सब्बधम्मेसु विसेनिभूतो, यं किञ्च दिट्ठं व सुतं मुतं वा।
तमेव दस्सिं विवतं चरन्तं, केनिध लोकस्मि विकप्पयेय॥
.
न कप्पयन्ति न पूर्णोक्रोन्ति, अच्चन्तशुद्धिति न ते वदन्ति।
सहयोगीगण्थं गथितं विसज्ज, असां न कुब्बन्ति कुहिञ्चि लोके॥
100
सीमातिगो ब्राह्मणो तस्स नत्थि, ञत्वा व दिस्वा व [ञत्वा च दिस्वा च (क० सी० क०)] समुघहितं।
न रागरागी न विरागरत्तो, तसिध नत्थि परमुग्गहितन्ति॥
सुद्धत्थ्कसुत्तं चतुत्थं निश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> सुत्तनिपता >> 4.5 परमत्थकसुत्त
वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<--->>>> अगला

दार्शनिक वाद-विवाद में स्वयं को नहीं लगाना चाहिए; जो ब्राह्मण किसी भी दर्शनशास्त्र को नहीं अपनाता, वह अपरिवर्तनीय होता है, उसने निर्वाण प्राप्त कर लिया होता है।

अंतर्वस्तु

4.5 परमत्थकसुत्त

अनुवाद

1. जो व्यक्ति दार्शनिक मतों का पालन करते हुए, 'यह सबसे उत्तम है' कहकर संसार में सर्वोच्च मानता है, उससे भिन्न प्रत्येक वस्तु को वह नीच कहता है, अतः वह विवाद पर विजय प्राप्त नहीं कर पाता। (802)

2. क्योंकि वह अपने आप में देखे-सुने, सद्‌गुणों और कर्मों, या विचारों के संबंध में अच्छा परिणाम देखता है, अतः उसे अपनाकर वह अन्य सभी वस्तुओं को बुरा मानता है। (803)

3. विद्वान इसे एक ऐसा बंधन कहते हैं जिस पर निर्भर होकर व्यक्ति किसी अन्य वस्तु को बुरा मानता है। अतः भिक्षु को देखे, सुने या सोचे गए तथ्यों, सद्‌गुणों और कर्मों पर निर्भर नहीं रहना चाहिए। (804)

4. उसे इस संसार में ज्ञान या सद्‌गुणों और कर्मों द्वारा कोई दार्शनिक मत नहीं बनाना चाहिए, न ही स्वयं को दूसरों के बराबर समझना चाहिए, न ही स्वयं को नीचा या विशिष्ट समझना चाहिए। (805)

5. जो कुछ उन्होंने ग्रहण किया है, उसे त्यागकर, किसी भी चीज़ को न पकड़ते हुए, वे ज्ञान पर भी निर्भर नहीं रहते। वे अन्य चीजों में लीन रहने वालों के साथ संगति नहीं करते, वे किसी भी (दार्शनिक) दृष्टिकोण की ओर नहीं लौटते। (806)

6. जिनके मन में इस लोक में पुनर्जन्म या परलोक में पुनर्जन्म की इच्छा नहीं है, उनके लिए धर्मों (धम्मेसु) के बीच अन्वेषण के बाद कोई विश्राम स्थान नहीं है। (807)

7. उनके मन में देखी, सुनी या सोची गई किसी भी बात के प्रति जरा भी पूर्वाग्रह नहीं है; इस संसार में कोई भी ऐसे ब्राह्मण को कैसे बदल सकता है जो कोई दृष्टिकोण नहीं अपनाता? (808)

8. वे (कोई दृष्टिकोण) नहीं बनाते, वे (किसी भी चीज़ को) प्राथमिकता नहीं देते, वे धर्मों का चयन नहीं करते, ब्राह्मण सद्‌गुण और (पवित्र) कर्मों पर निर्भर नहीं होता; परलोक जाकर, ऐसा व्यक्ति वापस नहीं लौटता। (809)

परमत्तकसुत्त समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन

5. परमाट्ठकसुत्तं

802.

परमन्ति दितिषु परिब्बसानो, यदुत्तरी कुरुते जंतु लोके;
हिनाति अन्ने ततो सब्बमहा, तस्मा विवादानि अवित्तो।

803.

यदत्तनि पस्सति अनिसांसं, दिट्ठे सुते सिलावते [सिलब्बते (स्या.)] म्यूट वा;
तदेव सो तत्थ समुग्गहाय, निहिनातो पस्सति सब्बमन्नं।

804.

तं वापि गंथं कुसल वदन्ति, यं निस्सितो पस्सति हिनमनन्नाम्;
तस्मा हि दिट्ठं वा सुतं मुतं वा, सिल्बत्तं भिक्खु न निस्साय्य।
805.
दिथिम्पि लोकस्मि न कप्पाय्य, न्यानेन वा सिलावतेन वापि;
समोति अत्तनमनुपनेय्य, हिनो न मन्नेथा विसेसि वापि।
806.
अत्तं पहाय अनुपदियानो, नाणेपि सो निस्सायं नो करोति;
सा वे वियात्तेसु [वियुत्तेसु (सि. अट्ठा.), द्वियत्तेसु (का.)] न वाग्गसारि, दिथिम्पि [दिथिमापि (का.)] सो ना पैक्सेति किञ्ची।
807.
यस्सुभ्यन्ते पणिधिधा नत्थि, भावभवाय इधा वा हुरं वा;
निवेशा तस्स न संति केचि, धम्मेसु निच्चेय समुग्गहितं।
808.
तस्सिधा दिट्ठे वा सुते म्यूटे वा, पाकप्पिता नत्थि अनुपि सन्ना;
तं ब्राह्मणं दितिथिमानदियानं, केनिधा लोकस्मिं विकप्पाय्य।
809.
न कप्पयंति न पूरेक्खरौंति, धम्मपि तेसं न पतिचितासे;
न ब्राह्मणो सिलवतेन नेय्यो, पारंगतो न पचेति तदिति।
परमाथकसुत्तं पंचमं निहितं।

पाली-देवनागरी
5. परमत्थकसुत्तं
प्रणु.
परमन्ति दिट्ठिसु परिब्बसानो, यदुत्तरति कुरुते जन्तु लोके।
हीनाति अञ्जने ततो सब्बमः, तस्मा विवादानि अवितिवत्तो॥
.
यदत्तनि पस्सति अनिसं, दित्थे सुते सीलवते [सिलब्बते (स्या०)] म्यूट वा।
तदेव सो तथा समुघ्घय, निहिणतो पस्सति सब्बमञ्च।
.
तं वापि गुंथं कुसला वदन्ति, यं निस्सीतो पस्सति हीनमञ्च।
तस्मा हि दिट्ठं वा सुतं मुतं वा, सीलब्बतं भिक्खु न निस्सयेय॥
40.
दिट्ठिमपि लोकस्मिं न कप्पयेय्य, नानेन वा सीलवतेन वापि।
समोति अत्तनमनुपनेयय, हिनो न मन्देथ विसेसि वापि॥
.
अत्तं पहाय अनुपादियानो, ञनेपि सो निस्सायं नो करोति।
स वे वियत्तेसु [वियुत्तेसु (सी० अट्ठ०), द्वियत्तेसु (क०)] न वाग्गसारि, दिट्ठिमपि [दिट्ठिमपि (क०)] सो न पच्चचेतति किञ्चचि॥
1.55
यस्सुभयन्ते पनिधीध नथि, भावाभवाय इध वा हुरं वा।
निवेसना तस्स न शांति केचि, धम्मेसु निच्छेय समुघहितं॥
252444
तस्सीध दिट्ठे वा सुते मुते वा, पक्प्पिता नत्थि अनुपि संज्ञ।
तं ब्राह्मणं दित्तिमनादियानं, केनिध लोकस्मिं विकप्पयेय्य॥
।
न कप्पयन्ति न पूर्णोक्रोन्ति, धम्मपि तेसं न पतिचितासे।
न ब्राह्मणो सीलवतेन नेय्यो, पारंगतो न पच्चेति तदिति॥
परमत्थकसुत्तं पञ्चमं निश्चितं।

वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<-->>>> अगला

स्वार्थ से दुःख और लोभ उत्पन्न होते हैं; वह भिक्षु जो संसार से विमुख होकर घर-बार भटकता है, स्वतंत्र होता है और किसी दूसरे के माध्यम से शुद्धि की इच्छा नहीं रखता।

अंतर्वस्तु

4.6 जरासुट्टा

अनुवाद

1. यह जीवन सचमुच छोटा है, सौ वर्षों के भीतर ही मृत्यु हो जाती है, और यदि कोई इससे अधिक जीता है, तो वह वृद्धावस्था से मरता है। (810)

2. लोग स्वार्थ से दुखी होते हैं, निरंतर चिंताएँ उन्हें मार डालती हैं, यह (संसार) निराशा से भरा है; यह देखकर, किसी को घर में नहीं रहना चाहिए। (811)

3. यहाँ तक कि जिस वस्तु को मनुष्य अपना समझता है, वह भी मृत्यु के साथ छूट जाती है: यह जानते हुए, बुद्धिमान (मनुष्य) मेरे अनुयायी होते हुए सांसारिकता की ओर न मुड़े। (812)

4. जैसे जागने पर मनुष्य वह नहीं देख पाता जो उसे नींद में मिला था, वैसे ही वह अपने प्रिय व्यक्ति को भी नहीं देख पाता जो गुजर गया है और मर चुका है। (813)

5. जिन व्यक्तियों का नाम लिया जाता है, वे देखे और सुने दोनों जाते हैं, परन्तु केवल गुजरे हुए व्यक्ति का नाम ही अविचलित रहता है। (814)

6. लालची लोग अपने स्वार्थ में शोक, विलाप और लोभ नहीं छोड़ते; इसलिए मुनियों (संतों) ने लोभ का त्याग कर नितांत सुरक्षा (अर्थात निर्वाण) की प्राप्ति के लिए विचरण किया। (815)

7. जो भिक्षु अनासक्त होकर विचरण करता है और संन्यासी का मन लगाता है, उसके लिए यह उचित है कि वह स्वयं को (पुनः) प्रकट न करे। (816)

8. किसी भी परिस्थिति में स्वतंत्र मुनि (संत) किसी को प्रसन्न या अप्रसन्न नहीं करता; दुःख और लोभ उस पर उतना ही अछूता रहता है जितना जल पत्ते पर। (817)

9. जैसे जल की एक बूँद कमल पर नहीं चिपकती, वैसे ही मुनि (संत) किसी भी चीज से आसक्त नहीं रहता, अर्थात् जो देखा, सुना या सोचा गया हो। (818)

10. जिसने (पापों से) छुटकारा पा लिया है, वह इसलिए किसी भी चीज के बारे में ज्यादा नहीं सोचता क्योंकि उसे देखा, सुना या सोचा गया है; वह किसी दूसरे के माध्यम से शुद्धि की इच्छा नहीं करता, क्योंकि वह (किसी भी चीज से) प्रसन्न या अप्रसन्न नहीं होता। (819)

जरासुत्त समाप्त हो गया है।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
6. जरासुत्तं
810.
अप्पं वात जीवितं इदं, ओरं वससतापि मियाति [मियाति (सि. अट्ठा.)];
यो सेपि अतिच्च जीवति, अथा खो सो जरासापि मियाति।
811.
सोकन्ति जना ममयिते, न हि संति [ना हि संता (सि.), न हि संति (कत्थचि)] निच्च परिग्गहा;
विनाभावसंतमेविदं, इति दिस्वा नगरमवसे।
812.
मरणेणपि तं पहियति [पहियति (सि. स्या. का.)], यं पुरिसो मामिदंती [ममयिदंती (सि. स्या. का.), ममयंती (का.)] मन्नति;
एताम्पि विदित्वा [एतं दिस्वना (निद्देसे), एताम्पि विदित्वा (?)] पण्डितो, न ममत्तया नामेथा मामको।
813.
सुपिनेन यथापि संगतं, पतिबुद्धो पुरिसो न पस्सति;
एवमपि पियायितं जनं, पेटं कालकटं न पस्सति।
814.
दिट्ठापि सुतापि ते जना, येसं नमामिदं पवुक्कति [नाममेव वसिस्सति (सि. स्या. पि.)];
नाम्ययेववसिस्सति, अक्खेय्यं पेतस्सा जंतुनो।
815.
सोकपरिदेवमच्चरं [सोकपरिदेवमच्चरं (सि. स्या. पि.), सोकं परिदेवमच्छरं (?)], न जहांति गिद्धा ममयिते;
तस्मा मुनयो परिग्गहं, हित्वा अकारिन्सु खेमादस्सिनो।
816.
पतिलीनचरस्स भिक्खुनो, भजमानस्स विवित्तमासानां;
समग्गियामहु तस्स तं, यो अत्तनं भवने न दासये।
817.
सब्बत्थ मुनि अनिसिटो, न पियं कुब्बति नोपि अप्पियं;
तस्मिं परिदेवमच्चरं, पन्ने वारि यथा न लिम्पति [लिप्पति (सि. पि.)]।
818.
उदबिन्दु यथापि पोक्खरे, पदुमे वारि यथा न लिम्पति;
एवं मुनि नोपलिम्पति, यदिदं दितहसुतं मुतेसु वा।
819.
धोनो न हि तेन मन्नति, यदिदं दितहसुतं मुतेसु वा;
नाण्णेन विशुद्धमिच्छति, न हि सो रजजति नो विराजजति।
जरासुत्तं चट्ठं नियतं।

पाली-देवनागरी
6. जरासुत्तं
.
अप्पं वत जीवितं इदं, ओरं वस्सस्तपि मियाति [मियति (सी० अट्ठ०)]।
यो चेपि अतिलच्छ जीवति, अथ खो सो जरसापि मियाति॥
2011.
सोचन्ति जना ममयिते, न हि सन्ति [न हि सन्ता (सी०), न हि सन्ति (कत्थचि)] निच्चचा परिग्गहा।
विनाभावसन्तमेविदं, इति दिस्वा नगरमवसे॥
1.
मरणेनपि तं पहियति [पहियति (सी० स्या० क०)], यं पुरिसो ममिदन्ति [ममयिदन्ति (सी० स्या० क०), ममयन्ती (क०)] मन्ति।
एतमपि विदित्वा [एतं दिस्वान (निद्देसे), एतमपि विदित्व (?)] पण्डितो, न ममत्तय नामे मामको॥
100.

सुपिनेन यथापि सङ्गतं, पतिबुद्धो पुरिसो न पस्सति।
एवमपि पययितं जनं, पेतं कालकतं न पस्सति॥
80.
दिट्ठपि सुतापि ते जना, येसं नम्मिदं पवुच्चति [नाममेव वसिस्स्ति (सी॰ स्या॰ पी॰)]।
नामंयेवावसिस्स्ति, अक्खेयं पेटस्स जन्तुनो॥
पीएनल.
सोकपरिदेवमच्छरं [सोकपरिदेवमच्छरं (सी॰ स्या॰ पी॰), सोकं परिदेवमच्छरं (?)], न जहन्ति गिद्ध ममायिते।
तस्मा मुन्यो परिग्गहं, हित्वा आचरिंसु खेमदासिनो॥
.
पतिलीनचरस्स भिक्खुनो, भजमानस्स विवित्तमासनं।
समग्गियमहु तस्स तं, यो अत्तानं भवने न दस्सये॥
तीन पंद्रह.
सब्बथ मुनि अनिसिस्तो, न पियं कुब्बति नोपि अप्पियं।
तस्मिं परिदेवमच्छरं, पन्ने वारि यथा न लिम्पति [लिप्पति (सी॰ पी॰)]॥
118.
उदबिंदु यथापि पोखरे, पदुमे वारि यथा न लिम्पति।
एवं मुनि नोपलिम्पति, यदिदं दिट्ठसुतं मुतेसु वा॥
19.
धोनो न हि तेन मन्नति, यदिदं दिट्ठसुतं मुतेसु वा।
नाञ्जेन विशुद्धमिच्छति, न हि सो रजदजति नो विरजदजति॥
जरासुत्तं छट्ठं निश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> सुत्तानिपात >> 4.7 तिस्सामेट्टेय्यसुत्त,

वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

____

पिछला <<<<--->>>> अगला

____

यौन संबंध से बचना चाहिए।

____

अंतर्वस्तु

4.7 तिस्सामेटेय्यासुत्त
अनुवाद
1. 'हे पूज्यवर, मुझे बताइए,' - पूज्य तिस्सा मेत्तैया ने कहा, - 'जो व्यभिचार में लिप्त रहता है, उसकी पराजय क्या है; हम आपके उपदेश सुनकर एकांत में अध्ययन करेंगे।' (820)

2. 'हे मेत्तैया, जो व्यभिचार में लिप्त रहता है,' - भगवान बुद्ध ने कहा, - 'उसके उपदेश व्यर्थ हो जाते हैं, और वह अपने आप को गलत कामों में लगाता है, यही उसमें नीचता है।' (821)

3. 'जो पहले एकांत में विचरण करता था, अब व्यभिचार में लिप्त हो जाता है, उसे संसार में नीच, साधारण, लुढ़कते रथ के समान कहते हैं।' (822)

4. 'उसने पहले जो मान-सम्मान और यश प्राप्त किया था, वह अब खो गया है; यह देखकर उसे व्यभिचार त्यागना सीखना चाहिए।' (823)

5. जो अपने विचारों से अभिभूत होकर कंजूस की तरह ध्यान करता है, ऐसा व्यक्ति दूसरों की (निंदा करने वाली) बातें सुनकर असंतुष्ट हो जाता है। (824)

6. फिर वह दूसरों के उपदेशों से प्रेरित होकर हथियार बनाता है (अर्थात कर्म करता है), वह बहुत लालची होता है और झूठ में डूब जाता है। (825)

7. "बुद्धिमान" कहलाकर वह एकांतवास में प्रवेश करता है, फिर यौन संबंध में लिप्त होकर वह मूर्खता के कारण पीड़ा भोगता है। (826)

8. इसे दुख समझकर मुनि (संत) को संसार में प्रारंभ से अंत तक दृढ़तापूर्वक एकांतवास का पालन करना चाहिए, उसे यौन संबंध में लिप्त नहीं होना चाहिए। (827)

9. उसे एकांतवास सीखना चाहिए, यह श्रेष्ठ पुरुषों के लिए सर्वोच्च है, परन्तु इसलिए उसे अपने आप को श्रेष्ठ नहीं समझना चाहिए, यद्यपि वह वास्तव में निर्वाण (मुक्ति, मोक्ष, अमरता) के निकट है। (828)

10. 'वह मुनि (संत) जो (इच्छाओं से रहित) विचरण करता है, इंद्रिय सुखों की लालसा नहीं करता, और जिसने नदी पार कर ली है, उससे इंद्रिय सुखों में बंधे प्राणी ईर्ष्या करते हैं।' (829)

तिस्सामेत्तेयसुत्त समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
7. तिस्सामेत्तेयसुत्तं
820.
"मेथुनमनुयुत्तस्सा, (इक्कायस्मा तिस्सो मेट्टेय्यो) विघातं ब्रूहि मारिसा;
सुत्वान तव शासनं, विवेके सिक्खिस्समसे।
821.
"मेथुनमनुयुत्तस्सा, (मेत्तेयति भगवान) मुस्सते वापी सासनं;
मिच्च च पतिपज्जति, एतं तस्मिं अनार्यं।
822.
"एको पुब्बे कारित्वाना, मेथुनं यो निसेवति;
यानं भंतं वा तं लोके, हिनामाहु पुथुज्जनं।
823.
"यसो किति च या पुब्बे, हयते वापि तस्स स;
एतामपि दिस्व सिक्खेथा, मेथुनं विप्पाहतवे।
824.
"संकप्पेहि परेतो सो, कपाणो विया झायति;
सुत्वा परेसं निग्घोसं, मंकु होति तथाविधो।
825.
"अथ सत्तानि कुरुते, परवदेहि कोदितो;
एसा ख्वास्सा महागेधो, मोसावज्जं पगाहति।
826.
"पण्डितोति समानातो, एककारियं अधिथितो;
अथापि [सा कैपि (निद्देस)] मेथ्यून युत्तो, मंडोवा परिकिसाति [परिकिलिसाति (सि.)]।
827.

"एतमदीनवं नात्वा, मुनि पुब्बापरे इधा;
एककारियं दहं कयिरा, न निसेवेथा मेथुनं।
828.
"विवेकन्याव सिक्खेथा, एतदरियाणामुत्तमम्;
न तेन सेठो मन्नेथा, सा वे निब्बानसांतिके।
829.
"रित्तासा मुनिनो कैराटो, कामेसु अनापेखिनो;
ओघतिनस्सा पिहायन्ति, कामेसु गधीता [गतिता (सि.)] पजा'ति।
तिस्सामेत्तेयसुत्तं सत्तमं निहितं।

पाली-देवनागरी
7. तिस्समेत्तेय्यसुत्तं
820.
" मेथुनमनुयुत्तस्स, (इच्चदायस्मा तिस्सो मेत्तेय्यो) विघातं ब्रूहि मारिस।
सुत्वं तव ससनं, विवेके सिक्खिस्सामसे॥
200.
"मेथुनमनुयुत्तस्स, (मेत्तेयति भगवान) मुस्सते वापि ससनं।
मिच्छा च पत्पज्जजति, एतं तस्मिं अनार्यं॥
.
"एको पुब्बे चरित्वान, मेथुनं यो निसेवति।
यानं भन्तं वा तं लोके, हीनमहु पुथुज्जनं॥
.
"यसो कित्ति च या पुब्बे, हयते वापि तस्स सा।
एतम्पि दिस्वा सिक्खेथ, मेथुनं विप्पहातवे॥
.
"सङ्कप्पेहि परेतो सो, कपाणो विय झायति।"
सुत्वा परेसं निघोसं, मङ्कु होति तथाविधो॥
25.
"अथ सथानि कुरुते, परवदेहि चोदितो।
एस ख्वस्स महागेधो, मोसवजं पघाटी॥
200.
"पण्डितोति संज्ञतो, आचार्यं अधित्थितो।"
अथापि [स चापि (निद्देसे)] मेथुने युत्तो, मांडोव परिकिस्स्ति [परिकिलिस्स्ति (सी०)]॥
11
"एत्मादीनवं ञत्वा, मुनि पुब्बापेरे इध।
एकचरियं दळहं क्यिरा, न निसेवेथ मेथुनं॥
→
"विवेकञ्जनेव सिखेथ, एतदारियानमुत्तमं।
न तेन सेट्ठो मञ्जेथ, स वे निब्बानसान्तिके॥
829.
"रित्तस्स मुनिनो चरतो, कामेसु अनपेखिनो।
ओघतिन्नस्स पिहयन्ति, कामेसु गधिता [गति (सी०)] पजा"ति॥
तिस्समेतेय्यसुत्तं सत्तमं निश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> सुत्तनिपता >> 4.8 पासुरसुत्त

वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<-->>>> अगला

विवाद करने वाले एक-दूसरे को मूर्ख करार देते हैं, वे प्रशंसा की कामना करते हैं, लेकिन ठुकराए जाने पर असंतुष्ट हो जाते हैं; विवाद से शुद्धि नहीं होती, बल्कि बुद्ध का अनुसरण करने से होती है, जिन्होंने सभी पापों से मुक्ति पा ली है।

अंतर्वस्तु

4.8 पशुसुत्त

अनुवाद

1. यहाँ वे 'पवित्रता' बनाए रखते हैं, अन्य धर्मों (धम्म) में वे पवित्रता की अनुमति नहीं देते; जिस चीज़ के लिए उन्होंने स्वयं को समर्पित किया है, उसे वे अच्छा कहते हैं, और वे एकल सत्यों का व्यापक अध्ययन करते हैं। (830)

2. विवाद की इच्छा रखने वाले, सभा में उतरकर एक-दूसरे को मूर्ख ठहराते हैं, फिर दूसरों के पास जाकर झगड़ा करते हैं, प्रशंसा की इच्छा रखते हैं और स्वयं को (एकमात्र) विशेषज्ञ कहते हैं। (831)

3. सभा के बीच में विवाद में लगे रहकर, प्रशंसा की इच्छा से वे चारों ओर प्रहार करते हैं; परन्तु जब उनका विवाद विफल हो जाता है तो वे असंतुष्ट हो जाते हैं, दूसरों की कमियाँ ढूँढ़ने वाले निंदा से क्रोधित हो जाते हैं। (832)

4. क्योंकि उनके प्रश्नों की परीक्षा लेने वाले कहते हैं कि उनका विवाद हार गया है, वे अपने विवाद हारने पर विलाप और शोक करते हैं; 'उसने मुझे हरा दिया है,' ऐसा कहते हुए वे विलाप करते हैं। (833)

5. ये विवाद समनों (भिक्षुओं) के बीच उत्पन्न हुए हैं, इन विवादों में एक-दूसरे पर प्रहार और प्रहार किया जाता है; यह देखकर उसे विवाद छोड़ देना चाहिए, क्योंकि प्रशंसा पाने की कोशिश में कोई अन्य लाभ नहीं है। (834)

6. या फिर सभा के बीच में विवाद का निपटारा करके उसकी प्रशंसा की जाती है; इसलिए वह हँसेगा और प्रसन्न होगा, मानो उसने वह मामला जीत लिया हो जैसा उसने चाहा था। (835)

7. जो उसकी महानता है, वही उसकी हार का कारण भी बनेगी, फिर भी वह घमंड और अहंकार से बातें करता है; यह देखकर किसी को विवाद नहीं करना चाहिए, क्योंकि विद्वान यह नहीं कहते कि इससे शुद्धि होती है। (836)

8. जैसे कोई महान व्यक्ति राजसी भोजन से पोषित होकर गरजता हुआ किसी शत्रु की तलाश में घूमता है—हे महान, जहाँ वह (अर्थात दार्शनिक दित्थिगतिका) है, वहाँ जाओ; पहले ऐसा कुछ भी नहीं था जिससे लड़ना पड़े। (837)

9. जो लोग किसी (विशेष दार्शनिक) मत को अपनाकर विवाद करते हैं और कहते हैं कि 'केवल यही सत्य है', विवाद उत्पन्न होने पर उनसे कहो, 'यहाँ तुम्हारा कोई विरोधी नहीं है।' (838)

10. जो लोग एकांतवास में भटकते हैं, बिना किसी मत का विरोध किए—हे पसुर, तुम उनके बीच किस प्रकार का विरोध पाओगे, जिनके द्वारा इस संसार में किसी भी वस्तु को श्रेष्ठ नहीं माना जाता? (839)

11. फिर तुम (विभिन्न दार्शनिक) मतों पर मनन करने लगे; तुम उस व्यक्ति के साथ जुड़ गए हो जिसने (सभी पापों से) छुटकारा पा लिया है, परन्तु तुम उसके साथ आगे नहीं बढ़ पाओगे। (840)

पसुरसुत्त समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
8. पसूरसुत्तं
830.
इधेव शुद्धि इति वादयन्ति [विदियंती (सि. पि.)], नान्नेसु धम्मेसु विशुद्धिमाहु;
Yaṃ nissitā tattha subhaṃ vadānā, paccekasaccesu puthū niviṭṭhā.
831.
ते वडकामा परिसं विगयः, बालं दहन्ति मिथु अण्णामन्नं;
वदन्ति ते अन्नसिता कथोज्जां, पसंसाकामा कुसल वदना।
832.
युत्तो कथ्यं परिषय माज्जे, पसंस्मिच्चं विनिघति होति;
अपहतस्मिं पना मंकु होति, निंदाय सो कुप्पति रंधमेसि।
833.
यमस्सा वदं परिहीनमाहु, अपाहत् पन्हविमंसकासे;
परिदेवति सोचति हिनावादो, उपचगा मन्ति अनुत्थुनाति।
834.
एते विवाद समनेसु जाता, एतेसु उग्गति निघति होति;
एताम्पि दिस्वा विरामे कथोज्जां, न हन्नदत्तथिपसंसलभा।
835.
पसंसितो वा पण तत्थ होति, अक्खाय वदं परिसाय माज्जे;
तो हस्सति उन्नामति [उन्नमति (?)] च तेन, पप्पुय्य तमत्थं यथा मनो आहु।
836.
या उन्नति [उन्नति (?)] सस्सा विघातभूमि, मनातिमानं वदते पनेसो;
एताम्पि दिस्वा न विवद्येत्, न हि तेन शुद्धिं कुसल वदन्ति।
837.
सुरो यथा राजखादाय पुत्थो, अभिगज्जमेति पतिशुरामिच्चं;
येनेव सो तेन पलेहि सुरा, पुब्बेव नत्थि यदिदं युद्धाय।
838.
ये दिथिमुग्गयः विवादयन्ति [विवादियन्ति (सि. पि.)], इदामेव सच्चन्ति च वादयन्ति;
ते त्वं वदस्सु न हि तेधा अट्ठि, वदमहि जाते पतिसेनिकत्ता।
839.
विसेनिकत्व पना ये कैरन्ति, दिठ्ठिहि दितिथि अविरुज्जमाना;
तेसु त्वं किं लभेथो पसूरा, येसिधा नत्थि परमुग्गहितं।
840.
अथ त्वं पवित्रकमगमा, मनसा दिथिगतनि चिंतान्तो;
धोनेन युगं समागम, न हि त्वं सक्खसि संपयतावेति।
पसूरसुत्तं अठहमं निहितं।

पाली-देवनागरी
8. पसूरसुत्तं
-30.
इधेव सुद्धि इति वद्यन्ति [विदियन्ति (सी० पी०)], नाञ्जेसु धम्मेसु विशुद्धिमाहु।
यं निस्सीता तथा सुभं वदाना, पच्चचेकसच्चेसु पुथु निवित्था॥
.
ते वादकामा परिसं विगयः, बालं दहन्ति मिथु अञ्जनमञ्च।
वदन्ति ते अञ्चसिता कठोजजं, पसंस्कामा कुसल वदाना॥

युत्तो कथायं परिसाय मज्झे, पसंमिच्छं विनिघाति होति।
अपहतस्मिं पण मङ्कु होति, निन्दाय सो कुप्पति रन्धमेसि॥
.
यमस्स वादं परिहीनमहु, अपाहतं् पञ्चविमांस्कसे।
परिदेवति सोचति हीनवादो, उपचगा मन्ति अनुथुनाति॥
.
एते विवादा समानेसु जात, एतेसु उगति निघाति होति।
एतमपि दिस्वा विरमे कठोजजं, न हञ्डत्तथिपसंसलभा॥
★★।
पसंसितो वा पण तत्थ होति, अक्खाय वादं परिसाय मज्झे।
सो हस्सति उन्मति [उ सत्यं (?)] च तेन, पप्पुय तमथं यथा मनो आहु॥
.
या उन्नति [उ संज्ञाति (?)] स्स्स विघाटभूमि, मानातिमानं वदते पनेसो।
एतमपि दिस्वा न विवादयेत्, न हि तेन सुद्धिं कुसल वदन्ति॥
.
सुरो यथा राजखादाय पुत्थो, अभिगज्जमेति पतिसूरमिच्छं।
येनेव सो तेन पलेहि सूर, पुब्बेव नत्थि यदिदं युधाय॥
□।
ये दिट्ठिमुग्गयः विवादयन्ति [विवादियन्ति (सी० पी०)], इदमेव सच्चान्ति च वादयन्ति।
ते त्वं वदस्सु न हि तेध अट्ठि, वद्महि जाते पतिसेनिकत्ता॥
44.
विसेनिकत्व पण ये चरन्ति, दिट्ठिहि दिट्ठिं अविरुज्जमाना।
तेसु त्वं किं लभेथो पसूर, येसीध नत्थि परमुग्गहितं॥
40.
अथ त्वं पवित्रकर्मगमा, मनसा दिट्ठिगतानि चिन्तयन्तो।
धोनें युगं समागम, न हि त्वं सक्खसि संपयातवेति॥
पसूरसुत्तं अट्ठमं निश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> सुत्तनिपात >> 4.9 मगंडियासुत्त

वी. फौसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<-->>>> अगला

मगंदिया और बुद्ध के बीच संवाद। मगंदिया बुद्ध को अपनी पुत्री विवाह के लिए अर्पित करते हैं, लेकिन बुद्ध उसे अस्वीकार कर देते हैं। मगंदिया कहते हैं कि पवित्रता दर्शन से आती है, जबकि बुद्ध 'आंतरिक शांति' से। मुनि (संत) शांति के उपदेशक हैं, वे विवाद नहीं करते, वे दोषरहित हैं।

अंतर्वस्तु

4.9 मगंदियासुत्त
अनुवाद
1. बुद्ध: 'तन्हा, आरती और रागा (मृत्यु के देवता मारा की पुत्रियों) को देखकर भी मेरे मन में यौन संबंध बनाने की ज़रा भी इच्छा नहीं हुई। यह (तुम्हारी पुत्री का शरीर) जल और मल से भरा हुआ है, यह क्या है? मैं इसे अपने पैर से छूना भी नहीं चाहता।' (841)

2. मगंदिया: 'यदि तुम ऐसी अनमोल स्त्री, जिसे अनेक राजाओं ने चाहा है, को नहीं चाहते, तो तुम किस प्रकार का दृष्टिकोण, सद्गुण, कर्म, जीवन शैली और पुनर्जन्म का उपदेश देते हो?' (842)

3. "मैं यही कहता हूँ," (मैं अब यही घोषणा करता हूँ), जाँच-पड़ताल के बाद, हे मगंदीय, मेरे जैसे किसी भी व्यक्ति के लिए कोई भी ऐसा सिद्धांत नहीं है जिसे वह अपनाए," - भगवान (बुद्ध) ने कहा, - "और दार्शनिक विचारों में (दुःख) देखकर, उनमें से किसी को भी अपनाए बिना, सत्य की खोज करते हुए मैंने "आंतरिक शांति" पाई।" (843)

4. "सभी दार्शनिक संकल्प जो बनाए गए हैं," - मगंदीय ने कहा, - "आप वास्तव में उन्हें बिना अपनाए ही समझाते हैं; जिस "आंतरिक शांति" की धारणा का आप उल्लेख करते हैं, उसे बुद्धिमान कैसे समझाते हैं?" (844)

5. "किसी भी दार्शनिक मत से नहीं, परंपरा से नहीं, ज्ञान से नहीं, हे मगंदीय," - भगवान (बुद्ध) ने कहा, - "पुण्य और (पवित्र) कर्मों से कोई यह नहीं कह सकता कि पवित्रता विद्यमान है;" न तो दार्शनिक मत के अभाव से, न परंपरा के अभाव से, न ज्ञान के अभाव से, न सद्गुणों के अभाव से और न ही (पवित्र) कर्मों के अभाव से; इन सब का त्याग करके और (कुछ और) अपनाए बिना, उसे शांत और स्वतंत्र होकर अस्तित्व की इच्छा नहीं करनी चाहिए। (845)

6. 'यदि कोई (किसी दार्शनिक मत से), न परंपरा से, न ज्ञान से,' - मगंदिया ने कहा - 'या सद्गुणों और (पवित्र) कर्मों से यह नहीं कह सकता कि पवित्रता विद्यमान है, न ही (दार्शनिक) मत के अभाव से, न परंपरा के अभाव से, न ज्ञान के अभाव से, न सद्गुणों और (पवित्र) कर्मों के अभाव से, तो मैं इस सिद्धांत को मूर्खतापूर्ण मानता हूँ, क्योंकि (दार्शनिक) मतों से कुछ लोग पवित्रता की ओर लौटते हैं।' (846)

7. 'और (अपने दार्शनिक) मत के कारण पूछते हुए, हे मगंदिया,' - भगवान (बुद्ध) ने कहा - 'तुमने जिस चीज को अपनाया है, उसमें तुम आसक्ति में चले गए हो, और तुम्हें इस (आंतरिक शांति) का जरा भी ज्ञान नहीं है, इसलिए तुम इसे मूर्खतापूर्ण मानते हो।' (847)

8. जो अपने आप को (दूसरों के बराबर), या विशिष्ट, या नीच समझता है, वह इसी कारण विवाद करता है; परन्तु जो इन तीनों स्थितियों में अविचलित रहता है, उसके लिए (समानता) और "विशिष्टता" का कोई अर्थ नहीं होता। (848)

9. जिस ब्राह्मण के लिए (समानता) और "असमानता" का कोई अर्थ नहीं है, क्या वह कहेगा, "यह सत्य है?" या वह किससे विवाद करेगा, यह कहते हुए, "यह असत्य है?" वह किससे विवाद करेगा? (849)

10. अपना घर छोड़कर, बेघर होकर, गाँव में किसी से जान-पहचान न करके, कामवासना से मुक्त होकर, (किसी भविष्य के अस्तित्व की) इच्छा न करके,मुनि (संत) को लोगों से कलहपूर्ण चर्चा में नहीं पड़ना चाहिए। (850)

11. 'एक प्रख्यात पुरुष (नाग) को उन विचारों को अपनाकर विवाद नहीं करना चाहिए जिनसे वह (पूर्व में) संसार में भटकता रहा था; जैसे काँटेदार कमल (इलंबुगा) जल और कीचड़ से अछूता रहता है, वैसे ही शांति का संदेशवाहक मुनि (संत), लोभ से मुक्त, इंद्रिय सुखों और संसार से आसक्त नहीं रहता। (851)

12. 'एक सिद्ध पुरुष (दार्शनिक) दृष्टिकोण या चिंतन से अहंकारी नहीं होता, क्योंकि वह उस प्रकार का नहीं होता; न तो (पवित्र) कर्मों से, न ही परंपरा से वह निर्देशित होता है, वह (मन के) किसी भी विश्राम स्थल में नहीं जाता। (852)

13. 'जो लक्षणों से मुक्त है, उसके लिए कोई बंधन नहीं हैं, जिसे पन्ना (प्रत्यक्ष अनुभवात्मक ज्ञान) द्वारा मुक्ति मिली है, उसके लिए कोई मूर्खता नहीं है; (परन्तु) जो लक्षणों और (दार्शनिक) विचारों के पीछे भागते हैं, वे संसार में भटकते हुए (लोगों को) परेशान करते हैं।' (853)

मगंदीयसुत्त समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
9. मागण्डीयसुत्तम्
841.
"दिस्वना तन्हां अरतिं रागं च [अरतिंच रागं (स्या. का.)], नहोसि चंदो अपि मेथुनस्मिः;
किमेविदं मुत्तकारिसपुन्नं, पदापि नं सम्फुसितुं न इच्छे"।
842.
"एतादिसं सी रतनं न इच्छासि, नारिं नारिन्देहि बहुहि पत्तितम्;
दिथिगतं सिलवतं नु जीवितं [सिलावतानुजीवितं (सि. पि. का.)], भावुपपत्तिनचा वदेसी किदिसां"।
843.
"इदं वदामिति न तस्स होति, (मगंडीयति [मगंडीयति (सि. स्या. पि.)] भगव)
धम्मेसु निच्चेय्य समुग्गहितं;
Passañca diṭṭhīsu anuggahāya,
अज्झत्तसंतिं पचिनं अडस्सं"।
844.
"विनिच्चया यानि पकप्पितनि, (इति मगंडियो [मगंडियो (सि. स्या. पि.)])
ते वे मुनि ब्रूसी अनुग्गहाया;
अज्झत्तसंतिति यमेतमत्थं,
कथं नु धीरेहि पवेदितं तां"।
845.
"न दिठ्ठिया न सुतिया न न्यानेन, (मगंडियाति भगव)
सिलब्बतेनापि न सुद्धिमहा;
अदितिया असुतिया अनाना,
Asīlatā abbatā nopi tena;
Ete ca nissajja anuggahāya,
सन्तो अनिस्साय भावं न जप्पे"।
846.
"नहीं सीई किरा दिठिया न सुतिया न नाणेन, (इति मगंदियो)
सिलब्बतेनापि न सुद्धिमहा;
अदितिया असुतिया अनाना,
Asīlatā abbatā nopi tena;
मन्नमहं मोमुहमेव धम्मं,
दिठिया एके पॅसेंटी सुधिम्।"
847.
"दिठहांचा निस्साय अनुपुच्चमानो, (मगंडियाति भगवान)
समुग्गहितेसु पमोहमागा [समोहमागा (स्या. का.)];
इतो च नद्दक्खि अणुमपि सन्नं,
तस्मा तुवं मोमुहतो दहासि।
848.
"समो विसेसि उदा वा निहिनो, यो मननति सो विवदेथा तेन;
तिसु विधासु अविकम्पमानो, समो विसेसिति न तस्स होति।
849.
"सच्चन्ति सो ब्राह्मणो किं वदेय, मुसति वा सो विवदेथ केन;
यस्मिं समं विसमं वापि नत्थि, स केन वदं पतिसंयुजेय।
850.
"ओकं पाहाय अनिकेतासारि, गेमे अकुब्बं मुनि संथावनि [संधवनि (का.)];
कामेहि ऋत्तो अपुरेक्खराणो, कथं न विग्गयहा जनेन कयिरा।
851.
"येहि विवित्तो विचारेया लोके, न तानि उग्गैहा वडेय नागो;

जलंबुजं [एलंबुजं (सि. स्या.)] कंडकं वारिजं यथा, जलेना पंकेना कैनुपालित्टं;
एवं मुनि संतिवादो अगिद्धो, कामे च लोके च अनुपालितो।
852.
"न वेदगु दिट्ठियाको [न वेदागु दिठिया (का. सी. स्या. पि.)] न मुतिया, सा मनमेति न हि तम्मयो सो;
न कम्मुना नोपि सुतेन नेय्यो, अनुपानितो स निवेशेसु।
853.
"संनाविरत्तस्स न शांति गंथा, पन्नविमुत्तस्स न शांति मोहा;
सान्यान्चा दिथिन्चा ये अग्गहेसुं, ते घटयंता [घातमना (स्या. का.)] विकारन्ति लोके"ति।
मागण्डीयसुत्तं नवमं निहितम्।

पाली-देवनागरी
9. मागण्डीयसुत्तं
.
" दिस्वां तंहं अरतिं रागं च [अर्तिं च रागं (स्या० क०)], नाहोसि छंदो अपि मेथुनस्मिं।
किमेविदं मुत्तकरिसपुन्नं, पादपि नं सम्फुसितुं न इच्छे॥
842.
"एतादिसं चे रत्नं न इच्छसि, नारिं नारिन्देहि बहुहि पत्थितं।
दिट्ठिगतं सीलवतं नु जीवितं [सीलवतानुजीवितं (सी० पी० क०)], भवुपपत्तिनच वदेसि किदिसं"॥
.
"इदं वदामिति न तस्स होति, (मगन्दीयति [मगन्दीयति (सी० स्या० पी०)] भगवा)
धम्मेसु निच्छेया समुग्हितं।
पसन्नच दिट्ठीसु अनुग्गहाय,
अज्जत्तसन्तिं पचिनं अदस्सं"॥
एफ़्यू.
"विनिच्छया अर्थात पक्कपिटानि, (इति मागंडियो [मगंडियो (सी० स्या० पी०)])
ते वे मुनि ब्रूसि अनुग्गहाय।
अज्झत्तसंतितिमे यतमथं,
कथं नु धीरेहि पवेदितं तं"॥
44.
"न दिट्ठिया न सुतिया न न्यानेन, (मगन्दियाति भगवान)
सीलब्बतेनापि न सुधिमः।
आदिथिया अस्सुटिया अंजाना,
असीलता अब्बता नोपि तेन।
एते च निस्साजदज अनुग्गहाय,
सन्तो अनिस्साय भवं न जप्पे॥
4.
"नो चे किर दिट्ठिया न सुतिया न न्यानेन, (इति मगंदियो)
सीलब्बतेनापि न सुधिमः।
आदिथिया अस्सुटिया अंजाना,
असीलता अब्बता नोपि तेन।
मञ्जनमहं मोमुहमेव धम्मं,
दिट्ठिया एके पच्चेन्ति सुधिं"॥
4.
"दिट्ठञ्च निश्चयाय अनुपुच्छमानो, (मगन्दीयति भगवान)
समुघहितेसु पमोहमागा [समोहमागा (स्या० क०)]।
इतो च नाद्दक्खि अथोम्पि संज्ञं,
तस्मा तुवं मोमुहतो दहसि॥
2000

"समो विसेसि उद वा निहिनो, यो मन्नति सो विवदेथ तेन।"
तीसु विधासु अविकम्पमानो, समो विसेसिति न तस्स होति॥

.
"सच्चन्ति सो ब्राह्मणो किं वदेय, मुसाति वा सो विवदेथ केन।
यस्मिं समं विषमं वापि नत्थि, स केन वादं पतिसंयुजेय॥
850.
"ओकं पहाय अनिकेतसारि, गामे अकुब्बं मुनि संथवाणि [संधवाणी (क०)]।
कामेहि ऋत्तो अपुरेखराणो, कथं न विग्गयः जनेन कयिरा॥

.
"येहि विवित्तो विचारेय लोके, न तानि उग्गयः वदेय नागो।
जलम्बुजं [एल्म्बुजं (सी० स्या०)] कंदकं वारिजं यथा, जलेन पक्केन चनुपालित्तं।
एवं मुनि शांतिवादो अगिद्धो, कामे च लोके च आनंदलित्तो॥

.
"न वेदगु दिट्ठियाको [न वेदगू दिट्ठिया (क० सी० स्या० पी०)] न मुतिया, स मनमेति न हि तम्मयो सो।
न कम्मुना नोपि सुतेन नेय्यो, निरीक्षणितो स निवेसनेसु॥

.
"संज्ञाविरत्तस्स न शांति गंथा, पञ्चाविमुत्तस्स न शांति मोहा।
सञ्जनदच दिट्ठिञ्च ये अग्गहेसुं, ते घट्टयंता [घट्टमना (स्या० क०)] विचारन्ति लोके"ति॥
मागण्डीयसुत्तं नवमं निश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दक निकाय >> सुत्तनिपात >> 4.10 पुराभेदसुत्त

वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<-->>>> अगला

शांत मुनि (संत) की परिभाषा।

अंतर्वस्तु

4.10 पुरभेदसूत्र
अनुवाद
1. 'हे गौतम (बुद्ध) जब मुझसे श्रेष्ठ पुरुष के बारे में पूछा जाए, तो मुझे बताइए कि किस दृष्टि और किस गुण से शांत व्यक्ति कहलाता है?' (854)

2. 'जिसकी इच्छा शरीर के नष्ट होने से पहले ही विलीन हो जाती है,' - भगवान (बुद्ध) ने कहा - 'जो आदि और अंत पर निर्भर नहीं रहता, न मध्य को महत्व देता है, उसे कोई श्रेष्ठ नहीं मानता।' (855)

3. 'जो क्रोध से मुक्त है, कांपने से मुक्त है, घमंड से मुक्त है, दुर्व्यवहार से मुक्त है, जो बुद्धिमानी से बोलता है, जो उत्साहित नहीं होता, वही वास्तव में संयमित मुनि है।' (856)

4. 'भविष्य की इच्छा न होने के कारण वह अतीत के लिए शोक नहीं करता, वह स्पर्श में एकांत देखता है, और वह किसी दार्शनिक विचार से प्रेरित नहीं होता।' (857)

5. वह अनासक्त, कपटी, लोभी, ईर्ष्यालु, उद्दंड, तिरस्कारपूर्ण और निंदा करने वाला नहीं है। (858)

6. सुखदायक वस्तुओं की इच्छा से रहित और अहंकार से मुक्त, वह विनम्र, बुद्धिमान और भोला नहीं है, इसलिए वह किसी भी बात से अप्रसन्न नहीं होता। (859)

7. वह लाभ के लोभ से नहीं सीखता, हानि से क्रोधित नहीं होता, और इच्छा से विचलित न होकर मीठी चीजों का लोभ नहीं करता। (860)

8. समभावी (उपेखक), सदा विचारशील, वह संसार में स्वयं को (दूसरों के) बराबर, विशिष्ट या नीचा नहीं समझता: उसके लिए कोई इच्छा (उस्सादा) नहीं है। (861)

9. 'जिस व्यक्ति के लिए कुछ भी निर्भर नहीं है, जो स्वतंत्र है, जिसने धम्म को समझ लिया है, जिसके लिए न तो जन्म लेने की इच्छा है और न ही जन्म छोड़ने की, (862)

10. 'उसे मैं शांत कहता हूँ, जो इंद्रिय सुखों की तलाश नहीं करता; उसके लिए कोई बंधन नहीं है, उसने इच्छा पर विजय प्राप्त कर ली है। (863)

11. 'उसके लिए न पुत्र हैं, न पशु, न खेत, न धन, उसमें न तो कुछ ग्रहण किया हुआ है और न ही त्यागा हुआ है। (864)

12. 'जिस दोष के बारे में आम लोग, समन (भिक्षु) और ब्राह्मण (पुजारी) कहते हैं कि वह उसमें है, वह दोष उसमें नहीं है, इसलिए वह उनकी बातों से विचलित नहीं होता। (865)

13. 'लोभ से मुक्त, लालच रहित, मुनि (संत) स्वयं को विशिष्ट, साधारण या निम्न वर्ग में नहीं गिनता, वह काल में प्रवेश नहीं करता, क्योंकि वह काल से मुक्त है। (866)

14. 'जिसके लिए संसार में कुछ भी अपना नहीं है, जो अब नहीं रहा, उस पर शोक नहीं करता, और अपनी इच्छा के अनुसार धर्मों पर नहीं चलता, उसे शांत कहा जाता है।' (867)

पुरभेदसुत्त समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
10. Purābhedasuttaṃ
854.
"कथादस्सी कथासीलो, उपसंतोति वुक्काति;
तं मे गोतम पब्रुहि, पुच्चितो उत्तमं नारां"।
855.
"विततन्हो पुरा भेदा, (इति भगव) पुब्बमंतमनिसितो;
वेमज्जे नुपासंखेय्यो, तस्स नत्थि पुरक्खतं।
856.
"अक्कोधनो असन्तसि, अविकत्थि अकुक्कुको;
मन्ताभानि [मन्तभानि (स्या. पि.)] अनुद्धतो, स वे वाचायतो मुनि।
857.
" निरासति अनागते, अतीतं नानुसोचति;
विवेकादस्सी फस्सेसु, दिथिसु च न नियति [नियति (बहुसु)]।
858.
"पतिलिनो अकुहाको, अपिहालु अमाचारि;

अप्पागब्बो अजेगुच्चो, पेसुनेये सीए नो युतो।
859.
"सतियेसु अनसावि, अतिमाने च नो युतो;
संहो च पतिभानव [पतिभानव (स्या. पि.)], न साधो न विराजजति।
860.
"लाभकाम्य न सिक्खति, अलाभे च न कुप्पति;
Aviruddho ca taṇhāya, rasesu nānugijjhati.
861.
"उपेक्खको सदा सातो, न लोके मन्नते समां;
न विसेसि न अच्छेय्यो, तस्स नो सन्ति उस्सदा।
862.
"यस्सा निस्सायना [निस्सायता (सि. स्या. पि.)] नत्थि, नत्वा धम्मं अनिसिटो;
भावया विभावया वा, तन्हा यस्सा न विज्जति।
863.
"तां ब्रूमि उपसंतोति, कामेसु अनापक्खिनं;
गंथा तस्स न विज्जन्ति, अतरि सो विशत्तिकाम्।
864.
"न तस्स पुत्त पसावो, खेतं वत्थुञ्च विज्जति;
अत्ता वापि निरत्त वा [अत्तं वापि निरत्तं वा (बहुसु)], न तस्मि उपलब्भाति।
865.
"येन नं वज्जुं पुथुज्जना, अथो समानब्राह्मण;
तं तस्स अपुरक्खातं, तस्मा वदेसु नेजति।
866.
"वितागेधो अमाचरि, न उसेसु वदते मुनि;
ना समेसु ना ओमेसु, कप्पां नेति अकाप्पियो।
867.
"यस्सा लोके सकां नत्थि, असता च न सोचति;
धम्मेसु च न गच्छति, सा वे संतोति वुच्चति'ति।
पूरभेदसुत्तं दशमं निहितं।

पाली-देवनागरी
दस. पुराभेदसुत्तं
वल.
" कथंदस्सि कथंसिलो, उपसंतोति वुचदचति।
तं मे गोतम पब्रुहि, पुच्छितो उत्तमं नरं॥
65.
"वितातन्हो पुरा भेदा, (इति भगवा) पुब्बमन्तमनिसितो।
वेमझे नुपासङखेय्यो, तस्स नत्थि पुरखतं॥
।
"अत्रकोधनो असांतसी, अविकत्थी अकुक्रोकुचो।
मन्ताभानि [मन्ताभानि (स्या० पी०)] अनुद्धतो, स वे वाचयतो मुनि॥
.
"निरासति अनागते, अतीतं नानासोचति।
विवेकदस्सी फस्सेसु, दिट्ठिसु च न नियति [नियति (बहुसु)]॥
36
"पतिलिनो अकुहाको, अपिहालु अमाचरी।
अप्पगब्बो अजेगुच्छो, पेसुनेये च नो युतो॥
85

"सतिएसु अनस्सवी, अतिमाने च नो युतो।
संधो च पतिभवनवा [पतिभानवा (स्या० पी०)], न साधो न विरज्जति॥
दो.
"लाभकाम्या न सिक्खति, लाभे च न कुप्पति।"
अविरुद्धो च तन्हाय, रसेसु नानुगिज्जति॥
→
"उपेक्खको सदा सातो, न लोके मन्नते समं।
न विसेसि न नीचेय्यो, तस्स नो सन्ति उस्सदा॥
.
"यस्स निस्सायना [निस्सयता (सी० स्या० पी०)] नत्थि, नत्वा धम्मं अनिस्सितो।
भवाय विभवय वा, तन्हा यस न विज्दजति॥
4.
"तं ब्रूमि उपसंतोति, कामेसु अनपेखिनं।
गंथा तस्स न विज्जन्ति, अतरि सो विशत्तिकं॥
।
"न तस्स पुत्ता पस्वो, खत्तं वथुनदच विज्जति।
अत्ता वापि निर्त्तं वा [अत्तं वापि निर्त्तं वा (बहूसु)], न तस्मिन उपलब्भति॥
.
"येन नं वजदजुं पुथुजजना, अथो समन्ब्राह्मण।
तं तस्स अपुरुखं, तस्मा वादेसु नेजति॥
.
"वीतगेधो अमच्छरी, न उस्सेसु वदते मुनि।"
न समेसु न ओमेसु, कप्पं नेति अकप्पियो॥
867.
"य्स्स लोके सकं नत्थि, असता च न सोचति।"
धम्मेसु च न गच्छति, स वे सन्तोति वुच्चति"ति॥
पुराभेदसुत्तं दसमं निश्चितं।
टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> सुत्तनिपता >> 4.11 कालहविवादसुत्त

वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

____

पिछला <<<<--->>>> अगला

____

विवादों और मतभेदों का मूल कारण।

____

अंतर्वस्तु

4.11 कलाहविवादसूत्र
अनुवाद
1. 'जब भी विवाद और झगड़े, विलाप और शोक के साथ ईर्ष्या, और अहंकार और अभिमान के साथ निंदा उत्पन्न होती है, तो ये सब कब उत्पन्न होते हैं? कृपया मुझे इसका कारण बताइए।' (868)

2. 'प्रिय वस्तुओं से विवाद और झगड़े, विलाप और शोक के साथ ईर्ष्या, अहंकार और अभिमान के साथ निंदा उत्पन्न होती है; विवाद और झगड़े ईर्ष्या से जुड़े होते हैं, और उत्पन्न विवादों में निंदा होती है।' (869)

3. 'संसार में प्रिय वस्तुएं कहां से उत्पन्न होती हैं, और संसार में व्याप्त लोभ, इच्छा और तृप्ति कैसे उत्पन्न होती हैं, जो मनुष्य के भविष्य के लिए महत्वपूर्ण हैं?' (870)

4. 'इच्छा से ही संसार में प्रिय वस्तुएँ उत्पन्न होती हैं, संसार में व्याप्त लोभ, और इच्छा एवं पूर्ति, जो मनुष्य के भविष्य के लिए महत्वपूर्ण हैं।' (871)

5. 'संसार में इच्छा का उद्‌गम कहाँ से होता है, और संकल्प, क्रोध, असत्य, संदेह, और वे धर्म जिनका ज्ञान समना (गौतम (बुद्ध)) ने दिया है, कहाँ से उत्पन्न होते हैं?' (872) 6. 'संसार में जिसे

सुख और दुःख कहते हैं, वह उसी इच्छा से उत्पन्न होता है; सभी शरीरों में क्षय और उत्पत्ति को देखकर, मनुष्य संसार में अपने संकल्प बनाता है।' (873)

7. 'क्रोध, असत्य और संदेह, ये धर्म एक दूसरे के पूरक हैं; संदेह करने वालों को ज्ञान के मार्ग में सीखना चाहिए, क्योंकि वे जानते हैं कि समना ने धर्मों का प्रचार किया है।' (874)

8. 'सुख और दुःख, इनका उद्‌गम कहाँ से होता है? ये किसके अभाव में उत्पन्न नहीं होते? यह धारणा (जिसका आपने उल्लेख किया है), अर्थात् "क्षय और उत्पत्ति", मुझे बताइए कि यह कहाँ से उत्पन्न होती है?' (875)

9. 'सुख और दुःख का उद्‌गम स्पर्श से होता है; स्पर्श न होने पर इनका उद्‌गम नहीं होता। यह धारणा (जिसका आपने उल्लेख किया है), अर्थात् "क्षय और उत्पत्ति", मैं आपको बताता हूँ कि इसका उद्‌गम इसी से होता है।' (876)

10. 'संसार में स्पर्श का उद्‌गम कहाँ से होता है और आसक्ति कहाँ से उत्पन्न होती है? किसके अभाव में अहंकार नहीं होता? किसके न रहने पर स्पर्श स्पर्श करना बंद कर देते हैं?' (877)

11. 'नाम और रूप के कारण स्पर्श (अस्तित्व में) होते हैं; आसक्ति इच्छा से उत्पन्न होती है; इच्छाओं के न रहने पर अहंकार नहीं होता; रूप के न रहने पर स्पर्श स्पर्श करना बंद कर देते हैं।' (878)

12. 'मनुष्य की संरचना ऐसी कैसे हो सकती है कि उसका रूप अस्तित्वहीन हो जाए, और सुख-दुख का अस्तित्व कैसे समाप्त हो जाए? मुझे यह बताओ कि यह कैसे समाप्त होता है, जिसे हम जानना चाहते हैं, ऐसा मेरा मन था?' (879)

13. 'मनुष्य को न तो स्वाभाविक चेतना के साथ रहना चाहिए, न ही पागल चेतना के साथ, न ही चेतनाहीन, न ही चेतना खोई हुई; क्योंकि जो इस प्रकार निर्मित होता है उसका रूप अस्तित्वहीन हो जाता है, क्योंकि जिसे भ्रम कहा जाता है उसकी उत्पत्ति चेतना में होती है।' (?) (880)

14. 'जो हमने आपसे पूछा है, आपने हमें समझाया है; हम आपसे एक और प्रश्न पूछेंगे, उसका उत्तर दीजिए: क्या इस संसार में कुछ (जो बुद्धिमान माने जाते हैं) हमें यह नहीं बताते कि मुख्य (बात) यक्ष का शुद्धिकरण है, या वे इससे भिन्न कुछ कहते हैं?' (881)

15. 'इस प्रकार इस संसार में कुछ (जो बुद्धिमान माने जाते हैं) कहते हैं कि मुख्य (बात) यक्ष का शुद्धिकरण है; परन्तु उनमें से कुछ समाया (विनाश) कहते हैं, जबकि विद्वान कहते हैं (कि सर्वोच्च शुद्धता) अनुपदिशेष (पाँच गुणों में से कोई भी शेष न रहना) में निहित है।' (882)

16. 'और इन्हें आश्रित जानकर, शोध करने वाला मुनि (संत), जिन चीजों पर हम निर्भर हैं उन्हें जानकर, और उन्हें जानने के बाद मुक्त होकर, विवाद में नहीं पड़ता, बुद्धिमान (मनुष्य) पुनर्जन्म नहीं लेता।' (883)

कलहविवादसुत्त समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन

11. Kalahavivādasuttaṃ

868.

"कुतोपहुता कलहा विवाद, परिदेवसोका सहमच्चरा च;
मनातिमना सहपेसुना च, कुटोपहुता ते तदिघ् ब्रुहि"।

869.

"पियप्पाहुता कलहा विवाडा,
परिदेवसोका सहमच्चरा च;
मनातिमना सहपेसुना च,
मच्छेरायुत्ता कलहा विवाडा;
विवदजतेसु च पेसुनानि"।

870.

"पिया सु [पियानु (स्या.), पियास्सु (का.)] लोकस्मिं कुतोनिदाना, ये कपि [ये वापि (सि. स्या. पि.)] लोभा विकारन्ति लोके;
आसा च निष्ठा च कुतोनिदाना, ये सम्पराया नरस्सा होन्ति"।

871.

"चंदानीदानि पियानि लोके, ये कपि लोभ विकारन्ति लोके;
आसा च निष्ठा च इतोनिदाना, ये सम्पारयाया नरस्सा होन्ति"।

872.

"चंदो नु लोकस्मिं कुतोनिदानो, विनिच्चया कपि [वापि (सि. स्या. पि.)] कुटोपहुता;
कोधो मोसवज्जञ्च कथान्कथा च, ये वापी धम्म समानेन वुत्ता"।

873.

"सतं असतन्ति यामाहु लोके, तमुपनिस्सया पहोति चंडो;
रूपेसु दिस्व विभवं भवन्च, विनिच्चयं कुब्बति [कुरुते (बहुसु)] जंतु लोके।

874.

"कोधो मोसावज्जञ्च कथान्कथा च, एतेपि धम्म द्वयमेव संते;
कथाकथि नाणपथाय सिखे, नात्वा पावुत्ता समानेन धम्म"।

875.

"सतं असातञ्च कुतोनिदाना, किस्मत असान्ते न भवन्ति हेते;
विभवं भवन्चापि यममेतमत्थं, एतं मे पब्रुहि यतोनिदानं।'

876.

"फस्सनिदानं सततं असतं, फस्से असांते न भवन्ति हेते;
विभावं भवन्चापि यमेतमत्थं, एतं ते पब्रुमी इतोनिदानं।'

877.

"फसो नु लोकस्मि कुतोनिदानो, परिग्गहा कपि कुटोपाहुत;
किस्मतं असांते न ममत्तमत्थि, किस्मतं विभूते न फुसन्ति फसा"।

878.

"नमञ्च रूपञ्च पतिच्च फास्सो, इच्छानिदाननि परिग्गहनि;
इच्छासन्त्य न ममत्तमत्थि, रूपे विभूते न फुसन्ति फस्सा।"

879.

"कथं समेतस्स विभोति रूपं, सुखं दुखं चापि [दुखं वापि (सि. स्या.)] कथं विभोति;
एतं मे पब्रुहि यथा विभोति, तं जानिअमति [जानिस्सामति (सि. का.)] मे मनो आहु"।

880.

"न सन्न्यासनि न विभूतसानि, नोपि असानि न विभूतसानि;
एवंसमेतस्स विभोति रूपं, सन्न्यानिदाना हि पापञ्चासन्खा"।

881.

"यं तं अपुच्चिम्हा अकित्तायि नं,
अन्नणं तं पुच्चम तदिंघ ब्रुहि;
एत्तावतग्गं नु [सं (सि. स्या.)] वदन्ति हेके,

यक्खस्सा सुधिं इधा पंडितासे;
उदाहु अननमपि वदन्ति एत्तो।
882.
"एत्तावतग्गमपि वदन्ति हेके, यक्खस्सा शुद्धि इधा पण्डितसे;
तेसं पनेके समयं वदन्ति, अनुपादिसे कुसल वदना।
883.
"एते च नात्वा उपनिस्सीति, नात्वा मुनि निस्साये सो विमांसि;
सातत्वा विमुत्तो न विवादमेति, भावभवाय न समेति धीरोऽति।
कलहविवादसुत्तं एकादसमं नियतं।

पाली-देवनागरी
11. कलहविवादसुत्तं
4.
"कुतोपहुता कलहा विवादा, परिदेवसोका सहमच्छरा च।
मनतिमाना सहपेसुना च, कुतोपहुता ते तदिङ्घ ब्रूहि"॥
6.
"पियप्पहुता कलहा विवाद,
परिदेवसोका सहमच्छरा च।
मनतिमान सहपेसुना च,
मच्छेर्युत्ता कलहा विवादा।
विवादजातेसु च पेसुनानि"॥
67
"पिया सु [पियानु (स्या०), पियासु (क०)] लोकस्मिं कुतोनिदाना, ये चापि [ये वापि (सी० स्या० पी०)] लोभा विचरन्ति लोके।
आसा च नित्था च कुतोनिदाना, ये सम्पराय नरसस होन्ति"॥
..
"छंदनिदानानि पियानि लोके, ये चापि लोभा विचरन्ति लोके।
आसा च नित्था च इतोनिदाना, ये सम्पराय नरसस होन्ति"॥
872.
"छन्दो नु लोकस्मिं कुतोनिदानो, विनिचया चापि [वापि (सी० स्या० पी०)] कुतोपहुता।
कोधो मोसवजदञ्च कथान्कथा च, ये वापि धम्म समानेन वुत्ता"॥
.
"सातं असतन्ति यमाहु लोके, तमुपनिस्सय पहोति छन्दो।
रूपेसु दिस्वा विभवं भवन्च, विनिचयं कुब्बति [कुरुते (बहूसु)] जंतु लोके॥
244.
"कोधो मोसवजदञ्च कथान्कथा च, एतेपि धम्म द्वयमेव सन्ते।"
कथन्कथी नानपथाय सिखे, नत्वा पवुत्ता समानेन धम्मा"॥
45.
"सातं असत्ञ्च कुतोनिदाना, प्रकृतिं असन्ते न भवन्ति हेते।"
विभवं भवनचापि यमेतमथं, एतं मे पब्रुहि यतोनिदानं"॥
66.
"फस्सनिदानं सातं असातं, फस्से असन्ते न भवन्ति हेते।"
विभवं भवनचापि यमेतमथं, एतं ते पब्रूमि इतोनिदानं"॥
•77.
"फस्सो नु लोकस्मि कुतोनिदानो, परिग्गहा चापि कुतोपहुता।
नारीं असन्ते न ममत्तमथि, नारीं विभूते न फुसन्ति फस्सा॥"
★।
"नमञ्च रूपञ्च पतीचच फस्सो, इच्छानिदानानि परिग्गहनि।
इच्छासन्त्या न ममत्तमथि, रूपे विभूते न फुसन्ति फस्सा"॥

6.
"कथंसमेतस्स विभोति रूपं, सुखं दुःखदचापि [दुखं वापि (सी० स्या०)] कथं विभोति।
एतं मे पब्रूहि यथा विभोति, तं जानियामाति [जानिस्सामाति (सी० क०)] मे मनो आहु"॥
.
"न संज्ञसञ्ञि न विभूतसंज्ञी, नोपि असञ्जी न विभूतसंज्ञी।
एवंसमेतस्स विभोति रूपं, संज्ञनिदाना हि पपञ्चसङ्खा॥
6.
"यं तं अपुच्छिम्ह अकित्तयि नो,
अञ्जनं तं पुच्छम तदिघ ब्रूहि।
एत्तावतग्गं नु [नो (सी० स्या०)] वदन्ति हेके,
यक्षस्स सुद्धिं इध पण्डितासे।
उदाहु अञ्जमपि वदन्ति एत्तो॥
.
"एत्तावतग्गमपि वदन्ति हेके, यक्षस सुद्धिं इध पण्डितासे।"
तेसं पनेके समयं वदन्ति, अनुपादिसेसे कुसल वदना॥
.
"एते च नत्वा उपनिस्सीति, नत्वा मुनि निस्सये सो विमांसि।"
नत्वा विमुत्तो न विवादमेति, भवाभवाय न सहिति धीरो"ति॥
कलहविवादसुत्तं एकादसमं निश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> सुत्तनिपात >> 4.12 चुलवियुहसुत्त

वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<--->>>> अगला

दार्शनिकों के बीच वाद-विवाद का वर्णन। दर्शनशास्त्र के विभिन्न संप्रदाय एक-दूसरे का खंडन करते हैं, वे अलग-अलग सत्य घोषित करते हैं, लेकिन सत्य तो एक ही है। जब तक वाद-विवाद चलता रहेगा, तब तक संसार में कलह बनी रहेगी।

अंतर्वस्तु

4.12 चुलवियुहसुत्त
अनुवाद
1. अपने-अपने मतों पर अड़े रहकर, कुछ लोग विवाद में पड़कर स्वयं को एकमात्र विशेषज्ञ घोषित करते हुए कहते हैं, 'जो इसे समझता है, वही धम्म को जानता है; जो इसकी निंदा करता है, वह सिद्ध नहीं है।' (884)

2. इस प्रकार विवाद में पड़कर वे कहते हैं, 'विरोधी मूर्ख है, अज्ञानी है।' तो इनमें से कौन सा सच्चा सिद्धांत (वाद) है? क्योंकि ये सभी स्वयं को एकमात्र विशेषज्ञ घोषित करते हैं। (885)

3. जो विरोधी के सिद्धांत (धम्म) को नहीं मानता, वह मूर्ख है, पशु है, अल्पबुद्धि है; सभी अल्पबुद्धि वाले मूर्ख हैं; ये सभी अपने-अपने मतों पर अड़े रहते हैं। (886)

4. वे निश्चय ही अपने मत से शुद्ध हो जाते हैं; वे शुद्ध ज्ञान (प्रत्यक्ष अनुभवजन्य समझ) वाले, विशेषज्ञ, विचारशील होते हैं; उनमें अल्पबुद्धि वाला कोई नहीं होता; उनका मत पूर्ण होता है! (887)

5. मैं यह नहीं कहता, 'यही वास्तविकता है,' जो मूर्ख आपस में कहते हैं; उन्होंने अपने विचारों को सत्य मान लिया है, इसलिए वे दूसरों को मूर्ख समझते हैं। (888)

6. जिसे कुछ लोग सत्य, वास्तविकता कहते हैं, उसे दूसरे लोग व्यर्थ, असत्य कहते हैं, इसलिए असहमति होने पर वे विवाद करते हैं। समन (भिक्षु) एक ही बात क्यों नहीं कहते? (889)

7. क्योंकि सत्य एक है, दूसरा नहीं है, जिसके बारे में एक बुद्धिमान व्यक्ति दूसरे बुद्धिमान व्यक्ति से विवाद करे; (लेकिन) वे स्वयं विभिन्न सत्यों की प्रशंसा करते हैं, इसलिए समन (भिक्षु) एक ही बात नहीं कहते। (890)

8. स्वयं को एकमात्र विशेषज्ञ बताने वाले विवादकर्ता विभिन्न सत्यों का प्रचार क्यों करते हैं? क्या अनेक भिन्न सत्य सुने गए हैं, या वे (केवल) अपने तर्क का अनुसरण करते हैं? (891)

9. संसार में अनेक भिन्न सत्य नहीं हैं, चेतना के सिवा कोई शाश्वत सत्य नहीं है; लेकिन दार्शनिक विचारों पर तर्क करने के बाद वे दोहरे धम्म, सत्य और असत्य, का प्रचार करते हैं। (892)

10. जो कुछ देखा या सुना है, सद्गुण और (पवित्र) कर्म, या जो कुछ सोचा है, उसके संबंध में, और इन (विचारों) के कारण दूसरों को तिरस्कार की दृष्टि से देखते हुए, अपने संकल्पों में प्रसन्न रहते हुए, वे कहते हैं कि विरोधी मूर्ख और अज्ञानी है। (893)

11. क्योंकि वह दूसरे को मूर्ख समझता है, इसलिए वह स्वयं को विशेषज्ञ कहता है, अपनी राय में वह शुभ बात बताने वाला है, दूसरों की निंदा करता है, ऐसा उसने कहा। (894)

12. वह अपने अहंकारी (दार्शनिक) विचार से भरा हुआ है, अभिमान से पागल है, स्वयं को परिपूर्ण समझता है, अपनी राय में वह प्रतिभा से परिपूर्ण है, क्योंकि उसका (दार्शनिक) विचार पूर्ण है। (895)

13. यदि वह दूसरे की राय में नीच है, तो (वह कहता है) दूसरा भी नीच बुद्धि का है, और यदि वह स्वयं सिद्ध और बुद्धिमान है, तो समनाओं (भिक्षुओं) में कोई मूर्ख नहीं है। (896)

14. 'जो लोग इससे भिन्न धर्म का प्रचार करते हैं, वे पवित्रता से वंचित और अपूर्ण हैं,' ऐसा तित्तिय बार-बार कहते हैं, क्योंकि वे अपने दार्शनिक विचारों के प्रति आवेश से प्रेरित होते हैं। (897)

15. यहाँ वे पवित्रता बनाए रखते हैं, जबकि अन्य धर्मों में वे पवित्रता की अनुमति नहीं देते; इसलिए तित्तिय, विस्तार से वर्णन करते हुए कहते हैं कि उनके अपने मार्ग में कुछ दृढ़ता है। (898)

16. और अपने मार्ग में दृढ़ता का दावा करते हुए वे अपने विरोधी को मूर्ख कहते हैं; इस प्रकार वे स्वयं अपने विरोधी को मूर्ख और अशुद्ध धर्म कहकर कलह उत्पन्न करते हैं। (899)

17. अपने संकल्प पर अडिग रहते हुए, स्वयं (शिक्षकों आदि का) मूल्यांकन करके, वे संसार में और अधिक विवाद में पड़ते हैं; परन्तु सभी संकल्पों को त्यागकर संसार में कोई कलह उत्पन्न नहीं करेगा। (900)

चुलवियुहसुत्त समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
12. चुडब्यूहसुत्तम् [कुडवियुहसुत्तम् (सि. स्या. निद्देसा)]
884.
साकसकंदितिपरिब्बासना, विग्गयः नाना कुसल वदन्ति;

यो एवं जानाति स वेदि धम्मं, इदं पतिकोसमकेवली सो।
885.
एवमपि विग्गयः विवादयन्ति, बालो पारो अक्कुसालोति [अकुसालोती (सि. स्या. पि.)] चाहु;
साको नु वदो कटमो इमेसं, सब्बेव हीमे कुसल वदना।
886.
परस्सा सी धम्ममनुजनं, बालोमाको [बालो मागो (सि. स्या. का.)] होति निहिनापन्नो;
सब्बेव बाला सुनिहिनापन्न, सब्बेविमे दितिपरिब्बासाना।
887.
संदिठिया सेवा न विवदता, संशुद्धपन्न कुसल मुतिमा;
न तेसां कोसि परिहिनापनिनो [कोसिपि निहिनापन्नो (सि. स्या. का.)], दीथि ही तेसाम्पि तथा समत्ता।
888.
न वहमेतं तथियंति [तथिवंती (स्या. का.)] ब्रूमि, यामाहु बाला मिथु अण्णामन्नं;
सकांसकंदिथिमकांशु सच्चं, तस्मा हि बलोति परं दहन्ति।
889.
यामाहु सच्चं तथियान्ति एके, तमहु अण्णे [अण्णेपि (स्या.), अण्णे च (?)] तुच्चं मुसाति;
एवमपि विगयः विवादयन्ति, कस्मा न एकं समाना वदन्ति।
890.
एकान्हि सच्चं न दुतियामत्थि, यस्मिं पजा नो विवदे पजानं;
नाना ते [नानातो (का.)] सच्चनि सयं थुनन्ति, तस्मा न एकं समाना वदन्ति।
891.
कस्मा नु सच्चानि वदन्ति नाना, पावडियासे कुसल वदाना;
सच्चनि सुतानि बहुनि नाना, उदाहु ते तक्कमनुस्सरन्ति।
892.
न हेव सच्चनि बहुनि नाना, अन्नत्र संन्या निच्चनि लोके;
तक्कञ्च दिथिसु पकाप्पयित्वा, सच्चं मुसति द्वयधम्ममाहु।
893.
दित्थे सुते सिलवते मुते वा, एते च निस्साय विमानदस्सी;
विनिच्चये यथात्व पहस्सामानो, बालो परो अक्कुसलोति चाह।
894.
येनेव बलोति परं दहति, तेनातुमानं कुसलौति चाह;
संयमं सो कुसालो वदानो, अन्नं विमानेति तदेव पाव।
895.
अतिसारादिथियाव सो समत्तो, मानेन मत्तो परिपुन्नमणि;
सयमेव समं मनसाभिसित्तो, दिट्ठि हि सा तस्स तथा समत्त।
896.
परस्सा सी हि वाचसा निहिनो, तुमो सहा होति निहिनापन्नो;
अथ सी सयं वेदागु होति धीरो, न कोचि बालो समनेसु अत्थि।
897.
अन्नं इतो याभिवदंति धम्मं, अपराद्ध शुद्धिमकेवली ते [शुद्धिमकेवलिनो (सि.)];
एवमपि तिथ्या पुथुसो वदन्ति, संदिथिरागेना हि तेभिरत्ता [त्याभिरत्ता (स्या. का.)]।
898.
इधेव शुद्धि इति वादयन्ति, नान्नेसु धम्मेसु विशुद्धिमाहु;
Evampi titthyā puthuso niviṭṭhā, sakāyane tattha daḷhaṃ vadānā.
899.
सकायने वापि दहं वदानो, कामेत्थ बलोति परं दहेय;
सयमेव सो मेधगमावहेय [मेधकं आवहेय (सि. पि.)], परं वदं बलमसुद्धिधम्मं।
900.
विनिच्चये तत्त्व सयं पमाया, उद्धं सा [उद्दं सो (सि. स्या. पि.)] लोकस्मिं विवादमेति;

हित्वान सब्बानि विनिच्चयानि, न मेधगं कुब्बति जंतु लोकेति।
चुडब्युहसुत्तं द्वादसमं नियतं।

पाली-देवनागरी
12. चुळवियुहसुत्तं [चूळवियुहसुत्तं (सी० स्या० निद्देस)]
गेहूं.
संस्कन्दित्तिपरिब्बसाना, विग्गयः नाना कुसला वदन्ति।
यो एवं जानाति स वेदि धम्मं, इदं पतिकोसमकेलि सो॥
200
एम्पि विग्गयः विवाद्यन्ति, बालो परो अकुसलोति [अकुसलोति (सी० स्या० पी०)] चाहु।
सचो नूचो वादो कतमो इमेसं, सब्बेव हीमे कुसला वदाना॥
★.
परस्स चे धम्मानुजानं, बालोमको [बालो मगो (सी० स्या० क०)] होति निहिनपञ्चो।
सब्बेव बाला सुनिहीनपञ्चा, सब्बेविमे दिट्ठिपरिब्बसाना॥
66.
सन्दिट्ठिया चेव न वीवदाता, संसुद्धपञ्च कुसला मुतीमा।
न तेसं कोचि परिहीनपञ्चो [कोचिपि निहिनपञ्चो (सी० स्या० क०)], दिट्ठी हि तेसम्पि तथा समत्ता॥
.
न वहमेतं तथियन्ति [तथिवन्ति (स्या० क०)] ब्रूमि, यमाहु बाला मिथु अञ्जमञ्च।
संस्कन्दित्तिमकंसु सच्दचं, तस्मा हि बलोति परं दहन्ति॥
प्रति.
यमाहु सचं तथियन्ति एके, तमहु अञ्चे [अञ्जेपि (स्या०), अञ्जे च (?)] तुष्टं मुसाति।
एवमपि विघ्यः विवाद्यन्ति, कस्मा न एकं समाना वदन्ति॥
सप्ताह.
एकंहि सच्चं न दुतीयमति, यस्मिं पजा नो विवदे पजानं।
नाना ते [नानातो (क०)] सच्दचानि सयं तुनन्ति, तस्मा न एकं समाना वदन्ति॥
.
कस्मा नु सचचानि वदन्ति नाना, पवडियासे कुसला वदाना।
सचदाचानि सुतानि बहुनि नाना, उदाहु ते तकदमनुस्सरन्ति॥
40.
न हेव सचचानि बहुनि नाना, अञ्चत्र संज्ञय निच्चचानि लोके।
तक्षकञ्च दिट्ठिसु पकप्पयित्वा, सचदचं मुसाति द्वयधम्ममाहु॥
₹1.
दित्थे सुते सीलवते मुते वा, एते च निस्साय विमानदस्सी।
विनिचये तत्वा पहस्मानो, बालो परो अक्सुसोलोति चाह॥
.
येनेव बालोति परं दहाति, तेनातुमानं कुसलोति चाह।
सयमत्तना सो कुसलो वदानो, अञ्जन विमानतेति तदेव पाव॥
बीआर.
अतिसारदिट्ठियाव सो समत्तो, मानेन मत्तो परिपुन्नमनि।
सयमेव समं मनसाभिसित्तो, दिट्ठि हि सा तस्स तथा समत्ता॥
.
परस्स चे हि वचसा निहिनो, तुमो सहा होति निहिनपञ्चो।
अथ चे सयं वेदगु होति धीरो, न कोचि बालो समानसु अथि॥
लेडी.
अञ्जनं इतो याभिवदन्ति धम्मं, अपरद्धा सुद्धिमकेवली ते [सुद्धिमकेवलिनो (सी०)]।
एम्पि तिथ्या पुथुसो वदन्ति, संदिथिरागेन हि तेभिरत्ता [त्याभिरत्ता (स्या० क०)]॥
.

इधेव सुद्धि इति वादयन्ति, नाञ्जेसु धम्मेसु विशुद्धिमाहु।
एवमपि तिथ्या पुथुसो निवित्था, सकायने तथा दळहं वदाना॥
60.
सकायने वापि दळहं वदानो, कामेत्थ बालोति परं दहेय।
सयमेव सो मेधगमावहेय [मेधकं आवहेय (सी० पी०)], परं वदं बालमसुद्धिधम्मं॥
600.
विनिचये तत्व सयं पमाय, उद्धं स [उददं सो (सी० स्या० पी०)] लोकस्मिं विवादमेति।
हित्वान सब्बानि विनिचयानि, न मेधगं कुब्बति जन्तु लोकेति॥
चुळब्यूहसुत्तं द्वादसमं निश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> सुत्तनिपता >> 4.13 महावियुहसुत्त

वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<--->>>> अगला

दार्शनिक पवित्रता की ओर नहीं ले जा सकते, वे केवल अपनी प्रशंसा करते हैं और दूसरों को कलंकित करते हैं। परन्तु ब्राह्मण सभी विवादों से पार पा लेता है, वह विद्या के प्रति उदासीन होता है, वह संतुष्ट रहता है।

अंतर्वस्तु

4.13 महावियुहसूत्त

अनुवाद

1. जो लोग दार्शनिक मतों में स्थिर रहकर यह कहते हुए विवाद करते हैं कि 'यही सत्य है', वे सभी निंदा के पात्र होते हैं और इस मामले में प्रशंसा भी पाते हैं। (901)

2. यह थोड़ा है, शांति लाने के लिए पर्याप्त नहीं है; मैं कहता हूँ कि विवाद के दो फल हैं; यह देखकर किसी को विवाद नहीं करना चाहिए, यह समझते हुए कि खेमा (योग खेमा) वह स्थान है जहाँ विवाद नहीं होता। (902)

3. लोगों के बीच जो मत उत्पन्न हुए हैं, उन सभी को ज्ञानी व्यक्ति नहीं अपनाता; वह स्वतंत्र है। क्या जो देखी और सुनी हुई बातों से प्रसन्न नहीं है, उसे निर्भरता का सहारा लेना चाहिए? (903)

4. जो लोग सद्गुण को सर्वोपरि मानते हैं, वे कहते हैं कि पवित्रता संयम से जुड़ी है; एक पवित्र कार्य को अपने ऊपर लेकर वे सेवा करते हैं। तो आइए हम इस (दृष्टिकोण) में उनकी (गुरु की) पवित्रता सीखें; अस्तित्व की इच्छा रखते हुए वे स्वयं को एकमात्र विशेषज्ञ बताते हैं। (904)

5. यदि वह सद्गुणों और (पवित्र) कर्मों से विमुख हो जाता है, तो वह अपने कर्मों से विमुख होकर कांपता है; वह विलाप करता है, वह इस संसार में पवित्रता के लिए प्रार्थना करता है, मानो वह अपने काफिले से बिछड़ गया हो या अपने घर से भटक गया हो। (905)

6. सद्गुणों और (पवित्र) कर्मों को पूरी तरह से त्यागकर, और चाहे वह कुकर्म हो या निष्कलंक, पवित्रता या अपवित्रता के लिए प्रार्थना न करके, वह शांति को ग्रहण किए बिना (पवित्रता और अपवित्रता दोनों से) विमुख होकर भटकता है। (906)

7. तपस्या के द्वारा, या किसी अप्रिय वस्तु द्वारा, या जो कुछ देखा, सुना या सोचा गया हो, ऊपर की ओर जाते हुए वे पवित्रता के लिए विलाप करते हैं, पुनर्जन्म की इच्छा से मुक्त हुए बिना। (907)

8. जो (किसी ऐसी चीज की) इच्छा करता है जो हमेशा मौजूद रहती है, वह इच्छा करता है, और (अपनी) योजनाओं के बीच में कांपते हुए (भटक जाता है); जिसके लिए न मृत्यु है और न पुनर्जन्म, वह भला कैसे विचलित हो सकता है या किसी चीज़ की इच्छा कर सकता है? (908)

9. जिसे कुछ लोग सर्वोच्च धर्म कहते हैं, वही दूसरे नीच कहते हैं; इनमें से कौन सा सच्चा सिद्धांत (वाद) है? क्योंकि ये सभी स्वयं को एकमात्र विशेषज्ञ बताते हैं। (909)

10. वे अपने धर्म को परिपूर्ण कहते हैं, दूसरे के धर्म को नीच कहते हैं; इस प्रकार असहमति होने पर वे वाद-विवाद करते हैं और अपने-अपने मत को सत्य बताते हैं। (910)

11. यदि कोई दूसरे की निंदा से नीच हो जाता है, तो धर्मों में कोई विशिष्ट नहीं रह जाएगा; क्योंकि वे सभी दूसरे के धर्म को नीच कहते हैं, अपने धर्म में दृढ़ता मानते हैं। (911)

12. अपने धर्म की पूजा करना उतना ही महान है जितना अपने मार्ग की प्रशंसा करना; सभी संप्रदाय इसी स्थिति में होंगे, क्योंकि उनकी पवित्रता व्यक्तिगत है। (912)

13. ब्राह्मण में दूसरों पर निर्भर होने का कोई गुण नहीं है, न ही धर्मों में ऐसा कुछ है जिसे वह जांच-पड़ताल के बाद अपनाए; अतः उसने विवादों पर विजय प्राप्त कर ली है, क्योंकि वह किसी अन्य धर्म को सर्वश्रेष्ठ नहीं मानता। (913)

14. 'मैं समझता हूँ, मैं भी यही देखता हूँ,' ऐसा कहकर कुछ लोग (अपने दार्शनिक विचारों से) शुद्धता की ओर लौट जाते हैं। यदि उसने शुद्धता देखी, तो दूसरे के विचार से क्या (प्रभावित) हुआ? विजय प्राप्त करने के बाद वे कहते हैं कि शुद्धता दूसरे के द्वारा विद्यमान है। (?) (914)

15. एक प्रत्यक्षदर्शी नाम और रूप देखेगा, और देखकर वह उन (चीजों) को समझेगा; वह अपनी इच्छा से कम या ज्यादा देखे, क्योंकि विद्वान यह नहीं कहते कि शुद्धता उससे विद्यमान है। (915)

16. एक हठधर्मी शुद्धता का मार्गदर्शक नहीं होता, क्योंकि वह पूर्वाग्रही विचारों से निर्देशित होता है, यह कहते हुए कि अच्छाई उसी में निहित है जिसमें वह लीन है, और यह कहते हुए कि शुद्धता वहीं है, उसने उस वस्तु को ऐसा देखा। (916)

17. एक ब्राह्मण समय में, (या) (जीवों की) संख्या में प्रवेश नहीं करता, (वह) (दार्शनिक) विचारों का अनुयायी नहीं है, न ही ज्ञान का मित्र है; और लोगों के बीच उत्पन्न हुए मतों में प्रवेश करने के बाद, वह विद्या के प्रति उदासीन रहता है, जबकि अन्य लोग इसे प्राप्त करते हैं। (917)

18. मुनि (संत), संसार के बंधनों से मुक्त होकर, उत्पन्न विवादों में किसी का पक्ष नहीं लेते; असंतुष्टों के बीच शांत रहकर वे उदासीन रहते हैं, ज्ञान को ग्रहण नहीं करते जबकि अन्य उसे प्राप्त करते हैं। (918)

19. अपने पूर्व के आलस्यों का त्याग करके, नए आलस्यों को ग्रहण न करके, अपनी इच्छाओं के अनुसार न भटककर, हठधर्मी न होकर, वे दार्शनिक विचारों से मुक्त होकर, ज्ञानवान होकर, संसार से आसक्त नहीं रहते और न ही स्वयं को दोष देते हैं। (919)

20. समस्त धर्मों (धम्म) के बीच एकांत में रहकर, जो कुछ भी देखा, सुना या सोचा गया है, वे अपने बोझ को उतारकर मुक्त मुनि हैं, काल के बंधन में नहीं हैं (न कप्पियो), मृत नहीं हैं, और किसी चीज की इच्छा नहीं रखते। ऐसा भगवान बुद्ध ने कहा। (920)

महावियुहसुत्त समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन

13. महाब्युहसुत्तं
901.
ये केसीमे दिथिपरिब्बासाना, इदामेव सच्चन्ति विवादयन्ति [विवादियन्ति (सी. पी.)];
सब्बेव ते निन्दामन्वनयन्ति, अथो पसंसाम्पि लभन्ति तथा।
902.
अप्पनहि एतं न अलं समाया, दुवे विवादस्स फलानि ब्रूमि;
एतामपि दिस्व न विवादयेथ, खेमाभिपस्सां अविवादभूमिम्।
903.
या कासीमा सम्मुतियो पुथुज्जा, सब्बव एता न उपेति विद्वा;
अनुपयो सो उपायं किमेय, दिट्ठे सुते खंतीमकुब्बमानो।
904.
सिलुत्तमा सन्नमेनाहु सुद्धिम, वातं समादाय उपथितासे;
इधेव सिखेमा अथस्सा शुद्धिं, भावुपनिता कुसल वदना।
905.
ससे कटो सिलवत्तो होति, पवेधति [सा वेधति (सि. पि.)] कम्म विराधयित्वा;
पजप्पति पथयति च शुद्धिं, सत्थव हीनो पवसं गृहम्हा।
906.
सिल्बत्तं वापि पहाय सब्बं, कम्मञ्च सवज्जनवज्जमेतम्;
शुद्धि अशुद्धिन्ति अपत्थयानो, विराटो केयर शांतिमनुग्गहाय।
907.
तमुपनिस्साय जिगुच्छितं वा, अथवापि दिट्ठं वा सुतं मुतं वा;
उद्धंसरा सुद्धिमनुत्थुनन्ति, अवित्तनहसे भवभवेसु।
908.
पत्थयमानस्स हि जप्पीतानि, पवेधीतं वापि पकप्पित्सु;
कटुप्पातो इधा यस्सा नत्थि, सा केना वेधेया कुहिंवा जप्पे [कुहिंसि जप्पे (सि. स्या. का.), कुहिं पजप्पे (पि.) निद्देसो पासितब्बो]।
909.
यामाहु धम्मं परमंति एके, तमेव हीनंति पनाहु अण्णे;
साको नु वदो कटमो इमेसं, सब्बेव हीमे कुसल वदना।
910.
साकन्हि धम्मं परिपुन्नमाहु, अन्नस्स धम्मं पण हिनमाहु;
एवमपि विग्गयः विवादयन्ति, सकां सकां सम्मुतिमाहु सकाम्।
911.
परस्सा सी वंभयितेन हीनो, न कोसि धम्मेसु विसेसि अस्सा;
पुथु हि अन्नस्स वदन्ति धम्मं, निहिनातो समहि दहं वदना।
912.
सद्धम्मपूजापि नेसं तथेव, यथा पसंसन्ति सकायानानि;
सब्बेव वड़ा [सब्बे पावड़ा (स्या.)] तथिया [तथिवा (सब्बत्था)] भवेय्युं, शुद्धि हि नेसं पकत्तमेव।
913.
न ब्राह्मणस्स पारेण्यमत्थि, धम्मेसु निच्चेय समुग्गहितं;
तस्मा विवादानि उपातिवत्तो, न हि सेठतो पस्सति धम्ममन्नम्।
914.
जानामि पसामि तथैव एतम्, दिट्ठिया एके पॅसेन्ति शुद्धिः;
अद्दक्खी सी किन्हि तुमस्सा तेन, अतिसिट्वा अननेन वदन्ति शुद्धिम्।
915.
पस्सं नरो दक्खति [दक्खिति (सि.)] नमारूपं, दिसवना वा नस्सति तनिमेव;
कामं बहुं पस्सतु अप्पकं वा, न हि तेन शुद्धिं कुसल वदन्ति।
916.
निविस्सावदि न हि सुब्बिनयो, पकप्पितं दिति पुरेक्खराणो;

यं निस्सिटो तत्थ सुभं वदानो, सुद्धिंवदो तथा तथद्दसा सो।
917.
न ब्राह्मणो कप्पमुपेति संखा [शंखां (सि. स्या. पि.)], न दिथिसारि नापि नानाबंधु;
सातत्व च सो सम्मुतियो [सम्मतियो (स्या.)] पुथुज्जा, उपेक्खति उग्गहन्ति मन्ने।
918.
विसज्जा गन्थानि मुनीधा लोके, विवदजतेसु न वग्गसारि;
संतो असांतेसु उपेक्खको सो, अनुग्गहो उग्गहन्ति मन्ने।
919.
पुब्बासवे हित्वा नवे अकुब्बं, न चंदागु नोपि निविसवदि;
स विप्पमुत्तो दिथिगतेहि धीरो, न लिम्पति [न लिप्पति (सि. पि.)] लोके अनत्तागरहि।
920.
स सब्बधम्मेसु विसेनिभूतो, यं किंचि दिट्ठं वा सुतं मुतं वा;
स पन्नभरो मुनि विप्पमुत्तो, न कप्पियो नुपरतो न पत्तियोति।
महाब्यूहसुत्तं तेरसामं निहितं।

पाली-देवनागरी
13. महाब्यूहसुत्तं
200.
ये केचिमे दित्थिपरिब्बासाना, इदमेव सच्चन्ति विवादयन्ति [विवादियन्ति (सी० पी०)]।
सब्बेव ते निन्दमन्वन्ति, अथो पसंसम्पि लभन्ति तथाः।
3.
अप्पनहि एतं न अलं समाय, दुवे विवादस्स फलानि ब्रूमि।
एतमपि दिस्वा न विवादयेत्, खेमाभिपस्सं अविवादभूमिं॥
.
या काचिमा सम्मुतियो पुथुज्जा, सब्बाव एता न उपेति विद्वा।
उपयो सो उपयं किमेय, दित्थे सुते खंतीमकुब्बमानो॥
6.
सीलुत्तमा संज्ञमेनाहु सुधिं, वतं समादाय उपत्थितासे।
इधेव सिखेम अथस्स सुधिं, भवुपनीता कुसला वदाना॥
60
सचे छुतो सीलवततो होति, पवेधति [स वेधति (सी० पी०)] कम्म विराधयित्वा।
पज्पपति पथयति च सुद्धिं, सथैव हीनो पवसं घर्म्हा॥
60
सीलब्बतं वापि पहाय सब्बं, कम्मनदच सवज्जनवजदजमेतं।
सुद्धि अशुद्धिन्ति अपथ्यानो, विरतो चरे शांतिमनुग्गहाय॥
1.50
तमुपनिस्सय जिगुच्छितं वा, यापि दिट्ठं वा सुतं मुतं वा।
उधंसरा सुधिमनुथुनन्ति, अवितान्हासे भवाभवेसु॥
6.
पथ्यमानस्स हि जप्पितानि, पवेधीतं वापि पक्प्पितेसु।
चतुप्पनतो इध यस नत्थि, स केन वेधेय कुहिनव जप्पे [कुहिंचि जप्पे (सी० स्या० क०), कुहिन पजप्पे (पी०) निद्देसो पास्सित्बबो]॥
100.
यमाहु धम्मं परमंति एके, तमेव हीन्ति पनाहु अञ्चे।
सचो नूचो वादो कतमो इमेसं, सब्बेव हीमे कुसला वदाना॥
901.
सञ्चहि धम्मं परिपुन्नमाहु, अञ्जस्स धम्मं पण हिनमाहु।
एवमपि विग्गयः विवादयन्ति, सकं सकं सम्मुतिमाहु सच्दचं॥
11.

परस्स चे वंभयितेन हीनो, न कोचि धम्मेसु विसेसि अस्स।
पुथु हि अञ्जनस्स वदन्ति धम्मं, निहिणतो समहि दळहं वदाना॥
611.
सद्धम्मपूजापि नेसं तथेव, यथा पसंसन्ति सकयानानि।
सब्बे पवादा (स्या०)] तथिया [तथिवा (सब्बत्थ)] भवेयुं, सुद्धि हि नेसं पच्चत्तमेव॥
60, 1 ...
न ब्राह्मणस्स पर्णेय्यमथि, धम्मेसु निच्छेय्य समुघहितं।
तस्मा विवादानि उपतिवततो, न हि सेत्थतो पस्सति धम्ममञ्च।
600.
जानामि पस्सामि तथेव एतं, दिट्ठिया एके पच्चेन्ति सुधिं।
अद्दक्खि चे किंहि तुमस्स तेन, अतिसित्वा अञ्चेन वदन्ति सुधिं॥
11.
पसं नरो दक्खति [दखिति (सी०)] नामरूपं, दिस्वां वा नस्सति तनिमेव।
कामं बहुं पसस्तु अप्पकं वा, न हि तेन सुधिं कुसल वदन्ति॥
1960.
निविस्स्वादि न हि सुब्बिनायो, पकप्पितं दिट्ठि पूराखराणो।
यं निस्सीतो तत्थ सुभं वदानो, सुद्धिन्वदो तत्थ तथद्दसा सो॥
2017.
न ब्राह्मणो कप्पमुपेति सङ्खा [सङ्खं (सी० स्या० पी०)], न दिट्ठिसरि नपि ज्ञानबंधु।
नत्वा च सो सम्मुतियो [सम्मतियो (स्या०)] पुथुज्जा, उपेक्खति उग्गहन्ति मन्गे॥
1918.
विस्ससज गंठनि मुनीध लोके, विवादजातेसु न वाग्गसारि।
सन्तो असान्तेसु उपेक्खको सो, अनुग्गहो उग्गहनन्ति मञ्चे॥
11.
पुब्बासवे हित्वा नवे अकुब्बन, न छंदगू नोपि निविस्सवादी।
स विप्पमुत्तो दिट्ठिगतेहि धीरो, न लिम्पति [न लिप्पति (सी० पी०)] लोके अनत्तगरही॥
200.
स सब्बधम्मेसु विसेनिभूतो, यं किञ्च दिट्ठं व सुतं मुतं वा।
स प सञ्भारो मुनि विप्पमुत्तो, न कप्पियो नुपरतो न पथियोति॥
महाब्यूहसुत्तं तेरसं निश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाका निकाय >> सुत्तनिपता >> 4.14 तुवताकासुत्त

वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

____

पिछला <<<<-->>>> अगला

____

एक भिक्षु (सन्यासी) आनंद कैसे प्राप्त करता है, उसके कर्तव्य क्या हैं और उसे किन चीजों से बचना चाहिए।

____

अंतर्वस्तु

4.14 तुवतकसुत्त

अनुवाद

1. 'मैं आपसे, जो आदिच्छों के संबंधी और एक महान ऋषि हैं, विवेक और शांति की अवस्था के बारे में पूछता हूँ। इसे देखकर भिक्षु कैसे शांत हो जाता है और संसार की किसी भी वस्तु से आसक्त नहीं रहता?' (921)

2. 'उसे पापंका (भ्रम) की जड़ को पूरी तरह से काट देना चाहिए, यह सोचकर कि "मैं ही ज्ञान हूँ;" - भगवान बुद्ध ने कहा - 'अंतर्निहित सभी इच्छाओं को वश में करना सीखो, सदा विचारशील रहो।' (922)

3. 'उसे प्रत्येक धर्म को आंतरिक या बाह्य रूप से सीखना चाहिए; इसलिए उसे अहंकार नहीं करना चाहिए, क्योंकि अच्छे लोगों के लिए इसे आनंद नहीं कहा जाता।' (923)

4. 'इसलिए उसे स्वयं को दूसरों से श्रेष्ठ या नीचा या उनके बराबर नहीं समझना चाहिए; विभिन्न लोगों द्वारा प्रश्न किए जाने पर उसे स्वयं को अलंकृत नहीं करना चाहिए।' (924)

5. 'भिक्षु को आंतरिक रूप से शांत रहना चाहिए, उसे किसी अन्य स्रोत से शांति नहीं खोजनी चाहिए; क्योंकि जो आंतरिक रूप से शांत है, उसके लिए कुछ भी ग्रहण करने योग्य या अस्वीकृत करने योग्य नहीं है। (925)

6. 'जैसे समुद्र के मध्य (अर्थात गहराई) में कोई लहर उत्पन्न नहीं होती, बल्कि स्थिर रहती है, वैसे ही भिक्षु को शांत रहना चाहिए, इच्छा रहित रहना चाहिए, उसे किसी भी चीज की इच्छा नहीं करनी चाहिए।' (926)

7. उन्होंने खुली आँखों से उस धम्म का स्पष्ट रूप से प्रतिपादन किया जो सभी खतरों को दूर करता है; अब धम्म प्रथाओं, उपदेशों या समाधि (स्व-मग्न समाधि) के बारे में बताइए। (927) 8.

भगवान (भगवान बुद्ध): 'उसे अपनी आँखों से लालची नहीं होना चाहिए, उसे अपने कानों को नगर की बातों से दूर रखना चाहिए, उसे मीठी चीजों के प्रति लालची नहीं होना चाहिए, और उसे संसार में किसी भी चीज की इच्छा नहीं करनी चाहिए।' (928)

9. जब भिक्षु (रोग से) प्रभावित हो, तो वह शोक न करे, कहीं और रहने की इच्छा न करे, और किसी भी खतरे से भयभीत न हो। (929)

10. उबले हुए चावल, पेय, ठोस भोजन और वस्त्र प्राप्त कर लेने पर, वह इनका संचय न करे, और यदि ये उसे न मिलें तो चिंतित न हो। (930)

11. वह ध्यानमग्न रहे, ताक-झांक न करे, दुराचार से दूर रहे, आलसी न हो, भिक्षु अपने शांत निवास में रहे। (931)

12. वह अधिक न सोए, वह पूरी लगन से ध्यान लगाए, वह आलस्य, छल, हंसी, खेलकूद, यौन संबंध और अलंकरण का त्याग करे। (932)

13. 'वह अथब्बनवेद के भजनों का अभ्यास करने, स्वप्नों और संकेतों की व्याख्या करने, या ज्योतिष में संलग्न न हो; वह पक्षियों की आवाज की व्याख्या करने, गर्भाधान कराने, या चिकित्सा के क्षेत्र में संलग्न न हो। (933)

14. 'भिक्षु निंदा से भयभीत न हो, न ही प्रशंसा से अभिमान करे; वह लोभ, क्रोध और निंदा के साथ-साथ लालच को भी दूर भगाए। (934)

15. 'भिक्षु खरीद-फरोख्त में संलग्न न हो, वह किसी बात में दूसरों की निंदा न करे, वह गांव में किसी को डांट-फटकार न करे।उसे लाभ के लालच में लोगों से बात नहीं करनी चाहिए। (935)

16. भिक्षु को घमंड नहीं करना चाहिए, और न ही उसे सुसंगत भाषा बोलनी चाहिए; उसे अहंकार नहीं सीखना चाहिए, उसे झगड़ालू भाषा नहीं बोलनी चाहिए। (936)

17. उसे झूठ के मार्ग पर नहीं चलना चाहिए, उसे जानबूझकर बुरे काम नहीं करने चाहिए; और जीविका, पन्ना (प्रत्यक्ष अनुभवात्मक ज्ञान), सद्गुण और (पवित्र) कार्यों के संबंध में उसे दूसरों का तिरस्कार नहीं करना चाहिए। (937)

18. बहुत बोलने वाले भिक्षुओं से बहुत कुछ सुनकर उसे चिढ़कर कठोर भाषा में उत्तर नहीं देना चाहिए; क्योंकि अच्छे लोग दूसरों को नहीं रोकते। (938)

19. इस धम्म को समझकर, जिज्ञासु और सदा विचारशील भिक्षु को सीखना चाहिए; आनंद को शांति में निहित मानकर, उसे गौतम (बुद्ध) के आदेशों में आलसी नहीं होना चाहिए। (939)

20. 'क्योंकि अजेय विजेता ने बिना किसी पारंपरिक शिक्षा के धम्म को प्रत्यक्ष रूप से देखा; इसलिए उसे भगवान (बुद्ध) की आज्ञाओं का पालन करते हुए सीखना चाहिए और सदा उनकी पूजा करनी चाहिए।' (940)

तुवतकसुत्त समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
14. तुवतकसुत्तं
921.
"पुच्चामि तं आदिच्चबंधु [अदिच्चबंधुं (सि. स्या.)], विवेकं शांतिपादान्च महेसि;
कथं दिस्व निब्बति भिक्खु, अनुपादियानो लोकस्मिं किन्चि।"
922.
"मूलं पापञ्चसंखाय, (इति भगवान)
मंता अस्मिति सब्बामुपरुन्धे [सब्बामुपरुद्धे (स्या. पि. का.)];
या काचि तन्हा अज्झत्तं,
तस्सं विनय [विनय (?)] सदा सातो सिक्खे।
923.
"यं किंचि धम्ममभिजान्न, अज्जत्तं अथवापि बहिद्धा;
न तेन थमं [मनं (सी. का.)] कुब्बेथा, न ही सा निब्बुति सातं वुत्ता।
924.
"सेय्यो न तेन मन्नेया, नीसयो अथवापि सरिक्खो;
फ़ुठो [पुठ्हो (सि. स्या. का.)] अनेकरूपेहि, नतुमनं विकप्पायं तिट्ठे।
925.
"अज्जत्तमेवुपासमे, न अन्नानतो भिक्खु सन्तिमेसेय;
अज्झट्टं उपसंतस्स, नत्थि अत्ता कुतो निरत्त वा।
926.
"मज्जे यथा समुद्दस्स, उमि नो जयति थितो होति;
एवं ठितो अनेजास्सा, उससादं भिक्खु न करेया कुहिनसि"।
927.
"अकित्तायि विवाचक्कु, सक्खिधम्मं परिस्यािवनयम्;
पतिपदं वदेहि भद्दन्ते, पतिमोक्खं अथवापि समाधिम्।"
928.
"चक्खुहि नेवा लोलास्सा, गमकथया आवरये सोतम्;
रसे च नानुगिज्जेय, न च ममयेत् किञ्चि लोकस्मिः।
929.
"फस्सेन यदा फुथस्स, परिदेवं भिक्खु न करेया कुहिन्चि;
भावाञ्च नाभिजप्पेय, भेरवेसु च न संपवेधेय।
930.
"अन्नानमथो पानानं, खदानियानं अथोपि वत्थानं;
लद्धा न सन्निधिं कयिरा, न च परित्तसे तानि अलभमानो।

931.
"झायि न पडलोलास्सा, विरामे कुक्कुक्का नप्पमज्जेया;
अथासनेसु सयानेसु, अप्पसद्देसु भिक्खु विहारेया।
932.
"निद्दं न बाहुलिकरेया, जागरियां भजेय अतापि;
तंदिं मयं हस्सां खिदं, मेथुनं विप्पजहे सविभूषां।
933.
"अथब्बाणं सुपिनं लक्खानं, नो विदाहे अथोपि नक्खट्टं;
विरुताञ्च गब्भकारणं, तिकिच्चं मामको न सेवैया।
934.
"निंदया नप्पवेधेय, न उन्नमेय पसंसिटो भिक्खु;
लोभां सहा मछरियेना, कोधं पेसुनियाञ्च पनुडेय्य।
935.
"कायविक्कये न तिट्ठेया, उपवदं भिक्खु न करेय कुहिञ्चि;
गामे च नाभिसज्जेय, लाभकाम्य जनं न लापयेय।
936.
"न च कत्थिता सिया भिक्खु, न च वाचं पयुत्तं भसेय;
पगभियं न सिखेया, कथं विग्गहिकं न कथयेय।
937.
"मोसावज्जे न नियथा, संपजाणो साथनि न कयिरा;
अथ जीवितेन पनन्या, सिलब्बतेन नाण्णामतिमन्ने।
938.
"सुत्वा रुसितो बहुं वाचं, समानं वा पुथुजनानं [पुथुवचनां (सि. स्या. पि.)];
फरुसेना ने न पतिवज्जा, न ही संतो पतिसेनिकरोंति।
939.
"एतञ्च धम्ममनन्या, विचिनं भिक्खु सदा सातो सिक्खे;
शांतिति निब्बुतिं नात्वा, ससाने गोतमस्स न पमज्जेया।
940.
"अभिभू हि सो अनाभिभूतो, सक्खिधम्ममनितिहमदस्सी;
तस्मा हि तस्स भगवतो ससाने, अप्पमत्तो सदा नमस्सामनुसिक्खे'ति।
तुवङ्कसुत्तं कुद्दसमं निहितं।

पाली-देवनागरी
14. तुवत्कसुतं
2000.
"पुच्चामि तं आदिचबंधुं [आदिचदचबंधुं (सी० स्या०)], विवेकं शांतिपदञ्च महेसि।
कथं दिस्वा निब्बति भिक्खु, अनुपादियानो लोकस्मिं किञ्चचि"॥
.
"मूलं पपञ्चसङ्खाय, (इति भगवान)
मन्ता अस्मिति सब्बमुपरुन्धे [सब्बमुपरुद्धे (स्या० पी० क०)]।
या काचि तन्हा अज्झत्तं,
तासं विनया [विन्याय (?)] सदा सातो सीखे॥
.
"यं किञ्चि धम्मभिज्ञा, अज्झत्तं अरापि बहिद्धा।"
न तेन थमं [मानं (सी० क०)] कुब्बेथ, न हि सा निब्बुति सतं वुत्ता॥
।
"सेय्यो न तेन मन्ञेय, नीचेय्यो अपि सरिक्खो।
थत्थ फ़ु [पुत्थो (सी० स्या० क०)] अनेकरूपेहि, नातुमनं विकप्पयं तिट्ठे॥

522.
"अज्जत्तमेवुपसमे, न अञ्जन्तो भिक्खु शान्तिमेसेय।
अज्झत्तं उपसंतस्स, नत्थि अत्ता कुतो निरत्ता वा॥
.
"मझे यथा समुद्दस्स, उमि नो जायति थितो होति।
एवं थितो अनेजस्स, उससदं भिक्खु न करेय कुहिनचि"॥
छठी.
"अकित्तयै विवत्चक्खु, सक्खिधम्मं परिस्स्यविनयं।
पतिपदं वदेहि भद्दन्ते, पतिमोक्खं अरापि समाधिं"॥
एफ़बी.
"चक्खुहि नेव लोलस, गम्कथाय आवर्ये सोतं।
रसे च नानुगिज्जेय, न च ममयेत् किञ्चि लोकस्मिं॥
.
"फस्सेन यदा फुथ्सत्स, परिदेवं भिक्खु न करेय कुहिनचि।
भवाञ्च नाभिजप्पेय, भेरवेसु च न संपवेधेय॥
तीस.
"अ संज्ञानमथो पानानं, भोजनियानं अथोपि वाथानं।
लद्धा न सन्निधिं कयिरा, न च परित्तसे तानि अलभमानो॥
.
"झायि न पदलोलस, विरमे कुकुचदचा नप्पमज्जेय।
अथासनेसु सयनेसु, अप्पसद्देसु भिक्खु विहारय॥
26.
"निद्दं न बहुदिकार्येय, जाग्रियां भजेय्य अतपि।
तंदिं मयं हसन खिद्दं, मेथुनं विप्पजे सविभूसं॥
252.
"अथब्बनं सुपिनं लक्षणं, नो विधहे अथोपि नक्खत्तं।
विरुत्ञ्च गब्भकरणं, तिकिच्छं मामको न सेवय्य॥
934.
"निन्दय नप्पवेधेय, न उन्नमेय पसंसिटो भिक्खु।
लोभं सहमस्तयेन, कोधं पेसुनीयन्च पनुदेय्य॥
.
"कायविक चित्रकये न तिट्ठेय, उपवादं भिक्खु न करेय कुहिनचि।
गामे च नाभिसज्जेय, लाभकम्या जनं न लापयेय॥
60वीं.
"न च कथिता सिया भिक्खु, न च वाचं प्युत्तं भासेय।
पग्ब्भ्यं न सिक्खेय, कथं विग्गहिकं न कथयेय॥
.
"मोसवज्जे न नीयेथ, संपजानो सथानि न कयिरा।
अथ सजीवेन पञ्चाय, सीलब्बतेन नञ्जनमतिमञ्चे॥
→
"सुत्वा रुसितो बहुं वाचं, समानां वा पुथुजनानं [पुथुवचनां (सी० स्या० पी०)]।
फ़रुसेन ने न पतिखजज्जा, न हि सन्तो पतिसेनिक्रोन्ति॥
.
"एतञ्च धम्ममञ्चाय, विचिनं भिक्खु सदा सातो सिखे।"
शांतिति निब्बुतिं ञत्वा, सस्ने गोतमस्स न पमज्जेय॥
2004.
"अभिभू हि सो अनभिभूतो, सखिधम्ममनीतिहमदस्सी।"
तस्मा हि तस्स भगवतो सस्ने, अप्पमत्तो सदा नमस्मनुसिक्खे"ति॥

तुवत्कससुत्तं चुद्दसमं निश्चितं।

टिपिटका >> सुत्त पिटक >> खुद्दाक निकाय >> सुत्तनिपता >> 4.16 सारिपुत्तसुत्त

वी. फॉसबोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<-->>>> अगला

जब सारिपुत्त ने पूछा कि एक भिक्षु को अपने आप को किस चीज के प्रति समर्पित करना चाहिए, तो बुद्ध ने दिखाया कि उसे किस प्रकार का जीवन जीना चाहिए।

अंतर्वस्तु

4.16 सारिपुत्तसुत्त

अनुवाद

1. 'मैंने पहले कभी ऐसे व्यक्ति को नहीं देखा,' - पूज्य सारिपुत्त ने कहा, - 'और न ही किसी ने तुषिता स्वर्ग से आए ऐसे सुंदर वाणी वाले गुरु के बारे में सुना है। (961)

2. 'जैसे वे, स्पष्ट दृष्टि वाले, सभी अंधकार को दूर करके मनुष्य और देवता जगत में प्रकट होते हैं, वैसे ही वे लोगों के बीच अकेले विचरण करते हैं। (962)

3. 'इस बुद्ध से, जो स्वतंत्र, अपरिवर्तित, निष्कपट शिक्षक हैं, जो (संसार में) आए हैं, मैं इस संसार में बंधे हुए अनेकों की ओर से एक प्रश्न लेकर विनती करता हूँ। (963)

4. 'उस भिक्षु (सांसारिक) के लिए जो संसार से विमुख है और एकांत स्थान, वृक्ष की जड़ या श्मशान में निवास करता है, या पहाड़ों की गुफाओं में रहता है, (964)

5. 'इन विभिन्न निवास स्थानों में कितने ही खतरे हैं जिनसे भिक्षु अपने शांत निवास में भयभीत नहीं होता! (965)

6. 'जो अमरलोक जाता है उसके लिए संसार में कितने ही खतरे हैं, जिन्हें भिक्षु अपने एकांत निवास में पार कर लेता है! (966)

7. 'ऊर्जावान भिक्षु के वचन क्या हैं, इस संसार में उसके उद्देश्य क्या हैं, उसके सद्गुण और (पवित्र) कार्य क्या हैं?' (967)

8. 'जो व्यक्ति एक ही उद्देश्य पर ध्यान केंद्रित करके, बुद्धिमान और विचारशील होकर अध्ययन में लगा रहता है, क्या वह अपनी ही गंदगी को वैसे ही झाड़ सकता है जैसे लोहार चांदी की गंदगी झाड़ता है?' (968)

9. 'हे सारिपुत्त, जो पुनर्जन्म आदि से विरक्त है, उसके लिए क्या सुखदायक है?' - भगवान बुद्ध ने कहा - 'यदि वह एकांतवास में रहता है और धम्म के अनुसार पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति चाहता है, तो मैं तुम्हें अपनी समझ के अनुसार यही बताऊंगा।' (969)

10. 'सीमाओं पर विचरण करने वाले बुद्धिमान और विचारशील भिक्षु को पांच प्रकार के खतरों से नहीं डरना चाहिए: मक्खियां और अन्य सभी मक्खियां, सांप, दुष्ट मनुष्यों से संपर्क और चौपाये।' (970)

11. 'उसे शत्रुओं से नहीं डरना चाहिए, भले ही उसने उनसे अनेक खतरे देखे हों; इसके अलावा, वह अच्छे की खोज करते हुए अन्य खतरों पर विजय प्राप्त कर लेगा।' (971)

12. 'रोग और भूख से पीड़ित होकर, वह सर्दी और अत्यधिक गर्मी सहन करे; अनेक प्रकार से इनसे प्रभावित होकर, और बेघर होकर, वह कड़ी मेहनत करे। (972)

13. 'वह चोरी न करे, वह झूठ न बोले; वह कमजोर या मजबूत किसी भी चीज को मित्रतापूर्वक छुए; वह मन की बेचैनी को अंधकार के पक्षधर (अर्थात् मारा, मृत्यु के देवता) के रूप में स्वीकार करे, उसे दूर भगाए। (973)

14. 'वह क्रोध और अहंकार के वश में न आए; इनकी जड़ उखाड़कर, वह जीवन व्यतीत करे, और जो सुखद है और जो अप्रिय है, दोनों पर विजय प्राप्त करे। (974)

15. 'बुद्धि से निर्देशित होकर, जो अच्छा है उसमें आनंद लेते हुए, वह उन खतरों को दूर भगाए; वह अपने दूर निवास में असंतोष पर विजय प्राप्त करे; वह विलाप के चारों कारणों पर विजय प्राप्त करे। (975)

16. 'मैं क्या खाऊँ, या कहाँ खाऊँ?' वह सचमुच (पिछली रात) बेचैनी से लेटा रहा - 'आज रात कहाँ सोऊँ?' बेघर भटकने वाले सेख (शिष्य) को इन दयनीय शंकाओं को दूर करना चाहिए। (976)

17. 'उचित समय पर भोजन और वस्त्र प्राप्त करके, उसे सुख के लिए इस संसार में संयम बरतना चाहिए; इन बातों में सावधान रहकर और गाँव में संयमित भटकते हुए, यदि वह चिढ़ भी जाए, तो कठोर शब्द न बोले। (977)

18. 'उसे दृष्टि झुकाए रखना चाहिए, और ताक-झाँक न करनी चाहिए, ध्यान में लीन रहना चाहिए, अत्यंत सतर्क रहना चाहिए; समभाव प्राप्त करके, उसे शांत मन से शंका और दुराचार के स्थान को काट देना चाहिए।' (978)

19. 'अपने गुरुओं के वचनों से प्रेरित होकर, वह चिंतनशील हो और इस प्रेरणा से प्रसन्न हो, अपने सहपाठियों के हठ को भंग करे, शुभ और असमय न आने वाले वचन बोले, और दूसरों के बारे में नकारात्मक विचार न रखे। (979)

20. 'और फिर संसार की पाँच अशुद्धियों के वश में होना, जिनका वशीकरण वह चिंतनशील होकर सीखे,—रूप, ध्वनि, स्वाद, गंध और स्पर्श के प्रति आसक्ति पर विजय प्राप्त करे। (980)

21. 'भिक्षु इन धर्मों के प्रति अपनी इच्छा को वश में रखे और चिंतनशील हो, और अपने मन को पूर्णतः मुक्त करके, समय आने पर धर्म पर चिंतन करते हुए और एक ही लक्ष्य पर एकाग्र होकर अंधकार का नाश करेगा।' ऐसा भगवान बुद्ध ने कहा। (981)

सारिपुत्तसूत्र समाप्त।

अट्ठकवग्ग समाप्त।

नोट: श्लोकों की क्रमांकन पाली त्रिपिटक के अनुसार है, जो www.tipitaka.org पर उपलब्ध है।

पाली-रोमन
16. सारिपुत्तसुत्तं
961.
''ना मे दिथो इतो पुब्बे, (इक्कायस्मा सारिपुत्तो)
Na suto uda kassaci;
Evaṃ vagguvado satthā,
Tusitā gaṇimāgato.
962.
''सदेवकस्सा लोकस्सा, यथा दिसाति चक्खुमा;
सब्बं तमं विनोदेत्वा, एकोवा रतिमाज्जगा।
963.

"तं बुद्धं असितं तदिं, अकुहं गणिमागतम्;
बहुनामिधा बधानां, अत्थि पन्हेन अगमम्।
964.
"भिक्खुनो विजिगुच्छतो, भजतो ऋत्तमासनम्;
रुक्खमूलं सुसानं वा, पब्बताणं गुहासु वा।
965.
"उच्चावसेसु सयानेसु, किवंतो तत्थ भेरवा;
येहि भिक्खु न वेधेया, निघोसे सयानासने।
966.
"कति परिस्सया लोके, गच्चतो अगतं दिसं;
ये भिक्खु अभिसम्भवे, पन्तमहि सयानासने।
967.
"क्यास्सा ब्याप्पथयो अस्सु, क्यास्सासु इधा गोकारा;
कानि सिलब्बतानासु, पहितत्तस्सा भिक्खुनो।
968.
"कं सो सिक्खं समादाय, एकोदी निपको सातो;
कम्मरो राजतस्सेव, निद्धमे मलमत्तनो"।
969.
"विजिगुच्चमानस्स यदिदं फासु, (सारिपुत्तति भगवान)
ऋत्तासनं सयानं सेवातो सी;
सम्बोधिकमस्सा यथानुधम्मं,
तं ते पवक्खामि यथा पजाननं।
970.
"पंचन्नं धीरो भयानं न भये, भिक्खु सातो सपरियंतचारी;
षांसाधिपतानां सरिसापणं, मनुस्साफस्साणं चतुप्पदानं।
971.
"परधम्मिकानमपि न संतसेय, दिस्वापि तेसं बहुभेरवाणि;
अथापराणि अभिसंभावेया, परिस्सयानि कुसलानुसेसि।
972.
"आतंकफस्सेन खुदाय फुठो, सीतां अतुंहं [अकुण्हं (सि. स्या.)] अधिवासय्य;
तो तेहि फूटथो बहुधा अनेको, वीर्यं परक्कम्मदहं करेय।
973.
"थेय्यं न करे [न करेया (सि. स्या. का.)] न मुसा भाणेया, मेत्तया फस्से तसथवराणि;
यदाविल्लत्तं मनसो विजानना, कण्हस्सा पक्खोति विनोदेय्य।
974.
"कोधातिमानस्स वसं न गच्छे, मूलमपि तेसं पलिखान्न तिट्ठे;
अथप्पियं वा पण अप्पियं वा, अद्धा भवन्तो अभिसम्भवेय।
975.
"पन्नं पुरक्खत्व कल्याणापिति, विक्खंभये तानि परिस्सयानि;
अरतिं सहेथा सयानमहि पैंते, चतुरो सहेथा परिदेवधम्मे।
976.
" किसु असिसामि कुवं वा [कुधा वा (का.), कुथा वा (निद्देसा)] असिसं, दुक्खं वात सेत्था क्वाज्जा सेसां;
एते विटक्के परिदेवनेये, विनयेथा सीखो अनिकेताचारी।
977.
"अन्नञ्च लद्धा वसनञ्च काले, मत्तं सो ज्ञाना इधा तोसनत्थम्;
तो तेसु गुट्टो याताचारी गेमे, रुसितोपि वाकं फरुसं न वज्जा।
978.
"ओक्खित्तचक्कु न च पदालोलो, झनानुयुत्तो बहुजागरस्स;

उपेक्खमारभ समाहितत्तो, तक्कसयं कुक्कुच्चियुपचिन्दे।
979.
"कुदितो वैसीभि सतिमाभिनन्दे, सब्रह्मचारिषु खिलं पभिन्दे;
वाचं पमुन्से कुसलं नैटिवेलं, जनवदाधम्मया न चेतयैय।
980.
"अथापरं पञ्च रजनि लोके, येसं सतीमा विनयाय सिक्खे;
रूपेसु सद्दसु अथो रसेसु, गंधेसु फस्सेसु सहेथा रागं।
981.
"एतेसु धम्मेसु विनेया चंदं, भिक्खु सतिमा सुविमुत्तचित्तो;
कालेन सो सम्मा धम्मं परिवीमंसमानो,
एकोदिभूतो विहने तमं सो"ति।
सारिपुत्तसुत्तं सोषासमं निहितं। अट्ठाकवाग्गो कैटुथो
निथिहितो.
Tassuddānaṃ –
कामं गुहञ्च दुत्थ च, शुद्धञ्च परम जरा;
Metteyyo ca pasūro ca, māgaṇḍi purābhedanaṃ.
कलाहं दवे च ब्युहानी [ब्युहनि (सि.)], पुनादेवा तुवतंकं;
अट्टादांडवरं सुत्तं, थेरापुथेना [थेरापन्हेना (सि.), सारिपुत्तेन (स्या.)] सोसासा;
इति एतानि सुत्तानि, सब्बनत्थकवाग्गिकति।

पाली-देवनागरी
16. सारिपुत्तसुत्तं
→
"न मे दित्थो इतो पुब्बे, (इच्चादयस्मा सारिपुत्तो)
न सुतो उद कस्सिच।
एवं वग्गुवदो सथा,
तुसिता गणिमागतो॥
201.
"सदेवकस लोकस्स, यथा दिस्सति चक्खुमा।
सब्बं तमं विनोदेत्वा, एकोव रतिमज्झगा॥
6.
"तं बुद्धं असितं तादिं, अकुहं गणिमागतं।
बहुनामिद बधानां, अथि पञ्चेन आगमं॥
।
" भिक्खुनो विजिगुच्छतो, भजतो ऋत्तमासनं।
रुक्खमूलं सुसानं वा, पब्बतनं गुलासु वा॥
.
"उच्चचावचेसु सयनेसु, कीवन्तो तथा भेरवा।
येहि भिक्खु न वेधेय, निघोसे सयनासने॥
यी.
"कति परिस्या लोके, गच्छतो अगतं दिसं।
ये भिक्खु अभिसम्भवे, पन्तमहि सयनासने॥
.
"क्यास्स बिप्पथयो अस्सु, क्यास्स्सु इध असार।
कानि सिलब्बतनस्सु, पहित्तत्स्स भिक्खुनो॥
901
"कं सो सिखं समादाय, एकोदि निपको सातो।
कम्मारो रजत अस्सेव, निद्धमे मलमत्तनो"॥

666.
"विजिगुच्छमानस्स यिददं फासु, (सारिपुत्तति भगवान)
ऋत्तासनं सयानं सेवतो चे।
सम्बोधिकामास्स यथानुधम्मं,
तं ते पवखामि यथा पजानं॥
600.
"पञ्च नारायणं धीरो भयानं न भये, भिक्खु सातो सपरियन्तचारी।"
दंसधिपातानां सरिस्पनं, मनुसस्फस्सानं चतुप्पदानं॥
→.
"परधम्मिकानमपि न सन्तसेय, दिसवापि तेसं बहुभेरवाणि।
अथापराणि अभिसंभवेय, परिस्यानि कुसलनुसि॥
वीपी.
"अतङ्कफस्सेन खुदाय फुत्थो, सीतं अतुन्हं [अच्चचुंहं (सी० स्या०)] अधिवासयेय्य।
सो तेहि फुत्थो बहुधा अनोको, वीरियं पर्कमदळहं करेय॥
.
"थेयं न करे [न करेय (सी० स्या० क०)] न मुसा भाणेय, मेत्ताय फस्से तस्थवराणि।
यदाविलत्तं मनसो विज्ञानं कन्हस्स पखोति विनोदयेय॥
944.
"कोधातिमानस्स वसं न गच्छे, मूलमपि तेसं पलिखञ्चन तिट्ठे।
अथप्पियं वा पण अप्पियं वा, अद्धा भवन्तो अभिसंभेयः।
95.
"पञ्चं पुरखत्व कल्याणपीति, विखंभये तानि परिसस्यानि।
तिं सहेथ सयनमहि पन्ते, चतुरो सहेथ परिदेवधम्मे॥
666.
"किन्सु असिस्सामि कुवं वा [कुध वा (क०), कुथ वा (निद्देस)] असिस्सं, दुक्खं वत सेठ त्रवज़् सेसन।
एते विटके परिदेवनेये, विनेयथ सेखो अनिकेताचारी॥
677.
"अ संज्ञाच लद्धा वसनंदच काले, मत्तं सो ज्ञान इध तोसनथं।
सो तेसु गुत्तो यतचारि गमे, रुसिटोपि वाचं फ़रुसं न वजज्जा॥
96.
"ओक्खित्तचक्खु न च पदलोलो, झनानुयुत्तो बहुजागरस्स।
उपेखमाराभ सम्मिलितत्तो, तक्षकसायं कुकुच्छचियुपछिन्दे॥
.
"चुदितो वचिभि सतिमाभिनन्दे, सब्रह्मचारीसु खिलं पभिन्दे।
वाचं पमुञ्चे कुसलं नातिवेलं, जनवधम्मै न चेतयेय॥
.
"अथापरं पञ्च रजनि लोके, येसं सतिमा विनाय सिखे।"
रूपेसु सद्देसु अथो रसेसु, गंधेसु फस्सेसु सहेथ रागं॥
.
"एतेसु धम्मेसु विनेय छंदं, भिक्खु सतिमा सुविमुत्तचित्तो।
कालेन सो सम्मा धम्मं परिवीमंसमानो,
एकोदिभूतो विहने तमं सो"ति॥
सारिपुत्तसुत्तं सोळसमं निश्चितं। अट्ठकवग्गो चतुत्थो
निट्ठितो।
तस्सुद्दनं -
कामं गुहञ्च दुत्थ च, सुद्धञ्च परमा जरा।
मेत्तेय्यो च पसूरो च, मागण्डि पुराभेदनं॥
कलहं द्वे च ब्यूहानि [ब्यूहानी (सी०)], पुनदेव तुवत्तकं।

अट्टदण्डवरं सुत्तं, थेरपुट्ठेन [थेरपञ्हेन (सी०), सारिपुत्तेन (स्या०)] सोळस।
इति एतानि सुत्तानि, सब्बनत्थकवग्गिकाति॥

वी. फौस्बोल द्वारा अनुवादित (1881)

पिछला <<<<--->>>>समाप्त

अस्सक के राज्य में गोदावरी नदी के किनारे रहने वाले ब्राह्मण (पुजारी) बावरी के पास एक अन्य ब्राह्मण आता है और पाँच सौ सिक्के माँगता है। सिक्के न मिलने पर वह बावरी को श्राप देता है और कहता है, 'आज से सातवें दिन तेरा सिर चार टुकड़ों में फट जाए।' एक देवता बावरी को बुद्ध के पास भेजकर सांत्वना देते हैं। तब बावरी अपने सोलह शिष्यों को बुद्ध के पास भेजते हैं और उनमें से प्रत्येक बुद्ध से एक प्रश्न पूछता है।

अंतर्वस्तु

5.0. वत्थुगाथा

1. कोसलों के सुंदर नगर (सावत्थी) से एक ब्राह्मण, जो भजनों में पारंगत था, दक्षिण (दक्षिणपथ) की ओर निर्धनता की कामना करते हुए चला गया। (982)
2. अस्सक के राज्य में, अलका के पड़ोस में, वह गोदावरी नदी के किनारे पर, बचे हुए अनाज और फलों से अपना जीवन यापन करता था। (983)
3. नदी के किनारे ही एक बड़ा गाँव था, जिसकी आय से उसने एक महान यज्ञ किया। (984)
4. महान यज्ञ करने के बाद, वह फिर से आश्रम में प्रवेश कर गया। उसके पुनः प्रवेश करने पर, एक अन्य ब्राह्मण वहाँ पहुँचा, (985)
5. सूजे हुए पैरों वाला, काँपता हुआ, कीचड़ से सना हुआ, सिर पर धूल लिए हुए। और वह उसके पास (अर्थात पहले ब्राह्मण के पास) जाकर पाँच सौ (सिक्के) माँगने लगा। (986)
6. बावरी ने उसे देखकर बैठने को कहा, उससे पूछा कि क्या वह खुश और ठीक है, और इस प्रकार कहा: (987)

7. 'मेरे पास जो भी उपहार थे, वे सब मैंने दे दिए हैं; हे ब्राह्मण, मुझे क्षमा करें, मेरे पास पाँच सौ नहीं हैं।' (988)

8. 'यदि तू मुझे, जो माँग रहा है, नहीं देगा, तो तेरा सिर सातवीं मिट्टी पर सात टुकड़ों में फट जाए।' (989)

9. इस प्रकार सामान्य अनुष्ठानों के बाद इस पाखंडी ने अपना भयानक (श्राप) सुनाया। उसके ये शब्द सुनकर बावरी दुखी हो गया। (990)
10. वह भोजन न करके क्षीण हो गया, दुःख के बाण से ग्रस्त हो गया, फिर भी उसका मन ध्यान में लीन रहा। (991)
11. बावरी को भयभीत और दुखी देखकर, उस स्थान के दयालु देवता उसके पास आए और इस प्रकार कहा: (992)

12. 'वह सिर के बारे में कुछ नहीं जानता; वह धन का लालची पाखंडी है; उसमें सिर और सिर विच्छेदन का ज्ञान नहीं है।' (993)

13. 'यदि पूज्य (देवता) इसे जानते हैं, तो पूछे जाने पर मुझे सिर और सिर विच्छेदन के बारे में सब कुछ बताएँ; हमें आपके शब्द सुनने दें।' (994)

14. 'मैं इसे नहीं जानता; मुझमें इसका ज्ञान नहीं है; जहाँ तक सिर और सिर विच्छेदन का सवाल है, यह केवल बुद्धों को ही दिखाई देता है।' (995)

15. 'तो फिर, हे देवता, पृथ्वी की परिधि में कौन सिर और सिर विच्छेदन को जानता है, मुझे वह बताएँ?' (996)

16. 'पूर्व में कपिलवस्तु से जगत का एक शासक निकला, ओक्काका राजा का वंशज, शाक्य पुत्र, प्रकाशदाता; (997)

17. 'हे ब्राह्मण, वह पूर्णतः प्रबुद्ध (संबुद्ध) है; सभी चीजों में परिपूर्ण, उन्होंने समस्त ज्ञान की शक्ति प्राप्त कर ली है, वे सब कुछ स्पष्ट रूप से देखते हैं; वे समस्त चीजों के नाश तक पहुँच चुके हैं और उपाधियों के नाश में मुक्त हो चुके हैं। (998)

18. 'वे बुद्ध हैं, वे संसार में भगवान (भगवान बुद्ध) हैं, वे स्पष्ट रूप से देखने वाले हैं, वे धम्म का उपदेश देते हैं; आप उनके पास जाइए और पूछिए, वे आपको समझा देंगे।' (999)

19. 'संबुद्ध' शब्द सुनकर बावरी प्रसन्न हुए, उनका दुःख कम हो गया और वे परम आनंद से भर गए। (1000)
20. बावरी प्रसन्न, आनंदित और उत्सुक होकर देवता से पूछा: 'किस गाँव में, किस नगर में, या किस प्रांत में जगत का मुखिया निवास करता है, जहाँ जाकर हम पूर्णतः प्रबुद्ध, मनुष्यों में प्रथम, की आराधना कर सकें?' (1001)

21. 'कोसलों के नगर श्रावस्ती में जिन (विजयी बुद्ध) निवास करते हैं, जो महान पन्ना (प्रत्यक्ष अनुभवात्मक ज्ञान) और उत्कृष्ट व्यापक ज्ञान वाले, शाक्य पुत्र, बंधनमुक्त, वासना से मुक्त, सिर विच्छेदन में निपुण, मनुष्यों में बैल हैं।' (1002)

22. तब (बावरी) ने अपने शिष्यों, ब्राह्मणों, जो भजनों में निपुण थे, को संबोधित किया: 'आओ, युवकों, मैं तुम्हें कुछ बताऊंगा, मेरी बात सुनो: (1003)

23. 'जिनका संसार में बार-बार प्रकट होना कठिन है, वे वर्तमान समय में संसार में जन्म लेकर संबुद्ध (पूर्णतः प्रबुद्ध) के रूप में विख्यात हैं; 'जल्दी से सावत्थी जाओ और श्रेष्ठ पुरुष के दर्शन करो।' (1004)

24. 'हे ब्राह्मण, हम उन्हें देखकर कैसे जान सकते हैं कि वे बुद्ध हैं? हमें बताओ, जो उन्हें नहीं जानते, हम उन्हें किस प्रकार पहचानें?' (1005)

25. 'क्योंकि भजनों में एक महान पुरुष के लक्षण पाए जाते हैं, और बत्तीस लक्षण एक-एक करके प्रकट किए गए हैं।' (1006)

26. 'जिनके अंगों पर एक महान पुरुष के ये लक्षण पाए जाते हैं, उनके लिए दो ही मार्ग शेष हैं, तीसरा संभव नहीं है।' (1007)

27. 'यदि वे किसी निवास में निवास करते हैं, तो वे बिना हिंसा (या तलवार) के इस पृथ्वी को वश में कर लेंगे, वे न्यायपूर्वक शासन करेंगे।' (1008)

28. 'और यदि वे अपने निवास से वनवास के लिए प्रस्थान करते हैं, तो वे संत, अतुलनीय संबुद्ध बन जाते हैं, जिन्होंने (संसार से) पर्दा हटा दिया है।' (1009)

29. 'अपने मन में मेरी जाति और परिवार, मेरे चिह्नों, भजनों और मेरे अन्य शिष्यों, सिर और सिर विच्छेदन के बारे में पूछो। (1010)

30. 'यदि वह बुद्ध हैं, जो स्पष्ट दृष्टि वाले हैं, तो वे आपके मन में पूछे गए प्रश्नों का मौखिक उत्तर देंगे।' (1011)

31, 32, 33. बावरी के वचन सुनकर उनके शिष्य, सोलह ब्राह्मण, अजित, तिस्सामेत्तेय, पुन्नक, मेट्टागु, धोतका और उपासिव, नंदा, हेमक, दो तोदेय्या और कप्पा, और बुद्धिमान जटुकन्नी, भद्रवुधा और उदय, और ब्राह्मण पोसला, और बुद्धिमान मोगराजन, और महान ऋषि पिंगिया, (1012-1014)
34. वे सभी, अपने-अपने शिष्यों के साथ, और स्वयं विश्व भर में विख्यात, ध्यान में लीन रहने वाले विचारक, बुद्धिमान, पूर्व (अच्छे कर्मों) की सुगंध से युक्त, (1015) 35.
बावरी को प्रणाम करके और उनके चारों ओर दाहिनी ओर परिक्रमा करते हुए, सभी जटाधारी और खाल धारण किए हुए, उत्तर की ओर मुख करके प्रस्थान किया। (1016)
36. सर्वप्रथम अलका के पतित्थाना, फिर महिसाती, एवं उज्जेनी, गोनाद्ध, वेदिश, वनसव्य्या, (1017)
37. एवं कोसंबी, सकेत और सावत्थी, जो कि सबसे उत्तम नगर हैं, सेतव्य, कपिलवस्तु और कुसिनारा नगर,(1018)
38. और धन के नगर पावा, मगध नगर वैशाली, और सुंदर, मनमोहक पसानका चेतिया (शिला मंदिर) की ओर। (1019)
39. जैसे प्यासा ठंडे पानी के लिए तरसता है, जैसे व्यापारी लाभ के लिए तरसता है, जैसे गर्मी से पीड़ित छाया के लिए तरसता है, वैसे ही वे शीघ्रता से पर्वत पर चढ़े। (1020)
40. और उस समय भगवान (बुद्ध) भिक्षुओं की सभा के साथ भिक्षुओं को धम्म का उपदेश देते हुए जंगल में सिंह के समान गर्जना करते हुए दिखाई दिए। (1021)
41. अजित ने संबुद्ध को बिना जलती किरणों वाले चमकते सूर्य के समान, पंद्रहवें दिन पूर्ण रूप से विकसित चंद्रमा के समान देखा। (1022)
42. तब उनके अंगों और सभी चिह्नों को पूर्ण रूप से देखकर, अलग खड़े होकर, प्रसन्न होकर उन्होंने अपने मन के प्रश्न पूछे:-- (1023)

43. 'मुझे (मेरे स्वामी के) जन्म के बारे में बताइए, मुझे उनके कुल और चिह्नों के बारे में बताइए, मुझे भजनों में उनकी पूर्णता के बारे में बताइए, ब्राह्मण कितने भजन गाते हैं?' (1024)

44. भगवान (भगवान बुद्ध) ने कहा: 'उनकी आयु एक सौ बीस वर्ष है, और वे कुल से बावरी हैं; उनके अंगों पर तीन चिह्न हैं, और वे तीनों वेदों में पूर्ण हैं। (1025)

45. 'चिह्नों में और निघंडु और केतुभ सहित इतिहास में वे पाँच सौ का पाठ करते हैं—और अपने स्वयं के धम्म में वे पूर्णता प्राप्त कर चुके हैं।' (1026)

46. अजित ने सोचा: 'हे श्रेष्ठ पुरुष, जो इच्छाओं का नाश करते हैं, बावरी के चिह्नों का पूर्ण वर्णन कीजिए; हमारे मन में कोई संदेह न रह जाए।' (1027)

47. भगवान (बुद्ध) ने कहा: 'वह अपने चेहरे को अपनी जीभ से ढकता है, उसकी भौहों के बीच बालों का घेरा है, उसका गुप्तांग आवरण में छिपा है, हे युवक, यह जान लो।' (1028)

48. उन्हें कुछ पूछते हुए न सुनकर, प्रश्नों के उत्तर सुनकर, भीड़ अत्यंत प्रसन्न होकर और हाथ जोड़कर सोचने लगी:-- (1029)

49. 'वह कौन है, चाहे वह देवता हो, ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) हो, या इंद्र (देवताओं/देवदूतों का राजा), सुगा का पति, जिसने अपने मन में ये प्रश्न पूछे, और उस (वाणी) ने किसे उत्तर दिया?' (1030)

50. अजित ने कहा: 'सिर और सिर फोड़ने वाले बावरी के बारे में पूछा गया था; हे भगवान (बुद्ध) इसकी व्याख्या कीजिए, हे इसि (ऋषि) हमारे संदेह को दूर कीजिए।' (1031)

51. भगवान (बुद्ध) ने कहा: 'अज्ञान सिर है, यह जान लो; ज्ञान, विश्वास, चिंतन, ध्यान, दृढ़ संकल्प और बल के साथ मिलकर सिर को चीर देता है।' (1032)

52. तब बड़े हर्ष से शांत होकर उस युवक ने अपनी खाल एक कंधे पर रखी और भगवान (बुद्ध) के चरणों में गिरकर सिर झुकाकर प्रणाम किया: (1033)

53. 'हे आदरणीय, ब्राह्मण बावरी अपने शिष्यों के साथ प्रसन्न और प्रसन्न होकर आपके चरणों को प्रणाम करते हैं, हे प्रत्यक्षदर्शी।' (1034)

54. भगवान (बुद्ध) ने कहा: 'ब्राह्मण बावरी अपने शिष्यों के साथ प्रसन्न हों! आप भी प्रसन्न हों, दीर्घायु हों।'हे युवक! (1035)

55. 'बावरी और तुम्हारे लिए, सबके लिए हर तरह के संदेह हैं; अवसर मिलने पर, जो चाहो पूछ लो।' (1036)

56. संबुद्ध से अनुमति मिलने के बाद, अजित वहाँ हाथ जोड़कर बैठे हुए तथागत (बुद्ध) से पहला प्रश्न पूछा। (1037)

वत्थुगत समाप्त।

5.1 अजितमनवापुच्चा
1. 'यह संसार किस आवरण से ढका है?' - आदरणीय अजिता ने कहा, 'यह किस कारण से प्रकाशित नहीं होता? आप इसकी अशुद्धि किसे कहते हैं, इसका सबसे बड़ा खतरा क्या है?' (1038)

2. 'हे अजिता, यह संसार अज्ञान से ढका है।' - भगवान बुद्ध ने कहा, 'लोभ के कारण यह प्रकाशित नहीं होता; मैं इसकी अशुद्धि को इच्छा कहता हूँ, इसका सबसे बड़ा खतरा पीड़ा है।' (1039)

3. 'इच्छाओं की धाराएँ हर दिशा में बहती हैं।' - आदरणीय अजिता ने कहा, 'इन धाराओं को कौन रोकता है? बताइए, कौन इन्हें नियंत्रित करता है? इन्हें किस कारण से रोका जा सकता है?' (1040)

4. 'हे अजित, संसार में जो भी धाराएँ हैं,' - ऐसा भगवान (बुद्ध) ने कहा, 'सती ध्यान ही उनका बांध है, सती ध्यान ही धाराओं का अवरोध है, प्रत्यक्ष अनुभवजन्य ज्ञान से वे रुक जाती हैं।' (1041)

5. 'प्रत्यक्ष अनुभवजन्य ज्ञान और सती ध्यान से,' - ऐसा आदरणीय अजित ने कहा, 'हे आदरणीय, मैंने मन और शरीर के बारे में जो पूछा है, बताइए कि यह किससे रुकता है?' (1042)

6. बुद्ध: 'हे अजित, तुमने जो प्रश्न पूछा है, मैं उसका उत्तर तुम्हें दूंगा; (मैं तुम्हें समझाऊंगा) कि मन और शरीर की चेतना किससे पूर्णतः रुकती है; चेतना के रुकने से यह यहाँ रुकता है।' (1043)

7. अजित: 'जिन्होंने सभी धम्मों (सत्यों) का अध्ययन किया है, जो शिष्य हैं, और जो यहाँ आम लोग हैं, जब आपसे उनके जीवन शैली के बारे में पूछा जाए, तो मुझे बताएँ, हे आदरणीय बुद्धिमान व्यक्ति।' (1044)

8. बुद्ध: 'भिक्षु को इंद्रिय सुखों की लालसा नहीं करनी चाहिए, उसे मन को शांत रखना चाहिए, उसे सभी लाभकारी धम्मों में निपुण होकर विचरण करना चाहिए और ध्यानपूर्वक ध्यान करना चाहिए।' (1045) अजितमनवपुच्छ

समाप्त होता है।

5.2 तिस्सामेटेय्यामनवपुच्चा
1. 'संसार में संतुष्ट कौन है,' - पूज्य तिस्सामेत्तेय ने कहा - 'वह कौन है जो मनोभ्रंश से मुक्त है? जो दोनों छोरों को जानकर भी मध्य में नहीं अटकता, जहाँ तक उसकी समझ का संबंध है? आप किसे महान पुरुष कहते हैं? किसने इस संसार में इच्छा पर विजय प्राप्त की है?' (1046)

2. 'हे मेत्तेय, जो भिक्षु इंद्रिय सुखों से दूर रहता है और ब्रह्मचर्य का पालन करता है,' - भगवान बुद्ध ने कहा - 'जो इच्छा से मुक्त है, सदा ध्यानमग्न रहता है, चिंतन से प्रसन्न रहता है, वह मनोभ्रंश से मुक्त है (1047)।

वह दोनों छोरों को जानकर भी मध्य में नहीं अटकता, जहाँ तक उसकी समझ का संबंध है; मैं उसे महान पुरुष कहता हूँ; उसने इस संसार में इच्छा पर विजय प्राप्त की है।' (1048)

तिस्सामेत्तेय्यमनवपुच्छ समाप्त होता है।

5.3 पुन्नकामनावपुच्छा

1. 'जो इच्छा रहित है, जिसने (पाप के) मूल को देख लिया है,' - पूज्य पुन्नक ने कहा, - 'मैं आपसे विनती करते हुए एक प्रश्न लेकर आया हूँ: इस संसार में ईसियों और मनुष्यों, क्षत्रियों और ब्राह्मणों ने देवताओं को इतनी अधिक बलि क्यों चढ़ाई? (इस विषय में) हे भगवान (भगवान बुद्ध), मुझे इसका उत्तर दीजिए।' (1049)

2. 'हे पुन्नक, ये सभी ईसियाँ और मनुष्य, क्षत्रियाँ और ब्राह्मण,' - भगवान (भगवान बुद्ध) ने कहा, - 'जिन्होंने इस संसार में देवताओं को इतनी अधिक बलि चढ़ाई, उन्होंने वृद्धावस्था में पहुँचकर अपनी वर्तमान स्थिति की कामना करते हुए बलि चढ़ाई।' (1050)

3. 'इस संसार में देवताओं को प्रचुर मात्रा में यज्ञ अर्पित करने वाले ये सभी संत और पुरुष, क्षत्रिय और ब्राह्मण,' - पूज्य पुन्नक ने कहा, - 'हे भगवान बुद्ध, जो यज्ञ के मार्ग में अथक हैं, क्या वे पुनर्जन्म और वृद्धावस्था दोनों को पार कर पाए? हे भगवान बुद्ध, मैं आपसे पूछता हूँ, मुझे इसका उत्तर दीजिए।' (1051)

4. 'हे पुन्नक, उन्होंने इंद्रिय सुखों की कामना की, उनकी स्तुति की, उनकी इच्छा की और उनका त्याग किया,' - भगवान बुद्ध ने कहा, - 'उन्होंने इंद्रिय सुखों की कामना की, क्योंकि वे उनसे प्राप्त हुए थे; वे यज्ञ में लीन होकर, जीवन के जुनूनों में रंगे हुए, पुनर्जन्म और वृद्धावस्था को पार नहीं कर पाए, ऐसा मैं कहता हूँ।' (1052)

5. 'यदि वे, अर्पण में समर्पित होकर,' - पूज्य पुन्नक ने कहा, - 'अर्पण द्वारा पुनर्जन्म और वृद्धावस्था को पार नहीं कर पाए, तो हे पूज्य पुरुष, देवताओं और मनुष्यों के संसार में पुनर्जन्म और वृद्धावस्था को किसने पार किया, हे पूज्य पुरुष, मैं आपसे पूछता हूँ, हे भगवान (भगवान बुद्ध), मुझे इसका उत्तर दीजिए?' (1053)

6. 'संसार में सब कुछ विचार करने के बाद, हे पुन्नक,' - भगवान (भगवान बुद्ध) ने कहा, - 'जो संसार में कहीं पराजित नहीं होता, जो कामवासनाओं के धुएँ से मुक्त शांत होता है, दु:ख से मुक्त होता है, इच्छा से मुक्त होता है, वह पुनर्जन्म और वृद्धावस्था को पार कर जाता है, ऐसा मैं कहता हूँ।' (1054)

पुन्नकामनावपुच्छ समाप्त होता है।

5.4 मेट्टागुमनवापुच्छा

1. 'हे भगवान (भगवान बुद्ध), मैं आपसे यह पूछता हूँ,' - आदरणीय मेट्टागु ने कहा, - 'मैं आपको सिद्ध और प्रबुद्ध मानता हूँ, ये (प्राणी), चाहे वे संसार में कितने ही प्रकार के हों, सदा पीड़ा के अधीन क्यों रहते हैं? (1055)

2. 'हे मेट्टागु, आप मुझसे पीड़ा के उद्‌गम के बारे में पूछ सकते हैं,' - भगवान (भगवान बुद्ध) ने कहा, - 'मैं आपको इसे उस तरीके से समझाऊँगा जिस तरह से मैं स्वयं जानता हूँ: उपाधियों से पीड़ाएँ उत्पन्न होती हैं, चाहे वे संसार में कितने ही प्रकार की हों। (1056)

3. 'जो अज्ञानी उपाधि का सृजन करता है, वह मूर्ख फिर से पीड़ा भोगता है; इसलिए ज्ञानी व्यक्ति उपाधि का सृजन न करे, यह जानते हुए कि यह पुनर्जन्म और पीड़ा का उद्‌गम है।' (1057)

4. मेट्टागु: 'हमने आपसे जो पूछा है, आपने हमें उसका उत्तर दे दिया है; मैं आपसे एक और प्रश्न पूछता हूँ, कृपया उसका उत्तर दीजिए: ज्ञानी लोग पुनर्जन्म, वृद्धावस्था, दु:ख और विलाप के चक्र को कैसे पार करते हैं? हे मुनि (संत) मुझे इसका पूर्णतया वर्णन कीजिए, क्योंकि यह विषय (धम्म) आपको भलीभांति ज्ञात है। (1058)

5. 'हे मेट्टागु, मैं आपको धम्म की व्याख्या करूँगा,' - भगवान बुद्ध ने कहा - 'यदि कोई व्यक्ति प्रत्यक्ष जगत में, बिना किसी पारंपरिक शिक्षा के, इसे समझ ले और चिंतनशील होकर विचरण करे, तो वह संसार में इच्छाओं पर विजय प्राप्त कर सकता है।' (1059)

6. मेट्टागु: 'और मैं उस परम उत्कृष्ट धम्म में आनंदित होता हूँ, हे महान ऋषि (संत), जिसे यदि कोई व्यक्ति समझ ले और चिंतनशील होकर विचरण करे, तो वह संसार में इच्छाओं पर विजय प्राप्त कर सकता है।' (1060)

7. 'हे मेट्टागु, तुम जो कुछ भी जानते हो,' - भगवान (बुद्ध) ने कहा, - 'ऊपर, नीचे, आर-पार और मध्य में जो कुछ भी है, उसमें न तो आनंद लो और न ही विश्राम करो, अपने मन को अस्तित्व पर केंद्रित मत करो।' (1061)

8. 'इस प्रकार विचारशील, परिश्रमी जीवन जीते हुए, भिक्षु (भिक्षु) स्वार्थ, पुनर्जन्म, वृद्धावस्था, दुःख और विलाप का त्याग करके, इस संसार में दुःख छोड़ दे।' (1062)

9. मेट्टागु: 'मैं महान ऋषि (ऋषि, संत) के इन शब्दों से प्रसन्न होता हूँ; हे गौतम (बुद्ध) ने अच्छी तरह से समझाया है कि (तुम्हारे द्वारा) उपाधि (अर्थात निर्वाण) से मुक्ति मिलती है। भगवान (बुद्ध) ने वास्तव में दुःख को त्याग दिया है, क्योंकि यह धर्म तुम्हें भली-भांति ज्ञात है।' (1063)

10. 'और वे भी निश्चय ही पीड़ा से मुक्त होंगे जिन्हें आप, हे मुनि (संत), निरंतर उपदेश देते रहें; अतः मैं यहाँ आकर आपको प्रणाम करता हूँ, हे नाग प्रधान, भगवान बुद्ध भी मुझे निरंतर उपदेश देते रहें।' (1064)

11. बुद्ध: 'जिस ब्राह्मण को मैं सिद्ध मानता हूँ, जो कुछ भी नहीं रखता, कामवासना से दूर रहता है, वह निश्चय ही इस धारा को पार कर चुका है और दूसरे तट पर पहुँच गया है, कठोरता (अखिल) से मुक्त और संशय से मुक्त।' (1065)

12. 'और वह इस संसार में एक बुद्धिमान और सिद्ध पुरुष है; पुनर्जन्मों के इस बंधन को त्यागकर वह इच्छा रहित और दुःख से मुक्त है।'लालसा से मुक्त होकर, उसने पुनर्जन्म और वृद्धावस्था को पार कर लिया है, इसलिए मैं कहता हूँ।' (1066)

मेट्टागुमानवपुच्छा समाप्त हो गया है।

5.5 धोतकामनावपुच्छा

1. 'हे भगवान (भगवान बुद्ध), मैं आपसे यह पूछता हूँ,' - पूज्य धोतक ने कहा, 'हे महान ऋषि (ऋषि), मैं आपके उपदेशों के लिए तरसता हूँ; आपके प्रवचन सुनकर शिष्य को अपना निर्वाण (मुक्ति, मोक्ष, अमरता) प्राप्त हो।' (1067)

2. 'हे धोतक, हे भगवान (भगवान बुद्ध), इस संसार में बुद्धिमान और विचारशील होकर, मेरे उपदेश सुनकर शिष्य को अपना निर्वाण प्राप्त हो।' (1068)

3. धोतक: 'मैं देवताओं और मनुष्यों के संसार में एक ब्राह्मण को कुछ भी प्राप्त किए बिना भटकते हुए देखता हूँ; इसलिए मैं आपको प्रणाम करता हूँ, हे सर्वदर्शी, मुझे संदेहों से मुक्त करें, हे शाक्यमुनि (बुद्ध)।' (1069)

4. बुद्ध: 'हे धोतक, मैं संसार में किसी भी संशयी व्यक्ति को मुक्त करने नहीं जाऊंगा; जब तुम सर्वश्रेष्ठ धम्म सीख लोगे, तब तुम इस धारा को पार करोगे।' (1070)

5. धोतक: 'हे ब्राह्मण, मुझ पर दया करके मुझे एकांतवास (अर्थात निर्वाण) का धम्म सिखाओ, ताकि मैं इसे समझ सकूं और वायु के समान अनेक रूपों में विलीन हुए बिना इस संसार में शांत और स्वतंत्र रूप से विचरण कर सकूं।' (?) (1071)

6. 'हे धोतक, मैं तुम्हें शांति का अर्थ समझाऊंगा,' - भगवान (बुद्ध) ने कहा; - 'यदि कोई व्यक्ति प्रत्यक्ष जगत में, बिना किसी पारंपरिक शिक्षा के, इसे समझ ले और चिंतनशील होकर विचरण करे, तो वह संसार में इच्छाओं पर विजय प्राप्त कर सकता है।' (1072)

7. धोतका: 'और मैं उस परम शांति में आनंदित होता हूँ, हे महान ऋषि (संत), जिसे यदि कोई व्यक्ति समझ ले और चिंतनशील होकर विचरण करे, तो वह संसार की इच्छाओं पर विजय प्राप्त कर सकता है।' (1073)

8. 'हे धोतका, तुम जो कुछ भी जानते हो,' - भगवान (बुद्ध) ने कहा - 'ऊपर, नीचे, आर-पार और मध्य में जो कुछ भी है, उसे संसार में एक बंधन मानकर, तुम्हें बार-बार जन्म लेने की इच्छा नहीं करनी चाहिए।' (1074)

धोतकामनावपुच्छ समाप्त होता है।

5.6 उपासिवमनवापुच्च

1. 'हे सक्का (शाक्यमुनि, बुद्ध), मैं अकेला और बिना सहायता के इस महान नदी को पार नहीं कर पाऊंगा,' - आदरणीय उपासिव ने कहा; 'हे सर्वदर्शी, मुझे कोई ऐसा उपाय बताइए जिससे इस नदी को पार किया जा सके।' (1075)

2. 'हे उपासिव, शून्यता को ध्यान में रखते हुए, चिंतनशील होकर,' - भगवान (बुद्ध) ने कहा; 'अस्तित्वहीनता के प्रतिबिंब से ही तुम नदी पार करोगे; इंद्रिय सुखों का त्याग करके, संदेहों से विमुख होकर, तुम दिन-रात तृष्णा के निवारण (अर्थात निर्वाण) का ध्यान रखोगे।' (1076)

3. उपासिव: 'जिस व्यक्ति की सभी इंद्रिय सुखों के प्रति आसक्ति समाप्त हो गई है, जिसने सब कुछ त्यागकर शून्यता का सहारा लिया है, और ज्ञान द्वारा सर्वोच्च मुक्ति प्राप्त कर ली है, क्या वह आगे बढ़े बिना वहीं रहेगा?' (1077)

4. 'हे उपासिव, जिसकी सभी इंद्रिय सुखों के प्रति आसक्ति दूर हो गई हो,' - भगवान (बुद्ध) ने कहा - 'सब कुछ त्यागकर शून्यता की शरण में आकर, ज्ञान द्वारा सर्वोच्च मुक्ति प्राप्त करके, वह वहीं बिना आगे बढ़े रहेगा।' (1078)

5. उपासिव: 'हे सर्वदर्शी, यदि वह अनेक वर्षों तक वहीं बिना आगे बढ़े रहे, (और यदि) वह वहाँ शांत और मुक्त हो जाए, तो क्या ऐसे व्यक्ति के लिए चेतना बनी रहेगी?' (1079)

6. 'हे उपासिव, जैसे हवा के प्रचंड झोंके से उड़ती हुई ज्वाला बुझ जाती है, उसका अस्तित्व नहीं गिना जा सकता, वैसे ही नाम और शरीर से मुक्त मुनि (संत) विलीन हो जाता है, और उसका अस्तित्व नहीं गिना जा सकता।' (1080)

7. उपासिव: 'क्या वह (केवल) विलीन हो गए हैं, या उनका अस्तित्व (अब) नहीं रहा, या वे हमेशा के लिए रोगमुक्त हो गए हैं? हे मुनि (संत), मुझे इसका पूर्णतया स्पष्टीकरण दीजिए, क्योंकि यह धर्म आपको भलीभांति ज्ञात है।' (1081)

8. 'हे उपासिव, जिनका विलीन हो गया है, उनका कोई रूप नहीं है,' - भगवान (बुद्ध) ने कहा - 'जिससे वे कहते हैं कि वे हैं, उनका अस्तित्व उनके लिए नहीं रह जाता, जब सभी चीजें (धर्म) समाप्त हो जाती हैं, तो सभी प्रकार के विवाद भी समाप्त हो जाते हैं।' (1082)

उपासिवमनवपुच्छ समाप्त हुआ।

5.7 नंदमानवपुच्छ

1. 'संसार में मुनि (संत) हैं,' - आदरणीय नंदा ने कहा, - 'लोग ऐसा कहते हैं। आप इसे कैसे समझते हैं? क्या वे ज्ञान से परिपूर्ण मुनि कहते हैं या जीवन से परिपूर्ण मुनि?' (1083)

2. बुद्ध: 'हे नंदा, विद्वान किसी को मुनि (संत) किसी दार्शनिक मत, परंपरा या ज्ञान के कारण नहीं कहते; बल्कि जो दुःख और इच्छा से मुक्त होकर एकांतवास करते हैं, उन्हें मैं मुनि कहता हूँ।' (1084)

3. 'ये सभी समन (भिक्षु) और ब्राह्मण (पुजारी),' - आदरणीय नंदा ने कहा, - 'कहते हैं कि पवित्रता दार्शनिक मतों, परंपरा, सद्गुण और पवित्र कर्मों से और अनेक अन्य तरीकों से आती है।' हे पूज्यवर, क्या उन्होंने संसार में अपने जीवन के माध्यम से पुनर्जन्म और वृद्धावस्था को पार किया? हे भगवान (भगवान बुद्ध), मैं आपसे पूछता हूँ, मुझे यह बताइए। (1085)

4. हे नंदा, ये सभी समन और ब्राह्मण कहते हैं कि पवित्रता दार्शनिक विचारों, परंपरा, सद्गुण और (पवित्र) कर्मों और अनेक अन्य तरीकों से आती है; फिर भी उन्होंने संसार में अपने जीवन के माध्यम से पुनर्जन्म और वृद्धावस्था को पार नहीं किया, ऐसा मैं कहता हूँ। (1086)

5. पूज्य नंदा ने कहा, ये सभी समन और ब्राह्मण कहते हैं कि पवित्रता दार्शनिक विचारों, परंपरा, सद्गुण और (पवित्र) कर्मों और अनेक अन्य तरीकों से आती है; हे मुनि (संत), यदि आप कहते हैं कि ऐसे लोग धारा पार नहीं कर पाए हैं, तो हे पूज्यवर, देवताओं और मनुष्यों के संसार में पुनर्जन्म और वृद्धावस्था को किसने पार किया है? हे भगवान (बुद्ध) मैं आपसे पूछता हूँ, मुझे इसका उत्तर दीजिए। (1087)

6. हे नंदा, मैं यह नहीं कहता कि सभी समन और ब्राह्मण, भगवान (बुद्ध) ने कहा, पुनर्जन्म और वृद्धावस्था से घिरे हुए हैं; जो इस संसार में देखी, सुनी या सोची गई बातों और सभी सद्गुणों और (पवित्र) कर्मों को त्यागकर, विभिन्न प्रकार की सभी चीजों को त्यागकर, इच्छा में प्रवेश करके, वासना से मुक्त हो जाते हैं, वास्तव में मैं उन्हें ही धारा पार करने वाले पुरुष कहता हूँ। (1088)

7. नंदा: मैं महान ऋषि (संत) के इन शब्दों से प्रसन्न हूँ; हे गौतम (बुद्ध) आपने अच्छी तरह से समझाया है कि उपाधि (अर्थात निर्वाण) से मुक्ति है; जो लोग इस संसार में देखी, सुनी या सोची गई हर चीज, और सभी सद्गुणों और (पवित्र) कर्मों को त्यागकर, विभिन्न प्रकार की हर चीज को त्यागकर, इच्छा में पारंगत होकर, वासना से मुक्त हो जाते हैं, ऐसे लोगों को मैं धारा पार कर चुके पुरुष कहता हूँ।' (1089)

नंदमनवपुच्छ समाप्त।

5.8 हेमकामनावपुच्छा

1. 'जो लोग पहले दूसरे लोक में,' - आदरणीय हेमक ने कहा, - 'मुझे गौतम (बुद्ध) के सिद्धांत की व्याख्या करते हुए कहते थे, "ऐसा था, ऐसा ही होगा," वह सब केवल मौखिक परंपरा थी, वह सब केवल मेरे संदेहों को बढ़ाने वाली बात थी। (1090)

2. 'मुझे उसमें कोई आनंद नहीं आया, परन्तु हे मुनि (संत), मुझे वह धम्म बताओ जो इच्छा का नाश करता है, जिसे यदि कोई व्यक्ति समझ ले और चिंतन में विचरण करे, तो वह संसार में इच्छा पर विजय प्राप्त कर सकता है।' (1091)

3. बुद्ध: 'इस संसार में बहुत कुछ देखा, सुना और सोचा गया है; हे हेमक, जो प्रिय वस्तुओं का अनुभव किया गया है, उनके प्रति वासना और इच्छा का नाश ही निर्वाण (मुक्ति, मोक्ष, अमरता) की अविनाशी अवस्था है।' (1092)

4. 'जिन्होंने इसे समझ लिया है, वे विचारशील, शांत हैं, क्योंकि उन्होंने धम्म को देखा है, शांत और दिव्य हैं, ऐसे लोगों ने इस संसार में इच्छा को पार कर लिया है।' (1093)

हेमकमनवपुच्छ समाप्त होता है।

5.9 तोदेय्यामनवपुच्छा

1. 'जिसमें कामवासनाएँ नहीं रहतीं,' - पूज्य तोदेय्या ने कहा, - 'जिसमें कोई इच्छा नहीं होती, और जिसने संदेह पर विजय प्राप्त कर ली होती है, उसके लिए किस प्रकार की मुक्ति है?' (1094)

2. 'हे तोदेय्या, जिसमें कामवासनाएँ नहीं रहतीं,' - भगवान (बुद्ध) ने कहा, - 'जिसमें कोई इच्छा नहीं होती, और जिसने संदेह पर विजय प्राप्त कर ली होती है, उसके लिए कोई अन्य मुक्ति नहीं है।' (1095)

3. तोदेय्या: 'क्या वह श्वासहीन है या श्वास ले रहा है, क्या वह प्रख्यात (प्रत्यक्ष अनुभवात्मक ज्ञान) से युक्त है या स्वयं ज्ञान का निर्माण कर रहा है? हे सर्वदर्शी, मुझे यह समझाइए, ताकि मैं एक मुनि (संत) को जान सकूँ, हे सक्का (शाक्यमुनि, बुद्ध)।' (1096)

4. बुद्ध: 'वह श्वासहीन है, वह साँस नहीं ले रहा है, वह पन्ना (प्रत्यक्ष अनुभवात्मक बोध) से युक्त है, और वह स्वयं कोई बोध नहीं बना रहा है; हे तोदेय्या, जान लो कि ऐसा ही मुनि (संत) है, जो किसी भी चीज़ से रहित है, कामवासना और अस्तित्व से आसक्त नहीं है।' (1097)

तोदेय्यामनवपुच्छ समाप्त होता है।

5.10 कप्पमनवापुच्छा

1. 'जो लोग जल के बीच में खड़े हैं,' - आदरणीय कप्पा ने कहा, - 'उस भयंकर धारा में जो उमड़ पड़ी है, जो क्षय और मृत्यु से त्रस्त हैं, हे आदरणीय पुरुष, मुझे एक द्वीप के बारे में बताओ, और मुझे एक ऐसे द्वीप का वर्णन करो जहाँ यह (पीड़ा) फिर कभी न आए।' (1098)

2. 'जो लोग जल के बीच में खड़े हैं, हे कप्पा,' - भगवान (भगवान बुद्ध) ने कहा, - 'उस भयंकर धारा में जो उमड़ पड़ी है, जो क्षय और मृत्यु से त्रस्त हैं, मैं तुम्हें एक द्वीप के बारे में बताऊंगा, हे कप्पा।' (1099)

3. 'इस अद्वितीय द्वीप को, जो कुछ भी नहीं रखता (और) किसी भी चीज की लालसा नहीं रखता, मैं निर्वाण (मुक्ति, मोक्ष, अमरता) कहता हूँ, जो क्षय और मृत्यु का नाश है।' (1100)

4. 'जिन्होंने इसे समझ लिया है, वे विचारशील (और) शांत हैं, क्योंकि उन्होंने धम्म को देखा है, वे मार (मृत्यु के देवता) के वश में नहीं आते, और न ही मार के साथी होते हैं।' (1101)

कप्पमनवपुच्छ समाप्त।

5.11 जटुकन्निमनवापुच्छा

1. 'कामवासना से मुक्त एक महान व्यक्ति के बारे में सुनकर,' - आदरणीय जटुकन्निन ने कहा, - 'जो नदी पार कर चुके हैं, मैं उनसे यह पूछने आया हूँ जो कामवासना से मुक्त हैं; मुझे शांति का स्थान बताइए, हे जन्मजात ज्ञान की दृष्टि वाले, मुझे यह सत्य बताइए, हे भगवान (भगवान बुद्ध)। (1102)

2. 'क्योंकि भगवान (भगवान बुद्ध) कामवासना पर विजय प्राप्त करने के बाद उसी प्रकार विचरण करते हैं जैसे गर्म सूर्य अपनी गर्मी से पृथ्वी पर विजय प्राप्त करता है; मुझे धम्म बताइए, हे महान पन्ना (प्रत्यक्ष अनुभवात्मक ज्ञान) वाले, जिसका (केवल) ज्ञान कम है, ताकि मैं पुनर्जन्म और क्षय से मुक्ति पा सकूँ।' (1103)

3. 'इंद्रिय सुखों के प्रति अपने लोभ को वश में करो,' - भगवान (भगवान बुद्ध) ने कहा, - 'संसार के त्याग को सुख मानकर, किसी भी चीज को न तो पकड़ो और न ही त्यागो।' (1104)

4. 'जो कुछ तुम्हारे सामने है, उसे त्याग दो; तुम्हारे पीछे कुछ भी न रहे; यदि तुम मध्य में जो कुछ है, उसके पीछे नहीं भागोगे, तो तुम शांत होकर विचरण करोगे। (1105)

5. 'हे ब्राह्मण, जिसका नाम और रूप का लोभ पूरी तरह से समाप्त हो गया है, उसके लिए ऐसी कोई वासना नहीं है जिससे वह मृत्यु के वश में आ जाए।' (1106)

जटुकन्निमनवपुच्छ समाप्त होता है।

5.12 भद्रवुधमनवापुच्छ

1. 'मैं ज्ञानी (बुद्ध), गृहस्थ, इच्छाओं का त्याग करने वाले से विनती करता हूँ,' - आदरणीय भद्रवुधा ने कहा, - 'जो हलचल से मुक्त हैं, सुख का त्याग कर चुके हैं, नदी पार कर चुके हैं, मुक्त हो चुके हैं, और समय को पीछे छोड़ चुके हैं; प्रधान का वचन सुनकर वे यहाँ से चले जाएँगे।' (1107)

2. 'हे महानुभाव, प्रांतों से अनेक लोग आपके वचन सुनने की लालसा से एकत्रित हुए हैं; आप उन्हें इसका पूर्णतया उपदेश दीजिए, क्योंकि यह धम्म आपको भलीभांति ज्ञात है।' (1108)

3. 'हे भद्रवुधा, सब कुछ पाने की लालसा को पूर्णतः वश में कर लो,' - भगवान (बुद्ध) ने कहा, - 'ऊपर, नीचे, आर-पार और मध्य में; क्योंकि संसार में जिस भी वस्तु को पाने की लालसा की जाती है, उसी के कारण मृत्यु का देवता मनुष्य का पीछा करता है।' (1109)

4. 'अतः, यह जानकर, विचारशील भिक्षु (भिक्षु) संसार में किसी भी वस्तु के पीछे न भागे, इस पीढ़ी को इच्छा के प्राणी समझकर, मृत्यु के लोक में स्थिर न रहे।' (1110)

भद्रवुधमनवपुच्छ समाप्त।

5.13 उदयमनवपुच्छ
1. 'ध्यान में बैठे बुद्ध, जो अशुद्धियों से मुक्त हैं,' - आदरणीय उदय ने कहा, - 'अपने कर्तव्य का पालन कर चुके, वासना रहित, सभी विषयों (धर्म) में सिद्ध हो चुके, मैं एक प्रश्न लेकर आया हूँ; मुझे ज्ञान द्वारा मुक्ति, अज्ञान का विखंडन बताइए।' (1111)

2. 'हे उदय, कामवासना और इच्छा का त्याग करना,' - भगवान बुद्ध ने कहा, - 'और दोनों प्रकार के दुःखों का त्याग करना, आलस्य को दूर भगाना और दुराचार से बचना इसमें निहित है।' (1112)

3. 'मैं आपको समभाव और चिंतन से शुद्ध किए गए और धर्म पर तर्क-वितर्क से प्रेरित ज्ञान द्वारा मुक्ति, अज्ञान का विखंडन, बताऊंगा।' (1113)

4. उदय: 'संसार का बंधन क्या है, इसका अभ्यास क्या है?' 'निर्वाण (मुक्ति, मोक्ष, अमरता) किसके त्याग से प्राप्त होता है?' (1114)

5. बुद्ध: 'संसार सुख से बंधा है, तर्क करना इसका अभ्यास है; इच्छा के त्याग से निर्वाण प्राप्त होता है।' (1115)

6. उदय: 'चिंतनशील व्यक्ति में चेतना कैसे समाप्त होती है? आपसे पूछने आए हैं, तो कृपया अपने शब्द सुनें।' (1116)

7. बुद्ध: 'जो व्यक्ति आंतरिक और बाह्य रूप से संवेदना में आनंद नहीं लेता, जो इस प्रकार चिंतनशील रहता है, उसकी चेतना समाप्त हो जाती है।' (1117)

उदयमनवपुच्छ समाप्त होता है।

5.14 पोसलमनवपुच्चा
1. 'जो अतीत (जन्म आदि) को जानते हैं,' - पूज्य पोसाला ने कहा - 'जो इच्छा रहित हैं और जिन्होंने संदेह को दूर कर दिया है, जो सभी विषयों (धर्म) में सिद्ध हैं, मैं उनसे प्रश्न पूछने आया हूँ। (1118)

2. 'हे सक्का (शाक्यमुनि, बुद्ध), मैं उनके ज्ञान के बारे में पूछता हूँ जो अतीत के स्वरूपों से अवगत हैं, जो हर शारीरिक रूप का त्याग करते हैं, और जो देखते हैं कि आंतरिक या बाह्य रूप से कुछ भी विद्यमान नहीं है; ऐसे व्यक्ति को कोई कैसे बहका सकता है? (1119)

3. 'तथागत (बुद्ध), चेतना के सभी रूपों को जानते हुए, हे पोसाला,' - भगवान (बुद्ध) ने कहा - 'उसे भी जानते हैं जो मुक्त होकर उस (विषय) के प्रति समर्पित है।' (1120)

4. 'यह समझकर कि सुख के बंधन शून्यता से उत्पन्न नहीं होते (?), वह इस (पदार्थ) में स्पष्ट रूप से देखता है, यही एक पूर्ण, सिद्ध ब्राह्मण का ज्ञान है।' (1121)

पोसलमनवपुच्छ समाप्त होता है।

5.15 मोगराजमनवपुच्चा
1. 'मैंने दो बार सक्का (शाक्यमुनि, बुद्ध) से पूछा है,' - आदरणीय मोगराजन ने कहा, - 'परन्तु स्पष्ट दृष्टि वाले ने भी मुझे इसका उत्तर नहीं दिया; यदि तीसरी बार दिव्य ऋषि (संत) से पूछा जाए, तो वे इसका उत्तर देंगे, ऐसा मैंने सुना है। (1122)

2. 'यह संसार है, परलोक है, ब्रह्मा (प्रधान देवदूत) का संसार है और देवताओं का संसार है; मैं आपका, प्रसिद्ध गौतम (बुद्ध) का दृष्टिकोण नहीं जानता। (1123)

3. 'जो अच्छाई को देखता है, उसके समक्ष मैं एक प्रश्न लेकर आया हूँ: कोई व्यक्ति संसार को कैसे देखे कि मृत्यु का राजा उसे न देख पाए?' (1124)

4. 'हे मोगराजन, संसार को शून्य समझकर, सदा चिंतनशील होकर, अपने आप को (वास्तव में विद्यमान) न देखकर, मृत्यु पर विजय प्राप्त करो;' मृत्यु का राजा उसे नहीं देखेगा जो इस प्रकार संसार को देखता है।' (1125)

मोगराजमनवपुच्छ समाप्त हो गया है।

5.16 पिंगियामनवापुच्चा

1. 'मैं बूढ़ा, दुर्बल और रंगहीन हूँ,' - पूज्य पिंगिया ने कहा, - 'मेरी आँखें कमजोर हैं, मेरी सुनने की शक्ति कम है; कहीं मैं मूर्ख बनकर रास्ते में ही न मर जाऊँ, इसलिए मुझे धम्म बताइए, ताकि मैं इस संसार में पुनर्जन्म और क्षय से मुक्ति पा सकूँ।' (1126)

2. 'हे पिंगिया, दूसरों को शरीर से पीड़ित देखकर,' - भगवान (भगवान बुद्ध) ने कहा, - '(देखकर) लापरवाह लोग अपने शरीर में कष्ट भोगते हैं; - इसलिए, हे पिंगिया, क्या तुम सावधान रहोगे, और शरीर को त्याग दोगे, ताकि तुम फिर कभी जन्म न लो।' (1127)

3. पिंगिया: 'चार क्षेत्र, चार मध्यवर्ती क्षेत्र, ऊपर और नीचे, ये दस क्षेत्र हैं; ऐसा कुछ भी नहीं है जिसे तुमने देखा, सुना या सोचा न हो, और क्या संसार में ऐसा कुछ है जिसे तुमने समझा न हो?' मुझे धम्म का उपदेश दो, ताकि मैं इस संसार में पुनर्जन्म और क्षय से मुक्ति पा सकूँ। (1128)

4. 'हे पिंगिया, मनुष्यों को कामवासना से ग्रस्त देखकर,' - भगवान (बुद्ध) ने कहा, - 'पीड़ित और क्षय से ग्रस्त देखकर, हे पिंगिया, सावधान रहो और कामवासना को त्याग दो, ताकि तुम फिर कभी जन्म न लो।' (1129)

पिंगियामनवपुच्छ समाप्त होता है।

परायनत्थुतिगाथा

भगवान बुद्ध मगध में पसानका चेतिया (शिला मंदिर) में निवास करते हुए कहते हैं, "बावरी के सोलह अनुयायियों ने उनसे संपर्क किया और बारी-बारी से उनसे प्रश्न पूछे, तो उन्होंने प्रश्नों के उत्तर दिए। यदि कोई व्यक्ति प्रत्येक प्रश्न का अर्थ और भाव समझकर धम्म के अनुसार जीवन व्यतीत करता है, तो वह मृत्यु और क्षय के उस पार के तट पर जाएगा, क्योंकि ये धम्म उस पार के तट की ओर ले जाते हैं, और इसीलिए इस धम्म को 'उस पार के तट का मार्ग' कहा गया है।" 1, 2. अजित, तिस्सामेत्तेय, पुन्नक और मेट्टागु, धोतक और उपासिव, नंदा और हेमक, दो तोदेय्या और कप्पा, और ज्ञानी जटुकन्निन, भद्रवुधा और उदय, और ब्राह्मण पोसला, और ज्ञानी मोगराजन, और महान ऋषि (पिंगिया) (1130, 1131)

3. ये सभी अनुकरणीय आचरण वाले ऋषि बुद्ध के पास गए; सूक्ष्म प्रश्न पूछते हुए वे सर्वोच्च बुद्ध के पास गए। (1132)

4. पूछे जाने पर बुद्ध ने उनके प्रश्नों का सत्यपूर्वक उत्तर दिया, और प्रश्नों का उत्तर देते हुए मुनि (संत) ने ब्राह्मणों को प्रसन्न किया। (1133)

5. प्रत्यक्षदर्शी बुद्ध, जो आदिच्छों के सगोत्र थे, से प्रसन्न होकर उन्होंने उस उत्कृष्ट ज्ञान (प्रत्यक्ष अनुभवात्मक समझ) वाले व्यक्ति के निकट पवित्र ब्रह्मचर्य जीवन व्यतीत किया। (1134)

6. प्रत्येक प्रश्न के उत्तर में बुद्ध द्वारा दी गई शिक्षाओं के अनुसार जीवन व्यतीत करने वाला व्यक्ति इस तट से दूसरे तट पर गया। (1135)

7. इस तट से वह दूसरे तट पर सबसे उत्तम मार्ग पर चलकर गया; यह मार्ग दूसरे तट की ओर जाता है, इसलिए इसे 'दूसरे तट का मार्ग' कहा जाता है। (1136)

परायननुगितिगाथा

8. 'मैं तदनुसार दूसरे तट का मार्ग बताऊँगा,' - आदरणीय पिंगिया ने कहा; - 'जैसा उसने देखा, वैसा ही उसने बताया; निष्कलंक, अत्यंत बुद्धिमान, भावहीन, इच्छा रहित स्वामी, भला वह झूठ क्यों बोलेगा? (1137)

9. 'अच्छा! मैं (बुद्ध) की सुंदर वाणी की प्रशंसा करूँगा, जो निष्कलंक और मूर्खता से रहित हैं, और जिन्होंने अहंकार और पाखंड को त्याग दिया है। (1138)

10. 'अंधकार को दूर करने वाले बुद्ध, सर्वदर्शी, जो संसार को भली-भांति समझते हैं, जिन्होंने समस्त अस्तित्वों पर विजय प्राप्त की है, जो वासना से मुक्त हैं, जिन्होंने समस्त पीड़ाओं को त्याग दिया है, उन्हें ही (बुद्ध) कहना उचित है, हे ब्राह्मण, वे मेरे पास आए हैं। (1139)

11. 'जैसे पक्षी झाड़ी छोड़कर फलदायी वन में अपना निवास स्थान बना लेता है, वैसे ही मैं संकीर्ण विचारों वाले मनुष्यों को छोड़कर हंस के समान विशाल सागर तक पहुँच गया हूँ।' (1140)

12. 'जो लोग पहले दूसरे लोक में गौतम (बुद्ध) के सिद्धांत की व्याख्या करते हुए कहते थे, "ऐसा था, ऐसा ही होगा," वह सब केवल मौखिक परंपरा थी, वह सब केवल मेरे संदेह को बढ़ाने वाली बात थी। (1141)

13. 'केवल एक ही शाश्वत अंधकार को दूर करने वाला है, वह है उच्च कुल का, प्रकाशमान, महान पन्ना (प्रत्यक्ष अनुभवात्मक ज्ञान) वाला गौतम (बुद्ध), महान ज्ञान वाला गौतम (बुद्ध)। (1142)

14. 'जिसने मुझे धम्म सिखाया, जो तात्कालिक है, जो तत्काल है, जो इच्छाओं का नाश करता है, जो कष्टों से मुक्ति दिलाता है, जिसकी कोई समानता नहीं है।' (1143)

15. बावरी: 'हे पिंगिया, क्या तुम महान पन्ना (प्रत्यक्ष अनुभवात्मक ज्ञान) वाले गौतम (बुद्ध) से, महान ज्ञान वाले गौतम (बुद्ध) से एक पल के लिए भी दूर रह सकते हो? (1144)

16. 'तुम्हें धम्म किसने सिखाया, जो तात्कालिक है, तत्काल है, इच्छाओं का नाश करता है, दुखों से मुक्ति दिलाता है, जिसकी कोई समानता नहीं है?' (1145)

17. पिंगिया: 'हे ब्राह्मण, मैं महान पन्ना (प्रत्यक्ष अनुभवात्मक ज्ञान) वाले गौतम (बुद्ध) से, महान ज्ञान वाले गौतम (बुद्ध) से एक पल के लिए भी दूर नहीं रहता। (1146)

18. 'मुझे धम्म किसने सिखाया, जो तात्कालिक है, तत्काल है, इच्छाओं का नाश करता है, दुखों से मुक्ति दिलाता है, जिसकी कोई समानता नहीं है। (1147)

19. 'हे ब्राह्मण, मैं उन्हें अपने मन में और अपनी आँखों से, दिन-रात, सजग होकर देखता हूँ; मैं उपासना करते हुए रात बिताता हूँ, इसलिए मुझे लगता है कि मैं उससे दूर नहीं रहता। (1148)

20. 'विश्वास और आनंद, मन और विचार मुझे गौतम (बुद्ध) के सिद्धांत की ओर झुकाते हैं; जिस मार्ग पर वह ज्ञानी पुरुष जाता है, मैं भी उसी मार्ग की ओर झुकता हूँ। (?) (1149)

21. 'इसलिए, क्योंकि मैं थका हुआ और दुर्बल हूँ, मेरा शरीर वहाँ नहीं जाता, परन्तु मेरे विचार सदा वहाँ जाते हैं, क्योंकि हे ब्राह्मण, मेरा मन उससे जुड़ा हुआ है। (1150)

22. 'कामवासनाओं के कीचड़ में लोटते हुए, मैं एक द्वीप से दूसरे द्वीप पर कूदता रहा; तब मैंने पूर्णतः प्रबुद्ध व्यक्ति को देखा, जिसने नदी पार कर ली है और कामवासनाओं से मुक्त है।' (1151)

23. भगवान (बुद्ध): 'जैसे वक्कली को विश्वास से मुक्ति मिली, (साथ ही) भद्रवुधा और अलावी-गौतम को, वैसे ही तुम भी विश्वास से मुक्ति पाओ, और हे पिंगिया, मृत्युलोक के दूसरे छोर तक जाओ।' (1152)

24. पिंगिया: 'मुनि के वचन सुनकर मैं अत्यंत प्रसन्न हूँ; संबुद्ध ने पर्दा हटा दिया है, वे कठोरता से मुक्त और बुद्धिमान हैं।' (1153)

25. 'देवताओं से संबंधित सभी चीजों का ज्ञान होने के कारण, वे हर प्रकार की हर बात जानते हैं; गुरु उन सभी संशयियों के प्रश्नों का उत्तर देंगे जो उन्हें स्वीकार करेंगे।' (1154)

26. 'अभेद्य, अपरिवर्तनीय (निर्वाण, अमरता) की ओर, जिसकी कोई समानता नहीं है, मैं निश्चित रूप से जाऊँगा;' इस (निर्वाण) में मेरे लिए कोई संदेह नहीं रहेगा, इसलिए मुझे निर्धन मन वाला समझो। (1155)

परायणवग्ग समाप्त हुआ।

सुत्तनिपात समाप्त हुआ।